महाभारत का
आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यो पर
प्रभाव

महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० विनय



सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-७

महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव

(दिल्ली विश्वविद्यालय की पी-एच डी उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० विनय


सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-७

प्रथम सस्करण	१९६६
प्रकाशक	सन्मार्ग प्रकाशन १६, यू० बी० बंगलो रोड, दिल्ली-७
मूल्य राज सस्करण	पच्चीस रुपए
साधारण सस्करण	बीस रुपए
मुद्रक	शुक्ला प्रिंटिंग एजेन्सी द्वारा, इण्डिया प्रिंटर्स दिल्ली

समर्पित

कविवर डॉ० हरिवंशराय 'बच्चन' को

सादर

हमारी योजना

'महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव' हिन्दी अनुसन्धान-परिषद् ग्रंथमाला का ३६वां ग्रंथ है। 'हिन्दी अनुसन्धान परिषद्' हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय की संस्था है, जिसकी स्थापना अक्तूबर, सन् १६५२ में हुई थी। परिषद् के मुख्यतः दो उद्देश्य हैं। हिन्दी-वाङ्मय विषयक गवेषणात्मक अनुशीलन तथा उसके फलस्वरूप प्राप्त साहित्य का प्रकाशन।

अब तक परिषद् की ओर से अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है। प्रकाशित ग्रंथ तीन प्रकार के हैं—एक तो वे जिनमें प्राचीन काव्य शास्त्रीय ग्रंथों का हिन्दी रूपान्तर विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है, दूसरे वे जिन पर दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पी एच० डी० उपाधि प्रदान की गई है, और तीसरे ऐसे हैं, जिनका अनुसंधान के साथ—उसके सिद्धान्त और व्यवहार दोनों पक्षों के साथ—प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रंथ हैं—(१) हिन्दी-काव्यालंकार सूत्र, (२) हिन्दी वक्रोक्तिजीवित, (३) अरस्तू का काव्य शास्त्र, (४) हिन्दी-काव्यादर्श, (५) अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, (हिन्दी रूपान्तर), (६) पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा (७) होरेस कृत 'काव्यकला', (८) हिन्दी अभिनव भारती, (६) हिन्दी-काव्यप्रकाश, (१०) हिन्दी नाट्यदर्पण, (११) सौन्दर्य-तत्त्व और काव्य सिद्धांत, (१२) हिन्दी भक्तिरसामृत सिन्धु, (१३) रुद्रट प्रणीत 'काव्यालंकार'।

द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रंथ हैं—(१) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ (२) हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, (३) सूफीमत और हिन्दीसाहित्य, (४) अपभ्रंश साहित्य, (५) राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धांत और साहित्य (६) सूर की काव्य कला, (७) हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परम्परा, (८) मैथिलीशरणगुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, (६) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य, (१०) मतिराम कवि और आचार्य (११) आधुनिक हिन्दी कविता के काव्य सिद्धान्त, (२२) ब्रजभाषा के कृष्णकाव्य में माधुर्य भक्ति (१३) प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास, (१४) हिन्दी में नीतिकाव्य का विकास, (१५)

आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन, (१६) आधुनिक हिंदी काव्य की रूप विधाएं, (१७) गुरमुखी लिपि में हिन्दी-काव्य, (१८) रामकाव्य की परम्परा में रामचन्द्रिका का विशिष्ट अध्ययन, (१९) भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति।

तीसरे वर्ग के अन्तर्गत तीन ग्रंथों का प्रकाशन हो चुका है।

(१) अनुसंधान का स्वरूप (२) हिंदी के स्वीकृत शोध प्रबंध, (३) अनुसंधान की प्रक्रिया।

प्रस्तुत ग्रंथ 'महाभारत का आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों पर प्रभाव' द्वितीय वर्ग का बीसवां प्रकाशन है। इसमें आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों की कथावस्तु, चरित्र सृष्टि तथा धर्म दर्शन पर महाभारत के प्रभाव का सूक्ष्म गहन विश्लेषण किया गया है। महाभारत हमारे जातीय जीवन का सांस्कृतिक कोश है जिसका व्यक्त-अव्यक्त प्रभाव प्रायः सभी भाषाओं के कवियों पर पड़ा है। इस प्रभाव के आकलन का दिशा निर्देश कर डा० विनयकुमार ने निश्चय ही एक शुभ कार्य का श्रीगणेश किया है। हम अपनी शुभकामनाओं सहित इस शोध प्रबंध को विज्ञ पाठकों की सेवा में अर्पित करते हैं।

परिषद् की प्रकाशन योजना को कार्यान्वित करने में हमें हिंदी की अनेक प्रसिद्ध प्रकाशन संस्थाओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। उन सभी के प्रति हम परिषद की ओर से कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

डॉ० नगेन्द्र
अध्यक्ष
हिन्दी अनुसंधान परिषद्

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ शोध प्रबन्ध है। इसकी रचना यह दिखाने को की गयी है कि आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर महाभारत का प्रभाव कहाँ-कहाँ और किन किन रूपों में पड़ा है। लेखक ने आधुनिक युग का आरम्भ भारतेन्दु से माना है और तब से लेकर आज तक महाभारत को उपजीव्य मान कर हिन्दी में जितने भी प्रबन्ध काव्य लिखे गये हैं, अपने जानते, उन्होंने उन सभी काव्यों पर विचार किया है। किन्तु, उनकी सूची लम्बी होने पर भी अधूरी रह गयी। उदाहरणार्थ, कर्ण पर एक छोटा प्रबन्ध-काव्य बिहार के कवि पंडित जनार्दनाथ मिश्र 'प्रभात' का भी है, और एकलव्य पर एक प्रबन्ध कविता श्री रामगोपाल शर्मा रुद्र ने भी लिखी है। किन्तु इन दो काव्यों के नाम इस ग्रन्थ में नहीं लिये गये हैं। लेकिन, इस प्रबन्ध का सबसे बड़ा अभाव यह है कि इसमें डाक्टर धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इस शोध प्रबन्ध में 'अंधा युग' का विवेचन उपयोगी होता क्योंकि महाभारतीय पात्रों और घटनाओं की अद्यतन व्याख्या उसी काव्य में मिलती है।

रामायण और महाभारत, ये दो महाकाव्य पिछले दो हजार वर्षों से समस्त भारतीय साहित्य के उपजीव्य रहे हैं बल्कि, यह कहना चाहिये कि महाभारत से प्रेरणा लेकर लिखे गये काव्यों और नाटकों की संख्या संस्कृत में भी बड़ी थी और यह संख्या भारत की अर्वाचीन भाषाओं में भी विशाल है। महाभारत भारतीय संस्कृति का आधार ग्रन्थ है। जब-जब हमारी संस्कृति में परिवर्तन आते हैं महाभारतीय चरित्रों की नवीन व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती हैं और उनके द्वारा संस्कृति के परिवर्तनों पर प्रकाश डाला जाता है।

भारतीय संस्कृति में जितना बड़ा परिवर्तन उन्नीसवीं सदी में घटित हुआ, उतना बड़ा परिवर्तन पहले और कभी घटित नहीं हुआ था। परिवर्तन की वह धारा आज भी बह रही है और हम सब उसके प्रवाह में हैं। इस बीच महाभारत की कथाओं को लेकर हिन्दी में जो काव्य लिखे गये, उनमें से जीवन्त उन्हें मानना चाहिये जिनमें हमारे सांस्कृतिक नव जागरण के संदेश सुनायी देते हैं। इस दृष्टि से मैथिलीशरण जी गुप्त की कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं क्योंकि उनके भीतर से धर्म का प्रवृत्तिवादी रूप अपना पथ प्रशस्त करता है। भारत का सबसे बड़ा अपराध यह

या कि वह निवृत्ति के अंधकार में खो गया था। नये भारत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रवृत्ति की महिमा को समझने लगा है। यह दृष्टि हम पं० द्वारिका प्रसाद जी मिश्र के कृष्णायन में भी प्रखर मिलती है। मिश्र जी ने कथा या चरित्र चित्रण में महाभारत से जहाँ कहीं भी छूट ली है, उसका उद्देश्य युगधर्म निरूपण के लिए ही सुविधा का प्रबन्ध है।

मुझे इसी प्रबन्ध से यह जानकारी हासिल हुई कि मिश्र जी के कृष्णायन से पूर्व हिन्दी में दो कृष्णायन और लिखे जा चुके थे, एक सन १७८८ ई० में और एक सन् १९०३ ई० में। वैसे ब्रजभाषा में एक और कृष्णायन काव्य इधर हाल में ही बिहार से प्रकाशित हुआ है। उसके लेखक चंपारण (बिहार) के एक वयोवृद्ध कवि थे जो अब स्वर्गीय हो गये हैं। । वह ग्रन्थ भी काफी बड़ा है और संयोग से उसकी भूमिका लिखने का सौभाग्य कवि जी ने मुझे ही प्रदान किया था। कठिनाई यह है कि हिन्दी का क्षेत्र इतना विशाल है कि उसकी एक सीमा की आवाज दूसरी सीमा तक मुश्किल से पहुँच पाती है।

अच्छा हुआ कि महाभारत से प्रेरित अधिकांश काव्य ग्रन्थों की समीक्षा इस एक शोध प्रबन्ध में समाविष्ट हो गयी। इस ग्रन्थ में पहले तो महाभारत का परिचय दिया गया है। फिर यह बताया गया है कि आधुनिक युग के आरम्भ से पूर्व संस्कृत और हिन्दी के काव्यों पर महाभारत का कैसा प्रभाव पड़ा था। फिर महाभारतीय कथा के प्रभाव का पूर्ण विश्लेषण दिया गया है। उसके बाद लेखक ने विद्वत्तापूर्वक यह दिखलाया है कि महाभारत के पात्रों का चरित्र महाभारत में कैसा था और हिन्दी में वह कहाँ तक भिन्न हुआ है। यह खंड काफी रोचक है और ज्ञानवर्द्धक भी तथा उसमें लेखक की गंभीर अध्ययनशीलता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। फिर लेखक ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि महाभारत में निरूपित धर्म का आदर आज के कवि कहाँ तक कर सके हैं और कहाँ कहाँ उन्होंने इस धर्म को नया मोड़ दिया है। धर्म के बाद लेखक ने महाभारत के दर्शन को लिया है और यह दिखलाया है कि नये काव्य में इस दर्शन का निर्वाह कहाँ तक संभव हुआ है।

यह शोध ग्रन्थ काव्य की विषयगत आलोचना का ग्रन्थ है। लेखक का ध्यान इस बात पर नहीं गया है कि महाभारत से प्रेरणा लेकर हिन्दी में जो असंख्य काव्य लिखे गये हैं, उनमें कवित्व सचमुच कितना है। जिस काव्य-ग्रन्थ में कवित्व नहीं होता वह बहुत बार उल्लेख करने योग्य ग्रन्थ है या नहीं, इसमें मैं संदिग्ध मानता हूँ। साहित्य की व्याख्या जो लोग समाजशास्त्रीय उद्देश्यों के लिए करते हैं उन्हें भी सबसे पहले साहित्यिक ही होना चाहिये क्योंकि साहित्य की नवीनता उसके विषयों तक ही सीमित नहीं होती, वह शब्दों में भी बोलती है, शब्दों-छन्दों के भीतर से भी पुकार करती है।

किन्तु शोध करने वाले युवा विद्वानों की विवशता थोड़ी-बहुत मैं भी जानता हूँ। सूक्ष्म को छोड़ देना उनके लिए इसलिये सुकर होता है, क्योंकि स्थूल को छोड़ने

की उन्हें छूट नहीं होती ।

डाक्टर विनयकुमार शर्मा को मैं बधाई देता हूँ कि उन्होंने एक ऐसा प्रबंध हिन्दी को प्रदान किया है, जो रोचक और ज्ञानवर्द्धक है तथा जिसके प्रकाश में आगे के विद्वान और भी अच्छा काम कर सकेंगे । डाक्टर शर्मा की भाषा बलवती और स्वच्छ है तथा उनकी चिंतन पद्धति उलझी हुई नहीं है । वे जो बात कहना चाहते हैं, उसको भाषा उन्हें सुलभ रहती है । यह लेखकों के लिए एक दुर्लभ गुण है । मुझे आशा है कि भविष्य में डाक्टर शर्मा की इस दुर्लभ शक्ति से हिन्दी को और भी लाभ पहुँचेगा ।

२, साउथ एवन्यू लेन
नई दिल्ली
२४ मई, १९६६ ई०

रामधारी सिंह 'दिनकर'

प्राक्कथन

हिन्दी की आधुनिक काव्यधारा पौर्वात्य और पाश्चात्य जीवन मूल्यों के आंशिक समन्वय पर आधारित है। आधुनिक युग का कवि अपने परिवेश के प्रति अधिक सजग एवं सक्रिय रहते हुए अपनी सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के सूत्र भी खोजता रहा है। स्वाभाविक रूप से उसकी दृष्टि अपने अतीत के साहित्य की ओर भी गई है। आज के युग का विप्लव जिन नैतिक मूल्यों की पृष्ठभूमि में निर्मित हुआ है उसी प्रकार की परिस्थितियों का आटोप महाभारत युग में घटित हुआ था। अनेक वैयक्तिक और सामाजिक आदर्शों के लिए समाज और साहित्य ने इस युग में भी महाभारत का अनुकरण किया है। आधुनिक काव्य के स्वरूप को यथावत समझने के लिए महाभारत की इस प्रभाव परम्परा का अध्ययन अपने आप में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का यही प्रतिपाद्य है। महाभारत का प्रभाव विशेष रूप से प्रबन्ध काव्यों पर ही पड़ा है क्योंकि प्रबन्ध काव्य के रचयिता की दृष्टि जातीय, एवं सांस्कृतिक संरक्षण की महत् प्रेरणा से व्याप्त रहती है अतः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विवेच्य साहित्य महाभारत प्रभावित आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्य है।

प्रत्येक युग का काव्य सामयिक समस्याओं का परीक्षण युग निरपेक्ष सिद्धान्तों के निकष पर करता है ऐसे सिद्धान्त शाश्वत होते हैं उनमें सामाजिक अन्तश्चेतना की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान रहती है। प्राचीन का पुनरावलोकन इन्हीं जीवन मगतियों का युगीन अनुसंधान होता है और नवीन कथा रूपों में प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों की पुनर्व्याख्या होती है। हिन्दी के आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में महाभारत की प्रभाव परिणति भी इन दोनों रूपों में देखी जा सकती है।

शोध दृष्टि

(१) महाभारत से प्रभावित प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक हस्तलिखित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रस्तुत संदर्भ में प्रथम बार प्रयोग किया गया है। इनमें से महत्वपूर्ण रचनाओं को विशेष रूप से अपने अध्ययन का आधार बनाया है तथा सामान्य रचनाओं का परिचय मात्र दिया गया है।

(२) हिन्दी के आधुनिक प्रबन्धकाव्यो पर महाभारत के प्रभाव के निमित्त महाभारतीय पात्र, कथा और जीवन दर्शन के प्रति कवि की वैयक्तिक विचारधारा को महत्व दिया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन चिंतन धारा का समन्वय और अन्योन्याश्रित विवेचन करते हुए आधुनिक कवि ने महाभारत की कथा का युगीन परिवेश मे जिस दृष्टि से प्रस्तुत किया, उसकी उपलब्धि का अनुसंधान इस शोध प्रबन्ध के उद्देश्यो मे से एक है।

(३) जिन कवियो ने महाभारत की कथा को काव्य का विषय बनाया है उनके उद्देश्य की समीक्षा करते हुए कथा परिवर्तन के औचित्य की मीमासा भी की गई है।

(४) कथा, पात्र चित्रण और सिद्धान्तो की दृष्टि से महाभारत का प्रभाव ग्रहण करते हुए भी आधुनिक कवियो ने जहाँ अपने उपजीव्य ग्रन्थ से मतभेद प्रस्तुत किया है अथवा उसमे नवीनता का आकलन किया है, उन स्थलो की समीक्षा आधुनिक कवि के युगीन परिवेश के मूल्यांकन के साथ उसे सम्पूर्ण महत्व देकर प्रकाशित की गई है।

प्रस्तुत अध्ययन

इस शोध प्रबन्ध मे सात अध्याय हैं। १ महाभारत का सामान्य परिचय, २ आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य । एक सर्वेक्षण ३ आधुनिक हिन्दी काव्य पूर्व महाभारत की प्रभाव परम्परा, ४ महाभारत की कथा का प्रभाव, ५ महाभारत के चरित्र चित्रण का प्रभाव, ६ महाभारत की धर्म विधि का प्रभाव, और ७ महाभारत के दर्शन का प्रभाव।

प्रथम अध्याय मे महाभारत के महत्व पर विस्तार से विचार किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा मे महाभारत इतिहास, धर्म ग्रन्थ महाकाव्य नीतिग्रन्थ के रूप मे समादृत है। इस अध्याय मे अनेक अन्त और बाह्य साक्ष्यो से महाभारत के उक्त समस्त रूपो की समीक्षा है। महाभारत के प्रतिपाद्य पर विचार करते हुए उसकी विभिन्न विचार सरणियो, दार्शनिक समन्वय और सामाजिक चिंतन की मीमासा की गई है। प्रतिपादन शैली शीर्षकान्तर्गत महाभारत की अनेक वर्णन शैलियो पर विचार किया है।

द्वितीय अध्याय मे महाभारत से प्रभावित आधुनिक हिंदी प्रबन्ध काव्यो का सर्वेक्षण प्रस्तुत है। सन् १८७४ से महाभारतीय आख्यानात्मक खण्ड काव्यो की अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है। इसमे ५० ग्रन्थो का परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे आधुनिक हिन्दी काव्य पूर्व महाभारत की प्रभाव परम्परा का आलेखन है। संस्कृत, पालि अपभ्रंश और हिन्दी साहित्य मे उपलब्ध महाभारतीय दाय सम्पन्न काव्यो और विभिन्न काव्य धाराओ पर महाभारत के प्रभाव की समीक्षा

की गई है। इस अध्याय म परिचयात्मक दृष्टि का अपनाया गया है क्योंकि प्रस्तुत प्रबंध का वास्तविक क्षेत्र आधुनिक प्रबंध काव्य है। इसमे एक विकसित अविच्छिन्न परम्परा से यह ज्ञात हो जाता है कि महाभारत स हमारे साहित्य के सभी युग प्रभावित हुए हैं और सबने अपनी आवश्यकतानुसार पूर्वजों की सम्पत्ति का उपयोग किया है।

चतुर्थ अध्याय मे आधुनिक हिन्दी प्रबंध काव्या के सदभ म महाभारत की कथा के प्रभाव की समीक्षा की गई है। महाभारत क प्रति प्रत्येक कवि की स्वतन्त्र दृष्टि के कारण पथक से कथा सग्रह परिवतन परिवधन और समीक्षा आदि उपशीर्षकों मे आलोचना का क्रम रखा गया है। कथा परिवतन म कवि के अभिप्रेत जीवन दशन की व्याख्या करते हुए उसके औचित्य पर विचार किया है।

पचम अध्याय म महाभारत क चरित्र चित्रण के प्रभाव की समीक्षा है। आधुनिक कवि की सामाजिक मनोवैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टि के कारण महाभारत के स्थिर पात्र नवीन रूप म उपस्थित हुए हैं। यह नवीनता कहीं पर सामान्य परिवतन मात्र स व्यक्त है और कहीं पर मानसिक द्वन्द्व की अवतारणा से पात्रों की दिव्यता को स्वाभाविक मनुजता म परिवर्तित करके अभिव्यक्त की गई है।

षष्ठ अध्याय म महाभारत की धम विधि का प्रभाव विवेचित है। मानव धम स्त्री धम, वर्णाश्रमधम, राजधम आदि अनेक धम रूपो के प्रभाव की समीक्षा युगीन परिवेश म की गई है। आधुनिक कवि ने धम के व्यापक अथ को भी अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया है। इस परिवतन का औचित्य कितनी सीमा म महाभारत क प्रभाव का परिणाम है और कितनी सीमा म आधुनिक युग का, इस तथ्य की समीक्षा करते हुए—आधुनिक चिन्तन धारा का व्यापक विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय म महाभारत क दशन विषयक प्रभाव की परीक्षा की गई है। महाभारत के विभिन्न दाशनिक विचारो की विस्तृत व्याख्या करते हुए आधुनिक कवि की दार्शनिक दृष्टि की मीमासा की गई है। आधुनिक बुद्धिवाद मनोविज्ञान के प्रभाव से दाशनिक शब्दावली का आधुनिक प्रयोग जिस नवीन रूप म किया गया है उसके औचित्य पर विचार करत हुए महाभारत के दाशनिक विचारो के प्रभाव को प्रस्तुत किया गया है। जहा पर कवि महाभारत से दशन का सकेत मात्र ग्रहणकर स्वतन्त्र चिन्तन करता है वहाँ उसकी सामाजिक उपलब्धि का मूल्याकन करते हुए, सांस्कृतिक दृष्टि से परीक्षा की गई है।

यह प्रबंध डा० रामदत्त भारद्वाज पी एच० डी०, डी० लिट० के निर्देशन म लिखा गया है। उनके कृपाभाव के प्रति मेरी मौन श्रद्धाजलि है।

इस प्रबंध क लेखन काय म सुहृदवर डा० ओमप्रकाश शास्त्री और डा० शरण बिहारी गोस्वामी तथा विनयकुमार मिश्र का बहुमूल्य सहयोग रहा है। इसके लिए उन्हें

धन्यवाद देकर अभिन्नता कम करने का मुझे कोई अधिकार नहीं। डा० सावित्री सिन्हा डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० आमप्रकाश, डा० उदयभानु सिंह के सहारामश से मैंने लाभ उठाया है, उनके लिए मैं अपने गुरुजनों का हृदय से आभारी हूँ।

और, अपनी पत्नी 'प्रमिल जी' के लिए क्या कहूँ, उनके अधिकार के समय को छीन कर ही तो मैं यह प्रबन्ध लिख सका हूँ।

श्रद्धेय गुरुवर डा० नगेन्द्र जी की शोध विषयक गम्भीर दृष्टि व आलोक ने निरन्तर मेरा मार्गदर्शन किया है। शिष्य होने के कारण मैं उनके स्नेह का सहज अधिकारी रहा हूँ। इसी स्नेह ने आद्योपान्त शक्तिशाली सम्बल बनकर मुझे कार्य करने की शक्ति दी है।

राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' जी ने पुस्तक का आद्योपान्त पढ़ कर और भूमिका लिख कर पुस्तक की क्षमता और मेरे साहस में जितनी अधिक वृद्धि की है उसकी तुलना में मेरा कृतज्ञता ज्ञापन एवं आभार प्रदर्शन नितान्त अकिंचन है। मैं अपने सभी गुरुजनों के प्रति श्रद्धानत होता हुआ यह प्रबन्ध आप सब के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

विनय

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

महाभारत परिचय

भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास जिन महान् ग्रन्थों से समुज्ज्वल है, उनमें 'रामायण-महाभारत' शीर्ष स्थान पर विराजमान हैं। भारतीय चिन्तन धारा के अनवरत प्रवाह में—वैदिककाल, उपनिषत्काल, महाकाव्यकाल आदि युग-खण्डों में प्रसरित विचारधारा अनेक परिवर्तित मोड़ मुड़कर के साथ आधुनिक युग में, अपने नवीन स्वरूप से ज्योतित है। चिन्तन के इस सहज स्वाभाविक विकास में जीवन और जगत् के प्रति जिन सिद्धान्तों का निर्माण हुआ, मानवेतर शक्ति की स्वरूप-कल्पना में जिन दर्शनों का अभ्युदय हुआ, वे किसी न किसी रूप में महाभारत में विद्यमान हैं।[1] 'महाभारत' नाम से ही ऐसे ग्रन्थ का आभास होता है जिसमें महान भारत की प्राण धारा अपने सम्पूर्ण रूप में अभिव्यक्त हो।

भारतीय महाकाव्यों में भारतीय जीवन के महिमामय अतीत को वाणी मिली है। इन्हीं महाकाव्यों के द्वारा आज हम अपने गरिमा मंडित प्राचीन को यथावत देख सकते हैं। 'वाल्मीकि' और 'व्यास' दोनों महाकवियों ने तत्कालीन भारतीय जीवन का सांगोपांग चित्रण इस रूप में किया कि वह एक व्यक्ति, काल अथवा देश की वस्तु न रहकर सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो गई। इन महाकाव्यों में हमारी जातीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्परा की प्राण प्रतिष्ठा है। इन महाकाव्यों में किसी एक व्यक्ति के जीवन का आदर्श नहीं बोलता, एक युग अभिव्यक्त नहीं होता अपितु इनमें समस्त भारत का स्वरघोष है। यही कारण है कि समीक्षात्मिका बुद्धि की अनवरत चोटों से प्रताड़ित भारतीय हृदय इन ग्रन्थों के प्रति अविश्वसनीय नहीं हो पाता।

भारतीय संस्कृति और साहित्य का जिज्ञासु 'महाभारत' का अध्ययन काव्य, इतिहास, धर्म-ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ आदि अनेक रूपों में करता है। इसके अतिरिक्त 'महाभारत' की विविधता और विशालता के मध्य ऐसे आख्यान विद्यमान हैं कि महाभारतोत्तर रचनाकारों ने इस ग्रन्थ को प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया है।

भारतभूमि के ज्ञानी-मनस्वी ऋषियों द्वारा युगयुगों से संचित और सुचिंतित जीवन की सम्पूर्ण व्याख्या का एक मात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ 'महाभारत' है। इस महती कृति में अनेक ज्ञान-सरणियाँ, लोककथाएं, ऐतिहासिक आख्यान मिलकर एक प्राण हो गये हैं कि 'यन्न भारते तन्न भारते' की युक्ति युक्त उक्ति शतप्रतिशत सत्य है।

---

1 धर्मे अर्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ म० आदि० ६२।५३

'महाभारत' के इस सार्वभौम महत्व के कारण हम उसे किसी एक ज्ञान-शाखा के अन्तर्गत नहीं रख सकते। वह पुराण, इतिहास, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना के ग्रन्थ के रूप में समादृत है।[1] इसमें भारतीय जीवन के धार्मिक आचार, पूजापाठ आदि के साथ, दया, करुणा, दाक्षिण्य, पशुपक्षी, देव, मानव, साधु-सन्तों की अन्य बातें उसके महत्व को और भी बढ़ा देती हैं।[2] महाभारत के वैविध्य पूर्ण प्रसंग ऐसी शृंखला का निर्माण करते हैं जिसमें भारतीय तत्वज्ञान पूर्ण रूप में प्रतिष्ठित है।[3] सैद्धान्तिक चिंतन की प्रधानता के साथ साथ ही उत्कृष्ट व्यावहारिकता 'महाभारत' की विशेषता है। सिद्धान्त और व्यवहार के एेसे सन्तुलन का दृश्य 'रामायण', 'महाभारत' के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ में दुर्लभ है।

पौराणिक काल की आख्यानात्मक प्रणाली तथा तत्कालीन जीवन की सांगोपांग अभिव्यक्ति के कारण 'महाभारत' इतिहास-ग्रन्थ भी है।[4] भारतवर्ष के प्राचीन ग्रन्थों में वेदों के उपरान्त ऐतिहासिक दृष्टि से 'महाभारत' का महत्व निर्विवाद है। वेदों का प्रमुख अंश पूजापाठ के विधानों में आवृत्त है इस कारण वैदिक साहित्य में ऐतिहासिक अनुमान अस्पष्ट हैं। परन्तु 'महाभारत' में अनेक ऐतिहासिक कथाएं एक ही स्थान पर सुरक्षित हैं।[5] महाभारत को प्रथम इतोक इस ग्रन्थ को जय काव्य की सज्ञा देता है। 'जय' शब्द का अर्थ अनेक विद्वानों ने इतिहास के रूप में भी लिया है।[5] प्राचीन काल में इतिहास लिखने की आधुनिक प्रणाली नहीं थी। उस युग में पुराणाख्यानों में ही इतिहास के तत्व विद्यमान हैं। सम्भवतः इस हेतु महाभारत में भी 'इतिहास' शब्द का प्रयोग है।

आचख्युः कवयः केचित् सम्प्रत्याचक्षते परे।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि ॥[6]

यहां इतिहास शब्द घटना और नामोल्लेख मात्र का बोधक नहीं। इतिहास नाम से 'महाभारत' के महत्व के अवमूल्यन का अनुमान नहीं होना चाहिए।

---

१ 'They are religious ordinances as well as histories of actual incidences Religious practices prayers and resolutions are embodied in them"
—*The Mahabharata As A History And A Drama* 1339 p 21

२ हिस्टी आव इंडियन लिटरेचर विन्टरनित्ज जिल्द १ पृ० ३१७

३ 'महाभारत का सबसे बड़ा गुण यही है कि यह तत्वज्ञान की भिन्न भिन्न चर्चा से पाठकों का मनोरंजन और ज्ञान वृद्धि किया करता है'।
—महाभारत मीमांसा पृ० ४७५

४ महाभारत मीमांसा पृ० १,

५ 'The Great History of Descendant of Bharata'
—*Chambers Encyclopadia Vol 8 p 631*

६ म० आदि० १।२६

हापकिन्स' ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि 'महाभारत' में आख्यान, उपाख्यान, इतिहास, आदि सभी शब्दों का प्रयोग समान अर्थों में किया गया है और सभी में किसी प्राचीन घटना निजन्धरी आख्यान का वर्णन है। इस प्रकार की कथाएं प्राचीन काल से पौराणिक विश्वासों में घुली मिली थी। इनमें ऐतिहासिक तत्व भी विद्यमान थे।[1]

'महाभारत' को इतिहास कहने का मुख्य कारण यह है कि यह ग्रन्थ दो मुख्य वंशों के साथ अनेक अन्य वंशावलियों का साहित्यिक वर्णन करता है।[2] वंश-वर्णन की प्रधानता के कारण यह ग्रन्थ इतिहास की कोटि में भी आता है। किन्तु अपने अन्य महत्वपूर्ण तत्वों के कारण सामान्य इतिहास की कोटि से उठकर सम्पूर्ण जीवन का महाकाव्य और धर्मग्रन्थ बन जाता है। नैमिषारण्य में उग्रश्रवा जी के पहुंचने पर ऋषियों ने महाभारत के महत्व को ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण और धर्मग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया है। ऋषि कहते हैं कि "श्रीकृष्ण द्वैपायन ने जिस प्राचीन इतिहास-रूप पुराण का वर्णन किया है देवताओं तथा ऋषियों ने अपने अपने लोक में श्रवण करके जिनकी भूरि भूरि प्रशंसा की है जो आख्यानों में सर्वश्रेष्ठ है ... जो सम्पूर्ण वेदों के तात्पर्यानुकूल अर्थों से अलङ्कृत है उस भारतीय इतिहास के परम पुण्य युक्त भावों को, ग्रन्थ-ग्रन्थियों की व्युत्पत्ति से युक्त ग्रन्थ को, जो सब शास्त्रों के अनुकूल व्यवहारों से समर्थित है उस व्यास की संहिता को हम सुनना चाहते हैं।"[3] इस कथन के आधार पर 'महाभारत' पुराण परम्परा का इतिहास भी सिद्ध होता है। सम्भवतः इसी आधार को लेकर कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने 'महाभारत' के प्रथम 'जय' रूप को इतिहास मात्र माना था। उनके अनुसार यह 'जय' इतिहास कौरव-पाण्डवों के युद्ध के रूप में लिखा गया होगा और बाद में इस महाकाव्य का रूप मिला होगा।[4] यह तो निश्चित है कि सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए बाद में जुड़े उपाख्यानों की

---

१ दी ग्रेट इपिक आव इंडिया, पृ० ५०

२ म० आदि० १।६९-१०१

३ द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
सुरैर्ब्रह्मर्षिभिश्चैव श्रुत्वा यदभिपूजितम् ॥
तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।
सूक्ष्मार्थन्याययुक्तस्य वेदार्थैर्भूषितस्य च ॥
भारतस्येतिहासस्य पुण्यां ग्रन्थार्थसंयुताम्।
संस्कारोपगतां ब्राह्मीं नानाशास्त्रोपबृंहिताम् ॥
जनमेजयस्य यां राज्ञो वैशम्पायन उक्तवान्।
यथावत् स ऋषिस्तुष्ट्या सत्रे द्वैपायनाज्ञया ॥ म० आदि० १।१७ २०

४ ए हिस्ट्री आव इंडियन लिटरेचर, वा०१, पृ० ३१८ ३२०, ३२४
हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर, पृ० २८४ २८५

कथात्मक सरसता सम्भवत 'जय काव्य' में न हो पर 'जय' काव्य को नितान्त इतिहास' नहीं माना जाना चाहिए।

महाकाव्य

महाकाव्य के रूप में 'महाभारत' की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। स्वयं ग्रन्थ में इसे पूजित काव्य बताया गया है।

उवाच स महातेजा ब्रह्माण परमेष्ठिनम्।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम पूजितम्॥[2]

इस पूजित महाकाव्य में कुरुओं का चरित्र[3] काव्यात्मक शैली में वर्णित है। कवित्व की पुष्टि के हेतु जितने आवश्यक तत्त्व माने गये हैं वे सभी 'महाभारत' में विद्यमान हैं। यह शुभ ललित मंगलमय शब्द विन्यास से अलंकृत एवं वैदिक लौकिक-संस्कृत प्राकृत सक्तो से सुशोभित है। इसमें अनुष्टुप इन्द्रवज्रा आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। अत 'महाभारत' महाकाव्य के सम्पूर्ण विशेषणों से संयुक्त है।[4]

महाकाव्य का विषय और उद्देश्य महान् होना चाहिए जिससे समाज में उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा हो सके। उसके विचार विषयानुरूप महान् हों और आदर्श तथा विचारों की प्रतिष्ठा संवादों तथा कथा के मध्य सरलता से होती रहे।[5]

विकसनशील महाकाव्य —'महाभारत' विकसनशील महाकाव्य है। यह एक सम्पूर्ण युग की रचना है। विकासशील महाकाव्य में सैकड़ों वर्षों में अगणित कवियों की प्रतिभा का विकास होता है। ऐसे महाकाव्यों की अपनी कतिपय विशेषताएं होती हैं जो 'महाभारत' में सर्वांगीण रूप से पाई जाती हैं। वीरता की भावना का उदात्त वर्णन वीर-चरित्रों का अभ्युदय साहसिक कार्यों का अनुष्ठान कथानक का विस्तार,

---

१ इतिहासप्रदीपेन मोहावरण घातिना।
लोकगर्भगृह कृत्स्न यथावत् सम्प्रकाशितम्॥ म० आदि० १।८७

२ म० आदि० १। ६१

३ महाभारतमाख्यान कुरूणा चरित महत्। म० आदि० ६२।१

४ अलंकृत शुभ शब्द समयैर्दिव्य मानुषै।
छन्दो वृत्तैश्च विविधैरन्वित विदुषा प्रियम्॥म० आदि० १।७८

५ 'The Subject of the Epic poem mu t be some one great complex action The Principal personages must belong to the high places of society and must be grand and elevated in their ideas The measure must be of a sonorous dignity befitting the subject The Epic developed by a mixture of dialogue soliloquy and narratio
—*The Mahabharata A criticism.* P 40

महोद्देश्य, वस्तु व्यापार वर्णन का आधिक्य, परिवर्तनशीलता और अनेक काव्य रूढ़ियाँ तासमावेश[1] आदि कतिपय विशेषताएँ विकसनशील महाकाव्य को अन्य अलंकृत महाकाव्यों से पृथक करती हैं।

'महाभारत' का विकास वीर-युग में हुआ। वीरयुगीन समस्त सामग्री के साथ इसकी मूल भावना में वीरता और प्रेम का अद्भुत सम्मिश्रण है। वीर चरित्रों के अभ्युदय की दृष्टि से यह काव्य अद्वितीय है। अर्जुन, कर्ण, भीष्म, भीम आदि ऐसे वीरचरित्र हैं जिनके जीवन का लक्ष्य यश और सम्मान है जिसे वे अपने धनुष की टंकार से स्वरक्षेत्र तथा नैतिक चरित्र-बल से प्राप्त करते हैं। ऐसे वीर युद्ध में विजय हेतु किसी सैन्य बल की अपेक्षा नहीं करते, अपितु अपनी वैयक्तिक वीरता और शक्ति प्रदर्शन के आश्रय पर ही, विजय के आकांक्षी होते हैं। ऐसी वैयक्तिक वीरता से सम्बन्धित अद्भुत साहसिक कर्मों का व्यापक विधान इस ग्रन्थ में व्यक्त हुआ है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इन वीर चरित्रों के साहसिक प्रयासों का चमत्कार का प्रदर्शन होता है। 'महाभारत' की कथा की एकान्विति अलंकृत काव्यों की भांति समयनिष्ठ नहीं है। उसमें भूत और वर्तमान की अनेक गाथाएँ मूल कथा में सन्निविष्ट होकर ग्रन्थ के कलेवर को बढ़ाती हैं। अनेक कथाओं की अतिप्राकृत और अतिमानवीय रूपरेखा भी युद्ध की कहानी से सम्बन्धित होकर मूल कथा का अभिन्न भाग बन गई हैं। इस रूप में चि० वि० वैद्य का कथन सारगर्भित है "कि यद्यपि महाभारतकार ने अवान्तर कथाओं का प्रचुर मात्रा में लिया है फिर भी उन्हें मूल कथा के भाग रूप में ही मानना चाहिए।'[2] सिद्धान्त निरूपण के लिए लघु आख्यानों को पीछे से जोड़ देना विकसनशील महाकाव्य का प्रमुख लक्षण है और यह लक्षण यहाँ आद्योपान्त व्याप्त है। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—पुरुषार्थ चतुष्टय—के विषय में जो कुछ 'महाभारत' में है वही अन्यत्र हो सकता है। इस उक्ति के आधार पर इस महाकाव्य के व्यापक एवं महान उद्देश्य को जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त विकासशील महाकाव्य की सभी विशेषताओं से संयुक्त महाभारत वेदों के गुप्त रहस्य और उपनिषदों के ज्ञान का भंडार है।[3]

महाकाव्य का प्रणयन संस्कृति के महत्-पुण्य से होता है। महाकवि विश्व के हृदय को अपने हृदय में अनुभवकर उसे जीवन की समग्र विशालता से चित्रित करता है। *संस्कृति के पक्षविशेष का आदर्शात्मक विवेचन महाकवि का प्रमुख लक्ष्य* होता है। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए महाकवि लोकजीवन के व्यापक आदर्शों को

---

१ विस्तार के लिए दे०—हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ६४-६८

२ महाभारत मीमांसा, पृ० ३३

३ ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया। म० आदि० १।६२

महाभारत परिचय महाकाव्य म जीवन का व्यापक
अलकृत कर, महाका य मे अनस्यूत करता है अत महाकाव्य म जीवन का व्यापक
चित्र होना है। अब महाकाव्य की मुख्य विशेषताओं के आधार पर 'महाभारत' की
समीक्षा स्पृहणीय है।

महत्प्रेरणा, महोद्देश्य और महती काव्य प्रतिभा —महाभारत' के रचयिता
की महती काव्य प्रतिभा असदिग्ध है। इतने विशाल ग्रन्थ का प्रणयन चाहे कितने
वर्षों म और कितने ही व्यक्तियो द्वारा हुआ हो, कि तु उसके प्रथम रूप मे अभिव्यक्त
काव्य प्रतिभा अद्वितीय है। काव्य की समस्त भावगत और कलागत विशेषताएँ यहाँ
प्राण रूप मे विद्यमान हैं जिनस परवर्ती काव्यकारो ने प्रेरणा ली है। भगवान
वेदव्यास ने इस महाकाव्य की रचना म इतिहास और पुराणो का मथन करके उनका
प्रशस्त रूप प्रकट किया है।[1] कोई भी विषय उनकी प्रतिभा प्रकाश की सीमा से
बाहर नही रह पाया। इसकी रचना प्ररणा के लिए उस युग की पृष्ठभूमि का ज्ञान
आवश्यक है। महाभारत की रचना अपने युग क विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो दार्श-
निक विचारो और जीव जगत की अनेक विध विशेषताओ के समन्वय के लिए हुई।[2]
अत 'महाभारत' की प्रेरणा कवि की लोक मगलकारी दृष्टि और सस्कृति की रक्षा
तथा विशाल राष्ट्रनिर्माण की भावना का अभ्युदय मानी जा सकती है। महाभारत
का उद्देश्य महान है। उसम सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा तथा असत्य का क्षय प्रति
पादित है। मानव जीवन का मूल 'धर्म है और महाभारत म धर्म का प्रतिपादन
उसकी आत्मा की उच्चता है। इस सम्पूर्ण महाकाव्य म सत्य और धर्म की प्रतिष्ठा
प्राणशक्ति के रूप म आद्योपात व्याप्त है। इसी व्याप्ति के कारण महाभारत'
सस्कृति का कोष बन गया है। महाभारत म क्षात्र धर्म की प्रतिष्ठा है और क्षात्र
धर्म के आधार पर ही परम ज्ञान का उपदेश दिया गया है। सहिता रूप म
'महाभारत क दो मुख्य उद्देश्य—इतिहास के गौरव की रक्षा और धर्म सिद्धि प्रतीत
होते हैं।

गाम्भीर्य और महत्व —भारतीय सास्कृतिक परम्परा म महाभारत का
महत्व अद्वितीय है। महाभारत के रचयिता की विराट-कल्पना शक्ति और गाम्भीर्य
तथा सूक्ष्म मानसिक धरातल म लोक-जीवन की तरगायित लोक कथाएँ महाकाव्य के
कलेवर म सन्निविष्ट हो गई हैं। धर्म पर आधारित विशाल समाज की कल्पना 'व्यास'
क समान महाकवि ही कर सकता था। अत इसका महत्व धर्म सस्थापन और उसके
व्यावहारिक रूप का दिग्दर्शन कराने म है। इसके प्रथम सस्करण म अन्तिम सस्करण
तक चाहे जितने परिवर्तन हुए हो कि तु उसकी मूल विचारधारा उसी प्रकार एक
रूपी रही जिस प्रकार भागीरथी की पुण्यधारा म अनेक बाह्य लघु तरगें रूपायित
होती हैं और पुण्य धारा अपने स्वरूप म प्रवाहित रहती है। महाभारत' के पात्र

१ इतिहास पुराणानामुन्मेष निर्मित च यत्। म० आदि० १।६३
२ म० आदि० २।६५ ६६

के आचरण मे वह गम्भीरता और महत्व विद्यमान है, जो किसी भी युग-पुरुष के लिए आदर्श हो सकता है।

कार्य और युगजीवन का समग्र चित्र — महाभारत म प्राचीन भारत अपनी वास्तविकता म अभिव्यक्त है। कुरुवंश की कथा का आधार लेकर, जिस महत्वपूर्ण कार्य और कार्य के आश्रय महान् चरित्र की अवतारणा इस ग्रन्थ म हुई है वह महा कार्य है धर्म की स्थापना' और महा चरित्र है 'भगवान् कृष्ण'। यदि केवल कथा के प्रत्यक्ष पात्रो के आधार पर इस बात की समीक्षा की जाय तो युधिष्ठिर का यह कथन कि धर्म के अतिरिक्त और कुछ साध्य नही और मैं जीवन और अमरत्व की अपेक्षा भी धर्म को ही महान समझता हूँ राज्य, पुत्र यश, धर्म और धन यह सब 'सत्य धर्म की सोलहवी कला को भी नही पा सकते'[1]— महाभारत' का महाकाव्य माना जा सकता है। संसारी जीव अज्ञान के अंधकार से अंधे होकर छटपटा रहे हैं और 'महाभारत' ज्ञानांजन शलाका को लगाकर उनके नेत्र खोलता है।[2] इस घोषणा से भी उसके महाकार्य का सम्पादन होना है। कौरव पाण्डव युद्ध भी महाकार्य है और इसका फल धर्मपक्षीय पाण्डवो की विजय म निहित है। युद्ध की अनिवार्य आवश्यकता और उसके उपरान्त मानवता की उपलब्धियो के लिए सम्पूर्ण शान्तिपर्व की उपस्थापना की गई है। 'महाभारत' से हम अपने अनेक प्राचीन राजवंशो और उनके इतिहास का ज्ञान होता है। उस काल मे प्रतिष्ठित हमारी सांस्कृतिक मान्यताएँ धार्मिक आचरणो के मूल्य, जीवन के अन्य लोक व्यवहार, वार्द्धक्य मृत्यु भय रोग आदि जीवन परिस्थितियो का सम्यक चित्रण[3] तथा न्याय, शिक्षा चिकित्सा ज्ञान[4] आदि का विशद निरूपण महाभारत म उपलब्ध होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ म सहस्रो वर्षो के सांस्कृतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत है।

जीवन्त सुघठित कथानक —'महाभारत' की कथा अत्यन्त विस्तृत है। मूल युद्ध कथा म अनेक अवान्तर कथाओ को जोडकर कथानक की दृष्टि से महाभारत' का पर्याप्त विस्तार किया गया है। अत्यधिक विस्तार होने हुए भी उसम एकता एव पूर्णता है और असम्बद्धता का अभाव है।[5] भगवान् कृष्ण के विस्तृत चरित्र के उसी भाग का भारतीय युद्ध के साथ सम्बद्ध किया गया है जिसका सम्बन्ध युद्ध से है।[6] जितनी लघु और अवान्तर कथाएँ उपलब्ध हैं वे भी किसी न किसी प्रकार महाभारत' की कथा से सुसम्बद्ध हैं। पौराणिक आख्यान होने के कारण बीच बीच म प्राचीनकाल

---

१ म० वन० ३४।२२
२ म० आदि० १।८४ ८५
३ म० आदि० १।६४
४ म० आदि० १।६७
५ महाभारत मीमांसा पृ० ३३
६ वही, पृ० ३४

मे अभ्युदित अनेक वर्ग अभी को इसलिए दिया गया है कि 'महाभारत' का रचयिता इस ग्रंथ को इतिहास, पुराण धर्मग्रंथ और राजनीतिशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहता था।[1] कुरुवंश की कथा में अनेक देवताओं की कथा का सम्मिश्रण और अनेक स्वतन्त्र उपाख्यानों का आयोजन कथानक की विराटता का परिचायक है। यह कथानक काव्यशास्त्र में वर्णित कथा रूप के समान न होकर भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह भारतीय जीवन का अमर ग्रंथ है।[2] सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से अनेक महत्वपूर्ण स्वतन्त्र उपाख्यानों को महाभारत की मूल कथा में समाविष्ट कर इस विकसनशील महाकाव्य का सांस्कृतिक महत्व और भी बढ़ गया है। व्रतवर्जन के हेतु नलोपाख्यान, स्त्रीधर्म प्रतिपादन के लिए सावित्री का उपाख्यान, प्राचीनधर्म प्रतिष्ठा के लिए रामोपाख्यान आदि ऐसे स्वतन्त्र उपाख्यान हैं जो यदि 'महाभारत' में न होते तो उनका उपयोग लोक जीवन में और ही कुछ होता। अतः कथानक की दृष्टि से 'महाभारत' का महत्व अक्षुण्ण है जिस कारण परवर्ती साहित्यकारों ने इसमें अनेक कथा रत्नों को चुनकर काव्यों की रचना की है। यूरोपियन पंडितों ने इसी विस्तार के कारण सम्भवतः महाभारत को 'इपिक पाइट्री' कहा है।[3]

प्रत्येक देश के आदिकाव्य की परीक्षा करने पर विदित होता है कि उसका निर्माण लोक में फैली अनेक गाथाओं से होता है। लोकजीवन की ये गाथाएं साहित्य में प्रविष्ट होने पर स्थिर तो हो जाती हैं किन्तु इन के स्रोत का पता लगाना कठिन है। एक विस्तृत युग के अन्तराल में बनते बिगड़ते हुए कई गाथा रूप चिरकाल में विकसित होते हुए गाथा चक्र ही महाकाव्य का निर्माण करते हैं। किसी एक प्रतिभाशाली कवि की वाणी में सभी प्रकीर्ण गाथाएं एकसूत्र हो जाती हैं और स्वतः आदर्श की जन्मदात्री होकर सभ्यता और संस्कृति का पथप्रदर्शन करती हैं। प्रत्येक देश और जाति नित्य नूतन घटनाओं को जन्म देती रहती है। यही नहीं एक घटना के साथ अन्य कल्पित घटनाएं भी प्रचलित हो जाती हैं। युग प्रवाह में ये गाथाएं बदलती रहती हैं और कहीं कहीं तो इतनी भिन्न हो जाती हैं कि एक ही

---

१ पुराणं चयदिव्यानां कल्पानां युद्ध कौशलम्।
वाक्य जाति विशेषाश्च लोकयात्रा क्रमश्च यः॥
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चैव प्रतिपादितम्। म० आदि० १।६६.७०

२ इतिहासाः सवैयाख्या विविधा श्रुतयोऽपि च।
इह सर्वमनुक्रान्तमुक्तं ग्रन्थस्य लक्षणम्॥ म० आदि० १।५०

३ महाकाव्य शब्द का प्रयोग आजकल दो अर्थों में होने लगा है। अंग्रेजी के 'एपिक' शब्द के अर्थ में और प्राचीन आलंकारिक आचार्यों द्वारा प्रयुक्त सर्गबद्ध काव्य के अर्थ में। साधारणतः यूरोपियन पंडितों ने भारतीय 'एपिक' कहकर केवल दो ग्रन्थों की चर्चा की है— महाभारत' और 'रामायण' की—आलोचना १९५१, अंक प्रथम पृ० ६

घटना दो रूपों में होकर जीवन के दो भिन्न तत्वों का प्रतिपादन करती है। एक घटना के साथ कल्पित घटना को सम्बन्धित करने की परम्परा से कई बार एक कल्पित पात्र ऐतिहासिक सत्य के रूप में स्वीकृत हो जाता है। इस प्रकार विकसनशील महाकाव्यों (विशेषतः वीरकाव्यों) में कोई परवर्ती कवि कल्पित घटना को ऐसे समन्वित कर देता है कि पता नहीं चलता कि ये पीछे की जोड़ी हुई रचना है। कभी-कभी कई व्यक्तियों द्वारा प्रचलित घटना-चक्रों को जो एक व्यक्ति संयोजित करता है, वही उस समस्त साहित्य का रचयिता मान लिया जाता है। ये गाथा चक्र निरन्तर विकसित परिवर्धित, परिवर्तित अथवा कल्पित होते रहते हैं। इनका इतना अधिक प्रसार होता है कि मूल योजना असम्भव सा हो जाता है। इन्हीं गाथा रूपों से विकासशील महाकाव्यों का जन्म होता है। ईश्वर विश्वास इन गाथाओं का मूल होता है धर्म की धुरी पर इनका जीवन चलता है काव्य की प्रेरणा में इनमें प्राणों का संचार होता है। इस कारण इन गाथाओं पर आधारित महाकाव्यों में आस्तिकता का स्वर स्नायुओं में रक्त की तरह प्रवाहित रहता है। बौद्धिक चेतना के उत्कर्ष और प्रवचन के साथ इसे काव्यों पर से विश्वास उठने लगता है। इतना सत्य अवश्य है, कि ये महाकाव्य जन जीवन में महादेश्य महत्प्रेरणा और गम्भीर काव्य प्रतिभा से प्रेरित, युग-जीवन के विभिन्न चित्र और सांस्कृतिक गुरुत्व को धारण करते हुए, एक सुघठित जीवन्त कथानक में महत्वपूर्ण नायक की स्थापना करके गरिमामयी उदात्त शैली तथा गम्भीर रसव्यंजना से अनवरुद्ध जीवन शक्ति और सशक्त प्राणधारा का संचार करते हुए, महत्तम आदर्श की स्थापना करते हैं।

'महाभारत' इस दृष्टि से महाकाव्य और इतिहास अथवा आख्यानकाव्य है। अन्य महाकाव्यों की भांति इस काव्य ग्रंथ का भी कोई एक रचयिता नहीं है यह अनेक युगों में अनेक कवियों द्वारा निर्मित हुआ है। 'महाभारत' का रूप निर्माण युगों तक होता रहा, युग युग तक इस काव्य-ग्रंथ के अवयव, विषय और शैली का संघटन हुआ और अन्त में एकरूपता आ गई। इस एकरूपता के कारण सारा काव्य एक दिखाई देने लगा। इसके निर्माण में अनेक रूपों में गाथाओं और तत्वों का संघटन हुआ।[1] प्राचीन धार्मिक विश्वास, लोक प्रचलित दन्तकथाएँ, वंशानुक्रम परिचय, ऐतिहासिक एवं सामयिक घटनाएं प्राचीन ज्ञान, और लोककथा—ये सब 'महाभारत' में इस तरह सम्बद्ध हो गये कि इनमें अनेकता में एकता की स्थापना की गई। इनके कारण 'महाभारत' काव्य ही नहीं अपितु धर्मशास्त्र पुराण और इतिहास के रूप में समादृत हुआ।

---

१ विस्तृत अध्ययन के लिये देखिये—'महाकाव्य का स्वरूप विकास' द्वितीय अध्याय।

दोनो के समन्वय का आग्रह उस धर्म की विशेषता है जिसका प्रतिपादन 'महाभारत' में हुआ है। तरंगित कथाप्रवाह में जहाँ-जहाँ ये स्थल आये हैं—उनकी संख्या पर्याप्त है।[1] इसमे *मानवधर्म*[2] के सामान्य गुण, स्त्रीधर्म,[3] राजधर्म,[4] वर्णाश्रमधर्म[5] का व्यापक वर्णन है। धर्म के इस वर्णन के अतिरिक्त धर्माधर्म,[6] के विषय में सूक्ष्म विचार करते हुए धर्म के अनेक रहस्यमय[7] संवादों का प्रणयन भी है। इसके अनेक उपाख्यानों की सृष्टि धर्म के किसी प्रमुख तत्व के विवेचन को लिये हुई है और अनेक संवादात्मक उपाख्यानों में, धर्म के विविध रूपों की व्याख्या की गई है। इन कारणों से यह एक विपुल धर्म ग्रन्थ बन गया है। उदाहरणार्थ वनपर्व के सत्यभामा द्रौपदी संवाद में स्त्री धर्म पर व्यापकता से विचार किया गया है। द्रौपदी सत्यभामा को पत्नी के धर्म की शिक्षा देती है।[8] मानवधर्म के मुख्य गुणों के विधान में हिंसा विवेचन[9] पुण्यपाप[10] प्रतिपादन कर्तव्य पालन[11] की महत्ता का व्यापक चित्रण हुआ है। अतः मानवजीवन के समस्त धर्मविधानों का धार्मिक विवेचन होने के कारण 'महाभारत' का धार्मिक महत्व अक्षुण्ण है।

नीतिग्रन्थ —

नीतिग्रन्थ के रूप में 'महाभारत' की महत्ता सर्व विदित है। मानव-जीवन के स्थिति सापेक्ष और निरपेक्ष आचार व्यवहार नीति के अन्तर्गत हैं। जीवन के विशाल कर्म क्षेत्र में कब क्या करणीय और अकरणीय है? इसका व्यापक विवेचन शान्ति पर्व के अन्तर्गत हुआ है।[12] उद्योगपर्व में विदुरनीति, नीति धर्म विवेचन का शिखर स्थल है। व्यवहार चातुर्य लोक-नीति समाजनीति आदि का व्यावहारिक उपदेश इस

१ भारत सावित्री, भूमिका पृ० ५

२ मानव धर्म विवेचन के लिए दे० म० शान्ति, १६२।१६,उद्योग० १३७।६ गीता० १८।३३ वन० २१३।२७,शान्ति० १६०।८, वन० २११।२६, शान्ति० १६२।४

३ म० वन० २३३।२१ २२, म० अनु० १४६।३५ ३६

४ म० शान्ति० ६३।२६,२७,६६।४१,६८।१४

५ म० शान्ति० अध्याय ६० से ६३
उद्योग० अध्याय ४०, अनुशा० अध्याय ३२ से ३५

६ म० शान्ति अध्याय २५६

७ म० अनुशासन० अध्याय १२६ से १३४

८ म० वन० २३३।२०

६ म० शान्ति० २६५।६ शान्ति अध्याय,२६७,म० अनु० ११५।१

१० म० वन० अध्याय ३३

११ म० वन० १४६।१८

१२ म० शान्ति० अध्याय ५७,५८,६२,६४,६६,६०,६२

नीति मे उपलब्ध है।[1] मुख्यत राजनीतिशास्त्र के रूप म भी इसे मान्यता मिली है। क्योंकि इसम प्राचीन राज्य व्यवस्था, राजा के कर्त्तव्य,[2] राजा विषयक तत्कालीन मान्यता[3] आदि पर विस्तृत प्रकाश पडता है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि या देवता माना जाता था[4], राजा के कर्मों का प्रत्यक्ष फल जनता को भोगना पडता था, और उसके पाप-पुण्य स जनता की समृद्धि सम्बद्ध थी।[5]

'महाभारत म राजधर्म का विस्तृत वर्णन है। प्रजा के प्रति, ब्राह्मणो और अन्य वर्णों के प्रति राजा के कर्त्तव्य के विवेचन के अतिरिक्त शासन की गम्भीर समस्याओ पर विचार किया गया है। राजा के द्वारा बलसचय, सेना सेनापति, दुर्ग, गुप्तचर आदि की व्यवस्था[6] का राजतन्त्रीय दृष्टि म, व्यापक विवेचन हुआ है। वन म जाने समय धृतराष्ट्र को राजनीतिक शिक्षा म कूटनीति की अनेक बातो पर विचार किया गया है।[7] उक्त विवेचन के आधार पर 'महाभारत को राजनीति शास्त्र के रूप म सम्मान देना युक्तियुक्त है।

भारतीय जीवन का विश्वकोष—इतिहास, पुराण, धर्म-ग्रन्थ नीति-ग्रन्थ और महाकाव्य के रूप म 'महाभारत' की विशेषताओ से यह सिद्ध ही है कि महाभारत' भारतीय ज्ञान विरासत का विश्वकोष है। उसम चिन्तन मनन ज्ञान, सामान्य व्यवहार आदि जीवन के किसी भी पक्ष का अभाव नही है। चिन्तन के विविध पक्षो के समन्वयात्मक रूप के कारण महाभारत का महत्व सर्वाधिक और सार्वभौम है। वैदिक और लौकिक युगो के संघर्षमय काल म उनके अधिकारो का परिसीमन करने के लिए महाभारत एक सन्धिपत्र के समान है जिसम वैदिक और लौकिक दोनो युगो के प्रतिनिधि ज्ञान-प्रवण मनस्वियो क हस्ताक्षरो की मुहर है।"[8]

महाभारत महात्म्य म महाभारत को अठारहो पुराण समस्त धर्मशास्त्र अगो सहित वेद की समानता करने वाला बताया गया है। यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है

---

१ म० उद्योग० अध्याय, ३२,३३,३४,३६,३९

२ म० शान्ति० अध्याय ६९ ८९, ९१

३ म० शान्ति० अध्याय ६४

४ नहि जात्ववमन्तव्यो मनुष्य इति भूमिप ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ म० शान्ति० ६८।४०

५ म० शान्ति०, अध्याय, ६८ ९१

६ म० शान्ति०, अध्याय ८२ १०० १०४, १०६, ११६

७ म० आश्रम० अध्याय ५, १५ ४३

८ संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० २३७

और रहस्य भार से युक्त है। अत इसमे समस्त भारतीय ज्ञान सचित है।[1] इस कारण विंटरनित्ज महाभारत को केवल काव्य नही सम्पूर्ण साहित्य मानते है।[2]

महाभारतका प्रतिपाद्य

महाभारत' का प्रतिपाद्य उसके जीवन दर्शन, विचार धारा और सिद्धात निरूपण म निहित है। महाभारत' महाकाव्य इतिहास पुराण आदि होने के कारण भारतीय संस्कृति का विचार प्रधान ग्रन्थ है। भारतीय जीवन का सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, सम्पूर्ण धार्मिक आचार विचार इस ग्रन्थ म इस प्रकार अभिव्यक्त हो पाये है कि कुरुवश की कथा गौण हो गई है। यद्यपि कुरुवश की कथा को मूल आधार मानकर महाकाव्य का निर्माण किया गया है जिस कारण यह कथा तो निर्विवाद रूप स महाभारत का प्रतिपाद्य है ही तथापि कथा विकास के अन्तर्गत आद्योपान्त व्याप्त सास्कृतिक आदर्श सामाजिक व्यवस्था और जीवन जगत के अनेक सिद्धान्त महाभारत के प्रतिपाद्य हैं। कौरव-वशीय चरित्रो के अतिरिक्त इसम अन्य प्राचीन राजाओ ऋषियो और देवताओ के वत्तान्त भी मूलकथा स कम नही। अत 'महाभारत के प्रतिपाद्य का निर्णय करने के लिए कथा के इस विस्तृत क्षेत्र और उसम व्याप्त विभिन्न सरणियो की परीक्षा परम आवश्यक है।

किसी भी महाकाव्य का प्रतिपाद्य इतिवृत्त स प्राप्त लेखक की विचारधारा होता है। सामान्यत इतिवृत्त के अभिधेयार्थ म विचारधारा का सम्बन्ध प्रत्यक्ष इतिवृत्त नही होता किन्तु व्यग्यात्मक होता है। जिन अनेक स्थलो पर कवि कथा के आग्रह को त्यागकर सैद्धान्तिक विवेचन करता है उन स्थलो पर कथा गौण हो जाती है और दर्शन प्रमुख। काव्य की इन दो अवस्थाओ म मूल प्रतिपाद्य का अनुसधान करना उचित है। महाभारत म वर्णित विचारधारा को किसी एक वाद के अन्तर्गत समाविष्ट करना असम्भव है। इसम अपने समय के विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों,

---

१ अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वश ।
वेदा साङ्गास्तथैकत्र भारते सर्वत स्थितम् ॥
महत्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्व पापै प्रमुच्यते ॥ महाभारत महात्म्य
पृ० ६५१८

२ It is only in a very restricted sense that we may speak of the Mahabharata as an epic and a poem Indeed in a certain sense the Mahabharata is not one poetic production but rather a whole Literature
—*History of Indian Literature, English Translation,* Vol I 1927 p 317

धार्मिक विचारों का गम्भीर विवेचन है जिसका समाहार समन्वयात्मक दृष्टिकोण में हुआ है। अतः प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य एक व्यापक 'धार्मिक व्यवस्था' का प्रतिपादन है। किन्तु इतना कहने मात्र में 'महाभारत' का प्रतिपाद्य स्पष्ट नहीं होता। इस विवेचन में अभीष्ट यह है कि हम 'महाभारत' का कोई एक पक्षीय प्रतिपाद्य स्वीकार नहीं। 'महाभारत' के कवि की दार्शनिक दृष्टि समन्वयवादी है। सामान्यतः असत्य का वर्जन और सत्य की प्रतिष्ठा ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। कुरुभूमि पर विराट युद्ध की अवतारणा का मुख्य कारण यही दिखाई देता है कि अधर्म के बढ़ते हुए अन्धकार का युद्ध की ज्वाला में भस्मीभूत कर धर्म प्रकाश का प्रणयन किया जाए।

विचारात्मक समन्वय

'महाभारत' का साहित्य इतना विराट है कि उसमें अनेक मतों की उपस्थापना हुई है। उसमें परस्पर विरोधी धार्मिक भावों और दार्शनिक सिद्धान्तों का पृथक् पृथक् निरूपण भी हुआ है और अन्त में उनका समन्वय भी कर दिया गया है। कवि कथा वस्तु को विचार प्रतिपादन का साधन बनाता है, उसकी सिद्धि उद्देश्य में निहित है। भारतीय विचारधारा पाण्डवों को धर्म पक्ष और कौरवों को अधर्म पक्ष मानती है। इन दोनों पक्षों के संघर्ष में कौरवों की पराजय, अधर्म की पराजय है। कवि का यह आदर्श समस्त कथा में ओतप्रोत है। धृतराष्ट्र और पाण्डुपुत्रों का संघर्ष, संघर्ष में समस्त देश का विभाजन, कुरुक्षेत्र की भूमि में अठारह अक्षौहिणी सेना का विनाश और अन्त में निवृत्ति की ओर जाते हुए युधिष्ठिर को भीष्म का प्रवृत्तिपरक उपदेश कवि की विचारधारा को स्पष्ट करता है। यह विचारधारा संक्षेप में इस प्रकार है

— मानव जीवन में धर्म की परम महत्ता है। धर्म जीवन और लोक-व्यापार को आश्रय देता है वह मानव जीवन का सक्रिय तत्व है अतः व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के लिए धर्माचरण अनिवार्य है। अधर्म से समाज का विनाश होता है, शान्ति विच्छिन्न होती है और युद्ध की भयंकर लपटें विश्व संहार के लिए तत्पर हो जाती हैं। युद्ध विनाश का जड़ है उसमें विश्वशान्ति को भयापन्न होना पड़ता है, अपने पृथक् व्यक्तित्व में कोई भी युद्ध का पक्षपाती नहीं होता। (कौरवों की आकांक्षा यही रही होगी कि पाण्डव वन में रहें और ऐश्वर्यशाली होकर राज्य में समान भोगी न बनें।) इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए युद्ध तो अन्तिम उपाय था। भगवान् कृष्ण *शान्ति का प्रयास करते हैं किन्तु सहनशीलता की चरम सीमा पर आघात होने के* उपरान्त वही कृष्ण मोह-ग्रस्त अर्जुन को युद्ध का औचित्य सिद्ध करते हैं। अधिकारी के द्वारा अधिकार का हनन करने पर युद्ध भी मानव-कर्त्तव्य के अन्तर्गत आ जाता है। इस आधार पर कुरु गाथा दो वंशों का ही संघर्ष नहीं था, अपितु संघर्ष के बीच मानव के मूल अधिकारों के हनन का प्रश्न था। आश्रमवासिक पर्व में कुन्ती युधिष्ठिर से कहती है कि—जुए में तुम्हारा राज्य छिन गया था, तुम सुख से भ्रष्ट हो चुके थे और

तुम्हारे ही व धु-बाधव तुम्हारा तिरस्कार करते थे इसलिए मैंने तुम्हे युद्ध के लिए उत्साह प्रदान किया था।[1] कुन्ती की इस उक्ति से जीवन के प्रति महाभारतकार के सिद्धान्त का स्पष्टीकरण हो जाता है।

पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा

युद्ध के प्रसग मे ही पाण्डवो के वन निवास के समय द्रौपदी और युधिष्ठिर सवाद की प्रस्तावना मे महाभारतकार पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करता है।[2] सात्त्विक वृत्ति के कारण युधिष्ठिर मे सहनशीलता अधिक थी किन्तु वह अन्तत कर्मनिष्ठा की कसौटी पर कचन से कुन्दन बनी और धर्मराज की प्रथम पर विजय हुई। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि इतने विराट कथानक मे सत्य असत्य पुण्य पाप, धर्म अधर्म के सघर्ष का चित्रण कर एक लोकव्यापी जीवनादर्श के रूप मे सत्य, पुण्य और धर्म की प्रतिष्ठा ही 'महाभारत' का प्रतिपाद्य है। महाभारतकार का यह मत स्पष्ट है कि पुरुषार्थ ही मानव की उन्नति का मुख्य साधन है। पुरुषार्थहीन मानव समाज मे औचित्य पूर्ण और सम्मानित पद प्राप्त नही कर सकता। राष्ट्र की रक्षा के लिए क्षत्रिय का परम कर्तव्य है कि वह युद्ध कर और जीवन को सार्थक बनाए।

शोषण का विरोध

महाभारतकालीन राज्यतन्त्र की व्यवस्था के आदर्शचित्र मे निम्न वर्ग को कितने अधिकार प्राप्त थे—इस बात का स्पष्टीकरण नही होता। उस काल की वर्ण-व्यवस्था से स्पष्ट होता है कि शूद्र का मुख्य कर्तव्य द्विज सेवा ही था। तथापि शोषण का प्रयोग और विरोध आधुनिक युग की सीमा मे नही था। किन्तु राज्य परिवारो के अधिकारो के सघर्ष के मध्य शोषण का विरोध महाभारतकार ने सशक्त रूप मे किया है। (दुर्योधन द्वारा पाण्डवो को पाच ग्राम तक न देना उत्कृष्टतम शोषण का निम्नतम रूप है) यदि दुर्योधन पाण्डवो के प्रस्ताव को मान जाता तो यह सघर्ष नही होता। भारत की पुण्य आत्माए इस शोषण को स्वीकार न कर सकी फलत दैवी शक्तिया पाण्डवो के पक्ष मे हो गई। द्वन्द्व धर्म पक्ष की विजय दिखाने के हेतु ही करते हैं। इन दैवी शक्तियो ने युद्ध को माध्यम बनाकर आसुरी प्रवृत्ति का विनाश और भ्रातृत्व तथा समानता की भावना का लोकव्यापी प्रसार किया। महाभारतकार स्पष्ट रूप मे स्वीकार करता है कि धर्मनाशक और अत्याचारी व्यक्तियो का दमन शक्ति से भी करणीय है,[3] ऐसी परिस्थिति मे सघर्ष धर्म के लिए

१ द्यूतापहृत राज्यानां पतितानां सुखादपि।
भ्रातृभि परिभूतानां कृतमुद्धर्षण मया। म० आश्रम० १७।१२

२ भैक्ष्यचर्या न विहिता न च विट शूद्रजीविका।
क्षत्रियस्य विशेषेण धर्मस्तु बलमौरसम्। म० वन० ३३।५१

३ म० वन० ३५।३५

होता है।[1] जीवन के प्रत्येक पक्ष के प्रति महाभारत की दृष्टि अत्यन्त व्यवस्थित और यथार्थवादी है। धर्माधर्म, हिंसाहिंसा, पुण्यापुण्य की विवेचना में स्थिति सापेक्षता को अधिक महत्व दिया गया है। स्थिति निरपेक्ष जीवनादर्श की कल्पना महाभारतकार को अधिक गम्भीर और लोककल्याणकारी प्रतीत नहीं हुई, अतः उसने मानव को वास्तविक दुर्बलताओं और शक्तियों के साथ ही चित्रित किया है।

प्रवृत्ति मूलक जीवन-दर्शन

'महाभारत' में आद्योपान्त प्रवृत्तिमूलक जीवन-दर्शन की स्थापना है। शान्तिपर्व में भीष्म युधिष्ठिर को प्रवृत्ति के आधार पर ही मानवता की सेवा का उपदेश देते हैं। यह मानवता ही आद्यन्त महाभारत का मूलस्वर है। मानवमात्र का हितचिंतन, कर्म के प्रति अदम्य उत्साह[2] और संहार से प्रताडित मानव का पुनः कर्म-क्षेत्र में प्रवेश करना 'महाभारत' की व्यावहारिक शिक्षा है। प्रवृत्तिमूलक जीवन-चेतना में संयम और वैराग्य की अवसरानुकूल प्रधानता का समावेश है, किन्तु यह वैराग्य और संयम आश्रम धर्म के अन्तर्गत चतुर्थ आश्रम के लिए है। अतः युधिष्ठिर के लिए वैराग्य की आवश्यकता नहीं। 'महाभारत' व्यक्ति को जीवन के प्रति आसक्तिरहित बनाकर धर्माचरण के लिए प्रेरित करता है। धर्म अपने व्यापक रूप में जीवन का आदि मध्य और अन्त है। अतः 'महाभारत' प्रतिपादित 'धर्म प्रवृत्ति निष्ठ है।

आशावाद

आशावाद व्यक्ति की मानसिक दृढ़ता और उत्थान का चरम सोपान है। मानवता की सीमा में इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाभारत की कथा में आद्योपान्त आशावाद की प्राणधारा की विद्यमानता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। दुर्योधन और कर्ण जैसे तेजस्वी पात्र इसी आशावाद के आधार पर युद्ध के लिए प्रेरित होते हैं। यद्यपि कौरव पक्षीय आशावाद धर्मनिष्ठ नहीं कहा जा सकता तथापि युधिष्ठिर अर्जुन आदि पात्रों के हृदय में जिस कर्तव्यनिष्ठा, धार्मिकता के दर्शन होते हैं उसका मूल आशावाद ही है। जो व्यक्ति प्रत्येक विध्वंस के पश्चात भी मानवता की निरन्तर उन्नति में विश्वास करता है वह वर्तमान के अतिरिक्त भविष्य के प्रति दृढ़ होता है। भारतीय संस्कृति का यह आशावाद 'महाभारत' में व्यावहारिक रूप से व्याप्त है। भीष्म और द्रोण के पतन पर यही आशावाद[4] दुर्योधन

---

१ म० शान्ति० ८५।२१

२ म० शान्ति० अध्याय, २६८

३ म० शान्ति० अध्याय, १४, ३३, ६६, गीता० २।४७ ५०

४ हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णोजेष्यति पाण्डवान।
तमाशा हृदये कृत्वा समाश्वसिच भारत ॥ म० कर्ण० ९ १०।१६

के जीवन का सम्बल है तथा सर्वनाश के उपरान्त यही आशा युधिष्ठिर को राज्य के प्रति आश्वस्त करती[1] है। जब युधिष्ठिर शोकवश शरीर त्याग देने की बात करते हैं, उस समय व्यास इसी आशावाद के आधार पर युधिष्ठिर को पुनः कर्म की प्रेरणा देकर स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य कर्म के फल का नियंता नहीं।[2]

दार्शनिक समन्वय

महाभारत में भारतीय जीवन के विकास में उद्भूत अनेक दार्शनिक मतों का उल्लेख और उनके सिद्धान्तों का व्यापक विवेचन है। भारतीय दर्शन के विकास में प्रथम वैदिक युग था इस युग में सम्भववाद, स्वभाववाद, अहोरात्रवाद आदि दार्शनिक दृष्टिकोण थे। द्वितीय युग में उपनिषदों का चिंतन है जिसमें वैदिक दार्शनिक दृष्टि को व्यापक विवेचना प्राप्त होती है। तृतीय युग षड्दर्शनों के विकास का युग है। चतुर्थ युग में पाञ्चरात्र, पाशुपत, भागवत और शैव आदि दर्शनों का प्रस्फुटन और पंचम युग में शांकर वेदान्त और भक्तियुग में पूर्ववर्ती विचारधारा का विवेचन नवीन दृष्टियों से किया गया है।

इस दार्शनिक विकास में महाभारत की दार्शनिक पृष्ठभूमि द्वितीय युग की थी यद्यपि कुछ समय के उपरान्त तृतीय और चतुर्थ युग की दार्शनिक विशेषताओं का सन्निवेश भी महाभारत में हो गया था। महाभारत की कथा में जिस प्रकार समय समय पर अनेक उपाख्यानों की वृद्धि हुई और उसका कलेवर बढ़ता गया उसी प्रकार दार्शनिक विचारों का समावेश भी होता गया। इसी कारण इस ग्रन्थ में किसी एक दार्शनिक दृष्टि का प्रतिपादन न होकर अनेक दर्शनों का समन्वय है। यह समन्वय ही महाभारत की मूल विशेषता है। नियतिवाद, कर्मवाद, वैराग्य की स्थापना के साथ चार्वाक बृहस्पति के लोकायतवाद[3] की प्रतिष्ठा भी इस में विद्यमान है। द्रौपदी ने युधिष्ठिर के समक्ष जिस जीवन दर्शन का व्यापक प्रतिपादन किया था वह बृहस्पति का लोकायतवाद ही था। भीम के पुरुषार्थ प्रतिपादन में कर्मवाद की स्पष्ट प्रतिष्ठा है और ऐसा प्रतीत होता है कि उद्योगपर्व की विदुरनीति में प्राचीन प्रज्ञावाद नामक दर्शन का ही संग्रहण है।[4]

महाभारतयुग तक सांख्य, योग, पाशुपत, पाञ्चरात्र आदि मतों का अभ्युदय हो चुका था। इसीकारण महाभारत की दार्शनिक पीठिका में इन्हीं मतों का विवेचन

१ एषधर्मः क्षत्रियाणां प्रजानां परिपालनम्।
उत्पथान्यो महाराज मास्म शोके मनः कृथाः। म० शान्ति० २३।४६

२ यथा सृष्टोऽसि कौन्तेय धात्राकर्मसु तत्कुरु।
अतएवहि सिद्धिस्ते नेशस्त्वं कर्मणां नृप॥ म० शान्ति० २७।३३

३ भारत सावित्री, भूमिका पृष्ठ ६

४ भारत सावित्री, पृष्ठ १०

और प्रसार विद्यमान है। यद्यपि प्राचीन वदिक मतो के अनुसार वराग्य और सयास की भी पूण प्रतिष्ठा है तथापि भगवान कृष्ण क कमयाग म सभी मता का समवय अत्यत व्यापक रूप म किया गया है। महाभारत' म भगवान कृष्ण क ईश्वरत्व प्रतिपान म सम्पूण विचारधारा का चरम लक्ष्य प्राप्त हाना है। कृष्ण माया रहित अपनी माया स प्रकट हात है।[1] समस्त जगत की स्थिति उन्ही म है,[2] वे सम्पूण मता क भावना हैं।[3] उनकी उत्पत्ति अज्ञात है[4] और वे ही जगत की उत्पत्ति के कारण हैं।[5] एसे भगवान कृष्ण जिस मत का प्रतिपादन करत है वही ग्राह्य है। भगवान कृष्ण न साख्य और याग का समवय करत हुए अजुन को कमयाग की शिक्षा दी। शान्तिपव म पाशुपत और पाचरात्र मता की विचारधारा का सश्लिष्ट प्रतिपादन महाभारतकार क समवयात्मक दृष्टिकाण को स्पष्ट करता है।

सिद्धात प्रतिपादक दार्शनिक मता की दृष्टि स महाभारत' मे किसी एक मत का सद्धातिक प्रतिपादन न हाकर अनक मता का समवय है। इस समवय की विराट भावना कमवाद के अन्तगत व्यापक रूप म सन्निविष्ट हुई दिखाई पडती है। साख्य के तात्विक विवेचन का मानकर याग क ध्यानयाग का स्वीकार कर पाचरात्र क भक्तितत्व का ग्रहण कर वेदान्त क ज्ञान और वराग्य का आदर कर—'महाभारत' सबका समवय मानवीय कमक्षेत्र की महापयागिता क मध्य करता है।

समवय की इस विराट भावना म दशन के मान्य पथा का समवय 'भारतीय सस्कृति को 'महाभारत' की महत्त्व पूण दन है। महाभारतकार न विभिन्न मार्गों क समवय स साधन माग का अधिक व्यावहारिक और सुगम बना दिया है। इसकी दृष्टि म कम, ज्ञान भक्ति, ध्यान याग आदि पृथक अथवा स्वतत्र सरणिया न हाकर चरमध्येय के बहुविध माग हैं। जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र म गीता क निष्काम कम याग का सिद्धात भक्ति क क्षत्र म हृदयस्थित अन्तर्यामी क प्रति सम्पूण समपण और दशन क क्षेत्र म आत्मज्ञान के चिरतन प्रकाश का निष्पादन, इस ग्रन्थ का आध्यात्मिक प्रतिपाद्य है। सक्षेप म 'महाभारत'—शाक्य सग्रही प्रवत्तिमूलक जीवन-दशन व्यक्ति के लिए समाज सापेक्ष कतव्य निष्ठा, आध्यात्मिक दृष्टि स भक्ति ज्ञान और कम का समवय—धम क व्यापक प्रतिपाद्य क अन्तगत मानवतावाद का प्रतिपादन करता है। इस मानवतावाद का मुख्य अग है—'धम अन अधम क

१ गीता ७।६ १०
२ गीता, ९।१७ १८
३ गीता, १०।४
४ गीता, १०।२ ३

विनाश और धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कृष्ण के अवतार की स्वीकृति के माध्यम से 'महाभारत' ने धर्म का ही जीवन की आधार भूमि प्रतिपादित किया है।[1]

प्रतिपादन शैली

'महाभारत' की कथा जितनी लोकव्यापी, उसका प्रतिपादन जितना गम्भीर, उसकी प्रतिपादन शैली उतनी ही गरिमामयी और उदात्त है। शैली महाकाव्य का एकमात्र ऐसा बाह्य प्रधान तत्व है जिसके आधार पर महाकाव्य को इतिहास और पुराण से पृथक किया जा सकता है।[2] महाकाव्य में शैली की उदात्तता, प्रशस्तता, गम्भीरता और ओजस्विता का गुण प्राणधारा के रूप में आद्यन्त व्याप्त रहता है।[3] महाकाव्य एक ऐसे गुरु गम्भीर महासागर की भांति होता है जिसमें सहस्रों नदियाँ चतुर्दिशाओं से आकर विलीन होती है। महाकाव्य रूपी महासागर में अनेक दीर्घ और लघु वस्तु सरिताओं की भांति विलीन होते हैं—उन सब कथाओं की चरम परिणति महाकाव्य की मूल कथा के उद्देश्य के साथ होती है। महाभारत ऐसा ही महासागर रूप महाकाव्य है, जिसमें उस युग के ही नहीं अपितु पूर्व युग के भी अनेक आख्यान, प्रसंग रूप में समाविष्ट हो गये हैं। अतः महाभारत की शैली में एकरूपता का वह सश्लिष्ट व्यापार नहीं है जो अलंकृत महाकाव्यों में होता है किन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि उसकी शैली में असम्बद्धता है। अपनी सम्पूर्ण विविधता के साथ महाभारत की शैली आस्तिकता से पूर्ण, प्रशस्त और कथात्मक शैली के गुणों से सम्पन्न है। 'महाभारत' के कवि की विराट कल्पना महाप्राणता सांस्कृतिक अविच्छिन्न चेतना का प्रक्षेपण इस महाग्रन्थ की शैली पर स्वतः परिलक्षित है। इसमें कथात्मक वर्णनात्मक संवादात्मक और व्याख्यानात्मक शैली का प्रयोग है और प्रतिपादनशैली का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रबन्ध संयोजन में विद्यमान है। अतएव इस विषय में किंचित विस्तृत विवेचन की अपेक्षा है।

प्रबंध कौशल

वस्तु संयोजन —महाभारतकार ने अपने विराट जीवन दर्शन की उपस्थापना के हेतु लोक विश्रुत कुरुवंश के संघर्ष की कथा पर आधारित महाकाव्य की रचना की। समय समय पर यह विकासशील महाकाव्य अनेक परिवर्तनों के कारण मूल कथा संयोजन से भिन्न हुआ और यत्र तत्र कथा में पूर्ववर्ती आख्यानों का समावेश हुआ। सामान्यतः हम महाभारत' के कथा संगठन के तीन विभाजन कर सकते हैं

---

१ धर्म एवं दर्शन पक्ष का विस्तृत विवेचन 'धर्म' 'दर्शन' नामक अध्याय में किया जायेगा। यहां तो संक्षेप में ही महाभारत के परिचयार्थ इसकी चर्चा की गई है।

२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ११५

३ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० ११६

प्रथम खण्ड में कथा का उपक्रम, मूल कथा का संक्षिप्त परिचय और उपसंहार वर्णित है।

द्वितीय खण्ड में मूल कथा का विकास और साथ ही अनेक प्रासंगिक कथाएँ और उपाख्यानों का समावेश है।

तृतीय खण्ड में 'महाभारत' का चिन्तन पक्ष प्रधान और उपसंहारात्मक कथा का वर्णन है।

सम्पूर्ण 'महाभारत' की रचना श्रोता-वक्ता शैली के अन्तर्गत हुई है, अतः कथावाचक प्राचीन कथा को सुनाकर मुख्य विषय का वर्णन करता है। प्रथम खण्ड कथा का उपक्रम है इसमें प्रारम्भिक अनुक्रमणिका पर्व से ६७ वें अध्याय अंशावतरण पर्व तक, कथा का उपक्रम है तथा अनेक पूर्ववर्ती और परवर्ती कथाओं के संयोग से मूल कथा का परिचय दिया गया है। श्रोता वक्ता शैली के कारण ही युद्ध पूर्व और युद्ध के उपरान्त की कथाओं का समावेश है।

भीष्म के जन्म और कुरुवंशवर्णन से मूल कथा का प्रारम्भ है। इस खण्ड में राजकुमारों की शिक्षा, रंगभूमि प्रसंग, वनयात्रा, विराटनगर निवास, उद्योग और भीष्मपर्व वर्णन तथा युद्ध का सम्पूर्ण वर्णन है। युद्ध के कथानक के मध्य ही यथावसर दार्शनिक चिन्तन के लिए स्थान निकाल लिया गया है। स्त्रीपर्व तक के कथा विकास को महाभारत के वस्तु संयोजन का मध्य माना जा सकता है। शान्तिपर्व में आगे समस्त कथा उपसंहार है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यदि युधिष्ठिर के राज्यारोहण पर ही कथा समाप्त कर दी जाती तब भी महाकाव्य की दृष्टि से गौरव का अभाव नहीं होता। इसके आगे की कथा का मुख्य उद्देश्य दार्शनिक विवेचन और नर के नारायणत्व प्राप्ति के ध्येय का प्रकाशन है। इस प्रकार 'महाभारत' में विराट कलेवर में लोक जीवन की अनेक गाथाएं आकर एकाकार हो गई हैं। महाभारतकार ने साहित्य अनेक उपाख्यान और प्रासंगिक वस्तु का समावेश जिस रूप में किया है उसकी चर्चा अप्रासंगिक न होगी।

कथानक का स्वरूप

कौरव पाण्डवों की मूल कथा के साथ अनेक प्रासंगिक वस्तु उपाख्यानों और पूर्ववर्ती कथाओं के सम्मिश्रण से 'महाभारत' के कथानक का स्वरूप निर्मित हुआ है। इन उपाख्यानों के आधार पर आधुनिक काल में बहुत कुछ लिखा गया है। ये उपाख्यान अपनी सिद्धान्तवादिता के कारण प्रत्येक युग को प्रभावित करते हैं। इन समस्त लघु कथा-खण्डों का मूल कथा से महत्वपूर्ण सम्बन्ध है।

सिद्धान्त प्रतिपादक उपाख्यान —सामान्यतः ये उपाख्यान महाभारत पूर्व युग में आविर्भूत हो चुके थे और महाभारत में सिद्धान्त प्रतिपादन के लिए इनका

समावेश हुआ। इनमें—आस्तीक,[१] गरुण[२] राजा दुष्यन्त,[३] ययाति,[४] तपती एवं संवरण,[५] वसिष्ठ और और्व,[६] सुन्द उपसुन्द[७] राजा नल,[८] इल्वल वातापि[९] सगर-पुत्र,[१०] सोमक जन्तु[११] उशीनर,[१२] अष्टावक्र,[१३] पृथु मनु[१४] स्कन्द[१५] भगवानराम,[१६] सती सावित्री[१७] नहुष[१८] विदुला[१९] अम्बा[२०] आदि उपाख्यान प्रसिद्ध हैं।

उद्योगपर्व के पश्चात युद्ध प्रारम्भ हो जाता है और स्त्रीपर्व तक कुछ ही स्वतन्त्र उपाख्यान कथा के मध्य में आ पाते हैं। इसके पश्चात शान्तिपर्व अनुशासन पर्व और आश्वमेधिकपर्व प्रमुख रूप में दार्शनिक धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक विचारों को प्रस्तुत करते हैं। इन पर्वों में राजधर्मानुशासन राजा के अनेक कर्तव्य आपद्धर्म मोक्षधर्म परमप्राप्ति का उपाय धर्म स्वरूप आदि पर भीष्मजी के द्वारा विचार किया गया है। अनुशासन पर्व में दानधर्म पर विस्तृत चर्चा है। इस धार्मिक चर्चा में भीष्मजी ने युधिष्ठिर को समझाने के हेतु अनेक पूर्व प्रसंगों और चरित्रों को उदाहरण स्वरूप रखा है। अतः इन पर्वों में आने वाले सभी संक्षिप्त वृत्त उपदेश, नीति दृष्टान्त कथानकों की परिधि में आते हैं और उनको संक्षिप्त उपाख्यान के रूप में मानते हुए भी अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यहाँ पर ये उपाख्यान या प्रासंगिक वृत्त गौण हैं और प्रतिपादित विचार प्रमुख। प्रमुख वक्ता

---

१ म० आदि० अध्याय १३ ५८
२ म० आदि० अध्याय २० ५०
३ म० आदि० अध्याय ६८ ७४
४ म० आदि० अध्याय ८० ९३
५ म० आदि० अध्याय १७० ७३
६ म० आदि० अध्याय १७४ १८१
७ म० आदि० अध्याय २०७ २११
८ म० वन० अध्याय ५२-७९
९ म० वन० अध्याय ९६ ९९ १०४
१० म० वन० अध्याय १०६ १०९
११ म० वन० अध्याय १२७ १२८
१२ म० वन० अध्याय १३० १३१
१३ म० वन० अध्याय १३२ १३४
१४ म० वन० अध्याय १८२ २३२
१५ म० वन० अध्याय २७३ २९१
१६ म० वन० अध्याय २९३ २९९
१७ म० उद्योग० १० १८
१८ म० उद्योग० अध्याय १३३ १३७
१९ म० उद्योग० अध्याय १७३ १८५

भीष्म और अनेक स्थलों पर कृष्ण ने प्राचीन ऋषियों और राजाओं के उदाहरण देकर युधिष्ठिर की निवृत्ति की ओर जाने वाली भावनाओं को प्रवृत्ति की ओर मोड़ने का सफल प्रयास किया है। इन सिद्धान्त कथाओं में स्वर्ग के देवता भी सम्मिलित हैं और प्राचीन राजा तथा ऋषि भी। उदाहरण स्वरूप जपयज्ञ के प्रसंग में जापक का संक्षिप्त वृत्त[1], ममत्व बुद्धि के प्रसंग में असित देवल का संवाद[2], ब्रह्म प्राप्ति के उपाय में वृत्त गुरु संवाद[3] आदि संक्षिप्त कथानक आये हैं।

इन प्रमुख उपाख्यानों के अतिरिक्त आने वाले संक्षिप्त कथानक प्रासंगिक कथाओं में भिन्न हैं। इनकी 'महाभारत' की कथा से सम्बद्धता ऐसा रूप है जो उनको उपाख्यानों से पृथक करता है। कथा के प्रवाह में कोई लघु कथा अथवा घटना मुख्यपात्र को साथ लेकर थोड़ी दूर तक गतिमान रहती है और बाद में समाप्त हो जाती है—यह प्रासंगिक कथा होती है। ऐसी प्रासंगिक कथायें महाभारत में अनेक हैं।

पूर्वजन्म की कथाए, प्राचीन युग की कथाए स्वर्ग की कथाए वरदानों की कथाए प्रमुख पात्रों के साथ घटित संक्षिप्त घटनाओं की कथाए और दृष्टान्त कथाए—ये सभी प्रासंगिक कथाए मूल कथा के साथ सहयोग करती हैं। मूल कथा के विस्तृत घटना पट पर अनायास ऐसी घटना घटित होती है जिसका सम्बन्ध मुख्य कथा के पात्र से हो जाता है। उदाहरण के लिए हिडिम्बा की कथा[4] प्रासंगिक वृत्त है। वन में रहते हुए पाण्डवों में से भीम पर हिडिम्बा का आसक्त होना और भीम तथा कुन्ती द्वारा उसे वधू के रूप में स्वीकार करना तथा उससे घटोत्कच की उत्पत्ति और अन्त में हिडिम्बा का भीम से पृथक हो जाना—समस्त वृत्त प्रासंगिक है। आगे घटोत्कच का सम्बन्ध इन्द्र की शक्ति से हो जाता है।

इसी प्रकार पूर्वजन्म एवं प्राचीन प्रसंगों को लेकर कथा प्रवाह में आने वाली लघु कथायें भी प्रासंगिक हैं क्योंकि उनका उदय एक विशिष्ट प्रसंग को गति देने के लिए होता है। इतिहास और पुराण की सम्मिश्रित शैली में एक कथा के साथ दूसरी कथा निर्गत होती चलती है। उचित प्रसंग की समाप्ति के साथ कथा भी समाप्त हो जाती है। सिद्धान्त निरूपित इन कथाओं के सभी पात्र केवल लोक विश्वास पर जीवित रहते हैं। आधुनिक अनेक काव्यों ने मूल कथा के साथ इन उपाख्यानों को भी उसी रूप में ग्रहण किया है। इन उपाख्यानों का प्रभाव कई स्थानों पर प्रत्यक्ष और कई स्थानों पर अप्रत्यक्ष रूप में पड़ा ही है किन्तु जनकथा के रूप में भी इनका अस्तित्व विद्यमान है। इन कथाओं में जीवन के नैतिक कर्तव्यों नियमों

---

१ म० शान्ति० अध्याय १९९ २००

२ म० शान्ति० अध्याय २२९

३ म० शान्ति० अध्याय २७९

४ म० शान्ति० अध्याय १५१ १५५

विधाना का वणन है। प्रत्यक सिद्धात के माय हान के प्रमाण मे 'महाभारत' म किसी प्राचीन कथा का दष्टात रूप म रखन की प्रवत्ति सवत्र विद्यमान है। विधि निषेध के साथ चलने वाले य कथानक महाभारत म अत गाथा के रूप म क्षणभर के लिए आलोक जगा कर पुन मूल कथा के सागर म निमग्न हो जाते हैं।

प्रासगिक कथाए

स्वतत्र आख्याना के अतिरिक्त महाभारत के प्रमुख पात्रा के साथ आने वाले प्रासगिक वत्त पृथक अस्तित्व रखते हैं। गुरु द्रोण की कथा[1] एकलव्य का वत्त[2], हिडिम्बा की कथा[3] बकासुर-वध[4] उलूपी चित्रागदा[5] उल्लेखनीय वत्त हैं। ये सभी प्रासगिक कथाए प्रमुख कथानक म सहयोगी हैं। इनका प्रमुख पात्रा से गहरा सम्बन्ध है और इनके द्वारा कथा के प्रवाह के साथ ही प्रमुख पात्रा के चरित्र पर भी महत्व पूर्ण प्रकाश पडता है।

मुख्य कथा के रूप म आदिपव की तीन घटनाए अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं —(१) पाण्डवा का वारणावत जाना (इनके कारण पाण्डवा का अनेक काय करने का समय मिल जाता है। राजनतिक दृष्टि म उनकी मित्रता गन्धर्वों स होती है। अनेक राक्षसो के सहार के कारण शक्ति प्रदशन होता है) (२) द्रौपदी विवाह (इससे पाण्डव पाचाला के सम्बन्धी बनते हैं।) (३) अजुन सुभद्रा परिणय (इसके प्रभाव से पाण्डवा को कृष्ण की मत्री मिलती है।) इन तीनो घटनाओ के मध्य उपयुक्त प्रासगिक वत्त सयोजका का काय करते हैं।

इसके उपरान्त कथा नगर की ओर मुडती है। मय सभा का निर्माण करता है। राजसूय के हेतु राजनतिक स्थिति का अनुकूल बनाने के लिए जरासध का वध किया जाता है। जरासध का प्रासगिक वत्त भी राजनतिक सहायता करता है। उसके बन्दी राजा पाण्डवा के पक्ष म हो जाते हैं। इस प्रासगिक वत्त के साथ ही शिशुपाल की कथा भी सामने आती है। द्यूत खेला जाता है और पाण्डव वन की ओर चल देते हैं।

वनवास की अवधि म कथा मुख्यत पाण्डवा के साथ ही रहती है। पाण्डव के प्रसग म ही हस्तिनापुर और कौरवा का उल्लेख होता है। वनपव म पाण्डव सामान्यत सभी रमणीय स्थला की यात्रा करते हैं। इस यात्रा के मध्य धम नीति आचार आदि के जितने भी प्रसग आते हैं उनम अनेक दृष्टान्त कथाए सलग्न

---

१ म० आदि० अध्याय १२९
२ म० आदि० अध्याय १३१
३ म० आदि० अध्याय १५१ १५५
४ म० आदि० अध्याय १५६ १६३
५ म० आदि० अध्याय २१३ २१४

हैं। वनपर्व के प्रासंगिक वृत्त, उपाख्यान और दृष्टान्त कथाएं अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। बारह वर्ष की अवधि में अनेक ऋषि मुनियों का सत्संग, अर्जुन का इन्द्रलोक गमन और निवातकवचों से युद्ध होता है।

प्रासंगिक वृत्त कथाप्रवाह में सहायक होकर पाण्डवों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं। किर्मीर राक्षस का भीम द्वारा वध भीम की शक्ति एवं चरित्र का प्रकर्ष दिखाता है। द्वैतवन में आकर द्रौपदी एवं युधिष्ठिर का आचार शक्ति व धर्म सम्बन्धी संवाद होता है—इसकी पृष्ठभूमि के साथ अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर जाते हैं वहां किरात वेष धारी शिव से युद्ध होता है—इस युद्ध के कारण अर्जुन को दिव्यास्त्रों की प्राप्ति होती है। द्यूत के विषय में बृहदश्व नलोपाख्यान प्रस्तुत करते हैं। तदुपरान्त व्यास जी अनेक संवादों से धर्माचार का प्रतिपादन करते हैं। भीष्म और पुलस्त्य के प्रस्तावित संवाद से तीर्थों का वर्णन होता है। यह वर्णन तीर्थों के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इल्वल-वातापि, अगस्त्य का संक्षिप्त कथानक राजा सगर और पुत्रों की कथा (गंगावतरण) ऋष्यशृंगमुनि का आख्यान, परशुराम की कथा, च्यवन ऋषि की कथा मान्धाता, सोमक उशीनर और अष्टावक्र का संक्षिप्त वृत्त यवक्रीत का कथानक वराह द्वारा वसुधा के उद्धार की कथा आदि स्वतन्त्र संक्षिप्त उपाख्यानों से कथा को आगे बढ़ाया गया है। ये सभी उपाख्यान सौति के संस्करण के ज्ञात होते हैं क्योंकि पाण्डव जिन स्थानों पर गये उनका विस्तृत वर्णन प्रसंगवश कर दिया गया।

भीमसेन सौगन्धिक कमल लाने के लिए जाते हैं तो हनुमान से भेंट होती है। इस भेंट के उपरान्त कथाकार ने अनेक अवान्तर कथाओं में प्रसंग का विस्तार किया। इस विस्तार का कारण सौति की पौराणिक कथा कहने की प्रवृत्ति ही रही होगी। जटासुर-वध यक्ष-युद्ध और निवातकवच-युद्ध—इन तीनों प्रसंगों में इस प्रकार का विस्तार किया गया है। नहुष के संक्षिप्त वृत्त को भी इसके उपरान्त जोड़ दिया गया। यहां कथाकार का अभीष्ट यही ज्ञात होता है कि सर्प रूप धारी नहुष और युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तर से कतिपय सिद्धान्तों को प्रकाश में लाया जाय। इसके उपरान्त कथाकार कथा को धार्मिक विवेचना की ओर ले जाता है। मार्कण्डेय युधिष्ठिर को अनेक दृष्टान्त और स्वतन्त्र कथाओं में धर्म के सूक्ष्म रूप को समझाते हैं। धुन्धुमार उपाख्यान पतिव्रता उपाख्यान स्कन्द का उपाख्यान, अंगिरसोपाख्यान के द्वारा धर्म के अनेक व्यावहारिक पक्षों की विवेचना होती है।

पाण्डवों के साथ कथा को इस स्थल तक लाकर द्रौपदी सत्यभामा संवाद के उपरान्त कथाकार कथा के अपर पक्ष (कौरवों) की ओर अग्रसर होता है। घोषयात्रा पर्व में राजधानी में होने वाली पाण्डव विरोधी गतिविधियों की सूचना देकर कर्ण की दिग्विजय के वर्णन के बाद कथा पुनः पाण्डवों के साथ चलती है। इस वृत्त से दुर्योधन की गन्धर्वों द्वारा पराजय और पाण्डवों की सहायता के द्वारा कथाकार दोनों पक्षों के चरित्र का चित्रण करता है। कौरवों का दुर्बल और अधर्मी पक्ष

तथा पाण्डवों का सबल और आस्था वादी पक्ष उज्ज्वल रूप में प्रस्तुत होता है।

पाण्डव काम्यक वन में आते हैं यहां मुख्य घटना जयद्रथ के द्वारा द्रौपदी का हरण और पराजित होकर शिव से वरदान प्राप्त करना है। इससे अभिमन्यु वध का कारण स्पष्ट हो जाता है। मार्कण्डेय युधिष्ठिर को रामोपाख्यान सुनाते हैं, यहीं पर सावित्री सत्यवान का उपाख्यान कर्ण के जन्म का वृत्त सामने आता है। वनपर्व के अन्त में ब्राह्मण की अरणि और मंथन काष्ठ की कथा के मध्य यक्ष एवं युधिष्ठिर की प्रश्नोत्तरी के साथ अज्ञातवास की चर्चा होती है।

वनपर्व में आने वाले स्वतन्त्र उपाख्यान और प्रासंगिक वृत्त निश्चित रूप से मूल कथा के प्रारम्भिक लघु भाग को विस्तार देने के हेतु और धर्म चर्चा के कारण प्रस्तुत किये गए हैं इनसे देश की कुछ भौगोलिक परिस्थिति का भी ज्ञान होता है।

अज्ञातवास में कीचक का प्रासंगिक वृत्त सैरन्ध्री के चरित्र का उत्कर्ष दिखाता है और प्रकारान्तर से कीचक का वध दुर्योधन तथा त्रिगर्तों का विराट पर आक्रमण करने की भावना को जागृत कराता है। इस आक्रमण के कारण ही अत्यन्त नाटकीय रूप में पाण्डव प्रकट होते हैं कौरवों को पराजय का मुख देखना पड़ता है और उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से होता है।

उद्योग पर्व में कथा का अधिक भाग युद्ध की तैयारी और स्वतन्त्र उपाख्यानों से निर्मित होता है। सञ्जयानपर्व प्रजागरपर्व सनत्सुजातपर्व—कथा के हल्के रूप से धार्मिक एवं नीति सम्बन्धी चर्चा से परिपूर्ण है। दम्भोद्भव नहुष मातलि गरुड विदुला और अम्बा के स्वतन्त्र उपाख्यान प्रमुख कथा के मध्य जोड़ दिए गए हैं। ये सभी साभिप्राय हैं यथा विदुलोपाख्यान पराजित पुत्र के हृदय में पुनः साहस का संचार करने के हेतु कुन्ती से दूत के रूप में पाण्डवों के पास भेजती है। यानसन्धि पर्व में कौरव पक्ष की तैयारी और भगवद्यान पर्व में पाण्डवों की तैयारी की झलक मिलती है। यहां कथाकार यह भी सिद्ध करना चाहता है कि कौरवों का पक्ष अनीति की ओर झुका हुआ था इस कारण कृष्ण भी उनको न समझा सके।

युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व कृष्ण गीता का उपदेश देते हैं और दस दिन का युद्ध भीष्म के सेनापतित्व में होता है। भीष्मपर्व से कथाप्रवाह के स्थान पर युद्ध वर्णन का आधिक्य हो जाता है। युद्ध ही मुख्य रूप से सामने होता है अन्य अवान्तर प्रसंग नहीं आ पाते। द्रोणपर्व में प्रमुख व्यक्तियों के वध की घटना के साथ अभिमन्यु-वध के उपरान्त व्यास जी मृत्यु की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं और नारदजी १६ राजाओं का चरित्र सुनाते हैं।

कर्णपर्व में युद्ध के अतिरिक्त कर्ण एवं परशुराम का मार्मिक वर्णन व्याध और कौशिक मुनि का आख्यान प्रमुख रूप से आता है। शल्यपर्व में भी कोई प्रासंगिक उप-कथा है क्या केवल युद्ध के साथ विकसित होती है। गदापर्व में बलरामजी चन्द्रमा के सारस्वत की महत्ता तथा अवश्य सुनाते हैं। सौप्तिक और स्त्रीपर्व युद्ध के परिणाम की स्थिति चित्रित करते हैं।

प्रासगिक वक्ता का मक्रिय भाग स्त्रीपर्व तक सामायत समाप्त हो जाता है। शान्तिपर्व एव अनुशासनपर्व कथा की दृष्टि से स्थिर गति के स्थल हैं। इन पर्वों म जीवन के आचार-सम्बन्धी अनेक नियमों का वर्णन है। युधिष्ठिर तथा अन्य मतप्त पाण्डवों का भीष्म कृष्ण व्यास धर्म के गूढ रहस्य समझाते हैं। इन पर्वों म अधिकांश दृष्टान्त कथाएं आई हैं जो मूल रूप म स्वतन्त्र किन्तु उदाहरण के हेतु महाभारत का भाग बन गई हैं। आश्वमेधिक पर्व म अश्वमेध यज्ञ प्रमुख घटना है। इस पर्व म उत्तक इन्द्र, बभ्रुवाहन तथा उलूपी का प्रासगिक वृत्त आता है। इन प्रासगिक वृत्तों म अर्जुन के पराक्रम और विजय की घोषणा होती है।

उपसहार —आश्रमवासिक पर्व से कथा का उपसहार प्रारम्भ हो जाता है। इस पर्व म कुरुक्षेत्र मे मृत्यु को प्राप्त सभी व्यक्तियों का पुनर्दर्शन होता है। मौसल-पर्व म यादवों के आपस के युद्ध का वर्णन है। अर्जुन द्वारका से स्त्री पुरुषों को लाते हैं और अपनी राजधानी म बसा देते हैं। महाप्रस्थानिक पर्व म पाण्डवों का प्रस्थान और निर्वाण प्राप्ति होती है। स्वर्गारोहण पर्व म कथा का स्थल स्वर्ग होता है और इस महाकाव्य की समाप्ति हो जाती है। सक्षेप म यह कह सकते हैं कि मूल-युद्ध की कथा पाण्डवों की कथा के साथ अनेक उपकथाएं—स्वतन्त्र आख्यान और दृष्टान्त कथाओं को सम्बद्धकर ततीय सस्करण म इस काव्य को इस रूप म लाया गया।

वस्तु सयोजन के विवेचन से यह स्पष्ट है कि महाभारतकार कथा के चयन और सपादन म कितनी विलक्षण प्रतिभा का कवि है। कुरुवश के साथ अनेक पूर्व और परवर्ती उपाख्यानों के सुसम्बद्ध और सुनियोजित सयोजन से उसकी विराट गरिमामयी वस्तु सयोजन शैली का प्रकाशन होता है।

अब कथा वर्णन की प्रक्रियाओं के आधार पर शैली के विभिन्न रूपों की सक्षिप्त समीक्षा स्पृहणीय है।

कथात्मक शैली

महाभारत की विशालता मे कथात्मक शैली का अत्यन्त आयोजन है। इसमे वक्ता श्रोताओं के प्रश्नोत्तर म प्रवचनात्मक रूप से कथा चलती है। इन स्थलों म कुछ द्रुत गति से वर्णित स्थल हैं कुछ की गति मथर है। द्रुत गति वाले स्थलों म वक्ता कथा का नितान्त परिचय प्रस्तुत करता है। मथर गति म वह परिचयात्मकता के स्तर से ऊपर उठकर विवेचन और विचार की सीमा म प्रविष्ट करता है। एकचक्र[1], पाण्डवों की वारणावत यात्रा[2], हिडिम्बा का प्रसग[3] शाल्व वध[4] सगरपुत्रों

१ म० आदि० अध्याय, १३१
२ म० आदि० अध्याय १४० १५०
३ म० आदि० अध्याय १५१ १५५
४ म० वन० अध्याय १४ २१

का आख्यान[1] उशीनर का आख्यान[2] आदि स्थलो पर कथा द्रुत गति से प्रवाहित
होती है। मथर गति वाले स्थलो मे युद्ध का प्रसग प्रमुख है। युद्ध प्रसग के अति
रिक्त चित्र और दृश्यो के वणनो म भी कथा क्रम सीमित रहता है। मथर गति
युक्त कथा रूप मे द्रोण द्रुपद की कथा[3] विराटनगर की कथा[4] तथा शान्तिपव और
अनुशासन पव की दृष्टान्त कथाएँ आती है। हमारे इस विभाजन का आधार गति
बाहुल्य है। जिन स्थलो पर कवि चारित्रिक विशेषता और विचार प्रतिपादन की उपेक्षा
करता हुआ केवल कथा कहता है वे स्थल द्रुतगति वाले मान हैं। शेष मथर गति
के अतगत आत हैं। आस्तीक पव के अतगत देवताओ के अमृतपान का वणन कवि
कितनी द्रुतता से करता है—

तत पिबत्सु पिबत्काल दवेष्वमतमीप्सितम ।
राहुर्विबुधरूपण दानव प्रापिबत तदा ॥
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामते तदा ।
आख्यात चन्द्र सूर्याभ्या सुराणा हितकाम्यया ॥[5]

जिस समय देवता उस अमत का पान कर रहे थे ठीक उसी समय राहु नामक
दानव ने देवता रूप म आकर अमृत पीना आरम्भ किया। वह अमत अभी उस
दानव के कण्ठ तक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूय न दवताओ के हित की इच्छा
स उसका भेद बता दिया। एसे स्थलो म लखक न वस्तु के आगे बढाने की प्रवृत्ति
पर अधिक बल दिया है। इसके विपरीत कथानक म स्थिरता के कारण गति मथर
हो जाती है। जसे विरात और अजुन का युद्ध। कई स्थलो पर एक कथा म अवा
न्तर कथा को जोडते हुए सारी कथा का भार अवान्तर प्रसगो पर भी डाल दिया
गया है।

सक्षेप म महाभारत कथात्मक शली म लिखा हुआ सस्कृत का सर्वोच्च काव्य
ग्रन्थ माना जाता है। एक घटित घटना को निरपेक्ष व्यक्ति की तरह सुनाना इस
ग्रन्थ की शलीगत विशेषता है। सारी गाथा जनमजेय के यज्ञ म वशम्पायन सुना रहे
है अत कथानक म कहानी कहने की सी प्रवृत्ति का होना अनिवाय है। कथात्मक
शली महाकाव्योचित गरिमा और प्रवाह को लिए है। इसम कथा की दृष्टि स जो
रूप अपनाया गया है उसम शिथिलता लेश मात्र भी नही है।

---

१ म० वन० अध्याय, १०६ १०६
२ म० वन अध्याय १३१
३ म० आदि०, अध्याय, १३७
४ म० विराट०, अध्याय, १४ २४
५ म० आदि०, १६।४ ५

वर्णनात्मक शैली

महाकाव्य के वर्णनात्मक स्थलों में कवि अपनी वास्तविक गम्भीर दृष्टि की परीक्षा देता है। वर्णनों में कवि के व्यापक ज्ञान की अभिव्यक्ति होती है। एक विशेष विषय पर कवि किन स्तरों से विचार कर सकता है किन रूपों में उसे देखता है ? यह सब वर्णित स्थलों से ज्ञात होता है। 'महाभारत' की वर्णन शैली ऊँचे दर्जे की है।[1] एक नहीं अनेक प्रकार के वर्णन जिनका सम्बन्ध विभिन्न विषयों से है, हम इस ग्रन्थ में मिलते हैं। एक बात को विभिन्न रूपों में वर्णित करना 'महाभारत' की वर्णनात्मक शैली की विशेषता है।

चि० वि० वैद्य का मत है कि व्यास जी की प्रतिभा होमर और मिल्टन से कई गुनी अधिक है।[2] हमारे कवि के वर्णन सर्वथा यथार्थ और स्पष्ट होते हैं। 'महाभारत' में प्रमुख रूप से इन वर्णनों का समावेश है —

वस्तु-वर्णन चेष्टा-वर्णन स्थान वर्णन, माहात्म्य वर्णन, गुण-वर्णन स्तवन-वर्णन, रूप वर्णन, युद्ध-वर्णन प्रकृति-वर्णन, यश वर्णन, वर्णाश्रमधर्म-वर्णन आदि।

वस्तु वर्णन

वस्तु वर्णन के द्वारा पाठक मूलवस्तु के अतिरिक्त उस के विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त करता है। महाभारत जैसे विशालकाय काव्य में व्यास जी का वस्तु परिगणन के अनेक स्थल मिल हैं। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर को प्राप्त भेंट का एक चित्र द्रष्टव्य है।

> प्राणान् वनान् बाधान्धाजात स्पर्शपरिष्कृतान।
> प्रावाराजिन मुख्यांश्च काम्बोज प्रददौ बहून ॥
> अश्वान्स्तित्तिरिकल्मापास्त्रिशत शुकनासिकान ।
> उष्ट्रवामीस्त्रिशतं च पुष्टा पीलुशमीङ्गु द ॥[3]

इन श्लोकों में कवि ने कम्बोजनरेश प्रदत्त वस्तुओं की गणना मात्र की है। वस्तु-परिगणन में एक वस्तु की परिगणना करते कवि उसी को विस्तृत कर देता है। राजसूय यज्ञ में आये हुए राजकुमारों के नामों के वर्णन का एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

> कराता दरदा दर्वा शूरा वै यमकास्तथा।
> औदुम्बरा दुर्विभागा पारदा वाह्लिक सह ॥
> काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंस कायना ।
> शिविस्त्रिगर्तयौधेया राजन्या मद्र केकया ॥[4]

---

१ महाभारत मीमांसा, पृ० ३८
२ महाभारत मीमांसा पृ० ३२
३ म० सभा० ५१।३ ४
४ म० सभा० ५२।१३ १४

इसके अतिरिक्त धृतराष्ट्र के पुत्रों की नामावली कार्तिकेय के विभिन्न नामों का वर्णन तथा शिव और विष्णु के सहस्र नामों का वर्णन, इसी वस्तु परिगणन शैली के अन्तर्गत आता है।

चेष्टा वर्णन

महाकाव्यकार मानव मन का पूर्ण पर्यवेक्षण कर उसके नाना रूपों का उद्घाटन करता है। मनुष्य की चेष्टाओं के वर्णन से उसके भावों की अभिव्यक्ति सामान्यतः कवि की एक व्यक्तिगत विशेषता समझी जाती है। शुद्ध साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महाभारत में वर्णित विभिन्न पात्रों की चेष्टाओं का वर्णन कवि की सूक्ष्म दर्शिनी प्रतिभा का द्योतक है। 'महाभारत' में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पर कवि ने पात्र की मनोभूमि का अभिव्यक्ति स्थो द्वारा में की है।

उदाहरण के लिए द्रौपदी चीर हरण के समय भीम और अर्जुन की मौन चेष्टाओं में विवशता की आकुलता का चित्रण, दुर्योधन की चेष्टायें सम्बन्धी रूप द्रौपदी के प्रति कौरव की कामुकता पूर्ण चेष्टायें और युद्ध के समय योद्धाओं की चेष्टायें आदि का वर्णन प्रभाव शाली रूप में हुआ है। कभी कभी मानव अपने वाह्याकार प्रदर्शना में भी भारी स्थिति स्पष्ट कर देता है।[1]

राजाओं के अतिरिक्त दुर्योधन की चेष्टाओं का वर्णन दृष्टव्य है।

एवमुक्त्वा तु कौन्तेयमपोह्य वसनं स्वकम्।
स्मयन्निवैक्ष्य पाञ्चालीमैश्वर्य मद मोहितः॥
कदलीस्तम्भसदृशं सर्व लक्षण संयुतम्।
गजहस्त प्रतीकाशं वज्र प्रतिमगौरवम्॥[2]

स्थान वर्णन

कथा के प्रवाह में अनेक स्थल ऐसे आते हैं जहाँ पर लेखक स्थान विशेष का वर्णन करके किसी उद्देश्य की पूर्ति करता है। 'महाभारत' में स्थान-वर्णन पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। स्थान-वर्णनों में सभा-वर्णन दिशा वर्णन तीर्थ या क्षेत्र-वर्णन स्थान-वर्णन युद्ध भूमि वर्णन प्रमुख है।

सभा-वर्णन के अन्तर्गत महाभारतकार ने प्रमुख रूप से इन्द्र यमराज वरुण कुबेर और ब्रह्मा की सभाओं का वर्णन किया है। सभाओं के वर्णन में ऐश्वर्य और विलास का व्यापक चित्रण हुआ है। कुबेर की सभा का एक चित्र दृष्टव्य है —

---

१ युधिष्ठिर च ते सर्वे समुद्वक्षत पार्थिवाः।
किंतु वक्ष्यति धर्मज्ञ इति साचीकृताननाः॥ म० सभा० ७०।९

२ म० सभा० ७१।१० ११

तस्यां वैश्रवणो राजा विचित्राभरणाम्बरः ।
स्त्रीसहस्रैर्वृतः श्रीमानास्ते ज्वलितकुण्डलः ॥
दिवाकरनिभे पुण्ये दिव्यास्तरणसंवृते ।
दिव्यपादोपधाने च निषण्णः परमासने ॥[1]

उस सभा में सूर्य के समान चमकीले दिव्य बिछौनों से ढके हुए तथा दिव्य पादपीठों से सुशोभित श्रेष्ठ सिंहासन पर कानों में ज्योति से जगमगाते कुण्डल और अंगों में विचित्र वस्त्र एवं आभूषण धारण करने वाले राजा वैश्रवण (कुबेर) सहस्रों स्त्रियों से घिरे हुए बैठते हैं ।

दिशा-वर्णन

महाभारतकार ने चारों दिशाओं और उनकी विचित्रताओं का विस्तृत वर्णन किया है । दिग्विजय के लिए पाण्डव चारों दिशाओं में अग्रसर होते हैं । इस स्थल पर महाभारतकार अपने विपुल दिग्ज्ञान का परिचय देता है ।[1] इसके अतिरिक्त तिथि-वर्णन आदि प्रसंग भी वर्णनात्मक शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

माहात्म्य वर्णन

'महाभारत' धर्म संहिता है अतः धर्म के विभिन्न तत्त्वों के प्रतिपादन के साथ माहात्म्य वर्णन की ओर भी कवि का ध्यान अधिक गया है । दान माहात्म्य, ब्राह्मण सेवा का माहात्म्य, तीर्थ का माहात्म्य आदि वर्णन धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं । स्वयं 'महाभारत' में आने वाले कई उपाख्यान ऐसे हैं जिनके पीछे फल श्रुति जुड़ी हुई है ।[2]

इस प्रकार प्रत्येक धार्मिक कर्म के माहात्म्य का वर्णन हुआ है ।

गुण वर्णन

गुण-वर्णन के अन्तर्गत महाभारतकार ने स्तुति वर्णन तथा अन्य गुणों का वर्णन किया है । 'महाभारत' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पर एक देव दूसरे देव की स्तुति करता है अथवा तपस्वी और ऋषि अपने आराध्य का स्तवन करते हैं । इन स्थलों पर महाकाव्यकार ने वर्णनात्मक शैली द्वारा गुण चित्रण किया है । 'महा-

---

१ म० सभा० १०।५६
२ भारताध्ययनं पुण्यमिति पादमधीयतः ।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥ म० आदि० १।२५४,
श्रद्दधानः सदा युक्तः सदा धर्मपरायणः ।
आसेवन्निममध्यायं नरः पापात् प्रमुच्यते ॥ म० आदि० १।२६१
३ म० आदि० ६३।२७

भारत' मे जितने भी स्तोत्र हैं सब इसी शली के अन्तर्गत आयगे। विष्णुस्तुति,[१] शिवस्तुति,[२] कृष्णस्तुति,[३] इन्द्रस्तुति आदि स्तुतियां गुणवर्णन के अन्तर्गत हैं। इन देवो के अतिरिक्त मानवीय पात्रो के गुण-कथन भी प्रचुर मात्रा म हैं। कृष्ण के द्वारा भीष्म के गुण प्रभाव[४] का वणन भी अत्यन्त मार्मिक है।

इस शैली का प्रयोग अधिकतर एक पात्र के द्वारा किसी अन्य पात्र के गुणो के उदघाटन के लिए किया गया है। जहा कहीं एक पात्र कोई विशेष काय करता है वहा उससे सम्बंधित पात्र उसकी प्रशसा कर देता है। प्रारम्भ म अन्त तक प्रश्नोत्तर के बीच वशम्पायन के कथा कहने के ढग की प्रशसा की गई है। इस प्रसग म भी लेखक स्थिर हो जाता है तथा कथा के प्रवाह से ध्यान हटाकर व्यक्तिगत स्तर पर विचार करने लगता है।

रूप-वर्णन

सौन्दय-वणन म महाभारतकार ने उतना दत्तचित्त होकर मन नहीं लगाया जितना स्तवन म। रूप-वणन के लिए चि० वि० वद्य ने लिखा है कि मनुष्यों का वणन करने म महाभारत की कवी निमल और जोशीली जान पडती है।[५] स्त्री-सौन्दय का वणन करने म परवर्ती काल के संस्कृत कवियो के समान विषय परायणता 'महाभारत' म नहीं देखन म आती। द्यूतक्रीडा के प्रसग म द्रौपदी को दाव पर रखते समय युधिष्ठिर ने जो उसका वणन किया है। वह इस प्रकार के वणन का नमूना है।[६]

> नव ह्रस्वा न महती न कृष्णानातिरोहिणी।
> नील कु चितकेशी च तथा दीर्घायतहृतया॥
> शारदोत्पल पत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया।
> शारदोत्पल सेविन्या रूपेण श्री समानया।
> तथैव स्यादानृशंस्यात् तथा स्यात् रूपसम्पदा।
> तथा स्याच्छीलसम्पत्या यामिच्छेत् पुरुष स्त्रियम॥[१]

---

१ म० वन० अध्याय १०२
२ म० शान्ति० अध्याय २८४
३ म० शान्ति० अध्याय ४३
४ यच्चभूत भविष्यच भवच्च पुरुषषभ।
सवतज्ज्ञानवद्धस्य तव भीष्म प्रतिष्ठितम्।
सर्वा हि राज्ये स्थित रक्षीते समर्थागमराशिणम्।
स्त्रप्रहस्त परिवत पम्पामीवाभ्वरेतसम्॥ म० शान्ति०, ५०। १८, २०
५ महाभारत मीमासा, पृ० ३६
६ म० सभा०, ६५।३३ ३५

द्रौपदी का यह सौन्दर्य-वर्णन उत्तेजनात्मक नहीं है। इस विषय में महाभारतकार पर्याप्त सजग है। कीचक जैसे दुष्टात्मा और व्यसनी के मुख से द्रौपदी का जो सौन्दर्य-वर्णन कराया गया है वह भी प्रेमात्मक है। सत्यभामा, लक्ष्मी तथा अन्य नारियों का सौन्दर्य वर्णन अत्यन्त शुद्ध और सर्वांगीण है। इस विषय में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सौन्दर्य में महाभारतकार ने आंगिक वर्णन पर अधिक ध्यान दिया है। इसका कारण उस समय की विचार धारा और प्रवृत्ति हो सकती है।

युद्ध-वर्णन

महाभारत' के युद्ध विस्तृत एवं ओजस्वी शैली में लिखे गये हैं। युद्ध का विस्तार-पूर्वक वर्णन करने में व्यास की शक्ति सचमुच अद्भुत है। युद्ध-वर्णन में शस्त्र-चालन और रथचालन के वर्णन अत्यन्त सजीव हैं। युद्ध-वर्णन में व्यूह-युद्ध, पदाति-युद्ध, रथ-युद्ध, सकुन्त-युद्ध, मल्ल युद्ध, रण में वाक्-युद्ध, माया-युद्ध और द्वन्द्व-युद्ध आदि का वर्णन उल्लेखनीय है। युद्ध-वर्णन में ओजस्वी भाव, शारीरिक वीरत्व का वर्णन पर्याप्त रूप में किया गया है। अमुक योद्धा ने अपने प्रतिपक्षी पर इतने बाणों से प्रहार किया और उसके उत्तर में अपर व्यक्ति ने इतने बाणों का प्रहार किया, इस प्रकार के गणनात्मक वर्णन अनेक स्थलों पर हुए हैं।

महाभारतकार ने युद्ध-वर्णन में अतिशयोक्तिपूर्ण शैली को अपनाया है—यद्यपि यह वर्णन यथार्थ रूप से किया गया है तथापि पुनरुक्ति के कारण वर्णन बोझिल हो गये हैं। युद्ध-वर्णन में व्यूह-वर्णन शैली का प्रयोग कम किया गया है। अधिकतर द्वन्द्व-युद्धों का वर्णन है। ये द्वन्द्व-युद्ध-वर्णन भी जिस जोश और ओज के साथ चित्रित हैं उनमें पाठक की आश्चर्य वृत्ति उभरती है। इन वर्णनों का सीधा प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है। पाठक उत्साह और शौर्य से आपूरित हो जाता है उसके हृदय में वीरता की लहरें उमड़ने लगती हैं।[1]

मल्ल-युद्ध के दाव-पेचों के वर्णन में अत्यन्त अन्वेषणी प्रतिभा से कार्य किया गया है। जरासन्ध और भीम, कीचक और भीम के प्रसंगों तथा हिडिम्ब राक्षस और भीम के मल्लयुद्ध में कवि ने तद्विषयक ज्ञान का पूर्ण परिचय दिया है।

प्रकृति वर्णन

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध चिरकालीन और अत्यन्त मधुर है। महाभारत में प्रकृति-वर्णन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। पर्वत, नदी, नाले, वनस्पति आदि के अत्यन्त मनोहारी वर्णन स्थान-स्थान पर उपलब्ध हैं। बलरामजी के द्वारा वर्णित तीर्थों में प्राकृतिक दृश्य प्रचुर मात्रा में हैं ये दृश्य अत्यन्त सुन्दर और हृदय स्पर्शी हैं। इन स्थलों पर कवि प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करता है। वनपर्व का

---

१ महाभारत मीमांसा, पृ० ३८

हिमालय वर्णन, स्वर्गारोहण पर्व में पर्वत के ऊपर गिरती हिमराशि उसमें गिरे पाण्डवों का वर्णन, गन्धमादन पर्वत का वर्णन आदि अत्यन्त सटीक बन पड़े हैं। प्रकृति-वर्णन में कहीं-कहीं पर आवश्यकता से अधिक विस्तार किया गया है। प्राकृतिक सुषमा चित्रण के साथ महाभारतकार ने वस्तुओं का भी वर्णन किया है। इनमें वृक्षों, फलों का वर्णन करके गणना-मात्र पर ध्यान केन्द्रित हुआ है। सामान्यतः प्रकृति-वर्णन में अलौकिक भावना की प्रधानता है समुद्र-वर्णन में कवि के समस्त वर्ण्य उपकरण अलौकिक हो जाते हैं।

इन वर्णनों के अतिरिक्त वंशावली वर्णाश्रमधर्म अन्य वस्तु-व्यापार के वर्णनों को भी प्रचुर स्थान मिला है। ग्रन्थ का एक तिहाई भाग इसी वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है।

संवादात्मक शैली

इतिवृत्तात्मक काव्यों में इस शैली से सामान्यतः कथा का विराम देकर विचार प्रतिपादन किया जाता है। संवादों से महाकाव्य के कार्य-व्यापार और गति में द्रुतता आती है। काव्य में संवादों का होना पाठक की रुचि के लिए भी आवश्यक है। कभी पाठक कथा के प्रवाह में साथ चलता है कभी संवादों के विराम-स्थलों पर चिन्तन में मग्न होता है। एकरसता के साथ अनेकता की स्थापना इसी परिवर्तन के द्वारा अत्यन्त सुन्दरता से होती है। जिस प्रकार जीवन के विविध अंगों का उद्घाटन महाकाव्य का प्रमुख कार्य होता है उसी प्रकार कला की दृष्टि से अधिका-धिक शैलियों का प्रयोग श्रेयस्कर है।

'महाभारत' में संवादों की प्रतिष्ठा निर्विवाद है। वक्ता-श्रोता परम्परा में संवाद नितान्त स्वाभाविक है। इन संवादों के द्वारा पात्रों का चरित्रांकन, सिद्धान्त-प्रतिपादन वस्तु विशेष का चित्रण, पूर्वकथानकों का उद्धरण और किसी विवादास्पद विषय का समाधान होता है। यह शैली महाभारत में नई नहीं है इसका प्रयोग इससे पूर्व होता रहा है। इस ग्रन्थ में मुख्यरूप से दुर्योधन-कर्ण, अर्जुन भीम, शिशुपाल-भीष्म, द्रौपदी-युधिष्ठिर सात्यकि अर्जुन, कर्ण कृष्ण धृष्टद्युम्न-युधिष्ठिर, युधिष्ठिर दुर्योधन आदि के संवाद महत्वपूर्ण हैं। इन सब में वाद विवाद की स्थिति रही है। कुछ स्थलों पर भाषण और संवाद का समन्वय भी हुआ है।[1]

व्याख्यानात्मक शैली

'महाभारत' में शैली की एक विशेषता भाषणों में उपलब्ध है। इन भाषणों में एक पक्ष के विविध दृष्टिकोणों का ज्ञान अनायास हो जाता है। ये भाषण दो प्रकार के हैं। एक तो किसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए भाषण—इनमें भाषणकर्ता मत

---

१ म० उद्योग० भगवद्यान पर्व

प्रतिपादन के साथ पूर्ववर्ती मवाद या उपाख्याना का उदाहरण देकर भाषण को रोचक बना लेता है। दूसरे भाषण वे है, जो किसी काय के लिए प्रोत्साहित करने के लिये दिये गए हैं। इनके अन्तगत हम उन भाषणो को भी ले लेंगे जिनमे किसी पात्र विशेष ने किसी के गुण-कथन म एक लम्बासा भाषण दे दिया हो।

उद्योगपव म उभयपक्ष के बीच सधि कराने के लिए श्रीकृष्ण का भाषण साहित्य का सुदर उदाहरण है। व्यासजी समय भाषण करने म कितने सिद्धहस्त हैं यह कृष्ण के कणपव के भाषण से ज्ञात होता है। अजुन के युद्धाभिमुख होने पर, उसको प्रोत्साहन करने के लिए कृष्ण का भाषण तेजस्विता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

निर्भयता इन भाषणो का प्रमुख गुण है। भाषणकर्त्ता निर्भीकता से अपने विचार प्रकट करता है। इनम व्यक्तिगत प्रतिभा और उसकी निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति अत्यन्त तीव्र रूप म हो पाई है। दुर्योधन के लिए विदुर और कण के लिए भीष्म आदि ने जो निर्भय अभिव्यक्ति की है, वह सस्कृति और सभ्यता के उत्कृष्टतम रूप की द्योतक है। महाभारत यथाथवादी महाकाव्य है। उसम अनावश्यक प्रच्छन्नता नही मिलती। शकुन्तला कहती है—'यदि सत्य के लिए तुम्हारे भीतर सम्मान नहीं है, तो तुम्हारे जसे पुरुष का मग मुझे नहीं चाहिए। पतिया पुत्र की अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान वस्तु है।'[1] शकुन्तला की यह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भारतीय सभ्यता और सस्कृति की विशेषता है। वस्तुत व्यासजी न अपने पात्रों के मुख मे नीति का महान् से महान् उपदेश अत्यन्त उदात्त शली मे कहलवाया है। प्रत्येक पात्र जब कभी जीवन के किसी व्यावहारिक पक्ष के विषय म बोलता है, तब उसका स्पष्ट कथन लेखक के व्यक्तित्व की प्रतिछाया का आभास कराता है। सत्यता, सरलता, स्वाभिमान पाप पुण्य आदि विवादो पर लम्बे-लम्बे सवाद और भाषणो म कवि ने कथा के स्वरूप का निर्माण किया है। समग्रत 'महाभारत' की प्रतिपादन शली विभिन्न रूपा है और इस शलीगत विशेषता न भी परवर्ती काव्य पर पर्याप्त प्रभाव डाला है।

---

१ म० आदि० ७४।१०५ १०६

महाभारत-प्रभावित हिन्दी प्रबन्ध काव्य
एक सर्वेक्षण

परम्परा
परिचय

द्वितीय अध्याय

महाभारत-प्रभावित हिन्दी प्रबन्ध काव्य : एक सर्वेक्षण

प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का संक्षिप्त सर्वेक्षण स्पृहणीय है। सं० १९०० अर्थात् १८४३ ई० से आधुनिक काल की सीमा अभीष्ट है। इस काल में सांस्कृतिक पुनरुत्थान के कारण अनेक साहित्यिक आन्दोलन हुए और प्रत्येक आन्दोलन के प्रभावस्वरूप लिखे गये साहित्य में विशेष विचारधारा का प्रतिपादन, एवं आधुनिक और प्राचीन विचारों का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। भारतेन्दु युग में प्राचीन आख्यानों के प्रति मोह विद्यमान रहा। इस काल में पुनरुत्थानवादी विचारधारा के अन्तर्गत प्राचीन आख्यानों का पुनःस्थापन मात्र अपेक्षित रहा। द्विवेदी युग में प्राचीन उपाख्यानों की परम्परा तो अक्षुण्ण रही, किन्तु उनमें युगीन विचारधारा के प्रतिपादन के लिए चारित्रिक और कथात्मक परिवर्तन की प्रणाली का अभ्युदय हुआ।

परम्परा

इन प्रबन्ध काव्यों की परम्परा में दो प्रकार के काव्य हैं —

१ प्राचीन कथागत और विचारगत तत्वों को यथावत रूप में स्वीकार करने वाले तथा

२ प्राचीन कथा और विचार में बौद्धिक दृष्टिकोण का समावेश करने वाले काव्य।

भारतेन्दु और द्विवेदी युग में होने वाले राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव यद्यपि प्रमुख रूप से सामयिक काव्यों पर पड़ा है तथापि 'महाभारत' से सम्बन्धित प्रबन्धकाव्य भी उस प्रभाव के स्पर्श से पृथक न रह सके। कथा विकास के बीच युगीन आन्दोलनों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। 'महाभारत' का प्रभाव आधुनिक प्रबन्ध काव्यों पर परोक्ष और प्रत्यक्ष, दोनों रूपों में पड़ा है। इस अध्याय में प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित प्रबन्धकाव्यों का परिचय दिया जायगा। 'महाभारत' की कथा से प्रभावित काव्यों की परम्परा हमें आधुनिक काल की सीमा में १८७८ ई० से मिली है। इससे पूर्व भी काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में अनेक काव्यों का विवरण है किन्तु वे काव्य प्रकाशित नहीं, और हस्तलिखित प्रतियां भी खंडित हैं। इन पाण्डुप्रतियों का संक्षिप्त परिचय 'आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व की प्रभाव परम्परा' शीर्षक के अन्तर्गत तृतीय अध्याय में दिया जायगा। इन प्रतियों के लिपि काल आधुनिक काल की सीमा के अन्तर्गत आते हैं किन्तु रचना काल पूर्व सीमा में प्रमाणित होते हैं।

सन् १८७० से १९१५ तक की रचनाओं की प्रवृत्ति 'महाभारत' के कथानक के पुनर्लेखन की ओर अधिक रही है। यह समय ऐसा था कि प्रबन्ध रचना की

परम्परा और प्रेरणा तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना तो विद्यमान थी, किन्तु प्राचीन लोक विश्रुत कथानकों के आधार पर लिखे गये काव्यों में कथा और चरित्र की दृष्टि से नूतन उद्भावनाओं की सृष्टि का अभाव रहा। 'महाभारत' की मुख्य घटनाओं पर चरित्र प्रधान खण्डकाव्य लिखे गये, किन्तु उनमें कथा विकास और प्रति प्राकृत तत्वों की स्वीकृति यथावत है। इस काल के काव्यों में पुनर्जागरण के संदर्भ में युगीन विचारधारा के अनुकूल परिवर्तन नहीं किये गये। केवल प्राचीन कथाओं को काव्य में प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्देश्य रहा। १६१५ के उपरान्त गुप्तजी के अनुकरण में, बौद्धिक चेतना के विस्तृत प्रभाव के साथ इन प्रबन्ध काव्यों में चारित्रिक पुनरुत्थान और युगीन आदर्शवाद के कारण पौराणिक विचारधारा का आधुनिक चिन्तन क्षेत्र की परिधि में आलेखन किया गया। कुछ काव्यों में 'महाभारत' की कथात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर आधुनिक उन ज्वलन्त समस्याओं का विवेचन किया है जो हरयुग में मानव चेतना को त्रस्त करती हैं। महाभारतकार ने उनका समाधान जिस पौराणिक विश्वास के अन्तर्गत किया था, आधुनिक कवि उस विश्वास की बौद्धिक व्याख्या कर उसे आधुनिक वैज्ञानिक और अनेक राजनीतिक सामाजिक आन्दोलनों के आलोक में ग्रहण करता है। महाभारत से प्रभावित प्रबन्ध काव्यों की विवेचना की एक प्रमुख उपलब्धि यह है कि हम देख सकें कि आधुनिक कवि किन अर्थों में अतीत के प्रति जागरूक रहकर वर्तमान को अतीत की नींव पर सुदृढ़ बनाता है।

परिचय

अब प्रकाशन सन् के आधार पर प्रबन्ध-काव्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

जरासंध वध (गिरधरदास) १८७४ ई०

'जरासंध-वध' की कथा का प्रारम्भ कृष्ण के युद्ध विरत होने और जरासंध द्वारा अनेक राजाओं को बन्दी बनाने की सूचना से होता है। इस काव्य में जरासंध और यादवों के युद्ध का चित्रण[1] विस्तार से है और कौरवों को आसुरी शक्ति संयुक्त प्रदर्शित करने के लिए जरासंध का सहायक बना देना[2] कवि की मौलिक सूझ है।

'महाभारत' में जरासंध वध की घटना प्रासंगिक वस्तु है। अतः वहां जरासंध के कार्यों की सूचना देकर भीमार्जुन के मगध-गमन से कथा प्रारम्भ होती है। परन्तु 'जरासंध-वध' में कथा का विकास 'महाभारत' के आधार पर स्वतंत्र कथा-खण्ड के रूप में हुआ है। 'जरासंध-वध' के अभियान को महत्ता देता हुआ कवि जरासंध की सेना का

१ धाजुहि अयादवी धराकरौं विचारिके।
वीरभागधेस के सस आनन्द धारि के ॥ जरासंधवध, पृ० ६

२ कौरवेस आदि सब मागधेस के बने। जरासंधवध, पृ० ६

प्रयाण विस्तार के साथ दिखाता हुआ द्वारका के पश्चिम द्वार पर भयंकर युद्ध का वर्णन करता है।[1]

काव्य का द्वितीय भाग अनुपलब्ध है अतः जरासंध वध की रूप रेखा अस्पष्ट है।

कृष्णसागर (जगन्नाथ सहाय) १८७५ ई०

'कृष्णसागर' में भगवान् कृष्ण के जीवन की कथा विभिन्न छंदों में वर्णित है। उनके जीवन के साथ पाण्डवों का अभिन्न सम्बन्ध है। अतः कथा का उत्तरार्ध 'महाभारत' से प्रभावित है। कवि कृष्ण के जीवन पर आधारित अन्य काव्यों की भांति ही ब्रज, द्वारका और हस्तिनापुर के कथानक में सद्युक्त सम्बन्ध करता है, किन्तु जिस स्थल में उसने 'महाभारत' के कथानक को ग्रहण किया है वहां से कथानक का उचित निर्वाह हुआ है।

कृष्ण-काव्यों में प्रथा है कि उद्धव या अक्रूर पाण्डवों के पास जाकर वहां युधिष्ठिर, विदुर या कुन्ती को सारी कथा सुनाते हैं। इस तरह द्वारका के साथ पाण्डवों का प्रसंग जुड़ जाता है। 'कृष्णसागर' में भी यही परम्परा अपनाई गई है। पाण्डवों की कथा का प्रारम्भ कुन्ती के निवेदन से होता है।

एक बार लैई भीम को दीन्हेंसि गरल खिवाय।
अपर लाखके कोट रचि पावक दिया लगाय॥[2]

कथा का प्रारम्भिक भाग इसी सूचनात्मक शैली में लिखा गया है। इसके पश्चात् कथा में 'महाभारत' के पात्र तो आ जाते हैं पर घटना-स्थल द्वारका ही रहता है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर अवश्य हस्तिनापुर घटना-स्थल बनता है।[3]

कृष्ण के ईश्वरत्व[4] में 'महाभारत' का प्रभाव पूर्णरूप से पड़ा है क्योंकि श्रीकृष्ण की स्तुति, ईश्वर के रूप में की गई है।

देवयानी (जगन्मोहन सिंह) १८८६ ई०

प्रस्तुत काव्य 'महाभारत' के एक उपाख्यान पर आधारित है। यह आदिपर्व के ७५वें अध्याय से ८५वें अध्याय तक की कथा है। गुरु शिष्य के गौरवपूर्ण सम्बन्ध आत्म-त्याग के आजस्वी और काम-पूर्ति के व्यापक रूप का चित्रण इस काव्य में

---

१ जरासंध-वध, पृ० ४०
२ कृष्णसागर, पृ० १३४
३ कृष्णसागर, पृ० २१४
४ अन्य धर्म कामादिक जोऊ। निर्गुण रूप रहत नय सोऊ।
रहन चहत जब यह संसारा। धारत रूप सगुन अवतारा॥ कृष्णसागर, पृ० २३६

परम्परा और प्रेरणा तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना तो विद्यमान थी, किन्तु प्राचीन लोक विश्रुत कथाओं के आधार पर लिखे गये काव्यों में कथा और चरित्र की दृष्टि से नूतन उद्भावनाओं की सृष्टि का अभाव रहा। 'महाभारत' की मुख्य घटनाओं पर चरित्र प्रधान खण्डकाव्य लिखे गये, किन्तु उनमें कथा विकास और अति प्राकृत तत्वों की स्वीकृति यथावत है। इस काल के काव्यों में पुनर्जागरण के सन्दर्भ में युगीन विचारधारा के अनुकूल परिवर्तन नहीं किये गये केवल प्राचीन कथाओं को काव्य में प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्देश्य रहा। १६१५ के उपरान्त गुप्तजी के अनुकरण में, बौद्धिक चेतना के विस्तृत प्रभाव के साथ इन प्रबन्ध काव्यों में चारित्रिक पुनरुत्थान और युगीन आदर्शवाद के कारण पौराणिक विचारधारा का आधुनिक चिन्तन क्षेत्र की परिधि में आलेखन किया गया। कुछ काव्यों में 'महाभारत' की कथात्मक पृष्ठभूमि के आधार पर आधुनिक उन ज्वलन्त समस्याओं का विवेचन किया है जो हरयुग में मानव चेतना को ग्रस्त करती है। महाभारतकार ने उनका समाधान जिस पौराणिक विश्वास के अन्तर्गत किया था, आधुनिक कवि उस विश्वास की बौद्धिक व्याख्या कर, उसे आधुनिक वैज्ञानिक और अनेक राजनीतिक सामाजिक आन्दोलनों के आलोक में ग्रहण करता है। महाभारत से प्रभावित प्रबन्ध काव्यों की विवेचना की एक प्रमुख उपलब्धि यह है कि हम देख सकें कि आधुनिक कवि किन अर्थों में अतीत के प्रति जागरूक रहकर वर्तमान की अतीत की नींव पर सुदृढ़ बनाता है।

परिचय

अब प्रकाशन सन् के आधार पर प्रबन्ध-काव्यों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

जरासंध-वध (गिरधरदास) १८७४ ई०

'जरासंध-वध' की कथा का प्रारम्भ कृष्ण के युद्ध विरत होने और जरासंध द्वारा अनेक राजाओं को बन्दी बनाने की सूचना से होता है। इस काव्य में जरासंध और यादवों के युद्ध का चित्रण[1] विस्तार से है और कौरवों को आसुरी वृत्ति संयुक्त प्रदर्शित करने के लिए जरासंध का सहायक बना देना[2] कवि की मौलिक सूझ है।

'महाभारत' में जरासंध वध की घटना प्रासंगिक वृत्त है। अतः वहां जरासंध के कार्यों की सूचना देकर भीमार्जुन के मगध गमन से कथा प्रारम्भ होती है। परन्तु 'जरासंध-वध' में कथा का विकास 'महाभारत' के आधार पर स्वतन्त्र कथा-खण्ड के रूप में हुआ है। 'जरासंध-वध' के अभियान की महत्ता देता हुआ कवि जरासंध की सेना का

---

१ आजुहिं अयादवी धरा करौं विचारिके।
  वीरभागपत्त के लस आनन्द धारि कै॥ जरासंधवध, पृ० ६
२ कौरवस आदि सब मागधेस के बने। जरासंधवध, पृ० ६

प्रयाण विस्तार के साथ दिखाता हुआ द्वारका के पश्चिम द्वार पर भयकर युद्ध का वणन करता है।[1]

काव्य का द्वितीय भाग अनुपलब्ध है अत जरासध वध की रूप रेखा अस्पष्ट है।

कृष्णसागर (जगन्नाथ सहाय) १८७५ ई०

'कृष्णसागर म भगवान् कृष्ण के जीवन की कथा विभिन्न छन्दो म वर्णित है। उनके जीवन म साथ पाण्डवो का अभिन्न सम्बन्ध है। अत कथा का उत्तराध 'महाभारत से प्रभावित है। कवि कृष्ण के जीवन पर आधारित अन्य काव्यो की भाति ही व्रज, द्वारका और हस्तिनापुर के कथानक म सहेतुक सम्बन्ध करता है, किन्तु जिस स्थल से उसने 'महाभारत' के कथानक को ग्रहण किया है वहा स कथानक का उचित निर्वाह हुआ है।

कृष्ण-काव्यो म प्रथा है कि उद्धव या अक्रूर पाण्डवो के पास जाकर वहा युधिष्ठिर विदुर या कुन्ती को सारी कथा सुनाते हैं। इस तरह द्वारका क साथ पाण्डवो का प्रसग जुड जाता है। कृष्णसागर' म भी यही परम्परा अपनाई गई है। पाण्डवो की कथा का प्रारम्भ कुन्ती के निवेदन स होता है।

एक बार तेई भीम को दीन्हेंसि गरल खिलाय।
अपर लाखके कोट रचि पावक दियो लगाय॥[2]

कथा का प्रारम्भिक भाग इसी सूचनात्मक शैली मे लिखा गया है। इसक पश्चात् कथा म महाभारत' के पात्र तो आ जाते हैं पर घटना-स्थल द्वारका ही रहता है। राजसूय यज्ञ के अवसर पर अवश्य हस्तिनापुर घटना-स्थल बनता है।[3]

कृष्ण के ईश्वरत्व' म महाभारत' का प्रभाव पूणरूप से पडा है क्योंकि श्रीकृष्ण की स्तुति, ईश्वर के रूप म की गई है।

देवयानी (जगन्मोहन सिह) १८८६ ई०

प्रस्तुत काव्य 'महाभारत के एक उपाख्यान पर आधारित है। [illegible] के ७५वें अध्याय मे ८५वें अध्याय तक की कथा है। गुरु-शिष्य [illegible] [illegible] आत्म-त्याग क ओजस्वी और काम-पूर्ति क व्यापक [illegible]

१ जरासध वध, पृ० ४०

२ कृष्णसागर, पृ० १३४

३ कृष्णसागर पृ० २१४

४ अथ धम कामादिक जाऊ। निगु[illegible]
रहन चहत जब यह समाग। [illegible] । [illegible]
पृ० २३६

हुआ है। गुरु-पुत्री के प्रणय प्रस्ताव का विरोध कच ने जिस आदर्श से प्रेरित होकर किया वही आदर्श काव्य का प्रतिपाद्य है।

'देवयानी' काव्य की कथा का विकास 'महाभारत' के अनुरूप ही हुआ है। कच का शुक्राचार्य के पास जाकर संजीवनी विद्या और देवासुर-संग्राम का वर्णन 'महाभारत' के अनुसार है।

> ब्राह्मणा तावुभौ नित्यं मन्यायं स्पर्धिनौ भृशम्।
> तत्र देवा निजघ्नुर्यान् दानवान् युधि संगतान्॥
> तान् पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात्।
> ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाञ्चक्रिरे सुरान्॥[1]

'देवयानी' में इस प्रसंग को यथावत् चित्रित किया गया है। कवि 'महाभारत' की चित्रण शक्ति का क्षणिक स्पर्श करने में समर्थ हुआ है।

> ते दोउ निजजनित करहिं समर आपुस महँ जानौं।
> दानव आपुनी बल विद्या सों तुरत जियावें॥
> ते पुनि उठि दिति देव संग समरतर ठावें।[2]

इससे ज्ञात होता है कि कवि ने कथा का स्वतन्त्र विकास नहीं किया है। निम्नलिखित प्रसंग समान रूप से चित्रित हुए हैं —

देवताओं की प्रार्थना स्वीकार कर कच का गुरु के पास गमन[3] नृत्यकला से देवयानी का मनोरंजन[4], राक्षसों द्वारा कच का वध और देवयानी की प्रार्थना पर पुनर्जीवन।[5]

कवि ने इन समस्त प्रसंगों का चित्रण यथावत् किया है। कच के अनेक बार मरने और पुनर्जीवन के प्रसंग में देवयानी के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। संजीवनी प्राप्त करने के उपरान्त जाते समय देवयानी कच को शाप दे देती है और कच निरपराध कर प्रतिरोध में शाप देकर अपने धाम चला जाता है। प्रस्तुत काव्य में कवि महाभारत के जीवन दर्शन को ग्रहण करने में असमर्थ रहा है। भोगवादी वृत्ति निवारण के हेतु यदि कवि अपने युग की विचारधारा को वाणी देता तो काव्य की साहित्य परिणति होती। इसके अभाव में यह काव्य केवल कथावर्णन मात्र रह गया है। कथा विकास में देवयानी, शर्मिष्ठा, ययाति प्रभृति चरित्रों का आख्यान पौराणिक है अतः यह काव्य प्रभाव-परम्परा की शृंखला के रूप में ही गिना जाना चाहिए।

---

१ म० आदि० ७६।७-८
२ देवयानी पृ० १८
३ देवयानी पृ० १९
४ देवयानी, पृ० २०
५ देवयानी, पृ० २१

महाभारत दर्पण (गोकुलनाथ) १८६१ ई०

इस ग्रन्थ में कवि ने 'महाभारत' का सारांश, भाषा में पद्यबद्ध किया है। उस समय संस्कृत के 'महाभारत' को जनता के पढ़ने के लिए हिन्दी में लिखने की परम्परा थी। यह काव्य उसी का परिणाम है। छायानुवाद होने के कारण यह हमारे विवेचन-क्षेत्र से बाहर है।

जैमिनी पुराण (सूर्यबली सिंह) १८६१ ई०

इस काव्य में युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ की कथा वर्णित है। व्यासजी युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ का परामर्श देते हैं, और श्रीकृष्ण के आ जाने पर यज्ञ प्रारम्भ होता है। महाभारत की कथा का अत्यन्त संक्षिप्त करते हुए कवि ने अन्य पौराणिक स्रोतों से इन प्रसंगों का ग्रहण किया है—भीम द्वारा द्वारका में अश्वमेध की व्यवस्था[1] कृष्ण और अनुशाल्व का युद्ध[2] नील ध्वज-युद्ध और गंगा-शाप[3] प्रस्तर में अश्व परिवर्तन चण्डी-शाप मोचन[4], कृष्णार्जुन की रत्नपुर यात्रा[5], मोरध्वज-भक्ति की परीक्षा और चन्द्रहास।[6] 'महाभारतीय' कथा का स्वरूप यथासम्भव नवीन है। अनेक गौण प्रसंगों का विस्तृत कर दिया गया है। कथा विकास में कवि के मौलिक योगदान का अभाव है और यात्रा का स्वरूप भी मूल ग्रन्थ के अनुरूप है। अतिप्राकृत तत्वों को भी उनके मूल रूप में स्वीकार किया गया है।[7] मोरध्वज के प्रसंग में कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन भी हुआ है।[8]

धनंजय विजय (ललिता प्रसाद) १८६२ ई०

'महाभारत' विराटपर्वान्तर्गत गोहरण प्रसंग से इस काव्य की रचना हुई है। कथा विकास मूलग्रन्थ के अनुरूप है किन्तु यत्र-तत्र सामान्य परिवर्तन भी अवश्य हुए हैं। इन परिवर्तनों में कवि प्रतिभा की मौलिकता के दर्शन नहीं होते। 'महाभारत' में अर्जुन की सम्मति से सैरंध्री उत्तर से अर्जुन को सारथी बनाने के लिए कहती

---

१ जैमिनी पुराण, पृ० ४१
२ जैमिनी पुराण पृ० ६४
३ जैमिनी पुराण, पृ० ७६
४ जैमिनी पुराण, पृ० ८०
५ जैमिनी पुराण पृ० १४५
६ जैमिनी पुराण, पृ० १६३
७ जैमिनी पुराण पृ० ११ १३
८ माता पिता बंधु गुरु देवा। तुम तजि आन न जानहु सेवा॥
तुम दयाल तुम पतित न्ह तारा। अघसरूपमय पिता हमारा॥ जैमिनी पुराण पृ० ६५
९ म०, विराट०, ३४।१३

है किन्तु 'धनजय विजय' म अर्जुन की सम्मति को चर्चा नही है।[1] सक्षेप म इस काव्य म परिस्थिति-जन्य क्षोभ की अभिव्यजना तो हुई है किन्तु चारित्रिक विकास नही हुआ।

नैषध काव्य (गुमान मिश्र) १८६५ ई०

'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित तईस सर्गों के इस प्रबन्ध-काव्य मे नायक नायिका के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा को ही ग्रहण किया गया है। यह काव्य अत्यन्त सामान्य कोटि का है। कथाविकास मूल ग्रन्थ के अनुरूप ही हुआ है, पर कवि ने नगर उद्यान, विरह आदि के वणन म कल्पना के योग से यत्र-तत्र विस्तार किया है। काव्य शैली की एक विशेषता यह है कि प्रारम्भिक दोहो मे समस्त सर्गों का कथासार सूचित कर दिया गया है।[2] कुण्डिनपुर, नलनिल तथा स्वयवर सभा म राजाओ क वणन म कवि की मौलिकता अवश्य दिखाई देती है।

अश्वविजय मुक्तावली (छत्र कवि) १८६६ ई०

यह काव्य पौराणिक शैली मे महाभारतीय कथानक क आधार पर लिखा गया है। कवि न तैतालीस दीपको म महाभारत' क शान्ति-पर्व तक की कथा का सक्षेप किया है। कथा विकास की दृष्टि से इस काव्य की कोई देन नही क्योकि सम्पूण कथानक को लघु आकार म समाविष्ट करने के लोभ स पौराणिक प्राचीन परिपाटी पर ही हुआ है। कवि ने महाभारत-कालीन भोगवादी प्रवृत्ति[3] का उद्घाटन किया है। किन्तु वह उसके मूल का व्यवस्थित रूप म व्यक्त न कर सका इस कारण उस काल क प्रधान पात्र सामान्य कामुक की सीमा म व्यक्त हुए है।[4]

आल्हा महाभारत भीष्म पर्व (गगा सहाय गौड) १८६८ ई०

इस ग्रन्थ का विषय भीष्मपर्व है। आल्हा छन्द म लिखा यह काव्य कथा नुवाद मात्र है। कवि न लोक जीवन म व्याप्त 'महाभारत की विस्तृत कथा को सक्षेप म गाथा और घटनाओ का ग्रहण करन और छोडन मे पूण स्वतत्रता का उपयोग

---

१ धनजय विजय पृ० ४

२ प्रथमसर्ग मे वर्णियो नरपति नल अवतार।
सकल सुमति जन यह कथा, सुनियो चित्त सभार॥ नैषध काव्य, पृ० १

३ निरखि निरखि आसक्त है, कही बात मुनिराय।
मोहितोहि मगलोचनो सुरतिहोव सुखपाय॥
दे रति क लेहिपाप अवतिय नाहि रह्यो कछु धीरज मोहिय।
आतुर ह्व ऋषिराज दईरति, ताहि प्रसन्न भयो सुमहामति॥
—अश्वविजय मुक्तावली, पृ० ५

४ अश्वविजय मुक्तावली पृ० ८

किया है। इस काव्य का महत्व इसी मे है कि जनता के समक्ष 'महाभारत' के प्रमुख पात्र अपने मौलिक आदर्शों के साथ व्यक्त होते हैं। 'महाभारत' के वीरोचित वातावरण के निर्माण मे कवि पूर्णरूपेण असफल रहा है। कवि का कोई ऐसा सामाजिक, जातीय, राष्ट्रीय या सांस्कृतिक उद्देश्य नहीं जिसके आधार पर कथाविकास और चरित्र चित्रण हो। भीष्म और अर्जुन के शौर्य की अभिव्यजना ही प्रमुख उपलब्धि है। इस रचना का महत्व केवल ऐतिहासिक है।

कृष्णायण (विसाहूराम) १९०३ ई०

कृष्ण चरित्र पर आधारित यह रचना 'भागवत और महाभारत' से प्रभावित है। प्रारम्भिक काण्डों का कथानक भागवत से लिया गया है, और पाण्डवकाण्ड मे कुरुवंश की कथा है। कृष्ण-काव्यों की सामान्य परम्परा के अनुसार मथुरा की कथा को हस्तिनापुर में जोड़कर कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन किया है। महाभारतीय कथा सूचनात्मक शैली मे विन्यस्त करके, पात्रों का यथार्थ आलम्बन हुआ है। कवि का दृष्टिकोण भक्तिपरक है अतः पाडवों की कथा प्रसगवश ही आई है मुख्य रूप से कथा का सम्बन्ध ब्रजवासियों से है।

सग्रामसार (कुलपति मिश्र) १९०५ ई०

यह ग्रन्थ महाभारत के द्रोणपर्व का सक्षिप्त संस्करण है। इसकी रचना हानीपुरा मेरठ के निवासी चौबे रामेलाल जी की प्रेरणा से हुई थी। प्राचीन काव्य-परम्परा के अनुसार राजप्रशसा[1] कवि प्रशसा[2] ग्रन्थ प्रशसा,[3] के उपरान्त कथा का प्रारम्भ होता है। महाभारत की कथा का सम्पूर्ण अनुवाद न कर मुख्य पात्रों के मुख से मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है। सम्पूर्ण काव्य मे शैली वर्णनात्मक है, और कहीं-कहीं सूचनात्मक[4] भी। द्रोणपर्व की कथा का वर्णन विस्तार से है। शेष पूर्ववर्ती और परवर्ती कथानक सक्षेप मे कह गये हैं। सम्पूर्ण काव्य मे अभिमन्यु-वध के प्रसग मे मार्मिकता आ पाई है। यह ग्रन्थ प्राचीन पात्रों, सस्कृति और जीवनादर्श के प्रति श्रद्धाजलि रूप मे रचा गया है।

वीर विनोद (श्री पदमसिंह) १९०७ ई०

यह महाभारत के वन पर्व के अनुसार रचित प्रबन्ध काव्य है। इसके वास्तविक रचयिता श्री स्वामी गणेशपुरी है किन्तु उन्होने ग्रन्थ का प्रकाशन अपने पूर्वाश्रम के पिता श्री पदमसिंह जी के नाम से किया।[5]

---

१ सग्रामसार पृ० ३

२ सग्रामसार पृ० ३

३ सग्रामसार, पृ० ४

४ सग्रामसार, पृ० ५

५ वीर विनोद पदमसिंह भूमिका पृ० ३

इस ग्रन्थ रचना के समय 'महाभारत' की कथा को लेकर स्वतन्त्र कथा विकास करने की प्रवृत्ति आविर्भूत हो चुकी थी। 'महाभारत' की प्रभाव-परम्परा में भी यह बात स्पष्ट है कि मूल कथा 'महाभारत' से ग्रहण कर रचयिता उसका इस प्रकार स्वतन्त्र आलेखन करता था कि मूल से तात्विक भेद भी न होने पाये और वह अपनी विचारधारा को भी अभिव्यक्त कर दे। 'वीर विनोद' में कथा चयन और विकास पूर्णतः महाभारत की शैली पर हुआ है। केवल मध्य में यथा स्थान कवि ने अपनी बात कहने की प्रवृत्ति अपनाई है। 'महाभारत' में संजय पहले धृतराष्ट्र को प्रधान सेनापति के मरने की सूचना देकर फिर सम्पूर्ण पर्व की कथा कहते हैं, उसी प्रणाली का 'वीर विनोद' में भी स्वीकार किया गया है।

ग्रन्थ रचना की प्रेरणा कर्ण का उत्कर्ष, साहसी निश्छल और दानी जीवन है। भूमिका में इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है कि 'महाभारत के महान् योद्धाओं के मध्य अटल स्वामिभक्ति मैत्री, अनुपम पराक्रमी वीरता आमरण स्पष्ट एवं निश्छल व्यवहार परम उदारता आदि गुण सर्वाधिक रूप से कर्ण में विद्यमान हैं।'[1] ऐसे चरित्र का पुनर्गान समाज एवं व्यक्ति की सांस्कृतिक निष्ठा के पुनः स्थापन के लिए आवश्यक है। और यह उस समय और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब कि विदेशी शासक प्राचीन साहित्य के विषय में भ्रम फैलाते हों। सारांश यह है कि 'वीर विनोद' में कर्ण के प्रमुख गुणों का उद्घाटन किया गया है। यदि कवि स्वतन्त्र दृष्टि से किसी विचारधारा की प्रेरणा से रचना करता तो यह काव्य अधिक प्रभावशाली हो सकता था।

जयद्रथ-वध (मैथिलीशरण गुप्त) १९१० ई०

प्रस्तुत काव्य महाभारतीय कथानक पर आधृत है। द्रोणपर्व के अन्तर्गत अध्याय पचासी से एकसौ उनचालीस तक यह कथा वर्णित है। वर्तमान युग में महाभारतीय प्रसंगों पर खण्ड-काव्य रचना की प्रवृत्ति का विकास उक्त रचना से हुआ है। इसने परवर्ती अनेक काव्यकारों को प्रेरणा दी।

'जयद्रथ-वध' में महाभारतीय कथा का विकास सात सर्गों में किया है। प्रथम सर्ग में अभिमन्यु-वध का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में पाण्डवों के शोक की विस्तृत अभिव्यंजना है। तृतीय सर्ग में कृष्ण द्वारा अर्जुन तथा पाण्डवों की सान्त्वना चित्रित है। चतुर्थ सर्ग में पाशुपतास्त्र प्राप्ति का उल्लेख है। पंचम सर्ग में कौरव-पाण्डवों के भयंकर युद्ध का चित्रण है। छठे सर्ग में जयद्रथ-वध की घटना निरूपित की गयी है। सप्तम सर्ग में कथा का उपसंहार है जिसमें विजयी पाण्डवों का शिविर की ओर आगमन चित्रित किया गया है।

---

१ वीर विनोद भूमिका पृ० २

इस खण्ड काव्य म कवि ने पूर्व आख्यान का यथावत् स्वीकार किया है। कृष्ण परब्रह्म के अवतार हैं और पाण्डव दिव्यशक्ति-सम्पन्न व्यक्ति। कवि न प्राचीन कथा का वर्णनात्मक शैली मे रुचि-सम्पन्नता के साथ प्रस्तुत किया है किन्तु कवि अतिप्राकृत तत्वों का युगीन बुद्धिवादी समाधान प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहा है, और उनको ही विश्वसनीय मानकर चला है। डा० श्रीकृष्णलाल न इसके ऐतिहासिक महत्व का इस प्रकार व्यक्त किया है—"'जयद्रथवध' म मथिलीशरण गुप्त न परम्परागत प्रचलित कथा रूप म अपनी मौलिक प्रतिभा का सम्मिश्रण कर एक अपूर्व काव्य की रचना की है।"[1]

शकुन्तला (मथिलीशरण गुप्त) १६१४ ई०

'शकुन्तला' काव्य की रचना 'महाभारत' के शकुन्तलोपाख्यान' स प्रभावित है। यह कथा महाभारत' क आदिपर्व म अध्याय ६८ स ७४ तक वर्णित है। दुष्यन्त-शकुन्तला वृत्त के आधार पर महाकवि कालिदास न 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' की रचना की। मूल वृत्त 'महाभारत' का होते हुए भी अनक उल्लेखनीय परिवतनों के कारण कथासूत्र का विकास मौलिकता लिय हुए है। यह काव्य महाभारतीय कथा से प्रभावित होते हुए 'अभिज्ञान शाकुन्तल' के कथासूत्र को लेकर विकसित हुआ है। उपक्रम के अध्ययन स ज्ञात होता है कि कवि न कथासूत्र 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' से ग्रहण किया है। महाभारत का शकुन्तलोपाख्यान भी उस समय उनके मस्तिष्क-पटल पर विद्यमान था।

कवि ने दुष्यन्त शकुन्तला की कथा का अनेक शीर्षकों म विभाजित किया है। 'जन्म और बाल्यकाल' म शकुन्तला क जन्म का वृत्त है—कवि ने महाभारत' क श्लोक का छायानुवाद कर दिया है —

> कृतकार्या ततस्तूणमगच्छच्छक्रसदनम्।
> त वने विजन गभ सिंहव्याघ्रसमाकुले॥
> दृष्ट्वा शयान शकुना समन्तात पर्यवारयन।
> नमां हिंस्युर्वनवाला क्रव्यादा मासगृद्धिन॥[2]

कवि 'महाभारत' म वर्णित वन की भयकरता का प्रकाशन नहीं करता किन्तु उसी रूप म जन्म की स्थिति का चित्रण अवश्य करता है —

> किन्तु साथ ले गई तपोधन—मात्र मनका मोदमयी।
> हाय! हाय! उस कुसुम कली को वहा विपिन म छोड गई॥
> जिस पर निज पक्षों की छाया रक्खी शकुन्त द्विजवर न— ।
> मृदुकापलसी वह मृदु कन्या देखी कण्व मुनीश्वर न— ॥[3]

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० १०२ १०३
२ म० आदि० ७२।११ १२
३ शकुन्तला पृ० ६

'दर्शन' में शकुन्तला भेंट और पूर्वराग तथा 'पत्र' में दर्शन की पृष्ठभूमि साथ पत्र लेखन का वर्णन है। 'अवधि' में संयोग की स्थिति तथा अभिशाप में दु का शाप वर्णित है। दुर्वासा के शाप की कल्पना भी कवि ने 'अभिज्ञान शाकुन्त' से ग्रहण की है। 'विदा' में बेटी की विदा और 'त्याग' में पत्नी के परित्याग चित्रण है। 'स्मृति' में दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति और 'कर्तव्य' में इन्द्र सहायता का प्रसंग भी 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से गृहीत है। 'मिलन' में लौटत दुष्यन्त और शकुन्तला का मिलन है।

शकुन्तला में प्रेम की मानसिक उच्चता, आदर्श पत्नी का त्याग, नारी का उत्कर्ष अभिव्यंजित है।

द्रौपदी-चीर हरण (लोकेश्वर त्रिपाठी) १६१४ ई०

त्रिपाठीजी ने द्रौपदी चीर-हरण प्रसंग पर आल्हा शैली में एक लघु-क की रचना की। प्राचीन परम्परा के अनुसार काव्य का प्रारम्भ ईश्वरस्तुति कवि परिचय से होता है। दुर्योधन के पक्ष को अत्याचार का पक्ष सिद्ध करके पाण्ड के साथ सम्पूर्ण सहानुभूति और आदर का प्रकाशन किया गया है। 'महाभारत' द्रौपदी के उपहास का प्रसंग नहीं है किन्तु इस काव्य में द्रौपदी के उपहास प्रधानता दी है।[1] द्रौपदी और भवानी का वार्ता प्रसंग कवि की मौलिक सूझ है काव्य का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है।

अभिमन्यु का आत्म-बलिदान (कमला प्रसाद वर्मा) १६१८ ई०

प्रस्तुत काव्य का आधार 'महाभारत' की लोक विश्रुत अभिमन्यु की कथा है। कवि ने अभिमन्यु को वीर युवक के अदम्य साहस और कर्तव्य पालन के प्रतीक रूप में चित्रित किया है। कवि की मूल प्रेरणा कर्तव्य पालन है।[2] गुप्त नियम और मनुष्य महाभारत का प्रारम्भ रणभेरी में भीष्म पितामह चक्रव्यूह और अभिमन्यु का रण प्रस्थान चक्रव्यूह संग्राम आदि शीर्षकों में सम्पूर्ण काव्य विभाजित है। उत्तरा विलाप की योजना कवि की मौलिकता है।

---

१ द्रौपदी चीर हरण, पृ० २

२ म० सभा० ४७।६ १५ द्रौपदी चीर हरण पृ० २

३ यह वीर करुणारस भरी अभिमन्यु विरदावलिरम्या।
है शाक से यद्यपि सनी, दूरीकरण की देगी व्यथा॥
पर आत्म गौरव मान का बस एक यही दृष्टान्त है।
उदियान मन को कर्म पथ पर कर दिखाता शान्त है।
—अभिमन्यु का बलिदान, निवेदन पृ० १

कीचक-वध (शिवदास गुप्त) १९२१ ई०

'महाभारत' के विराटपर्व से सर ध्री और कीचक के प्रसग पर इस काव्य की रचना हुई है। यह काव्य 'जयद्रथ-वध' के अनुकरण पर लिखा गया है। कीचक कामुक्ता का प्रतीक है अत दडनीय है। इस काव्य के माध्यम से स्त्री का पतिव्रत-धर्म, भीम का क्षोभ और कामुक व्यक्ति की दुर्गति की अभिव्यक्ति हुई है। काव्य साधारण कोटि का है और चरित्र विकास भी स्वतन्त्र रूप से नही हुआ है। कथा मे कोई उपलब्धिपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहा होता।

सगीत महाभारत (नत्थाराम शर्मा गौड) १९२४ ई०

इस काव्य मे 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा को लोक शैली मे गाया गया है। यह ग्रन्थ इस बात का प्रमाण है कि लोक-जीवन मे 'महाभारत' की कथा को गाना कितना अधिक प्रचलित है। जिस प्रकार राम के जीवन पर आधारित राधेश्याम कथावाचक की 'रामायण' का प्रचार हुआ, उसी प्रकार अलीगढ और उसके समीपवर्ती क्षेत्रो मे *सगीत महाभारत'* का प्रचार पाया जाता है। कवि ने *'आल्हा'* छन्द और गीत शैली का प्रयाग किया है। सम्भवत लोक जीवन से श्रुत कथानक का ही काव्य का आधार बनाया गया है, 'महाभारत' की विधिवत कथा ज्ञान का कोई प्रभाव ग्रन्थ पर उपलब्ध नही है।

अभिमन्यु-वध (रघुनन्दन लाल मिश्र) १९२५ ई०

मिश्रजी की यह रचना अभिमन्यु के वध की कथा के आधार पर हुई है। सामान्यत कथा का विकास मूल ग्रन्थ के आधार पर हुआ है, किन्तु अपन युग से प्रभावित होकर यत्र-तत्र कुछ सोद्देश्य परिवर्तन भी किए गय है। व्यूह भेदन का निमन्त्रण देत समय दुर्योधन के दु साहस की सुन्दर व्यजना हुई है।

या वेधें मम रचित व्यूह या जयतिपत्र लिखदें आकर[1]।

इस काव्य म भी उत्तरा के विदा प्रसग का स्थान दिया गया है। उत्तरा का विलाप अधिक करुण और हृदय-स्पर्शी बन पडा है। काव्य की समाप्ति अभिमन्यु क दाह-सस्कार के साथ होती है।

दुर्योधन वध (जगदीश नारायण तिवारी) १९२६ ई०

दुर्योधन-वध की प्रमुख घटना स इस काव्य की रचना हुई है। कवि पृष्ठ-भूमि क रूप म पूर्ववर्ती-कथा का वणन करता हुआ मुख्य घटना का विस्तार स प्रस्तुत करता है। इस काव्य का प्रेरणा जातीय सघर्ष है। दुर्योधन अपने अहकार के कारण पाण्डवा का अधिकार नहा दना यहा स्वार्थपरता समस्त सघर्षो का मूल है। कवि का दृष्टि म व्यक्तिगत स्वार्थ ही सामाजिक एव जातीय सघर्ष म मुख्य कारण हाना

---

१ अभिमन्यु-वध, पृ० ४

है। कवि प्राचीन युद्ध के प्रसंग से वर्तमान युग में व्यक्तिगत स्वार्थ और शोषण के शमन की कामना करता है। सत्य की रक्षा के हेतु असत्य का उद्घाटन अनिवार्य होता है यही भावना काव्य में व्याप्त है। प्रबंध काव्य की दृष्टि से यह अत्यंत अपरिपक्व विचारधारा और कथा शैथिल्य की रचना है। यहां तक कि महाभारतीय चरित्रों का गौरव भी अक्षुण्ण नहीं रह सका।

'सैरंध्री'(मैथिली शरण गुप्त) १९२७ ई०

'सैरंध्री' का कथानक 'महाभारत' के विराटपर्व में लिया गया है। पाण्डव द्यूत में निश्चित नियमानुसार राजा विराट के यहां अज्ञातवास का समय व्यतीत करते हैं। वहां सैरंध्री छद्म नामधारिणी द्रौपदी रानी की सेविका का कार्य करती है। रानी का भाई कीचक सैरंध्री पर मुग्ध हो जाता है। यह जानते हुए भी कि यह 'पंचगंधर्वों की पत्नी' है वह कामासक्ति के मार्ग से पीछे नहीं हटता। सैरंध्री द्वारा रानी के समक्ष विनती करने पर रानी भी कीचक का पक्ष लेती है। अतः भीम सैरंध्री के रूप में एक दिन रात का कीचक को बुलाकर मार देते हैं।

यह काव्य वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है और कथाकथन मात्र कवि का उद्देश्य रहा है। काम की अधिकता का अव्यावहारिक और हानिकारक बताता हुआ कवि कीचक वध का चित्रण करता है। किंतु परपत्नी रत दोष को सैद्धांतिक विवेचन से जितना प्रस्तुत किया जा सकता था—कवि वह न कर सका। किंतु तद्विषयक सिद्धांत-वाक्यों और सूक्तियों की प्रचुरता अवश्य है। कवि अनेक स्थलों पर स्थूल उपदेशात्मक प्रवृत्ति से भी नहीं बच पाया है। उसने महाभारतीय कथानक में सामान्य किंतु रोचक और सोद्देश्य परिवर्तन करते हुए सतीत्व की रक्षा, और धर्म निष्ठा का उत्कर्ष दिखाकर पाप-वृत्ति का विनाश निरूपित किया है। पराधीन और स्वार्थ परायण व्यक्ति जानते हुए भी विवशतावश दुष्प्रवृत्ति का सहयोगी होकर पाप-प्रवृत्त होता है—इस बात का निरूपण सुदेष्णा की स्थिति से होता है। अन्ततः कवि ने सत्य की विजय और असत्य की पराजय से उच्चधर्म की प्रतिष्ठा की है।

बक-संहार (मैथिली शरण गुप्त) १९२७ ई०

'बक-संहार' का प्रतिपाद्य 'महाभारत' की कथा है। मूल ग्रन्थ में यह कथा आदिपर्व के अध्याय एकसौ छप्पन से एकसौ तरेसठ अध्याय तक वर्णित है। लाक्षा गृह से बचकर पाण्डव एक ब्राह्मण के यहां निवास करते हैं। अतिथेय की रक्षा के हेतु भीम को बक राक्षस का संहार करना पड़ता है। महाभारत की कथा में कवि ने आदर्शवाद और विचारों की भिन्नता के कारण कतिपय परिवर्तन किए हैं। सभी परिवर्तन चरित्र-सृष्टि में सहायक हैं और कथा को नवीनता प्रदान करते हैं।

मुख्य घटना के आधार पर कवि ने कृति का नामकरण किया है किंतु कवि का प्रतिपाद्य अतिथि एवं आतिथेय धर्म का प्रतिपादन है। कवि वीरत्व का आदर्श

प्रस्तुत करने म उतना प्रवत्त नहीं हुआ जितना कुन्ती के दानशील चरित्र के आख्यान म। प्रस्तुत रचना मे पाण्डवो का लाक्षागृह से निकल कर एक ब्राह्मण परिवार म निवास बक के हेतु उस परिवार से एक व्यक्ति के भेजने की समस्या, कुन्ती द्वारा अपने पुत्र को भेजने का प्रस्ताव, अन्तत भीम द्वारा बक राक्षस का वध आदि घटनाओं को कथा-बद्ध किया गया है। बक-सहार सूत्रशैली म व्यक्त है। कवि ने त्याग के पारिवारिक आदर्श को उच्चता की पराकाष्ठा से चित्रित किया है। राज्य धम का आदशात्मक विवेचन कुन्ती के वचनो द्वारा हुआ है।

कुन्ती का अन्तद्वन्द्व इस रचना की विशेषता है। 'महाभारत म इस द्वन्द्व की कोई स्थिति नहा क्योकि कुन्ती अपने पुत्रो के दिव्य बल से परिचित है। कवि ने सहज नारी के रूप म कुन्ती को लोक-भावना के मध्य प्रतिष्ठित किया है।

भगवान,
जाने उन्ह दू इस तरह
क्या मारने को ही उन्ह मैंने जना

× × ×

जो थी शिला सी निश्चला, अब ढह गया उसका गला
वह दूर तक जल मग्न सी लेटी रही।"[1]

करुणरस प्रधान इस काव्य म, प्रसग रूप से वात्सल्य उत्साह, प्रेम आदि भावो की उत्कृष्ट अभिव्यजना है। इस काव्य म कवि का प्रबन्ध शिल्प विकसित हुआ है और चरित्र चित्रण की दृष्टि म भी कुछ स्थिरता आई है।

वन वैभव (मैथिली शरण गुप्त) १९२७ ई०

'वन वभव' की कथा 'महाभारत' के वनपर्व के अन्तर्गत घोषयात्रा पर्व के दोसौ सतीसवें अध्याय तक ग्रहण की गई है। इस पर्व म युधिष्ठिर की अतिशय क्षमाशीलता और कौरवा की चरम दुष्टता की अभिव्यक्ति हुई है।

पाण्डवो को नीचा दिखाने के हेतु कौरव द्वैत वन म जाते हैं वहा चित्ररथ गन्धर्व से सघर्ष म परास्त होकर पाण्डवो की सहायता से छूटते हैं। इस घटना से कौरवो की शक्ति हीनता, युधिष्ठिर की उदारता और अन्य पाण्डवो की शक्ति का प्रकाशन होता है।

'वन वैभव' म कवि ने दुर्योधन के वन के वैभव का चित्रित किया है। किन्तु यह वैभव भौतिक और अस्थिर है वास्तविक वैभव तो मन की उच्चता और आदर्शों की सात्विकता है। यह वभव पाण्डवो को प्राप्त है। कवि ने धमराज के वभव को चरित्रगत वस्तु के रूप म चित्रित किया है। युधिष्ठिर अपने धम से कदापि विचलित नहीं होते और मानवता के चरम आदर्श का पालन करते हैं। कवि का ध्येय

---

१ बक-सहार, पृ० ३४

युधिष्ठिर के चरित्र की प्रतिष्ठा है। इसमें कवि मानवता की उपस्थापना करता है। सिद्धान्तत परदुखकातरता और त्यागशीलता के उच्चादर्श का आलेखन करता हुआ इन्हें अनुकरणीय मानता है।

कवि धर्म और कर्त्तव्य पालन के क्षेत्र में युद्ध की अनिवार्यता को भी स्वीकार करता है। प्रतिशोध का सात्विक आवरण कवि ने अत्यन्त सुन्दरता से चित्रित किया है। कवि की जीवन दृष्टि अत्यन्त व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुई है। यत्र तत्र उल्लेखनीय परिवर्तन उसकी विचारधारा का प्रकाशन करते हैं।

अभिमन्यु वध (रामचन्द्र शुक्ल 'सरस') १९३२ ई०

'महाभारत' के अभिमन्यु प्रसंग को कवि ने सरस और ओजस्विनी भाषा में प्रस्तुत किया है। कथानक के विषय में कवि ने स्वयं कहा है—'इस कथानक के इतिवृत्त को महाभारत के ही अनुसार चलाने का प्रयत्न किया है, जहां कल्पना से भी काम लिया गया है वहां भी घटनाओं के तथ्य पर ध्यान रखते हुए उसे यथोचित मर्यादा और सीमा के ही अन्दर रखा गया है और अनीप्सित स्वच्छदता नहीं दी गई।'[1] काव्य का सबसे मार्मिक स्थल द्रोण का अन्तर्द्वन्द्व है। वे मन में पार्थ कुमार की प्रशंसा करते हैं। वे विचार करते हैं कि इस अवस्था में वे उसका आलिंगन नहीं कर सकते। कवि ने सूक्ष्म दृष्टि से रण के विषाक्त वातावरण के मध्य भी हृदय के पवित्र सरोवर में झलकने वाले अमृत जल को देखा, और एक ही बिन्दु पर प्रेम और निर्मम कर्त्तव्य की अभिव्यक्ति हुई। सम्पूर्ण काव्य का निर्माण खण्ड रूप में होने के कारण प्रबन्धत्व शिथिल है किन्तु चित्रण शक्ति की कान्ति मनोहर है।"

नल नरेश (प्रताप नारायण) १९३३ ई०

पुरोहितजी ने महाभारत के नलोपाख्यान पर आधारित नल नरेश प्रबन्ध काव्य की रचना की यह काव्य १९ सर्गों में विभाजित है। अब तक के लिखे गये नलोपाख्यानात्मक काव्यों की परम्परा में यह काव्य अधिक प्रौढ़ तथा विचारात्मक है। कवि ने 'महाभारत' की कथा में यथा सम्भव परिवर्तन और परिवर्द्धन किया इसमें कवि की मौलिकता और उपाख्यान की आत्मा दोनों ही सुरक्षित रह पाई हैं। पुष्कर के चरित्र को यथार्थवादी भूमि पर चित्रित किया है। महाभारत में नल विरोध का कारण कलि का प्रभाव बतलाया गया है। किन्तु नल नरेश में छोटा भाई बड़े भाई के ऐश्वर्य से स्वभावज ईर्ष्या रखता है।[2] कवि की मौलिकता घटनाओं के परिवर्तन में न होकर हेतुओं में अधिक है। इस काव्य में स्त्री के पतिव्रत धर्म और शक्ति का चित्रण अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता के रूप में किया गया है।

---

१ अभिमन्यु-वध, पृ० २२

२ नल नरेश, पृ० ३३

पाण्डव यशेन्द्र चन्द्रिका (स्वरूप दास) १६३३ ई०

इस ग्रन्थ म लेखक ने अलकार और छद का वणन पाण्डवों की कथा क आधार पर किया है। पूर्वार्द्ध एक प्रकार से पिंगल शास्त्र का ग्रन्थ है। उत्तरार्द्ध स मूल कथा प्रारम्भ होती है। 'महाभारत के अध्याय ६३ के श्लोक ५८/५६ के आधार से कवि ने कथा प्रारम्भ की है।'[1] पौराणिक सत्य का उसी रूप म माना है। इसके बाद का कथा विकास महाभारत के अनुरूप है।

इस पुस्तक म विचारणीय यह है कि कवि मध्य म टिप्पणियां से कथा समझाता चलता है। दो सौ पृष्ठों पर विस्तृत वशपरम्परा का चित्रण है। कुछ श्लोक महाभारत' के आधार पर बनाये गये हैं।[2] इन कारणों से एक साहित्यिक प्रबन्ध काव्य का रूप अक्षुण्ण नहीं रह पाया है।

कवि की दृष्टि म स्वतन्त्र कथा विकास न होने के कारण पात्रों का चारित्रिक आलेखन भी नई दृष्टि स नहीं हुआ। ग्र थ सामान्य है, कोई सोद्देश्य उपलब्धि नहीं है। केवल परम्परागत पाण्डव कथा चित्रण का मोह और उसे पिंगल शास्त्र के आधार पर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति के आधार पर काव्य की रचना हुई है।

महाभारत (श्रीलाल खत्री) १६३६ ई०

श्रीलाल खत्री ने महाभारत की विशाल कथा को सक्षिप्त रूप से दोहा चौपाई म वर्णित किया है। इस ग्रन्थ जिनम कवि का उद्देश्य मूल ग्रन्थ का कथासार

१ तत्राद्रिकेति विख्याता ब्रह्म शापाद्वराप्सरा ।
मीनभाव मनुप्राप्ता बभूव यमुना चरी। म० आदि० ६३।५८ ५६
कवि का प्रारम्भ —

यों भद्र केतु ग धव राज, अद्रि का त्रिया सोमा समाज,
तिहि ऋषि सराप अक्जो निपाय, उद्धार ऋषि दीनो बताय
× × ×
कोई मनुज बीय भजि पुत्रि होई, दंपति निजगति सुमत हुवोई।
द्विज पराशर कहितात काल,
मुहि पारकारहु मत नटहु आल।
मयजुक्त नाव प्रेरी सुभाव,
कन्या लखि रिविमो खिवस काम,

इस काम के फलस्वरूप व्यास का ज म हुआ और फिर व्यास से ही पाण्डव परम्परा चली।

—पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका, पृ० २४८, पाद टिप्पणी

२ "हा हा द्रोण। कुतोऽसितस्य 'भुवने वांच' समुद्रीचता।"

प्रस्तुत करना होता है—स्वतन्त्र दृष्टिकोण से नहीं लिये जाते। इनमे प्रबन्ध काव्य के आवश्यक तत्वो का अभाव रहता है। इसमे 'महाभारत' की भीष्म प्रतिज्ञा से लेकर स्वर्गारोहण तक की कथा 'महाभारत' के मुख्य दीपको के अतर्गत ही वर्णित है।

इस प्रकार के भावानुवादो के द्वारा प्राचीन सास्कृतिक कथा का प्रचार लोक जीवन मे होता है। इस अनुवाद मे लेखक का और कोई उद्देश्य भी नही वह कल्पना से चरित्र की नई सृष्टि न करके उसे मूल ग्रन्थ के आलोक मे ही चित्रित करता है। इन ग्रन्थो का महत्व परम्परा मे एतिहासिक है।

अभिमन्यु पराक्रम (देवी प्रसाद बरनवाल) १६४० ई०

इस काव्य की रचना प्रेरणा अभिमन्यु का आत्म बलिदान और लोकोपकार की भावना है। लोक रक्षा के हेतु क्षत्रियत्व सवदा सजग रहता है। अत उसकी स्मृति करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है। सामान्यत क्षत्रियत्व का प्रकाशन और अभिमन्यु के शौर्य की व्यजना ही इस काव्य की प्राणधारा है। प्रमुख पात्र होने के कारण अभिमन्यु के चरित्र का समुचित विकास हुआ है।

नहुष (मैथिली शरण गुप्त) १६४० ई०

महाभारत के उद्योगपर्व मे यह उपाख्यान दृष्टान्त कथा के रूप मे आता है। मद्रेश शल्य धर्मराज को कष्टो की अनिवार्यता और धैर्य पूर्वक सहन करने की वृत्ति का उपदेश देते है। शल्य कहते है कि देवराज इन्द्र और इन्द्राणी पर भी विपत्ति आई थी किन्तु उन्होने धैर्य पूर्वक उसको सहा तथा अन्त मे अपने वास्तविक एश्वर्य को प्राप्त किया।

मैथिलीशरण जी ने महाभारत के कथा सूत्र को मौलिकता की छाप देकर अपने सिद्धान्तो के अनुसार विकसित किया है। महाभारत मे कथा वर्णन प्रमुख एव मानसिक स्थितियो का चित्रण गौण है। 'नहुष' मे कथा का विकास ही मानसिकता की भूमि पर होता है। मूल ग्रन्थ और नहुष के कथा सदर्भ मे भी अन्तर है। महाभारत मे यह आख्यान कष्ट सहिष्णुता के हेतु आया है। कवि ने इसमे व्यापक उद्देश्य की सिद्धि की है। (गुप्तजी ने मानव का स्तवन किया है। मानव निज गुणो की उच्चता के कारण देवत्व पद प्राप्त करता है पर उसकी दुबलताए उसे अधोगामी बना देती है। इस पर भी कवि का मन्तव्य है कि मानव को बार बार गिरकर भी ऊपर उठने की भावना का त्याग नहीं करना चाहिए।)

नहुष मे समस्त कथानक सात सोपानो मे विभक्त है। शची प्रसग मे कथा का प्रारम्भ होता है। शची के पतिवियोग और सतीत्व के आदर्श का चित्रण कवि की मौलिकता है। नारद के प्रसग मे मानव के मन पर का अभिव्यक्ति तथा उर्वशी के प्रसग मे देव विलास का सुदर चित्रण है। उर्वशी मानव की उद्योग शीलता की

अनिवार्यता को ही देवत्व से अधिक प्रतिष्ठित करती है। नहुष का प्रेम प्रसग एक वधानिक तथ्य का प्रकाशन करता है और स्वग की सभा भी उस वैधानिकता को चुनौती नहा दे पाती। फलत नहुष शची के पास जाता है किन्तु माग म पतित हो जाता है। तथापि नहुष मानव का आदश है।

> आजमेरा मुक्तोज्झित हो गया है स्वग भी।
> लेके दिखा दूगा कल मैं ही अपवग भी॥[1]

नहुष' का प्रतिपाद्य 'काम का विरोध' है। असयमित काम मानव-जीवन का घोर कलुष है। इस असयम से स्वत्व की रक्षा करने पर स्वग एव अपवग सभी कुछ प्राप्त होते हैं।

कृष्णायन (द्वारका प्रसाद मिश्र) १९४५ ई०

द्वारकाप्रसाद मिश्रजी ने 'कृष्णायन' का प्रणयन रामचरितमानस' की शैली म कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन चरित का आधार बनाकर किया। इस काव्य मे महाभारत के योगिराज कृष्णराधा कृष्ण और बालगोपाल कृष्ण के जीवन-चरित का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है। प्रस्तुत काव्य कथा के विकास म— श्रीमदभागवत', 'महाभारत' और 'सूरसागर' की कथा सामग्री को गुम्फित किया गया है। सम्पूर्ण काव्य मानस' के अनुरूप सात काण्डा म विभाजित है। अवतरण' काण्ड म मथुरा की पूव स्थिति और व्रज की बालक्रीडा है। मथुरा' काण्ड की प्रमुख घटना कस-वध है। 'द्वारका काण्ड म शक्ति सचय के हेतु मथुरा त्यागन और पाण्डवा के सम्पक की कथा है।

तृतीय काण्ड स अन्तिम काण्ड तक महाभारत की कथा, प्रमुख हा जाती है, और कवि प्रबन्ध योजना की अनिवार्यता के कारण उसे यत्र-तत्र मथुरा से जोडे रखना है। 'पूजा' काण्ड की कथा राजसूय यज्ञ और द्यूत तथा सक्षप मे वन एव विराट-पव की कथा है। 'गीता काण्ड मे कवि ने गीता का छायानुवाद प्रस्तुत किया है। युद्ध काण्ड म महाभारतीय युद्ध का चित्रण है किन्तु इन काण्डा म कथा विकास इस रूप मे हाता है कि कृष्ण का महत्त्व निर्विवाद रूप स अक्षुण्ण रहता है। आरोहण' काण्ड म कथा का उपसहार है। भगवान् कृष्ण गृह कलह के उपरान्त मैत्रय को ज्ञान विवेचना के बाद स्वगारोहण करते हैं।

कृष्णायन का महत्त्व कई कारणा से है। यह कृष्ण जीवन पर आधारित अवधी भाषा का प्रबन्ध काव्य है और इसमे महाभारत' के सास्कृतिक, राजनतिक

---

१ नहुष, पतन सग पृ० ३९

और दार्शनिक दृष्टिकोणों की रक्षा करते हुए एक आर्य राष्ट्र की संस्थापना व राष्ट्रीय भावना पर बल दिया गया है। कवि बुद्धि-साम्राज्य की भर्त्सना करता है।[1]

नकुल (सियारामशरण गुप्त) १९४६ ई०

'नकुल' खण्ड काव्य की रचना सियारामशरण गुप्त ने 'महाभारत' के वनपर्व के आधार पर की है। कवि ने मूल कथा वस्तु का स्वतन्त्र दृष्टि से विकास किया है। सम्पूर्ण काव्य प्रकृति की मनोमुग्धकारी शोभा से पूर्ण है। वन, पर्वत उपत्यकाएं, नगातट—विशाल प्रकृति की क्रीड़ा भूमि में काव्य-कथा का विकास होता है।

पाण्डव अज्ञात वास की तैयारी में संलग्न हैं कि एक छोटी किन्तु महत्वपूर्ण घटना होती है। वन का अरणि और मथनिका एक मृग ले गया। युधिष्ठिर तपस्वी की साधना पूर्ति हेतु धनुष बाण लेकर निकल पड़े। शेष पाण्डव द्रौपदी सहित इससे पूर्व ही अमृतहृद दर्शनार्थ जा चुके थे। उधर दुर्योधन के चर उस हृद को विषाक्त कर चुके थे। युधिष्ठिर वहां पहुंचे और भाईयों को अचेत अवस्था में पाया। जब मणिभद्र की संजीवनी से केवल एक व्यक्ति के जीवन का प्रश्न युधिष्ठिर के समक्ष आया तो उन्होंने अकस्मात् नकुल के जीवन की याचना की—

'नकुल'! —उसी क्षण अनायास कह गये युधिष्ठिर।
उत्तर उनका यही प्रथम ही हो ज्यों सुस्थिर॥[2]

किन्तु अक्षय बूंद के कारण सभी पाण्डव जीवित हो उठे —

यहां युधिष्ठिर और नकुल के चरित्र को नवीन रूप में उभारा गया है। और इस बात पर बल दिया है कि छोटे और बड़े दोनों ही एक दूसरे के लिये त्याग करें तभी धर्म का संरक्षण हो सकता है। कवि छोटे के लिए त्याग पर बल देता है —

छोटे के भी लिए बड़े से बड़ा समर्पण—
किया जाय जब, तभी धर्मधन का संरक्षण॥[3]

कवि ने महाभारत की कथा में स्वतन्त्र रूप से काव्योचित सम्भावना और औचित्य के साथ परिवर्तन किया है। काव्य की कथा का विकास स्वतन्त्र गति से होता है और कवि महाभारत के अतिप्राकृत तत्वों को अत्यन्त सतर्कता से बौद्धिक रूप देकर विश्वसनीय बना देता है। कवि की सफलता कथा के महत्वपूर्ण परिवर्तनों तक ही सीमित नहीं है अपितु पात्रों के चरित्र चित्रण में अनेक नूतन उद्भावनाओं के

---

१ बुद्धिभावना संतुलन आर्य धर्म आधार।
नष्ट भावना आज प्रभु! शेष बुद्धि व्यभिचार॥ कृष्णायन, पृ० ३१५

२ नकुल पृ० ६८

३ नकुल, पृ० १०१

कारण वास्तविकता का समावेश हो पाया है। कवि का मन सात्विक वृत्ति वाले पात्रों के चरित्र चित्रण में अधिक रमा है।

'नकुल' की प्रमुख विशेषता कथा विकास, प्रबन्धत्व में न होकर कवि कल्पित कथा और महाभारतीय कथा के अद्भुत समन्वय में व्यक्त हुई है। महाभारत में यह कथा यक्ष युधिष्ठिर संवाद के रूप में है—कवि ने इसे खण्डकाव्योचित विस्तार देकर आदर्शात्मक काव्य की रचना की है।

कुरुक्षेत्र (रामधारीसिंह 'दिनकर') १९४६ ई०

'कुरुक्षेत्र' दिनकर का विचार प्रधान काव्य है। 'महाभारत' की प्रख्यात कथा के एक अंश का आधार लेकर कवि ने वर्तमान जीवन की मुख्य समस्या 'युद्ध' पर विचार किया है। युद्ध के साथ मानव अधिकार समानता, शांति क्रान्ति आदि पर भी कवि के विचार अभिव्यक्त हुए हैं।

'कुरुक्षेत्र' में कथा का अंश अत्यन्त अल्प है। उसे कवि ने केवल इसलिए ग्रहण किया है कि विचारों की शृंखला अविच्छिन्न रूप से व्यक्त हो सके। 'महाभारत' के युद्ध की समाप्ति पर धर्मराज के मन में भयानक नर संहार के कारण ग्लानि और अपने को उसका मुख्य कारण मानते हुए, पश्चाताप की भावना उदित होती है। उनका मन चिर-संचित वैराग्य और विरक्ति की भावना से भर जाता है। अपने आपको आश्वस्थ करने के हेतु धर्मराज पितामह के पास जाते हैं और भीष्म युधिष्ठिर को नीति का उपदेश देकर जीवन की विविधताओं के मध्य शक्ति की महत्ता समझाते हैं और युद्ध की अनिवार्यता पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं। कुरुक्षेत्र में दुःशासन की भर्त्सना एवं सुशासन का स्तवन है साथ ही सुशासन की स्थापना के लिए युद्ध को विशेष परिस्थितियों में आवश्यक भी माना है।

'कुरुक्षेत्र' का कवि 'महाभारत' में प्रतिपादित जीवन-दृष्टि को युगानुरूप ग्रहण करता है। 'गीता' के कर्मवाद का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥[1]

'कुरुक्षेत्र' में कठिन कर्म को अपरिहार्य मानकर उसका महत्व अंकित किया है—

कर्मभूमि है निखिल महीतल,
जब तक नर की काया।
तब तक है जीवन के अणु अणु
में कर्त्तव्य समाया ॥

---

१ गीता ३।५
२ कुरुक्षेत्र, पृ० १२७

'महाभारत' में प्राणियों के प्रति समभाव की व्यावहारिकता का प्रतिपादन किया है 'कुरुक्षेत्र' का कवि उस संकेत का ग्रहण कर आधुनिक संदर्भ में नवीन व्याख्या के साथ प्रस्तुत करता है।

प्रिया प्रिये परित्यज्य समः सर्वेषु जन्तुषु,
काम क्रोध च लोभं च मानं चात्मुज्य दूरतः।[1]

वह असमानता के आधार पर अव्यवस्था का चित्रण करके समानता का प्रतिपादन करता है।

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी का कम हो।[2]

कुरुक्षेत्र में दिनकर जी ने महाभारत और वर्तमान काल की परिस्थितियों का समन्वय रखकर जीवन की गहन समस्याओं पर विचार किया है। महाभारत' से कथा की पृष्ठभूमि मात्र ग्रहण की गई है और कथा का विचारात्मक विकास किया गया है।

अंगराज (आनन्द कुमार) १९५० ई०

अंगराज की रचना का आधार कर्ण चरित है। इसकी रचना के पीछे जातीय और सांस्कृतिक संरक्षण की भावना विद्यमान है। महारथी कर्ण के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित यह अनोखा प्रबन्ध काव्य है जो युद्ध सम्बन्धी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती घटनाओं को भी अपनी सीमा में समेट लेता है।

कवि ने कथा का विकास पच्चीस सर्गों में किया है। इस से यह स्पष्ट है कि कवि अपनी प्राचीन संस्कृति का ही नहीं अपितु प्राचीन साहित्य प्रणाली का भी समर्थक है। उसी के अनुरूप मंगलाचरण सरस्वती वंदना से काव्य प्रारम्भ होता है और माहात्म्य वर्णन से समाप्त होता है।

अंगराज की वस्तु महाभारत की कथा है। किन्तु प्रस्तुत काव्य में कथा विकास यथावत होते हुए भी चरित्र विकास में आमूल अन्तर उपलब्ध होता है। कौरव पाण्डवों के जीवन और चरित्र के प्रति कवि का अपना मौलिक दृष्टिकोण है। यह विचारधारा परम्परागत विचार के प्रतिकूल है। कवि स्पष्ट रूप में कौरवों को न्याय पक्ष युक्त और पाण्डवों को अन्यथा घोषित करता है। वह पाण्डवों के साथ चरित्र पर भी अनेक आपत्तिजनक आरोप लगाता है। भारत का महारथी व्यक्तित्व

---

१ म० शान्ति० ६५।१०४
२ कुरुक्षेत्र पृ० २५

उन सब तथ्यों को स्वीकार नहीं कर सकता। भूमिका में 'पाण्डवों का संक्षिप्त परिचय' उपशीर्षक में कवि पाण्डवों के पक्ष को छल, कपट और अधर्म का पक्ष बनाता है।[1] पाण्डवों को अकमण्य[2] और संयमहीन[3] की उपाधि देता है और अत्यंत अशिष्ट शब्दों में पाण्डवों के चरित्र पर आक्षेप करता है।

'चारित्रिक दुर्बलता प्राय प्रत्येक पाण्डव में थी। द्रौपदी को उन्होंने पंचायती पत्नी या कामचलाऊ स्त्री तो बना ही रखा था, सभी भाइयों के पास पत्नियों का अलग अलग प्रबल दल था।'[4]

सम्पूर्ण ग्रन्थ पाण्डवों के विरोध, एव घृणा की भित्ति पर टिका है। कवि कर्ण की वीरत्व, दानशीलता सच्चरित्रता का आदर्श मानकर उसके जीवन का स्वर्णिम रूप चित्रित करता है। कर्ण के प्रति कही गई युधिष्ठिर की कतिपय उक्तियों के आधार पर कवि युधिष्ठिर को कायर, अकमण्य, शिथिल कहकर अपमानित करता है।

सम्पूर्ण काव्य के कथा विकास में परिवर्तन परिवर्द्धन की दृष्टि से मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल चरित्र विकास कौरवपक्षीय वीरों में सात्विकता और पाण्डवों में विकृति दर्शायी गई है। कवि की दार्शनिक वैचारिक दृष्टि अगम्भीर है। सम्पूर्ण काव्य में इतिवृत्तात्मक, वर्णनात्मकता की प्रबलता है। कौरव-पाण्डव संघर्ष में धर्म के जिस सूक्ष्म रूप की विवेचना 'महाभारत' में उपलब्ध है कवि उसकी गम्भीरता को स्पर्श नहीं कर पाया। एक विशेष प्रकार के पूर्वाग्रह से ग्रस्त यह प्रबन्ध-काव्य विशेष उपलब्धिपूर्ण रचना नहीं है।

हिडिम्बा (मैथिलीशरण गुप्त) १९५० ई०

हिडिम्बा खण्डकाव्य महाभारत के आदिपर्व की प्रासंगिक कथा के आधार पर रचित है। लाक्षागृह से बच निकलने के उपरान्त वन में भीम के सौंदर्य पर हिडिम्बा राक्षसी मुग्ध होती है। वह परिणय की याचना करके एक पुत्र की प्राप्ति तक भीम का पतित्व स्वीकार करती है। माता की आज्ञा से भीम हिडिम्बा को पत्नी रूप में स्वीकार करते हैं।

परिणाम स्वरूप घटोत्कच प्राप्त होता है जो कुरुक्षेत्र में एकघ्नी द्वारा मारा जाकर अर्जुन को अभयदान देता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत कथा के स्थलों में तो विशेष परिवर्तन नहीं किया किन्तु उनकी चारित्रिक सृष्टि के स्तर नितान्त मौलिक हैं। उन्होंने हिडिम्बा को

---

१ अंगराज, पृ० २१
२ अंगराज, पृ० २२
३ अंगराज पृ० २३
४ अंगराज, पृ० २३

'महाभारत' में प्राणियों के प्रति समभाव की व्यावहारिकता का प्रतिपादन किया है 'कुरुक्षेत्र' का कवि उस संकेत को ग्रहण कर आधुनिक संदर्भ में नवीन व्याख्या के साथ प्रस्तुत करता है।

प्रियाप्रिये परित्यज्य मम सर्वेषु जन्तुषु,
काम क्रोध च तोभ च मान चोत्सृज्य दूरत ।[1]

वह असमानता के आधार पर अव्यवस्था का चित्रण करके समानता का प्रतिपादन करता है।

शान्ति नहीं तब तक जब तक
सुख भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो
नहीं किसी को कम हो।[2]

'कुरुक्षेत्र' में दिनकर जी ने महाभारत और वर्तमान काल की परिस्थितियों को समकक्ष रखकर जीवन की गहन समस्याओं पर विचार किया है। महाभारत से कथा की पृष्ठभूमि मात्र ग्रहण की गई है और कथा का विचारात्मक विकास किया गया है।

अंगराज (आनन्द कुमार) १९५० ई०

अंगराज की रचना का आधार कर्ण चरित है। इसकी रचना के पीछे जातीय और सांस्कृतिक संरक्षण की भावना विद्यमान है। महारथी कर्ण के सम्पूर्ण जीवन पर आधारित यह अकेला प्रबन्ध काव्य है जो युद्ध सम्बन्धी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती घटनाओं को भी अपनी सीमा में समेट लेता है।

कवि ने कथा का विकास पच्चीस सर्गों में किया है। इस से यह स्पष्ट है कि कवि अपनी प्राचीन संस्कृति का ही नहीं अपितु प्राचीन साहित्य प्रणाली का भी समर्थक है। उसी के अनुरूप मंगलाचरण सरस्वती वंदना से काव्य प्रारम्भ होता है और माहात्म्य वर्णन से समाप्त होता है।

अंगराज की वर्ण्य वस्तु 'महाभारत' की कथा है। किन्तु प्रस्तुत काव्य में कथा विकास यथावत् ज्ञात हुए भी चरित्र विकास में आमूल अन्तर उत्पन्न होता है। कौरव-पाण्डवों के जीवन और चरित्र के प्रति कवि का अपना मौलिक दृष्टिकोण है। यह विचारधारा परम्परागत विचार के प्रतिकूल है। कवि स्पष्ट शब्दों में कौरवों को न्याय पक्ष युक्त और पाण्डवों को अन्यथा स्थापित करता है। वह पाण्डवों के मान्य चरित्र पर भी अनेक आपत्तिजनक आरोप लगाता है। भारत का सम्पूर्ण व्यक्तित्व

---

१ म० शान्ति० ९५।१०४
२ कुरुक्षेत्र पृ० २५

उन सब तथ्यों को स्वीकार नहीं कर सकता। भूमिका में 'पाण्डवों का संक्षिप्त परिचय' उपशीर्षक में कवि पाण्डवों के पक्ष का छल, कपट और अधम का पक्ष बताता है।[1] पाण्डवों को अकर्मण्य[2] और मर्यादाहीन[3] की उपाधि देता है और अत्यन्त अशिष्ट शब्दों में पाण्डवों के चरित्र पर आक्षेप करता है।

'चारित्रिक दुर्बलता प्राय प्रत्येक पाण्डव में थी। द्रौपदी को उन्होंने पंचायती पत्नी या कामचलाऊ स्त्री तो बना ही रक्खा था, सभी भाईयों के पास पत्नियों का अलग अलग प्रबल दल था।"[4]

सम्पूर्ण ग्रन्थ पाण्डवों के विरोध, एवं घृणा की भित्ति पर टिका है। कवि कर्ण को वीरत्व, दानशीलता, सच्चरित्रता का आदर्श मानकर उसके जीवन का स्वर्णिम रूप चित्रित करता है। कर्ण के प्रति कही गई युधिष्ठिर की कतिपय उक्तियों के आधार पर कवि युधिष्ठिर को कायर, अकर्मण्य, शिथिल कहकर अपमानित करता है।

सम्पूर्ण काव्य के कथा विकास में परिवर्तन परिवर्द्धन की दृष्टि से मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती। केवल चरित्र विकास कौरवपक्षीय वीरों में सात्विकता और पाण्डवों में विकृति दर्शायी गई है। कवि की दार्शनिक वैचारिक दृष्टि अगम्भीर है। सम्पूर्ण काव्यमें इतिवृत्तात्मक,वर्णनात्मकता की प्रबलता है। कौरव-पाण्डव संघर्ष में धर्म के जिस सूक्ष्म रूप की विवेचना 'महाभारत' में उपलब्ध है कवि उसकी गम्भीरता का स्पर्श नहीं कर पाया। एक विशेष प्रकार के पूर्वग्रह से ग्रस्त यह प्रबन्धकाव्य विशेष उपलब्धिपूर्ण रचना नहीं है।

हिडिम्बा (मैथिलीशरण गुप्त) १९५० ई०

हिडिम्बा खण्डकाव्य 'महाभारत' के आदिपर्व की प्रासंगिक कथा के आधार पर रचित है। लाक्षागृह से बच निकलने के उपरान्त वन में भीम के सौन्दर्य पर हिडिम्बा राक्षसी मुग्ध होती है। वह परिणय की याचना करके एक पुत्र की प्राप्ति तक भीम का पतित्व स्वीकार करती है। माता की आज्ञा से भीम हिडिम्बा को पत्नी रूप में स्वीकार करते हैं।

परिणाम स्वरूप घटोत्कच प्राप्त होता है, जो कुरुक्षेत्र में एकघ्नी द्वारा मारा जाकर अर्जुन को अभयदान देता है।

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत कथा के स्थलों में तो विशेष परिवर्तन नहीं किया किन्तु उनकी चारित्रिक सृष्टि के स्तर नितान्त मौलिक हैं। उन्होंने हिडिम्बा का

१ अंगराज, पृ० २१
२ अंगराज, पृ० २२
३ अंगराज पृ० २३
४ अंगराज, पृ० २३

राक्षसी के स्तर से उठाकर वैष्णवी मानवी के रूप में चित्रित किया है। कुन्ती और हिडिम्बा के संवाद में, न्याय अन्याय, मानवता राक्षसत्व, त्याग प्रेम आदि विषयों पर कवि ने युग सापेक्ष विचार, अभिव्यक्त किये हैं। कवि समस्त कथा को वर्णनात्मक शैली में कहता हुआ चरित्र सृष्टि की ओर अधिक ध्यान देता है इस हेतु उसने महत्व पूर्ण परिवर्तन किये हैं। युधिष्ठिर हिडिम्बा के चरित्र का आख्यान इन शब्दों में करते हैं —

"आई यातु वंश में हिडिम्बा किसी भूल से"
बसे सुसंस्कार वह रखती है मूल से,
स्त्री का गुण रूप में है और कुल शील में,
पद्मिनी की पंकजता डूब किसी झील में।[1]

हिडिम्बा की कथा में गुप्तजी ने स्त्री के मातृत्व की सुन्दर अभिव्यंजना की है। चारित्रिक सृष्टि नवयुग की विचारधारा के अनुकूल है और मुखरित प्रेमाभिव्यक्ति को भी अत्यन्त संयमित रूप देकर प्रेम और श्रेय की समन्वित अभिव्यक्ति की गई है। प्राणी मात्र से प्रेम और समानता का व्यवहार इस काव्य का संदेश है।

जयभारत (मैथिलीशरण गुप्त) १९५२ ई०

जय भारत प्रबन्ध काव्य का निर्माण 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का आधार लेकर हुआ है। आदिपर्व से महाप्रस्थानिकपर्व तक की वृहत् कथा को कवि ने ४७ शीर्षकों में विभाजित करके संक्षिप्त किया है। जय भारत की रचना प्रेरणा खण्ड रूप में उपलब्ध हुई है। कवि के हृदय में रचना के आरम्भ में ही कथा एवं चरित्र की दृष्टि से अखण्ड कल्पना नहीं थी। उन्होंने 'महाभारत' के विभिन्न प्रसंगों पर इससे पूर्व अनेक खण्ड-काव्यों की सृष्टि की। तदुपरान्त महाभारत का पूर्णालेखन करने के हेतु कुछ नवीन प्रसंगों की सृष्टि और कुछ प्राचीन प्रसंगों से परिवर्तित करके ग्रहण किया। अतः कहा जा सकता है कि इस काव्य में कथा-संग्रथन है प्रबन्ध योजना नहीं। जय भारत अखण्ड प्रबन्ध के रूप में विन्यस्त न होने के कारण आख्यान खण्डों का संग्रथित रूप है।

जयभारत का प्रत्येक शीर्षक घटना, घटनास्थल और व्यक्ति के नाम से अभिहित किया गया है। प्रत्येक शीर्षक का पूर्वापर सम्बन्ध केवल इसी रूप में है कि सभी घटनाएं एक ही महाकाव्य में ग्रथित हैं अन्यथा प्रत्येक खंड की स्वतन्त्र सत्ता विद्यमान है। इस पर भी 'जयभारत' का वहन प्रबन्ध एवं नायक युधिष्ठिर सांस्कृतिक महाच्छन्द और मानवत्व की प्रतिष्ठा के कारण निर्विवाद है। कवि ने सांस्कृतिक एवं चारित्रिक उच्चता की अभिव्याप्ति की। वर्ण्य विषय बना कर कथासूत्र इस प्रकार ग्रथित किया है कि यह नवीन गाथा का साधारण काव्य बन गया है।

---

१ हिडिम्बा पृ० २८

'जयभारत' के कथा विकास म यत्र तत्र उल्लेखनीय परिवतन हुए हैं। (इन पर विस्तार से कथा प्रभाव के अध्याय म विचार होगा) चरित्र चित्रण की दृष्टि स भी यह काव्य सफल है। इसम महाभारतीय पात्रो की आत्मा की भी यथावत् रक्षा की गई है किन्तु प्राचीनतावादी होने के कारण कवि ने उन पात्रो की सवथा उपक्षा कर दी है जिनम आज के युग म अत सघप की प्रबल उदभावना की स्थिति स्वीकृत हो सकती है। डा० कमलाकान्त पाठक ने 'जय भारत' म कथा से अधिक जीवनदशन के व्यक्तिकरण को माना है।[1] कवि ने गीता-दशन की अभिव्यक्ति मे कम आत्म-समपण, निस्पृह भावना आदि प्रवत्तियो का उल्लेख किया है। दार्शनिक दृष्टिकोण को कवि न अत्यन्त सरल रूप से प्रस्तुत किया है, उसमे गम्भीर पैठ का अभाव है।

'जय भारत का प्रतिपाद्य है —

सब सुख भोगें सब रोग स रहित हो।
सब शुभ पावें, न हो दुखी कहीं कोई भी।[2]
× × ×
जीवन यश, सम्मान, धन सन्तान सुख सब मम के
मुझको परन्तु शताश भी लगते नहीं निज धम के।[3]

चारित्रिक दृष्टि म कवि न प्रमुख पात्रो का चित्रण यथावत किया है। कवि का सस्कारी हृदय किसी महत्वपूण परिवतन को स्वीकार नहीं कर पाया। कथा-परिवतन म कवि ने अधिक स्वतन्त्रता से काम नहीं लिया।

जयभारत की विशेषता इस बात म है कि कवि कमणा जाति का समथन करता है। कथा विकास म प्रमुखता अन्तकथाओ क सगुम्फन की है। प्रासगिक वृत्तो की सूचना देता हुआ कवि शीघ्रता से मूल कथा के तत्व का ग्रहण कर लेता है।

रश्मिरथी (रामधारीसिंह 'दिनकर') १९५२ ई०

रश्मिरथी 'महाभारत' क प्रमुख पात्र कण क जीवन पर आधारित खण्ड-काव्य है। इसकी रचना का श्रीगणेश कवि न उस भावना से किया था कि कोई ऐसा काव्य लिखा जाय जिसम विचारोत्तेजकता क साथ कथा का प्रवाह भी हो। कवि लोक-जीवन म जिन आदर्शों की स्थापना करना चाहता है व मूलत सामाजिक हैं —इस कारण सामाजिक विरोध को स्वीकार करते, जीवन म कवल अपने पुरुषाथ के बल पर यश कमाने वाले— महाभारत' के पात्र कण का चरित्र सवश्रेष्ठ है। अत कवि

१ मैथिलीशरणगुप्त, व्यक्ति और काव्य, पृ० ३८९
२ जय भारत, युद्ध पृ० ४००
३ जय भारत, कर्ण की कथा पृ० ३०८
४ रश्मिरथी भूमिका, पृ० १

को अपने चिंतन का आधार कर्ण के जीवन में मिला, और कर्ण खण्ड-काव्य का नायक बन सका।

✓ कवि ने कर्ण को पीडित और दलितों का प्रतिनिधि माना है। उसका प्रमुख तर्क है कि कर्ण को सर्वथा अपमान एवं अवहेलना मिलती रही। जो आदर अर्जुन को कुलीन होने के कारण मिला वही स्थान समान-वीरता सम्पन्न-कर्ण को अकुलीन होने के कारण न मिल सका।

'रश्मिरथी' की कथा का विकास सात सर्गों में हुआ है। प्रथम सर्ग में रंगभूमि प्रसंग, द्वितीय सर्ग में कर्ण एवं परशुराम प्रसंग तृतीय सर्ग में कर्ण-कृष्ण का संवाद चतुर्थ सर्ग में कवच कुण्डल प्रसंग में कर्ण की दानशीलता का परिचय, पंचम सर्ग में कुंती और कर्ण के संवाद में कर्ण की दृढ़ मैत्री भाइयों के प्रति प्रेम मां के प्रति आदर, षष्ठ सर्ग में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में युद्ध और कर्ण की प्रमुखता और सप्तम सर्ग में कर्ण के नेतृत्व में भयंकर युद्ध का चित्रण किया गया है।

'रश्मिरथी' में दिनकर जी ने कर्ण के जीवन चित्रण से मानवीय पुरुषार्थ का प्रतिपादन किया है। दिनकर जी विचार प्रधान कवि हैं उनकी वर्णनात्मक रचनाओं में भी विचार का प्रवाह अनवरत गति से प्रवाहित होता है। कवि ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की समस्या पर विचार किया था—'रश्मिरथी' में वह संघर्ष के धरातल पर सामाजिक जीवन की अनेक दुर्बलताओं की आलोचना करता है।

सावित्री (गौरीशंकर मिश्र) १९५३ ई०

द्विजेन्द्रजी ने 'महाभारत' के उपाख्यान के आधार पर इस काव्य की रचना की। रचना की प्रेरणा के पीछे सावित्री का उदात्त चरित्र है, जो मानव जाति को अन्त तक संघर्ष की प्रेरणा देता है। अपने मन पर दृढ़, कर्तव्य निष्ठा और आपत्ति में यम से भी न डरने वाला सावित्री का उन्नत चरित्र गौरव की वस्तु है। आज के युग में नारी के हृदय में सावित्री के अन्तरालोक की पुनः स्थापना की आवश्यकता है।

कवि ने कथा का प्रारम्भ सावित्री की यात्रा से किया है। 'महाभारत' के वनपर्व के २९३ वें अध्याय में वर्णित अनेक देशों की यात्रा प्रसंग को न देकर संक्षिप्त यात्रा प्रसंग की रचना की है।[१] २९४ वें अध्याय के आधार पर सावित्री की दृढ़ता का प्रसंग है। कवि ने विवाह प्रसंग को प्रबन्ध के गौरव के अनुकूल विस्तृत रूप से चित्रित किया है शेष समस्त कथा 'महाभारत' के आधार पर है।

शकुन्तला (भगवान दास शास्त्री) १९५४ ई०

शकुन्तला के उपाख्यान पर आधारित इस काव्य के कथा संग्रहण में कवि ने 'महाभारत' और 'पद्मपुराण' का आश्रय लिया है। स्वर्ण खण्ड की कथा पद्मपुराण

१ म० वन० अध्याय २९३, सावित्री पृ० १४ १५

से लेकर शेष कथा को 'महाभारत' के आदिपर्व और 'भागवत' के नवम स्कंध के आधार पर विकसित किया गया है। चारित्रिक महत्ता की रक्षा के हेतु कवि ने 'महाभारत' की स्पष्टोक्तियों से बचने का पूर्ण प्रयास किया है। मेनका का अन्तर्द्वन्द्व भी काव्य की मुख्य विशेषता है इस पात्र में कवि ने स्वभावज गुणों की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिकता से की है।

शल्य वध (उग्रनारायण मिश्र) १९५४ ई०

यह खण्ड-काव्य 'महाभारत' के शल्यपर्व के आधार पर लिखा गया है। इसका नायक शल्य है जिसकी वीरता, ओजस्विता का हृदयग्राही वर्णन ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। प्रस्तुत रचना की प्रेरणा कठोर धर्म-पालन में है। शल्य अपने मन की भावनाओं के प्रतिकूल दुर्योधन के रण निमन्त्रण को स्वीकार करते हैं, किन्तु, कर्तव्य पालन की महत्ता को कलंकित नहीं होने देते। अतः शल्य का चरित्र अनुकरणीय है, और इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर इस रचना का निर्माण हुआ है। यह काव्य 'जयद्रथ वध' की शैली में लिखा गया है।

पांचाली (डा० रांगेय राघव) १९५५ ई०

इस खण्ड-काव्य की रचना 'महाभारत' की एक घटना पर आधारित है। अज्ञात वास से पूर्व जब पाण्डव काम्यक वन में निवास करते हैं, तब एक दिन सिंधुराज जयद्रथ उधर आता है और द्रौपदी से अपना प्रेम प्रकट करता है। द्रौपदी की प्रताडना से क्षुब्ध होकर उसे हर कर ले जाता है। पीछे से पाण्डव आते हैं और जयद्रथ को अपमानित करके, दुःशला के कारण छोड़ देते हैं।

कवि ने इस संक्षिप्त कथानक के आधार पर तत्कालीन दासप्रथा की विवेचना की है। युधिष्ठिर के चरित्र को मानवता का प्रतीक मान कर दास प्रथा के उन्मूलक के रूप में चित्रित किया है। युधिष्ठिर ने अपने जीवन में अनेक कष्ट उठाकर मानवता का पक्ष प्रशस्त किया और सिद्ध किया कि क्षुद्रत्व से ऊपर उठ जाना ही महत्ता का परिचायक है। इस प्रकार कवि ने प्राचीन कथा का आधुनिक प्रश्न के साथ चित्रित किया है।

विदुलोपाख्यान (भगवतशरण चतुर्वेदी) १९५६ ई०

इस लघु खण्ड-काव्य की रचना महाभारतीय उपाख्यान के आधार पर हुई है। 'महाभारत' में कुन्ती भगवान् कृष्ण के हाथ अपने पुत्रों को वीरता से भरा प्रेरणादायक संदेश भेजती है। संदेश के रूप में विदुला का उपाख्यान प्रस्तावित है। 'विदुलोपाख्यान' का प्रारम्भ संजय की पराजय से होता है। पुत्र की पराजय से खिन्न माता वीरता भरे शब्दों में उसे युद्ध के लिए प्रेरित करती और भागकर आने के कारण पुत्र की भर्त्सना करती है। इस काव्य का संदेश है कि यह संसार नश्वर है

और क्षात्र धर्म की वास्तविकता यही है कि श्रुति सम्मत कर्तव्य पालन करते हुए व्यक्ति या तो विजय प्राप्त करे या रणभूमि में वीर गति को प्राप्त हो।

उद्योग करो, मर बेटा,
फलसुमधुर, मीठा होवेगा,
तेरा वरी जो आज मस्त
कल रण में निश्चय सोवेगा।[1]

सती सावित्री (श्रीगोपाल श्रोत्रिय) १६५७ ई०

'महाभारत' के उपाख्यान पर आधारित सावित्री-सत्यवान् की कथा का चित्रण प्रस्तुत काव्य का विषय है। कवि ने कथा का विकास मूल ग्रन्थ के अनुसार किया है।

ग्रन्थ रचना का मूल प्रेरणा स्त्री शिक्षा है। जिस देश की रमणी शिक्षित न होगी उसकी उन्नति नहीं हो सकती। सावित्री जन्म वर चयन, विवाह तथा यमराज की यात्रा सभी प्रमुख प्रसंगों को यथावत् स्वीकार किया है। अति प्राकृत तत्वों का विश्वास के साथ स्वीकार किया गया है। सावित्री के कथन में सती का अटूट विश्वास अभिव्यक्त हुआ है। रचना सामान्य कोटि की है। कवित्व शिथिल और अपरिष्कृत है।

दमयन्ती (ताराचन्द हारीत) १६५७ ई०

'महाभारत' के वनपर्व में 'नलोपाख्यान' की कथा के आधार पर ही ताराचन्द हारीत ने 'दमयन्ती' प्रबन्ध काव्य की रचना की। महाभारत में यह उपाख्यान युधिष्ठिर की सान्त्वना के हेतु मुनि बृहदश्व सुनाते हैं। वे धर्मराज को आश्वस्त करते हैं कि द्यूत के कारण केवल तुम्हीं पर यह वनवास की विपत्ति नहीं आई, अपितु इससे पूर्व राजा नल को भी इस विपत्ति का सामना करना पड़ा था। इस उपाख्यान में प्रमुख सन्देश यह है कि व्यक्ति के एक अपराध से विपत्ति आती तो है किन्तु वह सत्य और धर्मनिष्ठा से उस विपत्ति का निवारण करने में समर्थ हो सकता है।

महाभारत में नलोपाख्यान विस्तार से वर्णित है कवि ने उसमें और भी विस्तार करके कथा विकास में महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये हैं। महाभारतकार की दृष्टि केवल द्यूत के उद्देश्य को लेकर चली और कथा अत्यन्त क्षिप्र गति से वर्णित हुई। हारीत जी ने इस कथा में व्यक्ति के कष्टों का चित्रण करते हुए अपनी दृष्टि पूर्ण रूप से सामाजिक रक्खी है। दमयन्ती त्रस्त नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के नियमों का शिकार है। इस पर भी उसका आहत नारीत्व न तो पुरुष के समक्ष झुकता है और न अलौकिक शक्ति से पराजय मानता है। दमयन्ती के चरित्र में कवि स्त्री के सतीत्व विश्वास प्रेम और साहस की अनेक मुखी अभिव्यंजना करता है।

---

1 विदुरोपाख्यान, पृ० ८८

नल-दमयन्ती की प्रेम-कथा का स्त्री-पुरुष के अधिकार और समाज तथा स्त्री की सीमाओं के प्रकाश में पल्लवित किया गया है। नारी की महत्ता को स्वीकारते हुए नल कहते हैं —

> विधि की सर्वोत्कृष्ट सृष्टि पुरुषत्व यहां है,
> उसी शक्ति पर पूर्ण विजय नारीत्व रहा है।
> अबला हो तुम किन्तु, विपद में बल हो तुम ही,
> विश्व मरुस्थल है यह इसमें जल हो तुम ही।[1]

दमयन्ती की कथा को १४ सर्गों में विभाजित किया गया है। इसमें कवि ने 'महाभारत' के संक्षिप्त इतिवृत्तात्मक स्थलों का जीवन की मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

एकलव्य (डा० रामकुमार वर्मा) १९५७ ई०

'एकलव्य' हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डा० रामकुमार वर्मा द्वारा रचित प्रबन्ध-काव्य है जिसमें 'महाभारत' की एक प्रासंगिक कथा को आधुनिक युग की विचार धारा के सन्दर्भ में चित्रित किया गया है। 'महाभारत' में एकलव्य की कथा ३० श्लोकों में अत्यन्त शीघ्रता से कही गई है। आदिपर्व की परिचयात्मक कथाओं के मध्य गौण पात्र निषाद-पुत्र एकलव्य के चरित्र विकास को अधिक स्थान मिलना सम्भव भी नहीं था।

इतना होने पर भी डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र को प्रबन्ध काव्य के नायकत्व के योग्य समझा। स्वयं उनका कथन है कि 'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह अनार्य नहीं आर्य है क्योंकि उसमें 'शील' का प्राधान्य है। यहां उसमें महा-काव्य का नायक बनने की क्षमता है, भले ही वह 'सुर' अथवा 'सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय' नहीं है।'[1]

महाभारत की संक्षिप्त कथा का विकास कवि ने अत्यन्त कौशल के साथ किया है। दर्शन सर्ग में द्रोणाचार्य द्वारा बौंटा निकालने की कथा, परिचय में द्रोण का परिचय एकलव्य की कथा में पूर्वाभास रूप में विन्यस्त की गई है। अभ्यास में पाण्डवों-कौरवों का अभ्यास और प्रेरणा में एकलव्य की शक्ति का चित्रण है। प्रस्थान में रंगभूमि का चित्र अंकित करके आत्म निवेदन में एकलव्य की शिष्यत्व की प्रार्थना अभिव्यक्त की गई है। धारणा में एकलव्य का साधनात्मक निश्चय और उसके फलस्वरूप ममता में माता का स्नेह तथा क्षोभ अभिव्यंजित है। संकल्प और साधना

---

१ दमयन्ती पृ० २२०

१ एकलव्य आमुख पृ० ६

मे कवि एकलव्य की मानसिक दृढता और श्रम को स्पष्ट करता है। स्वप्न म अर्जुन और द्रोण की चिन्ता की अभिव्यक्ति, तथा लाघव मे एकलव्य के कौशल का प्रदर्शन करके उसकी अद्वितीयता सिद्ध की है। द्वन्द्व मे अर्जुन एव द्रोण का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है, और दक्षिणा मे एकलव्य का अगूठा दान अत्यन्त भावपूर्ण स्थिति मे चित्रित किया है।

'एकलव्य' की कथा योजना के विषय म डा० वर्मा का प्रबन्ध कौशल निश्चित ही स्तुत्य है। उन्होंने यथोचित सम्भावनाओं के आधार पर कथा मे विराम चिह्नो मे सशक्त गति भरी है। एकलव्य अकुलीन होता हुआ भी तत्कालीन सास्कृतिक सघर्ष का लक्ष्य होकर अपने अधिकार से वचित होता है।

प्रस्तुत काव्य म डा० वर्मा की प्रमुख उपलब्धि यह है कि वे एकलव्य के माध्यम से गुरु शिष्य के मध्य की राजनतिक प्राचीर को स्पष्ट कर पाये हैं। कर्ण को सारथी का पुत्र होने के कारण शिक्षा मिली। एकलव्य को शिक्षित केवल इसलिए नही किया गया कि कही, वह फिर से निषाद सस्कृति के अभ्युदय का कारण न बने।[1] गुरु द्रोण स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक को शिक्षित होना चाहिये, पर वे तत्कालीन भीष्म-नीति से बधे होने के कारण एकलव्य को शिष्यत्व न दे सके।

> राज गुरु हू, विशेष पद की मर्यादा है।
> शिक्षा नीति राजनीति के पदो है चलती।
> शारदा की वाणी यहाँ बोलती है स्वर्ण म।[2]

कवि ने एकलव्य का चरित्र आशावाद से चित्रित किया है, उसम अपने सकल्प के प्रति दृढ आस्था, विश्वास और शक्तिमय आग्रह है। कथानक म महत्वपूर्ण परिवर्तनो से एकलव्य तथा द्रोण की विवशता चित्रित की गई है। एकलव्य गुरु के मर्म को पहचान कर मौन है।

समग्रत यह काव्य नये दृष्टिकोणो पर विचार करने का अवसर देकर एकलव्य के चरित्र के द्वारा सामाजिक समानता का समर्थन करता है।

कच-देवयानी (श्रीरामचन्द्र) १९५८ ई०

'महाभारत' के आदिपर्व के उपाख्यान पर आधारित इस काव्य म बृहस्पति के पुत्र कच और शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की कथा वर्णित है। कच के गुरु के पास ज्ञान और विद्या सीखकर देवयानी के प्रणय को अस्वीकार करके चले जाने तक की कथा चित्रित है।

कथा का विकास मूल ग्रन्थ के अनुसार हुआ है। सार्वजनिक कल्याण के लिए छल को नीति का अग माना गया है।

---

१ एकलव्य पृ० ८६
२ एकलव्य, पृ० १२६

किसी एक को उठ आगे आना होगा
छलबल कौशल से अवश्य लाना होगा।[1]

देवयानी के प्रणय निवेदन में मार्मिकता उभरी है। शेष काव्य अत्यन्त साधारण कोटि का है —

देवयानी कहती है —

कच ! क्या तू सचमुच लब्ध काम
उर का टटोल कुछ नहीं शेष
कितनी पीडा दे चला हाय !
क्या तुमको कुछ भी नहीं क्लेश ![2]

किन्तु कच सन्तोष का उपदेश देकर जाना चाहता है। देवयानी के सामाजिक विद्रोह का समाधान भी कच आदर्शवादी विचार धारा में करता है। गुरु-कन्या के प्रति प्रणय की अस्वीकृति से आदर्श की स्थापना करता है। कहीं-कहीं मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व भी उभरा है।

सेनापति कर्ण (लक्ष्मीनारायण मिश्र) १९५८ ई०

हिन्दी के यशस्वी नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कर्ण के जीवन पर आधारित इस प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। सेनापति कर्ण में मिश्र जी ने कर्ण का सम्पूर्ण चरित्र न लेकर युद्ध-सम्बन्धी जीवन को काव्य का आधार बनाया है। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में कौरवों का दल युद्ध के लिए तैयार है तभी दुर्योधन अपने अनन्य मित्र की ओर आशा से देखता है।

इस कथा की एक निराली विशेषता यह है कि समस्त कथा का विकास मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ होता है। कवि ने इस प्रकार कथा संघटन किया है कि कथा का इतिवृत्त गौण और तत्सम्बन्धी प्रबन्ध-योजना बंधी हुई प्रबन्ध परिपाटी के अन्तर्गत न होकर स्वतन्त्र रूप में विन्यस्त है।

कवि की दृष्टि सामान्यतः निरपेक्ष रूप से कौरव-पाण्डवों के चरित्रांकन में व्यक्त रही है। इस पर भी यह स्पष्ट है कि सहानुभूति का प्रबल भाग कौरव पक्षीय वीरों को मिला है। कवि ने कथा में कुछ परिवर्तन तो ऐसे किए हैं, जिनसे महाभारत की प्रमुख घटना के विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। कवि अपने ज्ञान की सीमाओं में अपने पक्ष के लिए तर्क भी करता है और सिद्ध कर देता है कि वह सत्य है। हिडिम्बा के प्रसंग में कवि की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक दृष्टि स्तुत्य है।

---

१ कच-देवयानी पृ० ९
२ कच-देवयानी, पृ० ३२

सम्पूर्ण काव्य मन्त्रणा, चिन्ता, सन्धिक्रम, विषाद और अर्घ्यदान इन पांच शीर्षकों में विभाजित किया गया है। मन्त्रणा में कौरव पक्ष की युद्ध सम्बन्धी मन्त्रणा, चिन्ता में दोनों ओर की चिन्ता और सन्धिक्रम में पाण्डवों के परिचय के साथ द्रौपदी के पांच पुत्रों का प्रश्न तथा विषाद में दुःशासन की पत्नी की मनोव्यथा और अर्घ्यदान में घटोत्कच द्वारा अपने को कर्ण से युद्ध के लिए प्रस्तुत करने का चित्रण किया गया है। आत्मकथा के प्रवाह में अनेक मनोवैज्ञानिक स्थल उत्तम काव्य के द्योतक हैं। इसी कारण यह काव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

दानवीर कर्ण (गुरुपद्म सेमवाल) १९५९ ई०

कर्ण की दानशीलता और उसके चरित्र के अन्य गुणों का ध्यान में रखकर 'महाभारत' की कथा के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। इस काव्य का मुख्य प्रश्न यह है कि क्या 'महाभारत' का युद्ध श्रीकृष्ण की कूटनीतिक वृत्ति, कुन्ती की दुष्कर निर्दयता, दुर्योधन के लोभ, पाण्डवों का बलदर्प और कर्ण की आत्मश्रेष्ठता की भावना का ही परिणाम था या कुछ और ?

कवि काव्य रचना के मध्य गद्य में टिप्पणियां देकर मूल कथा से सम्बद्ध कथाओं को स्पष्ट करता है। यह प्रबन्ध की दुर्बलता है—ये सारी बातें प्रबन्ध के अन्तर्गत अपेक्षित थीं।

कथा का प्रारम्भ दुर्वासा के भोज के लिए आने से होता है। दुर्वासा जाते समय वरदान देते हैं—कुन्ती सद्भाव-कर्म विधान का वरदान मांगती है —

> कुन्ती बोली प्रभु वर इतना अधिक वरदान है।
> हो स्व मन अन्तःकरण सद्भाव कर्म विधान है।[1]

दुर्वासा वरदान देते हैं और चेतावनी देते हैं —

> हो विपद यदि जो जपा बिन धारणा उपहास में।
> कर अनिष्ट महाविकटघन काल हो सब नाश में।[2]

कवि का विचार है कि 'महाभारत' में रणभूमि का प्रस्थान अर्जुन की प्रमुखता के लिए ही रचा गया था।[3] इसमें इन्द्र कर्ण का प्रसंग विस्तृत रूप में चित्रित है। द्रौपदी स्वयंवर में भी कर्ण को जातीयता के कारण पराजित होना पड़ा। कवि ने कृष्णत्व पर आघात किया है।

> युद्ध का यदि रोज देते निज अतुल बल बुद्धि से।
> तो भला नहिं मानते जन ईश उनको सिद्धि से।[4]

---

१ दानवीर कर्ण, पृ० ६
२ दानवीर कर्ण, पृ० ६
३ दानवीर कर्ण, पृ० १०
४ दानवीर कर्ण, पृ० ४८

द्रौपदी (नरेन्द्र शर्मा) १९६० ई०

द्रौपदी खण्ड-काव्य की रचना 'महाभारत' की कथा के आधार पर हुई है। द्रौपदी के जीवन पर आधारित यह काव्य अन्य काव्यों की अपेक्षा अपनी पृथक् सत्ता घोषित करता है। कवि ने अत्यन्त आस्थावादी दृष्टिकोण से द्रौपदी का जीवनी शक्ति के रूप में अभिव्यक्त कर उसे नारी शक्ति का दृप्त दीप्त प्रतीक माना है। 'महाभारत' के पात्रों का प्रतीक अर्थ लेकर पुरुष की उन्नति में नारी के बलिदान को प्रधानता दी है।

गुरु दक्षिणा (विनोदचन्द्र पाण्डेय) १९६२ ई०

'महाभारत' के एकलव्य प्रसंग के आधार पर गुरु-दक्षिणा खण्ड काव्य की सृष्टि हुई है। कवि एकलव्य को दलित और उपेक्षित मानता है, तथा आधुनिक युग की जागृति मूलक भावना से प्रेरित होकर एकलव्य की गुरु भक्ति का नमन करता है। महाभारत' का काल वर्ण-व्यवस्था का कट्टर समर्थक था वर्तमान काल में विज्ञान के आलोक में वर्ण-व्यवस्था का बन्धन शिथिल हो रहा है ऐसे समय में प्राचीन उपेक्षित पात्र की चारित्रिक विशेषताओं से वर्तमान काल का पतित व्यक्ति प्रेरणा प्राप्त करके अपने कर्म के बल पर उन्नति कर सकता है। यह कल्याण कारी भावना इस खण्ड काव्य में व्याप्त है।

कौन्तेय कथा (उदयशंकर भट्ट) १९६२ ई०

महाभारत के किरात और अर्जुन के युद्ध प्रसंग को लेकर उदयशंकर भट्ट जी ने 'विजय पथ' नामक खण्ड काव्य की रचना की। द्वितीय संस्करण में इसका नाम 'कौन्तेय कथा' रख दिया—पाण्डवों की कथा प्रमुख होने के कारण यह नाम करण उचित ही है।

इस काव्य में कवि ने प्राचीन काल में अनेक संस्कृतियों की पृथक् स्थिति की कल्पना की है। उनका विचार है कि इन संस्कृतियों में धीरे धीरे समन्वय हुआ और शिव संस्कृति की प्रधानता रही। शिव संस्कृति ने अन्य जातियों में भेदभाव समाप्त कर प्रेम भावना का प्रसार किया।

'कौन्तेय कथा' में पाण्डवों की दुःखात्मक स्थिति की भावमूलक अभिव्यक्ति के मध्य अर्जुन एवं भीम के शौर्य की व्यंजना और युधिष्ठिर की सात्विकता के मध्य शक्ति की अनिवार्यता का प्रतिपादन हुआ है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने वाले व्यक्ति की सहायता सभी शक्तियाँ करती हैं—इस आस्था के साथ आत्मदृढ़ता की भी अभिव्यक्ति हुई है। अपने लघु कलेवर में यह काव्य सांस्कृतिक उत्थान की महती भावना लिए हुए है।

तृतीय अध्याय

आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व महाभारत की प्रभाव-परम्परा

आधुनिक हिन्दी काव्य के पूर्व 'महाभारत' की प्रभाव परम्परा म सस्कृत,[1] अपभ्रन्श और हिन्दी के अनेक प्रकाशित एव अप्रकाशित ग्रन्थो की एक अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है। इतने सुदीर्घ समय म प्राप्त होने वाले काव्यो क अध्ययन से, प्रत्येक काल म विशेष विचारधारा के दर्शन होते हैं। प्रत्येक कवि अपने व्यक्तिगत जीवन दृष्टिकोण के आधार पर 'महाभारत' से प्रभावित हुआ है। 'महाभारत' की कथा को लेकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन ऐसे काव्यो की स्वतन्त्र विशेषता है—जैसे भारवि ने 'किरातार्जुनीय' कथानक को शवदर्शन के आलोक म परिवर्तित किया और माघ ने महाभारतीय कथानक को वैष्णवी चिन्तनधारा क प्रकाश म चित्रित किया।

सस्कृत के काव्य सामान्य विशेषताए

'महाभारत' के आख्यानो पर आधारित सस्कृत क विभिन्न काव्यो की कतिपय विशेषताए सामान्य हैं। प्रत्येक कवि ने महाभारत की आत्मा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है, और महाभारतीय कथा सूत्र के साथ यदि कही अन्य स्रोतो से कथा रूप प्राप्त हुआ उसे भी ग्रहण कर लिया गया। ('महाभारत' की चरित्र सृष्टि को कवि ने अपने आदर्शों के अनुसार परिवर्तित किया है।) ये पात्र उपाख्यानो म यद्यपि स्वतन्त्र नायक क रूप म आते हैं, तथापि उनका व्यक्तित्व मूल वस्तु से आवृत्त रहता है। (सस्कृत के काव्यो म नायको के व्यक्तित्व को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महाभारतकार के समक्ष धीरोदात्त धीरललित आदि नायक के भेदो की स्थिति नही थी—सस्कृत का कवि अपने चरित नायको को इसी सीमा म अनुबद्ध रखना चाहता था, अत उसने नायक के चरित्राकन म जिस कथा-खण्ड को बाधक समझा उसे छोड दिया और कथा क अन्तराल को कल्पना से भर दिया। कालिदास के दुष्यन्त, भारवि के अर्जुन, माघ के कृष्ण एसे ही नायक हैं। इसके अतिरिक्त सभी कवियो ने कथा के मध्य पात्रगत मानसिक द्वन्द्व की अवतारणा करके, पात्रो को अधिकाधिक मानवीय रूप दिया है। इन कवियो ने अति प्राकृत तत्वो को यथा सम्भव मूलग्रन्थ के अनुसार ही ग्रहण किया, और विरल रूप मे परिवर्तन किया है। सस्कृत काव्य परम्परा म सबसे प्रमुख विशेषता यह है, कि 'महाभारत' के उन

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १३६

आधुनिक हिन्दी काव्य-पूर्व महाभारत की प्रभाव-परम्परा

आधुनिक हिन्दी काव्य के पूर्व 'महाभारत' की प्रभाव परम्परा में संस्कृत,[1] अपभ्रंश और हिन्दी के अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित ग्रन्थों की एक अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है। इतने सुदीर्घ समय में प्राप्त होने वाले काव्यों के अध्ययन से प्रत्येक काल में विशेष विचारधारा के दर्शन होते हैं। प्रत्येक कवि अपने व्यक्तिगत जीवन दृष्टिकोण के आधार पर 'महाभारत' से प्रभावित हुआ है। 'महाभारत' की कथा को लेकर अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन ऐसे काव्यों की स्वतन्त्र विशेषता है—जैसे भारवि ने 'किरातार्जुनीय' कथानक को शैवदर्शन के आलोक में परिवर्तित किया और माघ ने महाभारतीय कथानक को वैष्णवी चिन्तनधारा के प्रकाश में चित्रित किया।

संस्कृत के काव्य सामान्य विशेषताएं

'महाभारत' के आख्यानों पर आधारित संस्कृत के विभिन्न काव्यों की कतिपय विशेषताएं सामान्य हैं। प्रत्येक कवि ने 'महाभारत' की आत्मा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है और महाभारतीय कथासूत्र के साथ यदि कहीं अन्य स्थानों से कथा रूप प्राप्त हुआ उसे भी ग्रहण कर लिया गया। ('महाभारत' के चरित्र सृष्टि को कवि ने अपने आदर्शों के अनुसार परिवर्तित किया है।) ये पात्र उपाख्यानों में यद्यपि स्वतन्त्र नायक के रूप में आते हैं, तथापि उनका व्यक्तित्व मूल वस्तु से आवृत रहता है। (संस्कृत के काव्यों में नायकों के व्यक्तित्व को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि महाभारतकार के समक्ष धीरोदात्त, धीरललित, आदि नायक के भेदों की स्थिति नहीं थी—संस्कृत का कवि अपने चरित्र नायकों को इसी सीमा में अनुबद्ध रखना चाहता था, अतः उसने नायक के चरित्रांकन में जिस कथा खण्ड को बाधक समझा उसे छाँट दिया और कथा के अन्तराल को कल्पना से भर दिया। कालिदास के दुष्यन्त, भारवि के अर्जुन, माघ के कृष्ण ऐसे ही नायक हैं। इसके अतिरिक्त सभी कवियों ने कथा के मध्य पात्रगत मानसिक द्वन्द्व का अवतारणा करके, पात्रों का अधिकाधिक मानवीय रूप दिया है। इन कवियों ने अति प्राकृत तत्त्वों को यथा सम्भव मूलग्रन्थ के अनुसार ही ग्रहण किया, और विरल रूप में परिवर्तन किया है। संस्कृत काव्य-परम्परा में सबसे प्रमुख विशेषता यह है, कि 'महाभारत' के इन

---

1 हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १३६

आख्याना को ही काव्य का आधार बनाया है जिनसे कवि किसी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परम्परा को अक्षुण्ण रख सके। क्षात्र धर्म की पुन स्थापना युद्ध प्रधान काव्यों का मुख्य ध्येय रहा है।

पालि-अपभ्रंश काव्यों की विशेषताएं

महाभारत का प्रभाव पालि और अपभ्रंश ग्रन्थों पर भी पड़ा है। पालि के 'महावंश-दीप-वंश' और प्राकृत अपभ्रंश के 'पउमचरिउ' महापुराण (तिसट्ठी महा पुरिस गुणालंकार) आदि ग्रन्थों में 'महाभारत' की शैली अपनाई गई है। प्राकृत अपभ्रंश के महाकाव्यों की रचना महाभारत और पुराणों के आधार पर ही हुई है। जैन महाभारत तथा जैन पुराण इस तथ्य के प्रमाण हैं।

अपभ्रंश काव्यों की मुख्य विशेषता कथा का परिवर्तन है। सामान्यत सभी प्रबन्ध-काव्यों और महापुराणों में महाभारत की एकान्त कथा न लेकर 'महाभारत' और रामायण की सम्मिलित कथा का वर्णन किया गया है। इनमें अनेक स्थलों पर जैन धर्म के अनुसार विचार धारा और कथा तथा पात्रों की स्थिति का चित्रण इस रूप में किया है कि 'महाभारत' से अपरिचित व्यक्ति उन्हें मूल रूप से जैन धर्म के कथा और पात्र समझ सकता है। उदाहरणार्थ पद्मचरित्र में 'महाभारत' से परीक्षित की कथा ली गई है किन्तु परीक्षित एक जैन मुनि के गले में माला डालता है। जैन धर्म के प्रभाव में लिखे गये 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों द्वारा भारतीय वैदिक संस्कृति का विकास न होकर जैन धर्म का प्रचार होता है। अत अपभ्रंश के काव्यों का मूल्य साहित्यिक और ऐतिहासिक है।

हिन्दी-साहित्य

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ तक आते आते पौराणिक शैली के महाकाव्य, अलंकृत महाकाव्य विकसनशील महाकाव्य आदि विभिन्न काव्य-रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी। हिन्दी पूर्ववर्ती अपभ्रंश की काव्य परम्परा की विषय वस्तु और शैली का आधार मानकर संधियुग में अनेक रचनाएं हो चुकी थी।[1] १० वीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषा की अनेक रचनाएं अब उसी शैली में लिखी जा रही थी।[2] अत हिन्दी साहित्य के प्रथम युग में इस मध्यवर्ती साहित्य के माध्यम से महाभारत का प्रभाव पड़ना नितान्त स्वाभाविक था। वीर गाथा-काव्यों के अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि महाभारत की शैली और युद्ध वर्णन का प्रत्यक्ष प्रभाव रासो काव्यों पर पड़ा है। यत्र-तत्र कथा-खण्डों का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से मिल जाता है। वीरगाथाकाल की वीर भावना और वीर चरित्रों का निरूपण भी महाभारत

---

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १४७

२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० १५१

की प्रभाव-परम्परा के अन्तर्गत हुआ है। महाभारत की वीर भावना और वीर चरित्रों की सम्पूर्ण विशेषताएं वीर-काव्य (रासो काव्य) में उपलब्ध हैं।

आदिकाल के बाद पूर्व मध्यकाल के भक्ति आंदोलन में 'महाभारत' की विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं है। भक्ति के जिस रूप की चर्चा कृष्ण और विष्णु के साथ 'महाभारत' में आई है उसका विकास प्रभूत मात्रा में परवर्ती पुराणों, विशेषकर भागवत पुराण' में, हो चुका था। शंकराचार्य के परवर्ती दार्शनिकों ने इतने व्यापक रूप से भक्ति सिद्धांत का प्रचार किया कि 'महाभारत' में प्राप्त भक्ति का बिन्दु इस व्यापक प्रचार में अन्तर्मुक्त हो गया, अतः भक्ति आन्दोलन को 'महाभारत' प्रतिपादित साधन-मार्ग से अप्रत्यक्ष प्रेरणा मिली। इसके साथ कतिपय भक्त कवियों की रचनाओं को दर्शन की दृष्टि से 'महाभारत' ने प्रभावित किया। तुलसी कृत 'रामचरित मानस' पर 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट है। 'सूरसागर' के कुछ पदों में 'महाभारत' की अन्त कथाओं को लिया गया है।

भक्ति-काव्य धारा के प्रसंग में प्रेमाख्यानक काव्य-परम्परा का उल्लेख करना परमावश्यक है। 'महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित प्रेमाख्यानक परम्परा में अनेक काव्यों की रचना हुई। डा० सत्येन्द्र ने नल चरित्र पर आधारित ९ रचनाओं की सूचना दी है।[1] इनके अतिरिक्त अनेक रचनाएं सभा की खोज रिपोर्ट में उद्धृत हैं। नल-दमयन्ती की प्रेमगाथा सूफी और अन्य प्रेमाख्यानक परम्परा के कवियों को अधिक रुचिकर लगी अतः इस आख्यान पर आधारित काव्य रचना की प्रस्तुत परम्परा प्राप्त होती है।

१७ वीं शती से १९ वीं शती तक हिन्दी की रीति-काव्य धारा पर 'महाभारत' का प्रभाव प्राप्त नहीं है किन्तु इस युग में कतिपय वीर-काव्यों की रचना हुई हैं। उन पर 'महाभारत' की विचार धारा का प्रभाव तत्कालीन राष्ट्रीयता की भाषा में परिलक्षित होता है। यद्यपि इस काल के अन्तर्गत प्रेमगाथाएं अधिक लिखी गई किन्तु महाभारत के विभिन्न पर्वों के छायानुवाद की प्रवृत्ति भी व्यापक रूप से मिलती है और युद्ध प्रसंग पर भी उल्लेखनीय रचनाएं हुई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'महाभारत' की विषय वस्तु शैली के प्रभाव की एक अविच्छिन्न परम्परा विद्यमान है। अब उक्त परम्परा में प्राप्त ग्रंथों की संक्षिप्त समीक्षा की जा रही है।

संस्कृत साहित्य

पंचम वेद अर्थात् 'महाभारत' का प्रभाव भारतीय परवर्ती साहित्य पर इतना अधिक पड़ा कि यदि संस्कृत के महाभारत-दाय-सम्पन्न ग्रंथों को अलग कर दिया जाय

---

१ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन पृ० २३८
(इन रचनाओं का सांकेतिक उल्लेख इसी अध्याय में आगे कर दिया गया है)

सा गिनती के कुछ ही उच्चकोटि के ग्रन्थ शेष रह पायेंगे। संस्कृत का उच्चकोटि का साहित्य महाभारतीय कथानकों पर आधारित है।

इस प्रभाव परम्परा में एक विशेष बात यह है कि प्रत्येक कवि ने निज का सीधा सम्पर्क 'महाभारत' से स्थापित किया और महाभारतीय आख्यान तथा पात्र के मध्यवर्ती परिवर्तन पर ध्यान न देकर अपनी और महाभारतकार की मान्यताओं की संगति एवं असंगति का विचार किया है। उपलब्ध साहित्य के अनुसार संस्कृत के निम्नांकित कवि 'महाभारत' से प्रभावित हैं :—

भास—'दूत वाक्य' 'कर्णभार' 'दूत घटोत्कच' 'उरुभंग' 'मध्यम व्यायोग' तथा 'पंचरात्र'; कालिदास—'अभिज्ञान शाकुन्तलम्'; भारवि—'किरातार्जुनीय'; भट्टनारायण—'वेणी संहार'; माघ—'शिशुपाल वध'; कुलशेखर वर्मन—'सुभद्रा धनंजय'; नीतिवर्मन—'कीचक वध'; राजशेखर—'बालभारत'; क्षेमीश्वर—'नैषधानन्द'; वत्सराज—'किरातार्जुनीय व्यायोग'; श्रीहर्ष—'नैषधचरित'; रामचन्द्र—'नलविलास'; निर्भय भीम—; अमरचन्द्र—'बालभारत'; देवप्रभसूरी 'पाण्डव चरित'; 'कृष्णानन्द-सहृदयानन्द'; अगस्त्य—'बालभारत'।

दूत वाक्य—यह नाटक एकांकी व्यायोग है। इसमें 'महाभारत' के उद्योग पर्व से कथा ग्रहण की गई है। राजदूत भगवान कृष्ण शांति सन्देश लेकर कौरवों की सभा में जाते हैं। दुर्योधन के हठ के कारण भगवान को विफल मनोरथ लौटना पड़ता है। इस नाटक में भास ने महाभारतीय कथा का यथावत् ग्रहण किया।

कर्ण भार—'कर्ण भार' एक अंक का नाटक है। इसकी कथा 'महाभारत' के वनपर्व के कुण्डलाहरण भाग से ग्रहीत है। इसमें महादानी कर्ण ब्राह्मण वेशधारी देवराज इन्द्र को अपना कवच कुण्डल दान में देते हैं। इस नाटक में कर्ण की दानवीरता की अभिव्यक्ति हुई है।

दूत घटोत्कच—इस नाटक की कथा का आधार महाभारत का द्रोणपर्व है। अभिमन्यु वध के उपरान्त अर्जुन जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा करते हैं और कौरव-पक्ष को सूचित करने के हेतु श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर भेजते हैं। कौरव शिविर में घटोत्कच का अपमान किया जाता है तो वहां भयंकर युद्ध छिड़ जाता है। नाटककार ने महाभारत के आधार पर कथा का स्वतंत्र विकास किया है। घटोत्कच के दूतत्व की कल्पना नाटककार की रचना बनी है।

उरुभंग—इस नाटक की कथा गदापर्व से ग्रहीत है। भीम एवं दुर्योधन के युद्ध के उपरान्त दुर्योधन का करुणापूर्ण अन्त इस नाटक की अपनी एकान्त विशेषता है।

मध्यम व्यायोग—इस एक अंक के व्यायोग में भीम के द्वारा एक ब्राह्मण कुमार की भयंकर राक्षस से रक्षा का कथानक ग्रहण किया गया है। इसको मध्यम व्यायोग इसलिए कहा गया है कि इसमें मध्यम पाण्डव की कथा चित्रित है।

पंचरात्र —'पंचरात्र' में नाटककार ने 'महाभारत' की विराटपर्व की कथा के आधार पर अपनी कल्पना से कथा का नितान्त भिन्न रूप में चित्रित किया है। द्रोण दुर्योधन से पाण्डवों को आधा राज्य देने का प्रस्ताव करते हैं। तो दुर्योधन सशर्त द्रोण के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है। शर्त है (अज्ञातवास के समय) पाण्डव पाँच रात्रियों के भीतर ही कौरवों को मिलें। द्रोण इस मिलन में सफल हो जाते हैं और पाण्डवों को आधा राज्य प्राप्त होता है। नाटककार ने कथा विकास में अधिक स्वतन्त्रता का उपयोग किया है।

अभिज्ञान शाकुन्तल —संस्कृत के प्रसिद्ध महाकवि कालिदास ने 'महाभारत' के आदिपर्व में वर्णित शकुन्तलोपाख्यान के आधार पर इस नाटक की रचना की है। महाभारत की कथा को कालिदास ने नायक एवं नायिका की चरित्र भावना के कारण अपनी कल्पना शक्ति से अद्भुत कथात्मक एवं चारित्रिक उत्कर्ष तथा परिवर्तन के साथ चित्रित किया है। 'महाभारत' में शकुन्तला स्वयं अपने जन्म की कथा कहती है किन्तु 'शाकुन्तल' नाटक में उसकी सखियाँ यह कार्य सम्पन्न करती हैं। 'महाभारत' की शकुन्तला प्रगल्भ, स्पष्टवादिनी और निर्भीकमना स्त्री है किन्तु कालिदास की शकुन्तला, लज्जाशीला, प्रेम परायणा स्वाभिमानिनी तरुणी है।

महाभारत में कण्व थोड़े समय के लिए अनुपस्थित हैं किन्तु नाटक में कवि ने ऋषि की लम्बी अनुपस्थिति के कारण घटनाओं की स्वाभाविक पृष्ठभूमि तैयार की है। इसी बीच कवि ने दुर्वासा के शाप की स्वतन्त्र कल्पना की जिसके आधार पर वह अपने नायक के चरित्र को दोषों से बचा गया। यह कथा निश्चित रूप से महाभारत से गृहीत है। यह सर्व स्वीकृत तथ्य है कि 'पद्मपुराण' की रचना चाहे जब हुई हो किन्तु उसमें यह प्रसंग कालिदास के उपरान्त ही जुड़ा ज्ञात होता है।

कालिदास ने महाभारत' के पात्रों को आदर्शोन्मुख चित्रित किया है किन्तु वे सभी अपनी व्यक्तिगत विशेषता के साथ सजीव एवं स्वाभाविक हैं। दुष्यन्त धीरोदात्त नायक हैं। वे प्रभावसम्पन्न तथा मधुरभाषी हैं।

चतुरगम्भीराकृतिश्चतुरं प्रियमालापं प्रभाववन्निव लक्ष्यते[1]

कालिदास ने दुष्यन्त के चरित्र को महाभारतीय सामन्तकालीन राजाओं की यथार्थ भावना से पृथक् रूप में चित्रित किया है। उन्होंने अपने नायक की आदृत प्रेममयी मूर्ति को भी कर्तव्यनिष्ठ चित्रित किया है।

येनयेन वियुज्यन्ते प्रजाः स्निग्धेन बन्धुना।
स स पापादृते तासां दुष्यन्त इति घुष्यताम्।[2]

---

१ शाकुन्तल २।४
२ शाकुन्तल, ६।२०

'महाभारत' के दुष्यन्त में राज्योचित गर्व की भावना है[1] किन्तु 'शाकुन्तल' के दुष्यन्त एकनिष्ठ प्रेमी के रूप में प्रिया से क्षमा याचना करते हैं।[2]

दुष्यन्त के चरित्र की भांति ही शकुन्तला के चरित्र में भी 'महाभारत' से अधिक स्वाभाविकता और सजीवता का समावेश है। 'महाभारत' में शकुन्तला दुष्यन्त के प्रणय को पुत्र के युवराजत्व की शर्त के साथ[3] स्वीकार करती है। यह शर्त शकुन्तला के प्रखर व्यक्तित्व की द्योतक है और महाभारतकालीन राजपुरुषों के प्रणय के विषय में व्याप्त अस्थिरता की झलक देती है। राजपुरुष राज्य मद में प्रेम करके पुनः तृणवत् त्यागने की प्रवृत्ति से युक्त रहे होंगे, अतः 'महाभारत' की शकुन्तला भावुक प्रेयसी न होकर भविष्य की सुखद कामना करने वाली ऐसी स्त्री है जिसकी व्यक्तिगत दूरदर्शिता असंदिग्ध है। कवि को 'महाभारत' की शकुन्तला का यह कठोर आवरण सुन्दर नहीं लगा अतः उसने शकुन्तला के चरित्र को अधिक भावनामय, प्रेमपूर्ण और समर्पणात्मक चित्रित किया है। शकुन्तला के चरित्र में तपस्विनी एवं गृहस्थी, ऋषि-कन्या एवं प्रेमिका, प्रकृति की शान्तता और स्वाभाविक चंचलता का अद्भुत सौन्दर्यपरक सम्मिश्रण किया गया है।

इस प्रकार कालिदास ने 'महाभारत' के कथानक को कवि-सुलभ भावुकता से परिष्कृत कर अभिनव रूप में उपस्थित किया है।

किरातार्जुनीय —भारवि की कीर्ति का स्तम्भ 'किरातार्जुनीय' 'महाभारत' के वनपर्व की कथा के आधार पर रचित महाकाव्य है। द्यूत क्रीड़ा में हारकर पाण्डवों ने द्वैतवन में निवास किया, जब उनको अपने गुप्तचर के द्वारा दुर्योधन की शासन-व्यवस्था का ज्ञान हुआ तो भीम और द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित किया। किन्तु धर्मराज अपने वचन से विचलित नहीं हुए। व्यास जी के परामर्श से अर्जुन इन्द्रकील पर्वत पर पाशुपतास्त्र प्राप्त करने गये, वहां भगवान् शिव ने किरात वेश में अर्जुन के वीरत्व एवं धर्म की परीक्षा ली और प्रसन्न होकर दिव्यास्त्र पाशुपत प्रदान किया।

प्रस्तुत काव्य के कथानक में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है। 'महाभारत' के संक्षिप्त कथा रूप को महाकाव्योचित गौरव प्रदान करने के हेतु अनेक वर्णनों को स्थान दिया गया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'महाभारत' के पात्र और भी अधिक सजीव हैं। अतिशय प्रभावपूर्ण चरित्र चित्रण के अन्तर्गत तिरस्कार से आहत द्रौपदी के हृदय की प्रतिशोध ज्वाला के स्फुलिंगों को कवि ने उत्कर्ष में चित्रित किया है। भीम का पराक्रम और पुरुषार्थ भी यथावत् सुरक्षित है। युधिष्ठिर की शान्ति प्रियता भी

१ म० आदि० ७४।१२४
२ शाकुन्तल, ७।२२
३ म० आदि०, ७३।१६ १७

अपने भव्य रूप में अंकित हुई है अर्जुन का वीरत्व अपने चरम रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

वेणी-संहार —इस नाटक का कथानक 'महाभारत' के अनेक पर्वों से गृहीत है। नाटककार ने सभापर्व में द्रौपदी के केश खींचे जाने एवं भीम की प्रतिज्ञा का कथानक लिया है। द्रोणपर्व से द्रोण-वध के उपरान्त अश्वत्थामा एवं कर्ण का संवाद तथा वृषसेन के वध का वृत्तान्त लेकर गान्धारी एवं धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को सन्धि के लिए समझाने की कथा ग्रहण की है। गदापर्व में दुर्योधन के वध की घटना और शान्तिपर्व से चार्वाक के प्रसंग को लेकर कथा का विकास किया है। कथा के कुछ अंश 'महाभारत' से यथावत् ग्रहण करके कुछ अंशों को नाटककार ने स्वतन्त्र रूप से उपस्थित किया है। सामान्यतः कथा के क्रम में अनेक परिवर्तन किए हैं यथा चार्वाक के प्रसंग को दुर्योधन वध की घटना के पूर्व चित्रित करके युधिष्ठिर की ग्लानि का चित्र उपस्थित किया है।

'महाभारत' में अश्वत्थामा एवं कर्ण के कटु संवाद का अभाव है कवि ने इस प्रसंग को सम्भावनाओं के आधार पर स्वतन्त्र रूप में प्रस्तुत किया है। गान्धारी और धृतराष्ट्र द्वारा दुर्योधन को समझाने का प्रसंग भी अन्य स्थान से लेकर यहाँ गुम्फित है। चार्वाक के प्रसंग में युधिष्ठिर का भ्रातृ प्रेम और द्रौपदी का पतिव्रत अभिव्यक्त हुआ है। इसमें कर्ण एवं दुर्योधन का चरित्र अधिक स्वाभिमान और तेजस्विता से चित्रित है। महाभारतीय विचारधारा के प्रतिकूल वेणी संहार में दुर्योधन को भीम से अधिक मानवीय दिखाया है। कवि ने दुर्योधन का चरित्र इस प्रकार चित्रित किया कि उसकी दुर्बलताएँ भी हमारे मन में सहानुभूति उत्पन्न कर देती हैं।

शिशुपालवध —माघ द्वारा रचित यह काव्य 'महाभारत' के सभापर्व में प्राप्त शिशुपाल के प्रसंग पर आधारित है। इसको कवि ने अनेक स्वरचित उपप्रसंगों से संयुक्त करके महाकाव्य का रूप दिया है। 'शिशुपाल-वध' में बलराम-श्रीकृष्ण और उद्धव के मध्य राजनैतिक संवाद नारद का उपदेश शिव के दूत द्वारा अर्जुन का अपमान, और शिशुपाल तथा श्रीकृष्ण की सेना के युद्ध-वर्णन का विकास स्वतन्त्र रूप में हुआ है। महाभारत में इन प्रसंगों का अभाव है। कथान्तर्गत अनेक शून्यों को भरने के हेतु कवि ने आलंकारिक चित्रों की अवतारणा की है।

प्रस्तुत काव्य में शिशुपाल का वीरत्व और दूत की वाक्चतुरता अत्यन्त सुन्दर रूप में व्यक्त है। कृष्ण का व्यक्तित्व सर्वोपरि है उनमें देवत्व की भावना का समावेश आधार ग्रन्थ के अनुसार ही प्राप्त होता है।

सुभद्रा धनंजय—कुलशेखर वर्मन के 'सुभद्रा धनंजय' नाटक में अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का कथानक है। इसमें लेखक ने अर्जुन की वीरत्व सम्पन्न प्रेम-मूर्ति का चित्रण किया है।

कीचक वध —नीतिवर्मा की रचना कीचक वध म 'महाभारत' क लोक विश्रुत विराटपव का कथानक ग्रहण किया गया है इसम कीचक की वासना निकृष्ट रूप म और द्रौपदी का पतिव्रत अत्यत उत्कृष्टता म चित्रित हुआ है। स्त्री के सतीत्वधम की पुन प्रतिष्ठा ही इस रचना की प्रेरणा है।

बालभारत—'महाभारत स प्रभावित राजशेखर के इस नाटक के दो अक उपलब्ध हैं। इनम द्रौपदी स्वयवर और द्यूत का वणन है।

नषधानन्द —क्षेमीश्वर न महाभारत के नलोपाख्यान पर आधारित 'नषधानन्द नाटक की रचना की है। नल दमयन्ती की कथा मे नाटककार ने स्वतन्त्र विकास करत हुए भी महाभारत के पात्रो की स्थिति म विशेष परिवतन नहीं किया कहीं-कहीं चरित्र चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक है।

किरातार्जुनीय व्यायोग —यह एक एकाकी व्यायोग है जिसम वत्सराज न भारवि के प्रसिद्ध काव्य के आधार पर 'व्यायोग की रचना की है।

नषधचरित —श्री हष के नैषधचरित का कथानक महाभारत क विश्रुत नलोपाख्यान पर आधृत है। इसम कवि न २२ सर्गों म नल दमयन्ता के प्रेम की कथा सरस शैली म वर्णित की है। इस महाकाव्य म महाभारत की सक्षिप्त कथा का अत्यन्त विस्तार है। विस्तार के हेतु कवि ने सौन्दय वणन वस्तुवणन आदि का आश्रय लिया है। सम्पूण दशम सग दमयन्ती के नखशिख वणन स पूण है। यद्यपि दमयन्ती के सौन्दय चित्रण म द्वितीय सग का पिष्टपेषण है।

नषध का कथानक मानव के प्रेममय जीवन की एकांगिकता का कथानक है, इसम मानव जीवन की समग्रता का अकन नहीं हो पाया है।

नषध के उपरान्त सस्कृत क श्रेष्ठ महाकाव्यो की परम्परा अवरुद्ध हो गई। तदनन्तर महाभारत स प्रभावित कुछ नाटक और चरितकाव्यो की रचना हुई। परवर्ती रचनाकारो की रचनाओ म महाभारत के कथानक का उपयोग किया गया है, किन्तु उन्होंने कथा विकास और चरित्र चित्रण की दृष्टि स अपन पूववर्ती कवियों का ही अनुसरण किया है।

१४ वीं शताब्दी म भी महाभारत के प्रभाव की परम्परा प्रचलित रही। वासुदेव कवि के युधिष्ठिर विजय और नलोदय प्रसिद्ध काव्य हैं। इसी शती म अगस्त्य का २० सर्गों का काव्य बालभारत अत्यत प्रसिद्ध है।

१५ वीं शताब्दी का वामनभट्ट द्वारा रचित 'नलाभ्युदय' काव्य नल दमयन्ती की कथा पर आधारित है। इसक अतिरिक्त महाभारत स प्रभावित काव्यो और नाटको की परम्परा चलती रही, पर नया सस्कृत साहित्य म उल्लेखनीय रचना नहीं हुई।

रिट्ठणेमिचरिउ हरिवंश पुराण (स्वयंभू) ८ वीं शती

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने जैन धर्मानुसार 'महाभारत' की कथा का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट होता है कि संस्कृत काव्यों की परम्परा अपभ्रंश में भी जीवित रही और परवर्ती साहित्य इस परम्परा का ऋणी है। इस महाकाव्य में ११२ संधियां और १९३७ कडवक हैं। यह काव्य चार काण्डों में विभाजित है।[1] यादव काण्ड में कृष्ण का जीवन, कुरुकाण्ड में परम्परा का विकास और वंश चित्रण, युद्ध काण्ड में महाभारत का युद्ध और उत्तर काण्ड में विचार पक्ष की प्रधानता है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ प्राचीन परिपाटी के अनुसार किया गया है। कवि सरस्वती से प्रेरणा प्राप्त करके काव्य रचना में प्रवृत्त होता है। यादव काण्ड में कृष्ण का जीवन पौराणिक रूप से चित्रित है। 'महाभारत' की कथा का प्रभाव कुरुकाण्ड से प्रारम्भ होता है। कवि कौरव पाण्डवों के जन्म, बाल्य काल, शिक्षा, परस्पर कटुता वनवास की कथा का विस्तार से वर्णन करता है। इन प्रसंगों में वह महत्वपूर्ण उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं करता। युद्ध काण्ड में प्रमुख विषय दोनों वर्गों का युद्ध है पाण्डवों की विजय और कौरवों की पराजय मूल ग्रन्थ के अनुसार अभिव्यक्त है।

कथा का मूल स्रोत 'महाभारत' है किन्तु धार्मिक विचारधारा के अनुसार कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। एक महत्वपूर्ण परिवर्तन इस प्रकार है —

'महाभारत' में द्रौपदी स्वयंवर में मत्स्यवेध की प्रतिज्ञा है किन्तु 'हरिवंशपुराण' में केवल धनुष चढ़ाने की प्रतिज्ञा का उल्लेख है। सम्भवतः जैन धर्म की अहिंसा के कारण ऐसा परिवर्तन किया गया है।

महापुराण (पुष्पदंत) १० वीं शती

पुष्पदंत द्वारा रचित 'महापुराण' में मुख्य रूप से राम की कथा वर्णित है। समस्त कथा का विकास अनेक नामावलियां कवि ने जैन धर्मानुसार परिवर्तित की हैं। 'महापुराण' में कवि ने जैन धर्मानुकूल ६३ महापुरुषों की कथा में 'रामायण' और 'महाभारत' की कथा का अन्तर्भाव किया है। इस कारण इस रचना को भी 'महाभारत' से प्रभावित ग्रन्थों की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

'महापुराण' के तृतीय खंड में ८१ से ९२ संधियों तक मुख्य रूप से 'महाभारत' की कथा वर्णित है। इसे 'हरिवंश पुराण' भी कहा गया है। इसमें विशेषता यह है कि 'महाभारत' की कथा से सम्बद्ध पात्रों की पूर्व जन्म की कथाओं का चित्रण भी कवि ने किया है। मगध देश के राजगृह की शोभा का चित्रण 'महाभारत' से गृहीत है।

जहिं दीसइ तहिं मल्लहु णयरु णवल्लउ समिरवि अन्न विभूसिउ।
उवलि विलंबिय तरणि ह सग्गें धरणि हु णावइ पाहुडु पेसिउ ॥[2]

---

१ अपभ्रंश साहित्य, पृ० ६७

२ म० पु० १ १५ उधृत, अपभ्रंश साहित्य पृ० ७८

हरिवंश पुराण (धवल) ११ वीं शती

जैन कवियों की महाभारतीय कथा परम्परा में धवल का 'हरिवंश' जैन कवियों की रचनाओं के समान ही समादृत है। इसमें कवि ने 'हरिवंश पुराण' के आधार पर जैन धर्मानुसार 'महाभारत' की कथा का संक्षिप्त और परिवर्तित रूप प्रस्तुत किया है।

'हरिवंशपुराण' की कथा का रूप स्वयंभू की कथा के समान ही है। पात्रों एवं घटनाओं की परिणति जैन धर्म के सिद्धान्तों की स्वीकृति में हुई है। युद्ध चित्रण सजीव है —

महा चड चित्ता भडा छिण्णा गत्ता,
धनू बाण हत्था सकुंता समत्था,
पहारंति सूरा, ण भज्जंति धीरा
सरासा सतो सा सहासा ग आसा[1]

पाण्डव पुराण (यश कीर्ति) ११ वीं शती

यश कीर्ति का ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। इसकी तीन हस्त लिखित प्रतियां आमेर शास्त्र भंडार में और एक देहली के पंचायती मंदिर में विद्यमान है।

'पाण्डव पुराण' में कवि ने ३४ संधियों द्वारा पाण्डवों की कथा का चित्रण किया है। कथा का कवि ने जैन धर्म के अनुसार परिवर्तित रूप में वर्णित किया है। कहीं कहीं पर 'महाभारत' की मूल कथा नितान्त पृथक रूप में परिवर्तित कर दी गई है। कवि का उद्देश्य 'महाभारत' की कथा को अपने अनुसार चित्रित करके जैन धर्म का प्रसार रहा है।

पात्रों का वर्णन द्रष्टव्य है —

मणिमय मणि कुण्डल रयण महला सीस मउलि सारा।
करउभण भणिय वकणा तो सिया जणा कंठ मुत्तहारा॥[2]

हरिवंश पुराण (यश कीर्ति) ११ वीं शती

यश कीर्ति द्वारा रचित हरिवंश-पुराण भी अप्रकाशित रचना है। इसमें कवि ने १३ संधियों और २६७ कडवकों में 'महाभारत' की जैन-कथा का सीधा वर्णन किया है।

तीर्थंकरों के स्तवन के उपरान्त कथा का प्रारम्भ और काव्य का प्रयोजन दिया है। कथा का प्रारम्भ पौराणिक शैली में किया गया है। कथानक के धर्मानुकूल परि-

---

१ हरिवंश पुराण १०।१४ उधृत, अपभ्रंश साहित्य पृ० २०७
२ उधृत अपभ्रंश साहित्य पृ० १२०

वतन के अतिरिक्त नगर-वणन, नारी-सौन्दर्य-वणन हृदय स्पर्शी हो पाये हैं।

हरिवंश पुराण (श्रुतिकीर्ति) सं० १५५३

श्रुतिकीर्ति के 'हरिवंश पुराण' में ४४ संधियों में 'महाभारत' की कथा का वणन है। इसमें कथा का परिवर्तित रूप होते हुए भी अन्य रचनाओं से महाभारत की समीपता अधिक है। कथा का प्राचीन रूप काफी सुरक्षित रहा है।

हिन्दी साहित्य का आदिकाल

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का आदि महाकाव्य माना जाता है।[1] यह काव्य विकासशील महाकाव्यों में आता है क्योंकि विकासशील महाकाव्यों की सम्पूर्ण विशेषताएं इसमें उपलब्ध हैं।[2] इस काव्य में लोक-कंठ में व्याप्त गाथाचक्रों का कवि के द्वारा सुव्यवस्थित रूप देकर अनेक निजन्धरी कथाओं का समावेश किया गया है। 'पृथ्वीराज-रासो' का नायक भी अन्य विकसनशील महाकाव्यों के नायकों की भांति कालान्तर में निजन्धरी व्यक्तित्व बन गया और उसके जीवन के साथ अनेक प्राकृत अतिप्राकृत गाथाओं को सम्बद्ध कर दिया गया है। रासो ग्रन्थ का प्रमुख कवि चन्दवरदाई है किन्तु चारण परम्परा में लिखा जाने के कारण इस काव्य में अनेक परिवर्तन होते रहे। यही कारण है कि 'रासो' के बृहत्तर रूपान्तर में अनेक ऐसे कथानकों का समावेश है जो इतिहास के साक्ष्य से पृथ्वीराज-परवर्ती हैं।[3] डा० ग्रियर्सन[3] और चिन्तामणि विनायक वैद्य[4] रासो को 'महाभारत' के समान ही विकसनशील काव्य मानते हैं।

---

१ दे० हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २४०-२४४

२ दे० हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ० २४६

३ "The authenticity of the work as we have it now has of late years been seriously doubted and the truth probably is that like the Sanskrit Mahabharata the text is so encumbered by spurious additions that it is impossible to separate the original from its accretions
—*Imperial Gazetteer of India, Sir G Grierson,*

Vol II p 427

४ हमारे मत से कई महत्वपूर्ण बातों में विशेषतया मौलिकता और प्राचीनता के सम्बन्ध में, रासो का 'महाभारत' से बहुत कुछ सादृश्य है। हमारी समझ में इस महाकाव्य का मूल भाग प्रामाणिक, मूल लेखक की कृति और प्राचीन है ... वर्तमान उपलब्ध महाभारत व्यास के मूल महाभारत का दुबारा सौति द्वारा परिवर्तित रूप है (पहली बार वैश

इस आधार पर यह माना जा सकता है कि सम्भवत 'रासो' के रचयिता के मन में महाभारत' के अनुरूप काव्य रचना की भावना विद्यमान रही हो। 'महाभारत' के कथानक का प्रत्यक्ष प्रभाव तो 'रासो' पर नही है किन्तु वस्तु सयोजन वस्तु व्यापार वर्णन की दृष्टि से 'पृथ्वीराजरासो' पर 'महाभारत का प्रभाव तो है ही।'[१] इसके अतिरिक्त राजनीति-शास्त्र योग-शास्त्र धर्म शास्त्र, और अध्यात्म विद्या का शास्त्रीय वर्णन भी 'महाभारत के ढग से हुआ है।'[२] महाभारत' के समान ही वश-वर्णन और प्राचीन ज्ञान सम्बन्धी विषयो का भडार पृथ्वीराज रासो' को माना जा सकता है। रासो-कार ने महाभारत' की ही भाति अपने ग्रन्थ के लिए प्रशस्ति वचन कहा है।

ब्रह्मन् वेद रहस्य च यच्चान्यत् स्थापित मया।
साङ्गोपनिषदा चैव वेदाना विस्तर क्रिया॥[३]
× × ×
उक्ति धर्म विशालस्य, राजनीति नव रस।
षट् भाषा पुराण च कुरान कथित मया॥
काव्य समुद्र कवि चन्द कृत मुगति समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहित सुफल पार उतारन यान॥[४]

महाभारत' के प्रभाव को युद्ध वर्णन के रूप म स्पष्टत देखा जा सकता है। महाभारत' म व्यूह वर्णन सर्वाधिक है। सूची व्यूह[५] गरुड व्यूह[६] गरुड और अर्ध चन्द्राकार व्यूह[७] चक्रव्यूह[८] आदि अनेक व्यूहो का निर्माण 'महाभारत' की विशेषता है। रासोकार के युद्ध वर्णन की शैली 'महाभारत' से प्रभावित है।[१] सेनापति और अन्य सहायक वीरो की युद्ध स्थिति महाभारत' के व्यूह वर्णन के समान ही है।

व्यासन ने मूल महाभारत को बढाया था) उसी तरह मूलरासो चन्द ने रचा, फिर उसके पुत्र ने उसे कुछ बढ़ा दिया और सोलहवीं सदी के लगभग किसी अज्ञात कवि ने उसमे अपनी रचना भी मिला दी है।"
—हिन्दूभारत का उत्कर्ष याराजपूतों का प्रारम्भिक इतिहास, सी० वी वद्य, काशी स० १९८९

१ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २६३
२ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० २६४
३ म० आदि० १।६२
४ सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो पृ० १८
५ म० भीष्म० ५०।१
६ म० भीष्म० अध्याय ५६
७ म० भीष्म० अध्याय ६८
८ म० द्रोण० अध्याय ३३

'महाभारत' के गरुड–व्यूह वर्णन और 'पृथ्वीराज रासो' के गिद्ध व्यूह वर्णन में पर्याप्त समानता है। दोनों व्यूह वर्णनों को देखकर रासोकार के 'महाभारत' के युद्ध वर्णन शैली का व्यापक ज्ञान स्पष्ट होता है।[1]

पंच पाण्डवरास (शालो भद्र सूर्य) १५ वीं शती

रासो काव्य की परम्परा में 'महाभारत' के कथानक से प्रत्यक्ष प्रभावित 'पंच-पाण्डवरास' के विषय में प्रकाशित गुर्जर रासावली से परिचय प्राप्त होता है। अन्य विद्वानों ने भी इस कृति पर प्रकाश डाला है।[2] प्रस्तुत रास में पांचों पाण्डवों के चरित्र के रूप में सम्पूर्ण महाभारत का सार है। समस्त कथा 'महाभारत' के अनुरूप तो है किन्तु कवि ने अनेक स्थलों पर प्रमुख पात्रों को जैन धर्म के अनुसार परिवर्तित किया है। सामान्यतः जैन धर्म से प्रभावित काव्यों में 'महाभारत' के हिंसात्मक स्थलों को या तो छोड़ दिया या परिवर्तित कर दिया गया है। किन्तु इस ग्रन्थ में राधावध

---

१ गारुड च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा।
पुत्राणां ते जयाकाङ्क्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥
गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ।
त्रिगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां संनिवेशिताः।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजाश्च शकैः सह।
पुच्छमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ म० भीष्म० ५६।२-७

× × ×

तब जद्दव कुरंभ, राय रावल प्रति बद्धिय।
चामरछत्र रयत्त, गृद्ध व्यूह रचि गद्दिवय।
एक पष्य बलिभद्र, एक पष्य जामानिया
चंचुकध पुंडीर, सन समूह सुरतानिया।
पर्गापिठ सिंघ प्राहुटुपत्ति पुंछ रत्ति माहं महन।
वामन अंग पृथिराज के सुमर जुद्ध भत्तो गहन ॥
—पृथ्वीराज रासो, समय ६६, छंद १००८

२ आपणा कवियों, श्री के० का० शास्त्री, पृ० २६६

(मत्स्य-वेध) का चित्रण है।[1] कवि ने सम्पूर्ण 'महाभारत' की कथा को ७६५ छदा म गाया है,[2] तथा अनेक परिवतना मे अपभ्र श की परिवर्तित परम्परा का उपयोग किया है। नेमिनाथ के प्रसग म पाण्डवा का उल्लख सभी जैन काव्यो म हुआ है।[3] इस प्रकार 'पच पाण्डवरास' का कथानक अपभ्र श की परम्परा म है। अपभ्र श के काव्य म जिन परिवतना का उल्लेख है प्रस्तुत काव्य म भी वही परिवतन उपलब्ध हैं। जन धर्मानुसार परिवर्तित घटनाएइस प्रकार है —गगा का शातनु की अहर वृत्ति का विरोध,[4] द्रौपदी के स्वयवर म पाचो पाण्डवो के गले म माला पहना,[5] युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ म शाति जिनेन्द्र की प्रतिमा की स्थापना[6] और पाण्डवा का नमिनाथ के उपदशो से निर्वेद होना तथा अन्त म निर्वाण प्राप्ति।

इस प्रकार आदिकाल की रासा परम्परा म 'महाभारत' का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। युद्ध प्रधान ग्रन्थ होन के कारण और अपभ्र श के जन पुराणा की परम्परा के परिचय के कारण, इन ग्रन्थो का 'महाभारत' की युद्ध और विचार सामग्री से प्रभावित हो जाना अत्यन्त स्वभाविक था।

भक्तिकाल

जसा कि पहले सकेत किया जा चुका है भक्ति आन्दोलन के विकास और उसक स्वरूप निमाण म 'महाभारत' का प्रत्यक्ष प्रभाव नही है। किन्तु दाशनिक दृष्टि से 'महाभारत' की विचारधारा का प्रभाव भक्तिकाल के कुछ कवियों पर व्यापक रूप

---

१ लोह पुरुष छह चक्रि ममत पचवाणि आहणइ सुरत।
राधावेधु करी दिखाई तिसन कोई तीण अछा नई॥ उवणि ४ पद्य ८

२ आपणा कवियों, श्री के० का० शास्त्री, प० ११७

३ महापुराण उत्तर पुराणम, भारतीय ज्ञानपीठ काशी सस्करण, पृ० ३८० श्लोक ७३ ६०

४ आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, प० ११८

५ "Then the reference as to this strange incident is made to Sage who was there He narrates the previous births of Draupadi and informs how she staked all her merit for a full determination of realizing five husbands in the next birth"

—G O S CXIII, p 352

६ According to the Jain tradition the Rajsuya ceremony consist in raging a temple dedicated to one of the Tirthankars, where the kings are invited

G O S C XIII, p 354

मे पडा है। कथानक की दृष्टि से तो इस काल मे किसी प्रबन्ध काव्य की रचना नही हुई किन्तु यत्र-तत्र महाभारत' की अन्तकथाओ का अनेक कवियो ने दृष्टात और उपमा के माध्यम से प्रयोग किया है। गरुड पख जस भारा' पक्ति से जायसी के 'महाभारत' ज्ञान का आभास मिलता है। प्रत्यक्ष अध्ययन से न सही, लोकजीवन के आधार पर ही, 'महाभारत' की कथाओ का इस प्रकार का सदर्भ उसके व्यापक प्रभाव को सिद्ध करता है। तुलसीदास के 'रामचरित मानस' पर महाभारत' का प्रभाव वक्ता शैली के आधार पर माना जा सकता है। तुलसी की दार्शनिक विचार-धारा और धर्म विधि की समीक्षा करते हुए अनेक स्थलो पर' महाभारत और 'गीता' से तुलना की गई है। इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन तुलसी पर 'गीता' के प्रभाव को स्वीकार करने का पुष्ट प्रमाण है। महाभारतकार[1] ने जिस विशिष्ट अर्थ मे राजा को ईश्वर का अश कहा है उसी रूप म तुलसी ने राजा को ईश अश माना है।[2] तुलसी का 'रामचरित मानस' निगमागमपुराणसम्मत है। अत वह महाभारत' के प्रभाव से किस प्रकार मुक्त रह सकता है। 'गीता' के अधिकाश दार्शनिक विचार तुलसीदास को स्वीकार्य है।[3] परब्रह्म[4] परमेश्वर सत्[5]काल-स्वरूप[6] अनादि[7] अनत[8] सर्वव्यापक[9] निर्गुण और सगुण और गुणो का आश्रय है।[3] उसके जन्म-कर्म दिव्य होते है। वह दुष्टो के विनाश और धर्म के सस्थापन के लिए अवतरित होता है।[10] तुलसी ने भी इन सब मान्यताओ का सस्थापन किया है। डा० उदयभानुसिंह ने गीता' और 'रामचरितमानस' की सिद्धान्त प्रतिपादन शैली म भी सादृश्य माना है।[11] उन्होने तुलसी के उत्तमर्ण ग्रन्थो म 'गीता' को स्वीकार किया है।[12] इस प्रकार हिन्दी

---

१ म० शान्ति० ६८। ५६
२ साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस अस भव परम कृपाला। रा० ॥ २८।४
३ तुलसी दर्शन मीमासा पृ० ३५५
४ गीता २।१७
५ गीता १३।१७
६ गीता, १३।१२
७ गीता ११।१६
८ गीता, १३।१३
९ गीता १३।१२ १७
१० गीता, ४।७ ६
११ तुलसी दर्शन मीमासा, प० ३५८
१२ तुलसी दर्शन मीमासा, प० ३५६

साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी 'महाभारत' के दर्शन से प्रभावित है। 'सूरसागर' 'श्रीमदभागवत' से प्रभावित है किन्तु उसके कतिपय पदों में 'महाभारत' वर्णित कथा खण्डों का स्पर्श हुआ है। व्यास जन्म,[1] कृष्ण का दूतत्व[2] द्रौपदी चीर हरण[3] भीष्म प्रतिज्ञा[4] धृतराष्ट्र का वैराग्य और वन गमन[5] आदि महाभारतीय प्रसंगों पर सूरदास ने पद रचना की है। 'सूरसागर' में कच-देवयानी का प्रसंग विस्तार से वर्णित है।[6] सूरदास के पदों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि 'महाभारत' के वे ही प्रसंग गृहीत हैं जिनमें भगवान कृष्ण का महत्व प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष व्यंजित है। भक्तिकाल के प्रमुख कवियों ने 'महाभारत' के आधार पर स्वतन्त्र काव्य रचना तो नहीं की किन्तु प्रसंगतः उसका प्रभाव विद्यमान है।

उत्तर मध्यकाल

१६ वीं शताब्दी में भक्ति के व्यापक प्रचार और प्रमुख भक्त कवियों के कारण महाभारत के कथानक से प्रभावित ग्रन्थों का सामान्यतः अभाव है। १४ वीं शती से १६ वीं शती तक विभिन्न भक्ति सिद्धान्तों के प्रभाव-स्वरूप साहित्य की रचना होती रही। सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध में यह परम्परा कुछ शिथिल हुई और काव्य धारा शृंगार और अलंकरण की प्रवृत्ति में मुखरित हुई। सत्रहवीं शती के मध्य 'भुपाल' कवि की एक रचना 'अर्जुन गीता' की एक हस्तलिखित प्रति काशीनागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। इस में कथा का अभाव है, और भगवान् कृष्ण के उपदेश का भाषा बद्ध किया गया है।

१८ वीं शताब्दी में 'महाभारत' से प्रभावित अनेक काव्य लिखे गए। इनमें सबलसिंह चौहान की 'महाभारत', छत्रसिंह की 'विजय मुक्तावली', कुलपति मिश्र का 'द्रोणपर्व', रामनाथ पंडित का 'नलोपाख्यान', राधोदास का 'पाण्डुचरित्र' आदि रचनाएं उपलब्ध हैं। इस काल की रचनाओं में 'महाभारत' के भावानुवाद की प्रवृत्ति अधिक है। भाषा लालित्य और काव्य छटा पर इन रचनाओं में विशेष ध्यान नहीं दिया गया

---

१ सूरसागर दूसरा खंड प्रथम स्कंध पद २२६
२ सूरसागर दूसरा खंड, प्रथम स्कन्ध, पद २३८
३ सूरसागर दूसरा खण्ड, प्रथम स्कन्ध, पद २५४ २५५
४ सूरसागर, दूसरा खण्ड प्रथम स्कन्ध, पद २७०
५ सूरसागर दूसरा खण्ड, प्रथम स्कन्ध पद २८४
६ सुक्र सुता देवयानी नाम। सकगुन-पुन रूप अभिराम।
सुरगुरु सुत को दरस सुभाई। देख ताहि पुरुष की नाई।
काल बितीतविति जब भयौ। गाइ चरावन को सो गयौ।
असुरन मिलि यह कियौ विचार। सुरगुरु सुत कौं डारे मार॥
—सूरसागर दूसरा खंड नवमस्कंध, पद ११७

है। एक प्रमुख बात यह अवश्य है कि कथा का विकास करते समय ये कवि मूलग्रन्थ और लोक जीवन के गाथातत्व का ध्यान रखते हैं। परन्तु उनमें विशेष बुद्धिसम्मत या युगसे प्रभावित परिवर्तन कुछ ही ग्रन्थों में मिलते हैं। 'महाभारत' से प्रभावित इस शताब्दी के काव्यों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

महाभारत (सबलसिंह चौहान) सं० १७१८-१७८१

चौहान का 'महाभारत' व्यासकृत 'महाभारत' का पद्य-बद्ध अनुवाद है।[१] कवि ने कथा विकास की मौलिक चेष्टा नहीं की और न ही इस ग्रन्थ में काव्यत्व की छटा विद्यमान है।[२] 'महाभारत' की कथा सीधी सादी भाषा में कही गई है। किन्तु भगवान् कृष्ण के चरित्र की रक्षा करने में कवि असमर्थ रहा है। वह पाण्डवों की विजय में उनके छल को मुख्य कारण मानता है। यह परिवर्तन ऐसा है जिससे तत्कालीन वातावरण और मनोवृत्ति का आभास हो जाता है। यह तो सर्वविदित है कि रीतिकाल में पौराणिक चरित्रों के प्रति भक्ति कालीन सम्मान की भावना में कुछ शिथिलता आ गई थी। सम्भवतः यह परिवर्तन उसी भावना का परिणाम है।

संग्राम सार द्रोणपर्व (कुलपति मिश्र) सं० १७३७

इस ग्रन्थ की हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। इसमें द्रोणपर्व की कथा कही गई है। यह ग्रन्थ न तो अनुवाद है और न स्वतन्त्र प्रयास ही है।

कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में द्रोणपर्व से पूर्व युद्ध की स्थिति का संक्षिप्त चित्रण करता है तदुपरान्त मूल कथा प्रारम्भ होती है।

भीषम सर सज्जा परे कौरव कुल के तात,
करनधरम बल तज मति, जिन ही बिसात बिलात।
मंगल मंगल करन कौं ग्रंथ रचन पुनि कीन
परिच्छद पहिले कहो कुल पति मिश्र नवीन।[३]

मूल कथा के साथ कवि अनेक अन्तवर्ती कथाओं को भी ग्रहण करता हुआ चलता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र जी की रचनाओं में 'द्रोणपर्व' का नाम दिया है।[४] सभा की प्राप्त प्रति में रचनाकाल अज्ञात है अतः ऊपर शुक्ल जी के समय को ही माना गया है।

पाण्डु चरित्र (राघोदास) १७३६ वि०

इस ग्रन्थ का उल्लेख हस्त लिखित हिन्दी ग्रन्थों के सप्तदश त्रैवार्षिक विवरण

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०१
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०१
३ द्रोणपर्व, पृ०६
४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३६

के पृ० ३०५ पर हुआ है। इस काव्य म दुर्वासा के शाप स पाण्डवा को बचाने की कथा वर्णित है।

कथा वर्णन म कवि ने नददास की 'रास पचा यायी' की शैली अपनाई है। परन्तु आरम्भिक पदा के लुप्त होने क कारण कथा के प्रारम्भ का ज्ञान ठीक प्रकार से नही होता।

महाभारत कर्णार्जुनी (ठाकुर कवि) १८ वीं शती पूर्वार्द्ध

महाभारत' के कर्ण एव अर्जुन युद्ध के आधार पर रचित ठाकुर कवि की 'महाभारत कर्णार्जुनी' की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा म प्राप्त है। इसके रचनाकाल और लिपि काल अज्ञात हैं।[1] कवि न दोहा और चौपाई म महाभारत की कथा वर्णित की है जिसका विकास मूलग्रन्थ के आधार पर हुआ है

कथा प्रवाह और युद्ध चित्रण सामान्य कोटि का है। दुर्योधन से कर्ण की आत्म प्रशसा का एक चित्रण द्रष्टव्य है।

करन कहा सुनु कुरपति राऊ
धनुष पम राम गुरु पाऊ
सुजयी तामैं कालीउ करो
पडव भारी नी पण्डव करो ॥[2]

प्रसग रूप म कर्ण और परशुराम की कथा का भी सकेत है।[3] महाभारत' मे कर्ण और कर्ण पत्नी क विस्तृत वार्तालाप की कथा नही किन्तु कर्णार्जुनी म इस युद्ध पूर्व सवाद की स्वतन्त्र योजना है।

नलोपाख्यान (रामनाथ पडित), १८ वीं शती अनुमानत

नलोपाख्यान की एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा म उपलब्ध है जो अत्यन्त खडित और अत्य त अस्पष्ट है। कही कही कुछ पक्तियाँ स्पष्ट रूप स पढी जा सकती हैं। उनके अनुसार कथा का विकास महाभारत के अनुरूप है। उसम विशेष परिवर्तन नही है केवल कहा-कही वर्णन म स्थिति का सामयिक परिवर्तन है जिससे पाठक का एसा लगता है कि वह सब कुछ अपने ही वातावरण म देख रहा है।

वनवास क अवसर पर दमयन्ती की व्याकुलता का चित्रण मार्मिक है।

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तीन ठाकुर कवियों की चर्चा की है।
—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० २४९

२ महाभारत कर्णार्जुनी प० ११

३ महाभारत कर्णार्जुनी, प० १६

दीन वचन भाषे तहि बाला, भमी नल विनु अहिनि बहाला।
प्रीतम तजि हम वहां कत गहउ, अति विपक्ष विधि मापर भयउ।
परि विपत्ति अति वन मह आये, नल से प्रीतम महल गवाय।
मो सम परम अभागी नाही, अपर नाउ नन हू जग माही।[1]

कथा के अन्त म देवताओ के आशीर्वाद की योजना भी मूल ग्रन्थ के अनुसार है

जैमिनि पुराण (जगत मणि) १७५४ स०

जगत मणि के 'जैमिनि पुराण' का विवरण हस्त लिखित हिन्दी ग्रन्थो के चौदहवें त्रैमासिक खोज रिपोर्ट मे प्राप्त है। इसम महाभारत की कथा से अश्वमेध यज्ञ की कथा ग्रहण की गई है, किन्तु कथा का विकास मूल ग्रन्थ के आधार पर पौराणिक शैली म हुआ है।

विजय मुक्तावली (छत्रसिंह) १७५७ स०

छत्रसिंह के आश्रय दाता अमरावती के काई कल्याणसिंह जी थे।[2] इन्होंने 'महाभारत' की कथा को एक स्वतन्त्र प्रबन्ध काव्य के रूप म प्रस्तुत किया है। इस म काव्य गुण यथेष्ट मात्रा म विद्यमान हैं और कथा विकास म मौलिकता का आभास भी मिलता है। 'महाभारत' के वीराचित वर्णनों म कवि ओज की रक्षा कर पाया है और अनेक स्थलो पर कविता प्राणवन्त है।[3] इनके प्रबन्ध काव्य के कुछ हस्त-लिखित भाग काशी नागरी प्रचारिणी सभा म सुरक्षित हैं।

पाच पाण्डव चौपाई (लाल बधन) १८ वी शती

लालबधन द्वारा लिखित पाच पाण्डव चौपाई की एक हस्त लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा म सुरक्षित है। इसकी भाषा राजस्थानी मिश्रित है जिसकी लिपि अधिक सरलता से नही पढी जाती।

इस ग्रन्थ म पाचो पाण्डवो की कथा का महाभारत' के अनुसार वर्णित किया गया है। जहा कही स्पष्टता से पढा जाता है वहा से पता चलता है कि कवि की परम्परागत सहानुभूति पाण्डवो के दिव्य चरित्र के प्रति है।

ग्रन्थ म प्रकृति चित्रण अत्यन्त मनोरम है, वसन्त का वर्णन द्रष्टव्य है—

उस अवसर परगट भइ रितु बसति वन पति।
वक्ष फूल फलमजरी बहु विध साभाजति॥
कोइल वाले मधुप सुर गुजै षटपद यूह।
परिमल फूल सुगध जुई सीतल पवन समूह॥[4]

---

१ नलोपाख्यान, पृ० २८
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३०२
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०२
४ पांच पाण्डव चोपाई, पृ० ८

विदुर प्रजागर (कृष्ण कवि) स० १७९२

विदुर प्रजागर कृष्ण कवि की नीति प्रधान रचना है। जो अभी अप्रकाशित है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा म सुरक्षित है। 'महाभारत' म विदुर न अनेक स्थानो पर धृतराष्ट्र तथा पाण्डु पुत्रो को नीति का उपदश दिया है। यह ग्रन्थ नीति तत्वो का सकलन माना जा सकता है। कवि ने उद्योग पव के ३३ वें अध्याय स ४० वें अध्याय तक के उपदश का प्रमुख रूप से लिया है।

राजा का कर लेना —

जसे भौरा फूल का राखत रस के हेत।
ऐसे नृपति प्रजानसें राखि राखि धन लेत।
फूले फूल नु लेइचुनि कर न जरत नास।
दरविलेई हिंसा बिना सा नृप नीति निवास।[1]

ग्रन्थ के प्रारम्भ म विदुर, धृतराष्ट्र और पाण्डु की जन्म कथा सक्षेप म वर्णित है।

पुनि जा नृप क सुत तीनी भए मुनि व्यास कृपा करि आपु दए।
धतराष्ट्र सुपाडु बली मनिये विदुरो हरि भक्तन म गुनिये।[2]

पाण्डवा और कौरवा के जन्म का वृत्तान्त सक्षेप म देकर दोना दला के सघष की ओर भी कवि उन्मुख हाता है। इस सघष क मध्य विदुर द्वारा नीति की शिक्षा दी जाती है। कुन्ती द्वारा पुत्रो का अन्य स्थान पर ले जान का कारण कवि दुर्योधन की ईर्ष्या का मानता है।

दुरयाधन कृत ईरषा अधिक अनीति निहारि
नगर छोडि सुत ल चली कुन्ती समो विचारि[3]

इसी प्रसग म विदुर की नीति की अभिव्यक्ति हुई—

सब नीतिनु की नीति यह राव रक जा कोई।
सुखी दवि क अनुसर अस्त सुखी वह हाई।[4]

लाक्षा गृह दाह तथा अन्य घटनाओ का भी चित्रण है। कथा का वणन सूचनात्मक रूप म हुआ है कवि न घटनाओ का तीव्र गति से विकास करत हुए मध्य म नीति तत्वा का वणन किया है।

---

१ विदुर प्रजागर प० ४९ ५०
२ विदुर प्रजागर पृ० २
३ विदुर प्रजागर पृ० ५
४ विदुर प्रजागर, पृ० ५

नल चरित्र (मुकुन्द सिंह)१७६८ सं०

यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है। महाभारत' के नलोपाख्यान पर आधारित मुकुन्द सिंह ने काव्य की रचना की। इसकी एक अपूर्ण प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में प्राप्त है।

कवि ने काव्य का प्रारम्भ श्री गणेशायनम। अथ नल चरित्र लिप्यत' लिख कर किया है। प्राचीन शैली में वंश परिचय और पुनः भवानी की स्तुति के उपरान्त कथा का प्रारम्भ है। यह रचना दोहा चौपाई में की गई है।

सर्व प्रथम नल का परिचय इस प्रकार है —

निषध नाम एक देश ललामा,
अमरावती सरिस सो ठामा।
वीरसेन तह भूपति राज,
नीत व्रत जसुजुत छवि छाज।
दूई पुत्र सो पाए राजा
जेठा नल छवि नीति जहाजा।[1]

उक्त परिचय पर 'महाभारत' के उस श्लोक का प्रभाव स्वतः सिद्ध है

आसीद्राजा नलो नाम वीरसेन सुतो बली
उपपन्नो गुणैरिष्टै रूपवानश्व कोविद।[2]

महाभारत में नल के गुणों का परिचय अश्व कोविद कहकर दिया है। नल चरित्र में 'नीतिव्रत, नीति के जहाज आदि कहकर चित्रित किया है।

नल का परिचय देने के उपरान्त कवि राजा भीम का परिचय देता है। दमन ऋषि द्वारा वरदान प्राप्ति और सन्तान उत्पत्ति का प्रसंग मूलग्रन्थ के अनुरूप है। कथा सामान्य गति से आगे चलती है। कवि कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं करता, केवल अत्यन्त सीधे रूप में नल की कथा को कहता चलता है। यद्यपि कहीं कहीं मूल ग्रन्थ के रूप में कम विपर्यय भी है।

वन के संकटों का चित्रण मार्मिक रूप में हो पाया है। नल दमयन्ती को छोड़ते अवश्य हैं पर वे अपने अभाव में स्थिति की कल्पना से प्रकम्पित हो जाते हैं।

वन वन फिरहिं दुख अति पाए,
क्षुधा पियासहि अतिहि सताए।
कहा करों एहि औसर माहीं
कछु उपाय अब ठहरत नाहीं।

---

१ नल चरित्र, पृ० ३
२ म० वन० ५३।१

वाम विधाता जाहि तहि सकल राग तहि होय ।
भार होए तहि प्रान निज कहै भूप एह राय ॥[1]

कवि ने कथा विकास म घटनाओं का यथावत् चित्रण किया है। 'महाभारत' म भावों का चित्रण कम और कथा वर्णन अधिक है, किन्तु इस काव्य म कथा चित्रण के साथ कवि भावना म गोते लगाता है। स्थिति का मन पर पडने वाला प्रभाव अत्यन्त भावुकता से व्यक्त होता है। कवि चित्र को भावनामय बनाकर अधिक सवेद्य और प्रभावशाली बनाता है।

१६ वी शताब्दी म महाभारत' के कथानकों पर काव्य रचना की प्रवृत्ति १८ वी शती से अधिक व्यापक रूप मे मिलती है। वस्तुत महाभारत' के विभिन्न कथा खण्डो पर आख्यान काव्यो का प्रणयन हुआ किन्तु इस काल का विशेष आकर्षण नलोपाख्यान और अभिमन्यु का कथानक रहा। इस काल की सामान्य प्रवृत्ति भी महाभारत के कथानक को यथावत् ग्रहण करना ही रही है। एक विशेषता पूर्ववर्ती शती से अधिक यह रही कि उस शती म युद्ध चित्रण म पर्याप्त सजीवता नहा थी किन्तु इस युग म युद्ध चित्रण ओजस्वी और सजीव हुए हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज पत्रिका के अनुसार अनेक ऐसे काव्य ग्रथ (जिनकी हस्त लिखित प्रतियाँ भी लेखक न सभा म देखी हैं) जिनके लेखक के नाम के अतिरिक्त रचनाकाल और लिपि काल अज्ञात है। भाषा और छन्द की दृष्टि से उन सभी रचनाओं का १६ वी शती के मध्य के आस पास माना गया है। इन म ईश्वरदास कृत 'सत्यवती घिस्यावनदास कृत कृष्ण चरित गोपालदास कृत कृष्ण चरित' गगाराम कृत 'महाभारत' (शल्य और गदापर्व) हैं। स० १८०५ म लिखित मरजूराम पडित के जमिनी पुराण भाषा नामक ग्रथ का उल्लेख शुक्ल जी के इतिहास म हुआ है।[2] इस पुराण म कवि ने रामायण और 'महाभारत' की कथाएँ अपने अनुसार वर्णित की हैं। 'महाभारत क आधार पर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का ही वर्णन मिलता है। इस प्रकार के सम्मिलित कथा ग्रन्थो की परम्परा आगे चल कर शिथिल हो गई।

ऊपर दिये गये अज्ञात रचनाकाल वाले काव्यो के समान ही कुछ काव्य ऐसे हैं जिनका लिपिकाल ज्ञात है किन्तु रचना काल के विषय म स्पष्ट ज्ञान नहीं। अवधि' नामक कवि का महाभारत विराटपर्व और 'सभापर्व' (लिपिकाल स० १८६४ ८४) 'चक्रव्यूह (लिपिकाल १६ वी शती प्रारम्भ), देवदत्त का 'द्रोणपर्व भाषा' स० १८१८ जनदयाल का धर्म सवाद स० १८३३ कवलकृष्ण की 'दमयन्ती नल की कथा स० १६३३ सर्वासिंह का नल चरित स० १६३४, अभिमन्यु-कथा' और अभिमन्यु-वध

१ नल चरित्र पृ० १८१
२ हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३२

१९ वीं शती उत्तरार्ध, आदि अनेक रचनाएं हैं इनका संक्षिप्त परिचय लिपिकाल के क्रम से दिया जा रहा है।

महाभारत (शल्य और गदापर्व) १९ वीं शती पूर्वार्ध

श्री गंगाराम 'गंग' कृत महाभारत शल्यपर्व एवं गदापर्व की हस्तलिखित एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। इसमें शल्य और गदापर्व की कथा का संक्षिप्त वर्णन है। इसके प्रारम्भिक पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। कथा का प्रारम्भ 'महाभारत' के अनुसार है। दुर्योधन चिन्ता करता है कि अब कर्ण की मृत्यु के उपरान्त कौन सेनापति होगा।

रन समय दल उनहिं काई।
अब सेनापति कौनहि होई ॥[1]

यह सुनकर अश्वत्थामा शल्य का प्रस्ताव रखते हैं।

राजहिं बहुरि कहे अस्थामा
सुनहु नृपति करवउ सुभ कामा।
शल्य महानृप बल कइ रासी।
विद्या निपुन शस्त्र अभ्यासी।
तेहिवर कहा सिखापन सत्य महाबल एक।
सौंपी सेन आदर सों करहु जाय अभिषेक।[2]

फलस्वरूप शल्य सेनापति बने। इसके आगे का वर्णन कवि ने पूर्णतः 'महाभारत' के आधार पर किया है। कवि कथा के स्वाभाविक विकास के मध्य युद्ध का भयंकर चित्रण सफलता से कर पाया है। 'महाभारत' के वर्णन को यथावत चित्रित करने का प्रयास किया है। कथा में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं, समस्त कथा को आस्था के साथ स्वीकार किया गया है।

महाभारत विराटपर्व तथा सभापर्व १९ वीं शती प्रारम्भ

कवि अवधि की यह हस्तलिखितप्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में है। इन्होंने विराटपर्व तथा सभापर्व की कथा को काव्य बद्ध किया है। प्रति खंडित है, प्रारम्भ के पन्ने अनुपलब्ध हैं। कथा कहने की प्रणाली 'महाभारत' की ही है, वैशम्पायन उवाच से कथा प्रारम्भ होती है।

नृप विराट के निकटहिं गयो देखत राजाविस्मित भयो।
ताहि देख बोल्यो रघुराउ कौह याका पूछा जाऊ ॥

१ महाभारत, (शल्य और गदापर्व) पृ० ३
२ महाभारत, (शल्य और गदापर्व) पृ० ४

सिंघ के से कध जाने जुवा सुदर रूप है,
रिद्र के गधव राजा किधो या काउ रूप है।
नही दग्यो पुरुष एसो तज को जनु भानु है
परत नहीं निचार चित म किधा कोउ अरयानु है।[1]

भीम के प्रवेश करने पर राजा विराट ने उक्त अभिव्यक्ति की। ऐसे ही सबके आने पर कवि उपमाओं से युक्त वणन करता चलता है।

कथा का विकास महाभारत' के अनुसार है और चरित्र चित्रण भी इसी शैली म हुआ है।

चक्रव्यूह १६ वी शताब्दी प्रारम्भ

काशीनागरीप्रचारिणी सभा म यह ग्रथ हस्तलिखित रूप म उपलब्ध है। इसम होली पहेली नखशिख वणन आदि करन के उपरान्त कवि ने 'महाभारत' के आधार पर अभिमन्यु-सग्राम क प्रसग का काव्य बद्ध किया है। युद्ध का एक चित्र द्रष्टव्य है।

लगे बान कुरपति मत जाई छोडे रन चल दूरि लजाइ।
तजे बान पारथ सुत अभी धाय कीया दसानन छभी॥
एक बीर के बान चलाए, कालिन के तन घाव बनाए।
जैस जल वर्षे जलद तिमि बरषत हैं बान।
सात लाख तु रगदल जूझि पर मदान।[2]
इस तरह अभिमन्यु क शौय की व्यजना हो पाई है॥

द्रोणपर्व भाषा (देव दत्त) १८१८ वि०

कविवर देवदत्त द्वारा लिखित यह ग्रन्थ द्रोणपव का भाषा म अनुवाद है। अनुवाद शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि सम्पूण कथा को यथावत कविता म चित्रित किया गया है।[3]

धम सवाद (जन दयाल) १८३३ वि०

इसका विवरण हु० हि० प्र० की अयोदश त्रैवार्षिक रिपोर्ट पृ० ३२२ पर है। इस ग्रन्थ का विषय महाभारत' स ही गहीत है। इसम लेखक ने धम द्वारा युधिष्ठिर

---

१ महाभारत विराटपव तथा सभापव प० ३ ४
२ चक्रव्यूह प० ४६
३ इसका उल्लेख सन् १६०१ की हस्तलिखित खोज विवरण में प० ५६ पर हुआ है। परन्तु यह प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई अतएव उक्त विवरण खोज पत्रिका से उद्धृत है।

की परीक्षा का वर्णन किया है। धर्म चाडाल बनकर युधिष्ठिर की परीक्षा लेते हैं। कवि ने प्रारम्भ में ही कथा का सम्बन्ध हस्तिनापुर से जोड दिया है।

गुरु गोविंद की आना पाऊ, तो कथा पुरातन कहि समभाऊ।
राजा धरम हस्तिनापुर गाऊ, उत्तम कथा भई तिहि ठाऊ ॥

और अन्त इस प्रकार किया है।

पिता पुत्र की सुनि कथा मुदित होय सब कोय,
जन दयाल सहज मिल, चारि पदारथ सोय।

कवि कथा की फल-श्रुति में महाभारत के अनुरूप ही विश्वास करता है।

कृष्णायन (श्री शिवदास जी) १८४५ वि०

शिवदास जी ने 'कृष्णायन' में कथा का सकलन 'श्रीमद्भागवत और महाभारत' से किया है। कृष्ण के जीवन-चरित-गान में प्रसग रूप से पाण्डवों की चर्चा और 'महाभारत' के कुछ प्रसग आये हैं। सुभद्रा-हरण का प्रसग 'महाभारत' से गृहीत है।[1]

द्वारका काड के बाद कथा हस्तिनापुर की ओर चलती है। हस्तिनापुर की हलचल देखकर ऊधो सहित कृष्ण हस्तिनापुर जाते हैं।

हस्तनापुर हलचल सब साजा। बलिजडु बसी सबरे राजा।
ऊधो सहित चले सब देखा। नृत धतराष्ट्र के जान विसेखा।
दुरयोधन भीषम सुन पाए पूजे बलि तब हप सुहाए।[2]

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में धनधान्य की आभा देखकर, और शिशुपाल-वध को देखकर, शाल्व और दुर्योधन दुरभिसधि करते हैं। परिणामस्वरूप द्यूत के समय कृष्ण को शाल्व युद्ध में उलझा लेता है और वे पाण्डवों की सहायतार्थ नहीं आ पाते। कवि ने अत्यन्त कौशल से इन दोनों घटनाओं को जोड़ कर चित्रित किया है।

धर्मगीता (जगन्नाथ दास) १८७२ वि०

इस पुस्तक का विवरण हु० हि० ग्र० चतुर्दश त्रैवार्षिक विवरण प० ३३६ से प्राप्त हुआ। इसमें युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश वर्णित है। महाभारत में अनेक स्थान पर धर्म युधिष्ठिर को अनेक रूप में उपदेश देते हैं। इसमें सबका सार लिया हुआ है। ग्रन्थ गद्य पद्य दोनों में है।

पाण्डव पुराण (लाला बुलाकी दास) १८७४ वि०

इस ग्रन्थ का उल्लेख ह० हि० ग्र० १५ वा में विवरण प० १०३ पर हुआ है। इस समय तक भी अपभ्रंश के पुराण काव्यों की परम्परा में महाभारत' की कथा

---

१ कृष्णायन, प० १२४
२ कृष्णायन प० १३६

को जनमत ने आलान म वर्णित करने की प्रणाली विद्यमान रही। यह ग्र थ इसी का एक अग है।

पाण्डव यशेन्दु चद्रिका (स्वरूपदास) १८९२ वि०

इस ग्र थका उल्लेख हू० हि० ग्रथा की १८वी म रिपाट के पष्ठ ९२८ पर हुआ है। इसम कवि ने 'महाभारत' के आधार पर कौरव और पाण्डवा की कथा का १६ मयूखो (अध्याया) म वणन किया है। आदि के प्रथम और द्वितीय अध्याय म छन्द रचना के नियमा का उल्लेख है।

इसम 'महाभारत' के सभी पर्वों का सक्षिप्त किया गया है। कथा का प्रारम्भ व्यास की उक्ति से होता है और वश परम्परा के वणन के उपरान्त मूल कथा प्रारम्भ होती है। सामान्यत कथा का विकास महाभारत' के अनुसार ही हुआ है।

नल-दमयन्ती चरित्र नलपुराण (सेवाराम) १९९३ वि०

यह रचना पूण नही है। गणेश-खड' के अनुसार कृष्ण युधिष्ठिर-सवाद के आधार पर ५ अध्याय हैं।

नल-दमयन्ती-चरित्र अथवा नल पुराण म महाभारत' के उपाख्यान का वणन है। यह ग्र थ अप्रकाशित है, और इसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा म सुरक्षित है।

'महाभारत' के आधार पर कवि ने कथा का विकास स्वतन्त्र रूप म किया है। दमयन्ती और नल के जन्मादि के परिचय को न देते हुए, हस की चतुरता का वणन करते हुए कथा प्रारम्भ की गई है।

हस एक अति चतुर सयानो मानसरोवर तें जु उडानो।
पीत बरन कचन सा सम श्रुति सुग्रीव श्यानी उर बस।[1]

दमयन्ती का सौन्दय चित्रण भी अधिक प्रभाव शाली है।

चित्रासन सहेली सोहे सुर नर देवन क मन मोहे।
बठी उभ परमपर राज अग अग आभूषण साज।[2]

'महाभारत म हस नल से मिलकर सदेश वाहक के रूप म दमयन्ती क पास जाता है। किन्तु नलपुराण म उसका प्रथम मिलन दमयन्ती से होता है।' इसके अतिरिक्त अनेक छोटे मोटे परिवतनो क साथ कवि न सुन्दर प्रेम काव्य की रचना की है।

दमयन्ती के स्वयवर की सूचना लेकर नारद का देवा के पास गमन और देवताओं का नल को दूत बनाने का प्रसग कवि ने मूलग्रन्थ क आधार पर वर्णित किया है। इन्द्र नल के पास जाकर दूतत्व क लिए कहते है—

---

१ नलपुराण, प० १
२ नलपुराण, पृ० २
३ म० वन० ५३।२० २१, नलपुराण, पृ० ३

अहो नपति नल नाम सुजाना, मम कारज कीज सुनि दाना।
दमयती के निकट पुनि जइये, निज हमको नीके वर अइये।
कहो पराक्रम सकल हमारो, मन वाछित फल करो तिहारो।[1]

इन्द्र की उक्ति के बाद नल बिना किसी भावनात्मक द्वन्द्व के जाने की समस्या समक्ष रखते हैं। कवि का ध्यान कथा वाचन की ओर अधिक रहा है। उसने पात्रो के भावनात्मक द्वन्द्व की उपेक्षा की है जिसमे काव्य की सवेदनात्मकता उभर नहा सकी। दमयती के विरह म कही कही पर भावना का आवेग उभर पाया है।

हा कैसे नरचर मैं रहा कसे सुख दरसन बिन लहा।
तुम मैं भजे तजे सब दवा, बालापन म कीन्ही सेवा।
अब मो को क्या तजत हो स्वामी, तीन लोक म की है ठामी।[2]

काव्य की रचना दोहे चौपाई मे हुई है। चरित्र चित्रण सामान्य है। प्रेम काव्य मे जिस जीवन दृष्टि की अपेक्षा की जा सकती थी, वह इसमे नही है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि केवल कथा कहना चाहता है, उसका कोई गम्भीर उद्देश्य नही है।

नल दमयन्ती कथा (अगद कवि) १६११ वि०

इसमे विविध छन्दो मे नल की कथा कही गई है। भट्ट अगदराय के कुछ कवित्त भी पीछे सग्रहीत हैं। रचना अगद की है। कुछ पद आलम के भी जान पडते हैं।

यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखितप्रतिलिपि काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे प्राप्त हुई है। ग्रन्थ पूर्ण है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ गणेश और दुर्गा की स्तुति से होता है। कवि महाभारत' के अनुसार नलोपाख्यान के प्रस्तावक वृहदश्व मुनि के आगमन से कथा प्रस्तावित करता है।

एक समै वृहदस्वरिषि धर्म सुवन के तीर।
आय गए अदवत वन सुमति समुद्र गभीर।[3]

धर्म राज के प्रश्न के उत्तर म कहते है —

बहुत दुख बीता नल ऊपर, एता नाहि सुनो किमहू पर।
सो कहिवे मैं आवत नाही, जो नल राजमहा जग माही।[4]

---

१ नलपुराण पृ० ७
२ नलपुराण, पृ० १६
३ नल दमयन्ती की कथा, पृ० २
४ नल दमयन्ती की कथा, पृ० ३

कवि की प्रेरणा का स्रोत राजा नल की सहिष्णुता और कर्तव्य-पालन की अद्भुत शक्ति है। सम्भवतः मध्य काल मे जितना लोक प्रिय उपाख्यान नल का हुआ है उतना अन्य कोई नही। 'महाभारत' और प्रस्तुत ग्रन्थ के नलोपाख्यान की प्रस्तावना की प्रेरणा समान है। कवि ने कथा विकास, चारित्रिक उत्कर्ष आपत्ति मे सहनशीलता की भावना का चित्रण महाभारत' के अनुरूप किया है। प्रेमोन्भावना के उपरान्त दमयन्ती की दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है।

उतक्याकुल अति ही भई हस वचन को पाइ।
दमयन्ती नल विरह सौं दिन दिन सूखति जाइ।
सखिनु मध्य बैठी हती देखो उदित मयक।
विरह ज्वाल घुरमीक है राकति नल की अक॥[1]

कलि के प्रवेश की घटना का चित्रण महाभारत' के अनुरूप है।[2] कथा मे परिवर्तन न करके उसे यथावत लिया है, परन्तु यह सामान्य कोटि का काव्य है।

पाण्डव-सत (खिसनदास) १६१२ वि०

इस पुस्तक का विवरण हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थो का सत्रहवा त्रवार्षिक विवरण पृ० ३८५ पर मिलता है। इसमे दुर्वासा मुनि से पाण्डव सम्बन्धी कथानक को लिया गया है।

✓ दुर्वासा ऋषि एक समय कौरवो के पास आए दुर्योधन ने उनको प्रसन्न करके पाण्डवो का नाश करने का आशीर्वाद मागा। आशीर्वाद तो मुनि ने नही दिया पर पाण्डवो को आपत्ति के जाल मे लाने का वचन दे दिया।

तदुपरान्त ऋषि युधिष्ठिर के पास वन मे गये और वहा पृथ्वी से सद्य उगा हुआ तथा पका हुआ आम खाने के लिये कहा। पाण्डव चिन्तित हुए, पर बाद मे अपने अपने सत्य से मुनि के लाए हुए फलो को उन्ही के अनुसार उगाकर पकाकर भोजन कराया। मुनि आशीर्वाद देकर चले गये। पाण्डवो के सत्य के चमत्कार के कारण पुस्तक का नाम पाण्डव-सत' रखा है।

✓ महाभारत मे यह प्रसग इस प्रकार है कि दुर्योधन पाण्डव नाश का वरदान माग कर केवल उनके पास भेज देता है और द्रौपदी के पुकारने से कृष्ण आकर नदी के तट पर दुर्वासा को तुष्ट कर देते हैं। अन्तत दुर्वासा प्रसन्न होते हैं और दुर्योधन की इच्छा पूर्ण नही होती।

---

१ नल दमयन्ती की कथा, पृ० १६
२ नल दमयन्ती की कथा पृ० ४६

बभ्रूवाहन की कथा[1] (जन प्रान नाथ) १९२१ वि०

'बभ्रूवाहन की कथा' अप्रकाशित काव्य है। इसकी एक प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित है। काव्य का प्रारम्भ भवानी की स्तुति से होता है।

जगतमातु पितु सभु भवानी,
करहि कृपा सुत सेवक जानी।
जसु तन जग विदित गनेसा,
मोह अपिलताम मन हृदि नेसा।[2]

कवि ने दोहा चौपाई में अर्जुन और बभ्रूवाहन के युद्ध का चित्रण किया है। शैली वर्णनात्मक है।

सुनहु परिछिता भूप कुमारा, हरि चरित्र अति अगम अपारा।
कन भारल जोरि जुग पानी कहा पारथ मा मजुल बानी।[3]

इस प्रकार कवि ने कहीं-कहीं कथा को सवादात्मक रूप में वर्णित किया है। युद्ध के अनेक दृश्य अत्यन्त सजीव बन पड़े हैं।

बानन तन चरनी भयो बरनि बरनी न जाई।
बरसत बाना उनी मती भटचवार हरषाई।।[4]

× × ×

पारथनदन परम उदारा बदनघाय बहि शोनित धारा।
पारथनदन गदा समारा गदा जुधाव लेम सरदारा।[5]

इसमें कवि ने 'महाभारत' की कथा का संक्षेप मात्र किया है और कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया। कथा का अन्त अत्यन्त उल्लसित वातावरण में किया गया है।

बभ्रूवाहन की कथा (राम प्रसाद) १९२५ वि०

इस ग्रन्थ का विवरण ह० हि० ग्र० अयादश त्रवार्षिक विवरण पृ० ५६६ पर प्राप्त हुआ है। इस में अर्जुन-पुत्र बभ्रूवाहन की कथा का वर्णन है। अश्वमेधयज्ञ के प्रसंग में बभ्रूवाहन ने अर्जुन का सिर काट डाला फिर नाग लोक से मणि लाकर अर्जुन को जीवित किया। काव्य का अन्त इस प्रकार किया गया है।

प्रद्युम्न सहित नियत सब बीरा बर्षे गट प्रति अमृत नीरा।
जेकर जाइ भय रन भरना सब जीव गहहिं टेकहिं हरि चरना।

दमयन्ती नल की कथा (केवल कृष्ण) लिपि काल स० १९३३

इस प्रति का विवरण हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के सत्रहवें त्रवार्षिक विवरण के पृष्ठ २५१ पर विद्यमान है। इसमें नलदमयन्ती की प्रसिद्ध कथा का गान किया है।

---

१ खोज रिपोर्ट १९१२ पृ० १६१
२ बभ्रूवाहन की कथा पृ० १
३ बभ्रूवाहन की कथा, प० ५
४ बभ्रूवाहन की कथा पृ० ६
५ बभ्रूवाहन की कथा, प० १६

नल चरित (सेवा सिंह) लिपिकाल १६३४ वि०

सेवा सिंह के 'नल चरित' का विवरण हि० हु० ग्र० १८ वां त्रवार्षिक रिपोर्ट मे उपलब्ध हुआ। इसमें नल दमयन्ती का चरित्र गाया गया है।

कथा का विकास महाभारत के अनुसार ही हुआ है। मुनि वृहदश्व के आगमन से कथा प्रारम्भ होती है।

एक समै वृहदश्व ऋषि धम सुवन के तीर।
आय गये बन्धन बन सुमति सरल गंभीर।[1]

वृहदश्व नलोपाख्यान सुनाते हैं और युधिष्ठिर को सान्त्वना देते हैं। वनवास के समय नल दमयन्ती की वार्ता का एक चित्र देखिए —

दमयन्ती ये पथिक जन कुण्डन पुर का जात।
यह मारग अति सरल है कुछ न हो उतपात।[2]

दमयन्ती नल की बात समझ जाती है —

निषधनाथ की बात सुनि भीमसुता अकुलाइ।
जानि गई पति चातुरी कहन लगी समझाई।[3]

नल नारी की महत्ता का स्वीकार करते हैं —

भीमतनुजा सत्य तुम कही बात निरधारि।
दुख सुख की सगिनी सुनि एक विश्वसा नारि।[4]

इस रूप मे कवि ने नारी की शक्ति का गुण गान किया है।

अभिमन्यु कथा—अभिमन्यु-वध

इन दोनों ग्रन्थो का उल्लेख हु० हि० ग्र० १८ वां त्रै० विवरण के पृ० ६३६ पर हुआ है। दोनों ग्रन्थो की प्रतियां काशी नागरी प्रचारिणी सभा मे सुरक्षित है।

अभिमन्यु-कथा की भाषा राजस्थानी है और अभिमन्यु-वध की भाषा अवधी है।

अभिमन्यु-वध मे सग्राम का प्रारम्भ द्रष्टव्य है

बरषत बान बन्द अधिकाई। मघा नक्षत्र मनहु बरि लाई।
सुभट सूरमा टरै न टारे। जिमि हरि भजन विनाम दुगारे।
बाजे शूरवीर दहु बारा। हा हा कार मचावत धारा।
इनही उत जद्रथ दोहाई। महा मारू सग्राम मचाई।[5]

---

१ नल चरित प० १
२ नल चरित, पृ० ७
३ नल चरित, प० ७
४ नल चरित, प० ११
५ अभिमन्यु वध प० ४

महाभारत की कथा का प्रभाव

सम्पूर्ण कथा प्रभावित काव्य
घटना प्रधान काव्य
चरित्र प्रधान काव्य

चतुर्थ अध्याय

महाभारत की कथा का प्रभाव

महाभारत' प्रभावित आधुनिक प्रबन्ध काव्यों के कथा-संग्रहण के आधार पर तीन वर्ग किए जा सकते हैं।

प्रथम वर्ग —सम्पूर्ण कथा का सार संक्षेप करने वाले प्रबन्ध काव्य। यथा—'कृष्णायन', 'जयभारत' 'अंगराज', आदि।

द्वितीय वर्ग —मुख्य घटना को लेकर चलने वाले काव्य जिनमें प्रसंग रूप से अन्य कथा भी समाविष्ट कर ली गई है। यथा—'रश्मिरथी' 'कुरुक्षेत्र' 'कौन्तेयकथा'

तृतीय वर्ग —किसी पात्र विशेष के जीवन-चरित पर आधारित काव्य। यथा 'पांचाली', 'एकलव्य', 'हिडिम्बा' आदि।

इन सभी काव्यों में विशेष द्रष्टव्य यह है कि कवि का वैयक्तिक दृष्टिकोण काव्य प्रणयन की मूल प्रेरणा रहा है। अतः हमने मुख्य प्रबन्ध काव्यों की विवेचना पृथक् रूप में की है। और लघु वृत्तों पर आधारित काव्यों की समीक्षा सम्मिलित रूप में प्रस्तुत करके यह बताने की चेष्टा की है कि किस सामाजिक अथवा सामयिक विचार से प्रभावित होकर कवि ने 'महाभारत' की मूल कथा में परिवर्तन किया है और उस परिवर्तन की उपलब्धि क्या है?

✓ सामान्यतः 'महाभारत' के उन्हीं आख्यानों और कथाओं का ग्रहण किया है जिनके माध्यम से कवि अपनी विचारधारा की अभिव्यक्ति कर सके। अतः कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण को समझते हुए ही समीक्षा की गई है। जब हम महाभारतीय कथा पर आधारित प्रबन्ध काव्यों का विश्लेषण करते हैं तो स्पष्ट होता है कि आज के साहित्यिक विषयों में आमूल परिवर्तन हुआ है। साहित्य के सभी अंगों पर सामाजिक समस्याओं का प्रभाव अत्यन्त गम्भीर और व्यापक रूप में पड़ा है। भारतीय जीवन में सांस्कृतिक उत्थान एवं नवजागरण के सभी सामाजिक और राजनैतिक उपादानों ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आधुनिक काव्य को प्रभावित किया है इसमें सन्देह नहीं। नव चेतना और नवजागरण के स्वाभाविक परिणामस्वरूप भारतीय जीवन की मान्यताओं में परिवर्तन आया। शताब्दियों से एक परम्परावादी दृष्टि से चरित्रांकन की नीतियाँ बदलने लगीं। इस युग में एक दूसरे रूप से ही अतीत के निरीक्षण-परीक्षण की पद्धति स्वीकार की गई। आस्था का स्थान तर्क ने और श्रद्धा का स्थान विवेक ने लिया। सम्पूर्ण साहित्य जड़ परम्पराओं से मुक्ति का स्वरघोष करने लगा। कविता समाज की इस महती आवश्यकता का अनुभव करके अतीत के

पुनरालेखन की ओर सजग हुई। 'रामायण' 'महाभारत' 'भागवत' ने कथानकों को लेकर लिखे जाने वाले सभी काव्यों ने प्राचीन घटनाओं को नवीन आलोक में प्रस्तुत किया। इस समय अछूतोद्धार का आन्दोलन सफलतापूर्वक चल रहा था। व्यक्ति पौरुष और वर्गगत वैभव का संघर्ष यद्यपि सनातन है किन्तु इस युग में आकर व्यक्ति के पौरुष को अधिक बल मिल रहा था। इस सामाजिक आन्दोलन के कारण कवियों के दो वर्ग बने। एक वर्ग वह था जिसने प्राचीन आदर्शों की यथावत स्थापना की, और उसमें सामयिक आदर्शवादी परिवर्तन करके ही संतुष्टि प्राप्त की। दूसरा वर्ग था जिसने उपेक्षित पात्रों के जीवन की मुख्य घटनाओं के मर्म को समझा और उनको मानवता का प्रतीक मानकर चित्रित किया। 'रामायण' और 'महाभारत' के आदर्शों के स्थापना की महती आवश्यकता से प्रेरित होकर आधुनिक कवियों ने उन काव्यों की मार्मिक कथाओं पर स्वतन्त्र दृष्टि से रचनाएं की। इन रचनाओं में इन ग्रन्थों का पूर्ण प्रभाव है, किन्तु कवि ने प्रभाव को युगीन परिवेश में ग्रहण किया है। महाभारत का प्रमुख प्रतिपाद्य धर्म है। 'महाभारत' की युद्ध-कथा भी धर्म-कथा के रूप में परम्परा से व्यवहृत है। आधुनिक साहित्य में महाभारत की कथा को लेकर लिखे जाने वाले काव्यों का प्रतिपाद्य भी 'धर्म' ही है। कवि आधुनिक जीवन की व्यवस्था में सांस्कृतिक उत्थान के लिए महाभारत से कथा ग्रहण कर युगीन विचार धारा के आलोक में परिवर्तित कर, अतीत के माध्यम से वर्तमान में सुधार का स्वर-घोष करता है। 'महाभारत का धर्म' आज के युग में 'मानवता' के पर्याय के रूप में स्वीकृत है अतः इन सभी काव्यों में अतीत के अनुकरण पर, नवीन मानवतावाद की प्रतिष्ठा की गई है।

अब हम सम्पूर्ण महाभारतीय कथा पर आधारित प्रबन्ध-काव्यों का कथा प्रभाव की दृष्टि से विश्लेषण करेंगे।

कृष्णायन

भारत के जातीय और सांस्कृतिक जीवन के संरक्षण की महती एवं यथार्थ भूमिका जितनी कृष्ण के चरित्र और कार्यों में प्राप्त होती है उतनी इस देश में किसी अन्य महापुरुष में उपलब्ध नहीं। जीवन स्वतः अन्तर्विरोधों और संघर्षों से पूर्ण होता है उसी अनुपात से सांस्कृतिक मूल्यों में अन्तर्विरोध और जातीय स्थिति में संघर्ष की भावना उभरती है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कृष्ण का चरित्र अधिक प्राचीन और अपेक्षाकृत कम काल्पनिक माना गया है। कृष्ण के चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि वह एक ओर तो गुण सौन्दर्य की पूर्णता का आधार है दूसरी ओर सम्पूर्ण सांस्कृतिक रीति नीति और मर्यादा जीवन दर्शन और राष्ट्रीयता का प्रतीक है। पुराणों में कृष्ण का मधुर और महाभारत में लोकरक्षक रूप सुरक्षित है। वस्तुतः इन दोनों भावधाराओं के समुचित समन्वय में ही 'महाभारत' के कृष्ण का अध्ययन अपेक्षित है।

साहित्य में कृष्ण चरित्र के तीन प्रमुख रूप विद्यमान है

१ धर्म सस्थापक रूप ।

२ गोपीजन वल्लभ, राधाकृष्ण रूप ।

३ बालगोपाल रूप ।

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण-चरित्र का प्रथम रूप अधिक प्रामाणिक और प्राचीन है । कृष्ण का द्वितीय गापीजन वल्लभ रूप' 'हरिवश पुराण और भागवत' की देन है। शनै शनै कवियो धार्मिको और दार्शनिको न योगीराज कृष्ण के स्थान पर उक्त रूप की प्रतिष्ठा की । 'गीतगोविन्द' और गोडीय वष्णवो द्वारा प्रतिष्ठित कृष्ण स्वरूप का प्रभाव, भक्ति और रीतिकाल से विकसित होता आया । इस स्वरूप विकास का मुख्य कारण भक्ति सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा थी । वल्लभाचार्य के पुष्टिमाग म कृष्ण चरित के बालगोपाल रूप को मान्यता मिली । इससे ममता की साकार मूर्ति के रूप म ईश्वर की प्रतिष्ठा की गई ।

सम्पूण हिन्दी साहित्य मे कृष्ण के तीना रूपो को लेकर साहित्य सजन हुआ । सामान्यत धर्म-सस्थापक कृष्ण का रूप मध्यकाल मे उपेक्षित रहा और शेष दो रूपा की प्रधानता रही । आधुनिक काव्य तीना रूपा से समृद्ध है । खडी बाली ब्रज-भाषा और अवधी तीनो भाषाओ मे कृष्ण चरित्र पर आधारित रचनाए उपलब्ध ह, जिनके दो वग हैं —सम्पूण कृष्ण चरित काव्य और राधावल्लभ रूप । प्रथम वग के अतगत कृष्णायण', जसे काव्य हैं । द्वितीय वग म 'प्रियप्रवास' और 'उद्धव शतक' आदि काव्यों के साथ गीतिकाव्यान्तगत विपुल साहित्य रचा गया । भारती युद्ध से सम्बन्धित कृष्ण चरित्र की महत्त्वपूण रचना 'कृष्णायन है । कृष्णायण' म विसाहूराम का दृष्टिकोण भक्त्यात्मक है किन्तु कृष्णायन मे मिश्र जी की विचार-धारा मे भक्ति-भावना और सुधार-वादी राष्ट्रीय भावना का समन्वय है । मिश्र जी का दृष्टिकोण विशुद्ध सास्कृतिक धरातल पर पुरुषोत्तम भगवान कृष्ण के जीवन का प्रस्तुत करना है, जिसमे राष्ट्र निर्माण और आयत्व की प्रतिष्ठा हो सके । इसी दृष्टिकोण के कारण मिश्र जी ने कृष्ण के तीनो रूपो मे समन्वय कर सम्पूण 'महाभारत' की कथा का सार सक्षेप लेकर महाकाव्य की रचना की है।

मिश्र जी के 'कृष्णायन म महाभारत का साराश कृष्ण के साथ अत्यन्त सुन्दरता से सम्बद्ध है । समस्त ग्रन्थ मे महाभारतीय वीर युग का वातावरण स्पष्ट रूप म मुखर हुआ है और उसी प्रकाश म कृष्ण की कथा का विकास और कृष्ण काचरित्र-चित्रण हा पाया है ।

कथा सग्रहण

कृष्णायन' म कवि 'महाभारत' की समस्त जीवन परम्परा को चित्रित करना चाहता है अत प्रथम तीन काण्डा मे कथा का सग्रहण महाभारततर ग्रन्था से करके, अन्तिम चार काण्डा की कथा के हेतु 'महाभारत' पर आश्रित रहा है । वह कष्ण के

जीवन की उस महत्ता, विशुद्धता और विकासमयी प्रेरणा को प्रत्यक्ष करना चाहता है जो 'महाभारत' में प्राप्य है। इसके पूर्व कृष्ण का बालचरित, गोपियो के साथ क्रीडा आदि घटनाएं भूमिका रूप में प्रस्तुत की गई हैं।

'अवतरण काण्ड' की कथा 'महाभारत' से गृहीत नही है। इसमें कवि ने कृष्ण पूर्व मथुरा की स्थिति, जन्म, अलौकिक कर्म और कंस विरोध का चित्रण किया है। इस कथानक का आधार मूलत 'भागवत' और 'सूरसागर' है।

'मथुरा काण्ड' का मुख्य विषय कंस का वध और देवकी का उद्धार है। कवि ने युग के अनुरूप कथा में निमग्न हो जाने वाले कतिपय परिवर्तन अवश्य किए हैं। कृष्ण ने विद्याध्ययन में गुरुकुल प्रणाली की श्रेष्ठता व्यक्त की है। इस काण्ड की कथा के आधार 'भागवत' 'सूरसागर' और अन्य 'पुराण' हैं।

'द्वारका काण्ड' का कथानक कवि ने लगभग पूर्ववर्ती आधारग्रन्थों से ग्रहण किया है। इसमें तत्कालीन राज्य व्यवस्था के आधार पर सामयिक राजनैतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। इस काण्ड से कथा संग्रहण में कवि 'महाभारत' की ओर आया है।

आदिपर्व — 'कृष्णायन' के द्वारका काण्ड के पृ० २५४ से 'महाभारत' की कथा प्रारम्भ होती है। रुक्मिणि विवाह के प्रसंग में कृष्ण सुफलकसुत को पाण्डवों की कुशल लाने भेजते हैं। इस प्रसंग के उपरान्त कवि पाण्डव-कौरव परिचय देता है। 'कृष्णायन' में वारणावत प्रसंग से पाण्डवों की कथा प्रारम्भ होती है।

आदिपर्व के आधार पर मिश्रजी ने निम्न प्रसंगों की अवतारणा की है। १२५ और १२६ वें अध्यायों के आधार पर कवि ने पाण्डवों का परिचय दिया है। अध्याय १३३ के अनुसार रंगभूमि प्रसंग तदुपरान्त अध्याय १३७ १३९ १४० से १४८ तक के आधार पर लाक्षागृह प्रसंग की रचना है।[1] स्वयंवरपर्व वैवाहिकपर्व और विदुरागमन राज्यलम्भपर्व का संक्षेप पृष्ठ २६७ से ३२१ तक हुआ है। 'कृष्णायन' में भी इन घटनाओं का संक्षिप्त चित्रण है। अर्जुन वनवासपर्व और सुभद्राहरणपर्व के आधार पर द्वारका काण्ड का अंतिम भाग रचित है।

सभापर्व —इस पर्व से 'कृष्णायन' में सभा निर्माण प्रसंग लिया गया है और 'कृष्णायन' के पूजा काण्ड में सभापर्व के प्रमुख प्रसंग संक्षिप्त किये हैं। जरासंध वध पर्व के आधार पर जरासंध के वध प्रसंग की सृष्टि करके राजसूयपर्व शिशुपाल वध पर्व के संक्षेप में पाण्डवों की कथा में कृष्ण की महत्ता का चित्रण किया है। द्यूतपर्व तथा द्रौपदी वस्त्रहरण प्रसंग को अतिरंजित मार्मिक रूप में ग्रहण किया गया है।

वनपर्व —पृष्ठ ४३४ से पूजा काण्ड के अन्त तक की कथा वनपर्व से ली गई है। वनपर्व के अध्याय ४ ५ तथा १४ से २१ तक के अध्यायों का मर्म शाल्व-वध की कथा

---

१ कृष्णायन, पृ० २७१ २७८

के रूप म किया है। अध्याय ३७ के आधार पर अर्जुन का वनगमन और द्रौपदी-हरण और अध्याय २६३ के आधार पर दुवासा के वत्त का समावेश किया है। 'कृष्णायण' में वनपव की मुख्य घटनाम्रा का वणन है।

विराटपव विराटपव की समस्त कथा का सांकेतिक रूप म दो दोहा म चित्रित किया है। अध्याय २५ से ६६ तक की विस्तत कथा सकुचित रूप मे नारद स कहलवाई है। 'कृष्णायण म कीचकवध प्रसग लिया है।

उद्योगपव उद्योगपव से कवि ने रणचर्चा का आधार ग्रहण किया है। उद्योगपव के ■ वें अध्याय के आधार पर गीताकाण्ड के प्रारम्भिक प्रसग कृष्ण की सहायता' का वणन है। सजयान पव, यानसधिपव, भगवद्यानपव का सक्षिप्त गीताकाण्ड म है। कृष्णायण' म इस पव स कृष्ण दूतत्व का प्रसग गृहीत है।

भीष्मपव भीष्मपव से गीताकाण्ड की विषय वस्तु का चयन किया गया है। श्री मद्भगवद्गीता पव का अनुवाद १०७ वें दोहे से इस काण्ड के अन्त तक किया है। इस पव के युद्ध का वणन जयकाण्ड के प्रारम्भ मे विन्यस्त किया है।

द्रोणपव इस पव से अभिमन्युवध, जयद्रथवध, घटोत्कचवध की घटना का कवि ने जयकाण्ड के पृ० ६७१ से ७३० तक चित्रित किया है। इस प्रसग मे कवि ने युद्ध जैसी भौतिक वस्तु को नतिक धरातल पर चित्रित करने का प्रयास किया है। कृष्णायण म युद्ध चित्रण अत्यन्त सक्षिप्त रूप स किया है।

कणपव शल्यपव और सौप्तिकपव का सक्षप जयकाण्ड के उत्तराध मे किया है। कवि घटनाम्रा का सांकेतिक चित्र उपस्थित करता हुआ कथा को अन्त की ओर अग्रसर करता है।

शान्तिपव अनुशासनपव और आश्वमेधिकपव, की कथा का सक्षेप आरोहण काण्ड म किया है। इन पर्वो म कथा कम और विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन अधिक है। लखक ने आधार ग्रन्थ से राजनतिक व्यवस्था क उपदश ग्रहण किए हैं। 'महाभारत' के केवल राजनीति से सम्बन्ध रखने वाले प्रसगा को सक्षिप्त किया गया है। आश्वमेधिक पव से यज्ञ का चित्रण लिया गया है।

मौसलपव इस पव के आधार पर कवि ने यदुवंशियों के गृहकलह का चित्रण किया है। इस प्रकार महाभारत' के प्रमुख प्रसगा का लेकर अन्त तक कृष्ण की जीवन गाथा के साथ अत्यन्त कुशलता से जोड़ा गया है।

कथा विकास—परिवर्तन परिवधन

यह हम पहले ही निर्देश कर चुके है कि कृष्णायन सम्पूर्ण रूप से महाभारतीय आख्यान मे प्रभावित नही है तथापि उसम महाभारत का कथानक प्रधान रूप से विद्यमान अवश्य है— महाभारत क विभिन्न पर्वो से प्रमुख आख्यानो को कृष्ण के जीवन से सम्पृक्त करके विनिमित किया गया है।

अब हम 'महाभारत' से गृहीत प्रमुख प्रसगो के आधार पर 'कृष्णायन' के परिवर्तन एव परिवर्धन पर विचार करेगे।

कौरव-पाण्डव परिचय और रगभूमि प्रसग आधार ग्रथ के अनुसार 'कृष्णायन' मे सक्षिप्त वश-परिचय दिया है। महाभारत' मे वश परिचय विस्तृत है 'कृष्णायन' मे साकेतिक।[1] महाभारत' मे अक्रूर के आगमन एव सब सम्भ्रात व्यक्तियो से मिलने की चर्चा नही है कृष्णायन मे पाण्डवो की सुधि लेने अक्रूर आते हैं और सब से मिलते हैं।

प्रभु प्रेरित अक्रूर, पहुचे उत कौरव पुरी[2]
× × ×
द्रोणाचार्य समीप गवन पुनि सुफलक सुवन[3]

रगभूमि के प्रसग को 'कृष्णायन' मे आधार ग्रथ के सदृश चित्रित किया गया है। अक्रूर की उपस्थिति निश्चित ही कृष्ण के जीवन से सम्बद्ध की जा सकती है। कृष्ण के अभ्युदय से अध नृपति और दुर्योधन की चिन्ता का स्वाभाविक रूप मे चित्रित किया है।

महाभारत' मे भीम-दुर्योधन के द्वन्द्व का प्रदर्शन विस्तार से किया गया है। 'कृष्णायन मे साकेतिक चित्रण कर भीम की महत्ता प्रदर्शित की है। अर्जुन के शस्त्र प्रदर्शन के अवसर पर महाभारत मे वर्णित अनेक शस्त्रो का नामोल्लेख कृष्णायन' मे नही है। इसके उपरात कर्ण का प्रवेश वाक्युद्ध और दुर्योधन की मित्रता के प्रसग कृष्णायन' मे 'महाभारत' से यथावत ग्रहण किए गए हैं। इन प्रसगो मे लेखक किसी भी दृष्टि से कोई परिवर्तन नहीं कर पाया। जाति पूछे जाने पर कर्ण की मानसिक स्थिति का क्षोभपूर्ण चित्रण 'कृष्णायन मे महाभारत की अपेक्षा अधिक मनोवैज्ञानिक हो पाया है। 'महाभारत मे स्थिति घटनात्मक है 'कृष्णायन' मे मनोवैज्ञानिक। कुन्ती की स्थिति का चित्रण समान रूप से प्रभावशाली है।

कुति भोजसुता माह विनाताथा अगामह[4]
× × ×
गिरीपरणि अकुलाय धाय सभारेउ कुल तियन[5]

कवि महाभारतीय स्वर के साथ सहमत होता हुआ पाण्डव पक्ष की वीरता और कौरवो की उद्दण्डता का चित्रण करता है।

---

१ म० आदि० अध्याय ६८ ११०, १२३ १२४, कृष्णायन पृ०२५४
२ कृष्णायन, पृ० २५४
३ कृष्णायन, पृ० २५६
४ म० आदि० १३५।२७
५ कृष्णायन, पृ० २६८

वारणावत प्रसंग महाभारत में विदुर पाण्डवों से मिलकर रहस्योद्घाटन करके पुरवासियों के समक्ष म्लेच्छ भाषा में युधिष्ठिर को समझाते हैं, 'कृष्णायन' में विदुर दूत द्वारा यह कार्य करते हैं।[1]

विदुर द्वारा सुरंग निर्माण के हेतु दूत का भेजना, लाक्षागृह में एक वर्ष की अवधि का कार्यक्रम, गंगापार होना, कौरवों की शोकाभिव्यंजना आदि प्रसंगों को कृष्णायनकार ने छोड़ दिया है। कवि ने कृष्ण की कथा के लिए आवश्यक प्रसंगों को लिया है और शेष की उपेक्षा कर दी है। वारणावत प्रसंग का उल्लेख द्रौपदी स्वयंवर की विशाल कथा की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित हुआ है।

स्वयंवर प्रसंग 'महाभारत' में द्रौपदी-स्वयंवर विवाह प्रसंग विस्तृत रूप से आया है। यह महाभारत' की प्रमुख घटना है जिससे पाण्डवों को द्रुपद की मित्रता प्राप्त हुई और राजनैतिक सन्धियों के कारण शक्ति और प्रभाव में वृद्धि हुई। 'कृष्णायन' में यह प्रसंग इस विस्तृत भूमिका के साथ चित्रित न हो सका। आधार ग्रंथ में इस प्रसंग के उल्लेख के साथ अनेक सामाजिक और दार्शनिक प्रसंगों की तात्विक विवेचना की गई है। महाभारत के विस्तृत प्रसंगों के लिए कृष्णायनकार ने संक्षिप्त शैली ही अपनाई है।

परिवर्तन-परिवर्धन उक्त प्रसंग को कवि ने महाभारतीय आख्यान के अनुसार ही चित्रित किया है किन्तु कृष्ण की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए निम्नांकित परिवर्तन किए हैं।

महाभारत में कृष्ण लक्ष्यवध से पूर्व पाण्डवों को पहचान कर बलराम से कहते हैं किन्तु 'कृष्णायन' में कृष्ण यादवों को लक्ष्यवध से विरत कर देते हैं।[2]

"कर न यादव शूर कोउ, मत्स्यभेद उद्योग"[3]

महाभारत में कर्ण परास्त होकर ब्रह्मतेज को अजेय मानकर युद्ध विरत होता है 'कृष्णायन' में भी वह इसी रूप में परास्त होता है।

कर्ण का प्रश्न है—

किं त्वं साक्षात् धनुर्वेदो रामो वा विप्रसत्तम।
अथ साक्षाद्धरिहयः साक्षाद् वा विष्णुरच्युतः ॥[4]

---

१ म० आदि० १४७।२० २७, कृष्णायन, पृ० २७७
२ म० आदि० १८८। २२
३ कृष्णायन पृ० २९६
४ म० आदि० १८९। १० १५

की तुम विष्णुहि कायावाना
जे मै विप्र रूप भगवाना ?
सक्रहिता नहिं महितनुधारी ?
अथवा प्रकट आपु त्रिपुरारी ?[१]

दोनों ग्रन्थों में अर्जुन की अद्वितीय वीरता की प्रतिष्ठा होती है। क्षात्रतेज का चमत्कार ब्राह्मणत्व का आधार पाकर अधिक प्रतिष्ठित हो सकता है 'महाभारत' की इस भावना की परोक्ष अभिव्यक्ति भी इस प्रसंग में हो पाई है। इसके उपरान्त धृष्टद्युम्न द्वारा गुप्त शोध, कुन्ती द्वारा पंचभोग का वरदान, यथावत लिया गया है।

महाभारतकार ने द्रौपदी के पंचपतित्व की आदर्शात्मक प्रतिष्ठा के लिए व्यास और कृष्ण के द्वारा अनेक धार्मिक सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इनमें पूर्व जन्म की कथा को प्रमुखता दी है। कृष्णायन में महाभारत के निम्न स्थलों की उपेक्षा की गई है।

१ विवाह के लिए पांचों पाण्डवों का विचार।[२] 'महाभारत' में पांचों भाइयों के द्रौपदी के सौन्दर्य पर मुग्ध होने का प्रसंग यथार्थ रूप में आया है। कवि ने उसकी चर्चा नहीं की। वह 'महाभारत' की यथार्थवादी दृष्टि से समझौता नहीं कर सका।

२ पाण्डवों के शील स्वभाव की परीक्षा।[३]

३ विवाह के लिए युधिष्ठिर एवं द्रुपद का वार्तालाप।[४] धर्मराज एवं द्रुपद का वार्तालाप भी यथार्थ स्थिति को स्पष्ट करता है। युधिष्ठिर यह मानते हैं कि द्रौपदी अर्जुन ने जीती पर विवाह तो उनका एवं भीमसेन का प्रथम होना चाहिए अतः पांचों का विवाह एक साथ हो।

सर्वेषां धर्मतः कृष्णा महिषी नो भविष्यति।
आनुपूर्व्येण सर्वेषां गृह्णातु ज्वलने करान्॥[५]

महाभारत में युधिष्ठिर की व्यक्तिगत इच्छा धर्मसम्पन्न मानकर अभिव्यक्त की गई है। कृष्णायन में केवल व्यास पूर्व जन्म तत्त्व के आधार पर द्रुपद को पांचों पाण्डवों के साथ विवाह करने का परामर्श देते हैं।[६] कृष्णायन में विवाह की सामाजिक स्थिति का लेकर विस्तृत विवेचन नहीं किया गया। कवि इस प्रसंग को कोई

---

१ कृष्णायन पृ० ३०५
२ म० आदि० १६०।१२ १६
३ म० आदि० १६३।१२
४ म० आदि० १६४। २१ २७
५ म० आदि १६४।२६
६ कृष्णायन, पृ० ३१६

युगसम्मत समाधान खोजने में भी असफल रहा है। व्यासजी के दिव्य दृष्टि- से प्राचीन कथा के प्रदर्शन को,[1] अलौकिक कथांश को 'कृष्णायन' में अव्यावहारिक जान कर छोड़ दिया गया है।

राज्य प्राप्ति प्रसंग इस प्रसंग में कौरवों के पक्ष में कर्ण, भीष्म द्रोण का वार्तालाप तथा अन्त में पाण्डवों की राज्य प्राप्ति प्रमुख रूप से चित्रित है। कर्ण शक्ति से पाण्डवों को परास्त करने की सम्मति देता है और भीष्म तथा द्रोण विरोध करते हैं। 'कृष्णायन' में यह प्रसंग परिवर्तित है। महाभारत' में वह पहले दुर्योधन को सम्मति देता है 'कृष्णायन' में सामूहिक रूप से भीष्म एवं द्रोण की निन्दा करता है।[2]

'महाभारत' में सामूहिक रूप से निन्दा का प्रसंग भी बाद में विस्तार से चित्रित किया है। 'कृष्णायन' में समस्त चित्र संक्षिप्त शैली में अंकित हैं। वार्ता में इस प्रसंग में जीवन के एक व्यावहारिक रूप की ओर कवि ने दृष्टि डाली है। कि किसी भी मध्यवर्ती व्यक्ति की प्रतिष्ठा तभी तक हो सकती है जब तक दोनों पक्षों में संघर्ष हो, अतः वह व्यक्ति संघर्ष की स्थिति सदा ही बनाये रहता है। कर्ण की स्थिति कौरव-पाण्डव संघर्ष में ऐसी ही चित्रित की गई है।

जबलगि मिलत न पाण्डव कुरुजन।
यहि कुल तबहिं लागि मुव पूजन॥[3]

अतः कर्ण के परामर्श और संघर्ष को उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। वह केवल प्रतिकार की भावना से कौरव पाण्डव विरोध का वातावरण बनाये रहता है। पाण्डवों की राज्य प्राप्ति का चित्रण कवि ने अत्यन्त संक्षेप में किया है।

अर्जुन वनवास एवं सुभद्राहरण पाण्डवों की राज्य प्राप्ति के उपरान्त कथा को कृष्ण के साथ प्रवाहित करके कवि अर्जुन वनवास के प्रसंग का चित्रण करता है।

ब्राह्मण की प्रार्थना सुनकर पाण्डव क्षत्रिय धर्म का पालन करते हैं और वनवास के हेतु जाते हैं। इस प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' के आधार पर धर्म की रक्षा और पालन की सत्यता पर बल दिया है। धर्मराज के क्षमा करने पर अर्जुन कहते हैं—

---

१ म० आदि० २०१।११ १२ कृष्णायन, पृ० ३१८

२ म० आदि० २०१।६, कृष्णायन, पृ० ३१६

३ कृष्णायन, पृ० ३२०

वचन बद्ध हम पाँचहु भाई।
उचित न घम साथ चतुराई।।[1]

अर्जुन वनवास से सम्बद्ध निम्न प्रसगो को 'कृष्णायन' म छोड दिया गया है। गगा द्वार म उलूपी मिलन,[2] मणिपुर मे चित्रागदा से विवाह[3] वर्गा अप्सरा का ग्राह योनि से छुटकारा।[4] इन प्रसगो को इसलिए छोड दिया गया है कि इनका व्यक्तिगत सम्बन्ध केवल अर्जुन से है।

अर्जुन का द्वारका आना और सुभद्रा को देखकर आसक्त होना दोनो ग्रन्थो म समानरूप से है।

परिवर्तन परिवधन महाभारत मे कृष्ण स्वय अर्जुन की इच्छा को जान जाते हैं और सुभद्रा का परिचय देते हैं। कृष्णायन' म कृष्ण जान जाते है कि अर्जुन का मन मुग्ध हो गया है पर वे कुछ बोलते नहीं।[5]

महाभारत' मे अर्जुन स्पष्ट कामाभिव्यक्ति करते हैं 'कृष्णायन म वे अपने आपको कामासक्त जानकर मन मे धिक्कारते हैं।[6] महाभारत म अर्जुन के कहने पर कृष्ण अपने पिता से स्वय बात करने की स्वीकृति देते हैं कृष्णायन' म अर्जुन कहता है कि 'याचहुँ पितु ढिग जाय कुमारी तो कृष्ण उत्तर देते हैं मागे मिलत कबहुँ कछुनाही।[7]

महाभारत म कृष्ण के परामर्श को अर्जुन तत्काल मान जाते हैं कृष्णायन' म वे इस विश्वासघात की सज्ञा देते हैं और फिर कृष्ण के समझाने स मानते हैं[8] और दूत द्वारा धमराज की स्वीकृति पाकर सुभद्रा का हरण करते हैं। इस घटना के उपरान्त बलराम के क्रोध पूर्ण उद्गार हैं, किन्तु सभी यदुजन कृष्ण के समझाने से मान जाते हैं।

इस प्रसग स कवि ने यादवो और पाण्डवो क अभिन्न सम्बन्ध की स्थिति को प्रकाशित करके एक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। स्त्री हरण प्रसग को क्षत्रियो का अधिकार बनाकर इसका समथन किया है।

---

१ कृष्णायन पृ० ३४८
२ म० आदि० अध्याय २१३
३ म० आदि० अध्याय २१४
४ म० आदि० अध्याय २१५
५ म० आदि० २१८।१६ १६, कृष्णायन, पृ० ३४८,
६ म० आदि० २१८।२० कृष्णायन, पृ० ३४८ 'धिक्धिक मोहि कामपथ गामी।
७ म०, आदि० २१८।१७, कृष्णायन, पृ० ३४८ ३४६
८ म० आदि० २१८।२३, कृष्णायन, पृ० ३४६,

राजसूय प्रसग मे जरासध-वध राज्य प्राप्ति और अर्जुन के आगमन के उपरात कृष्ण एक राष्ट्र के निमाण की भूमिका बनाते हैं। इस कारण राजसूय यज्ञ की प्रतिष्ठा होती है। इस यज्ञ से पाण्डवों का उत्कर्ष सब सिद्ध हो जाता है, और अप्रत्यक्ष रूप से कृष्ण की अलौकिक शक्ति की प्रतिष्ठा होती है।

'महाभारत' म नारद युधिष्ठिर को शिक्षा देते हुए राजसूय यज्ञ का परामर्श देते हैं। कृष्णायन' म इस विस्तृत प्रसग का साकेतिक उल्लेख किया गया है।

नारद कृष्ण के पास जाकर उनको युधिष्ठिर के पास भेजते हैं कि वे राजसूय की स्थिति निर्मित करें।[1]

'महाभारत मे वर्णित अनेक लोकपालो की सभाओ का चित्रण प्रसग कवि ने त्याग दिया है। 'महाभारत मे राज्य विजय-हेतु जरासध तथा अन्य राजाओ को पराजित करने की बात प्रबल रूप से आती है। 'कृष्णायन' मे नारद और कृष्ण द्वारा एक राष्ट्र के अथ संस्कृति के आदश की स्थापना के कारण दिग्विजय पर बल दिया जाता है।[2]

'महाभारत' म दिग्विजय का उल्लेख विस्तृत है, कृष्णायन में सक्षिप्त शली म उसकी सूचना मात्र दी है।[3] 'महाभारत म जरासध की उत्पत्ति का विस्तृत प्रसंग वर्णित है 'कृष्णायन म उसकी उपेक्षा की गई है।[4] इन्द्रप्रस्थ से मगध की यात्रा तक का प्रसग यथावत है। इस कथा के विकास म कवि विशेष उल्लेखनीय परिवतन नही कर पाया। इस प्रसग स शक्ति के साथ नीति का सामंजस्य चित्रित किया गया है। लडने से पूव जरासध अतिथिगृह म सबको ठहराता है। इस प्रसग से शत्रु के साथ भी उच्च आदश का प्रकाशन किया है और भारतीय परम्परा की उज्ज्वलता दिखाई है।

महाभारत म जरासध युद्ध से पूव अपने पुत्र के राज्याभिषेक की घोषणा करता है, कृष्णायन' मे कृष्ण सहदेव के साथ पहले क्रिया करते हैं तब उसे राज्याधिकारी बनाते हैं।[5] कृष्ण के द्वारा जरासध की अन्त्येष्टि मे कवि उच्च सांस्कृतिक आदर्शों की स्थापना करता है। महाभारत' म सहदेव के द्वारा अनेक रत्न आदि भेंट म देने का प्रसग आता है कवि ने उस अत्यन्त सक्षेप म चित्रित किया है। 'महाभारत म भयभीत सहदेव को कृष्ण अभयदान देते हैं[6] कृष्णायन' मे इस प्रसग को न लेकर केवल भेंटादि का कायक्रम सम्पन्न कराया है।

---

१ म० सभा० ५।२५, कृष्णायन, पृ० ३७४
२ म० सभा० १६।१५ १७ कृष्णायन पृ० ३७७
३ म० सभा० अध्याय २५ ३२ कृष्णायन, पृ० ३७९
४ म० सभा० अध्याय १७ १९
५ म० सभा० २२।३१, कृष्णायन, पृ० ३८८
६ म० सभा० २४।४२ ४३ कृष्णायन, पृ० ३८९

शिशुपाल वध प्रसग इस कथा म युधिष्ठिर के द्वारा अनेक राजाओ को निमत्रण।[1] राजाओ का आगमन एव ठहरने की व्यवस्था[2] युधिष्ठिर का शिशुपाल को समझाना।[3] भीष्म द्वारा अनेक अवतारो के कारणो पर प्रकाश।[4] शिशुपाल द्वारा कृष्ण की लीलाओ का वणन आदि प्रसगो का अभाव है। इसका प्रमुख कारण यह है कि कृष्णायनकार अपने प्रब ध की सीमा मे केन्द्रवर्ती घटना का चित्रण करना चाहता है। यद्यपि 'महाभारत' म इन प्रसगो के द्वारा कृष्ण के ईश्वरत्व और अवतार रूप का प्रतिपादन किया गया है, और कृष्णायनकार कृष्ण के ईश्वरत्व का स्वीकार करता है, कि तु इस प्रसग की उदभावना इस स्थल पर अपेक्षित नही समझी गई।

' महाभारत मे शिशुपाल ज म-वृत्तान्त का कवि ने छोड दिया है।

परिवतन परिवधन महाभारत मे शिशुपाल द्वारा भीष्म की नि दा का प्रसग अध्यायो के विस्तार मे चित्रित है। कृष्णायन' म उसे सक्षिप्त रूप से चित्रित किया है।[5] 'महाभारत' म शिशुपाल कृष्ण से युद्ध करने के लिए अनेक राजाओ का तयार करता है। कृष्णायन म वह अकेला आवेश म आकर तलवार निकालता है।[6]

'महाभारत' म वर्णित प्रसग के अनुसार अनेक राजा शिशुपाल की ओर हो जाते हैं। यह उस समय क एक वग की भावना का प्रकाशित करता है कि राजाओ का आसुरी वृत्ति सम्पन्न वग युधिष्ठिर के धम युक्त राज्य क आधीन नही होना चाहता था। कृष्णायनकार ने तत्कालीन राजनतिक स्थिति की गहराई और गम्भीरता को समझ कर भी इस प्रसग को छोडना उचित समझा। वह चरित्र नायक के प्रति प्रमुख विरोध के साथ, अ य राजाओं की महत्ता स्वीकार करना नही चाहता। कृष्ण शिशुपाल का वध करते हैं और सब राजा आतकित होकर शान्त हो जाते हैं। कृष्णायन म वध के समय की अलौकिक घटनाओ को बौद्धिक समाधान के अभाव मे छोडना उचित समझा गया।

परिवधन इस प्रसग म युधिष्ठिर क वैभव क कारण दुर्योधन की चिन्ता स्वाभाविक रूप से उभर सकती थी। महाभारत म मानसिक ग्लानि क रूप म इस चिन्ता का चित्रण किया गया है। इस प्रसग का लेकर कृष्ण से उद्धव सात्यकि तथा दन्तवक्र को क्षोभ हुआ। आधार ग्र थ म इस क्षोभ का चित्रण नही है। कृष्णायनकार ने सम्भावना के आधार पर इन दोनो स्थितियो का चित्रण किया है। यम क

१ म० सभा० अध्याय २३
२ म० सभा० अध्याय ३४
३ म० सभा० ३७।४
४ म० सभा० अध्याय ३७
म० सभा० अध्याय ४१, ४४, कृष्णायन पृ० ३९६
म० सभा० ३६।१२ १४, कृष्णायन, पृ० ४०१

मध्य शिशुपाल-वध के उपरान्त दतवक्र एव शाल्व, दुर्योधन स मिलत हैं और उसका पाण्डव विरोधी अभियान के लिय तयार करते हैं।

उत ल दतवक्र निज साथा,
गवनऊ शाल्व जहां कुरुनाथा।

× × ×

अरि तुम्हार य पाण्डुसुत, मम अराति यदुराय।
सकत दुहुन मैं नासि जा कुरुजन करहिं सहाय ॥[1]

मिश्र जी न शत्रुओ के इस मिलन का अत्यत मनोवैज्ञानिक स्थिति मे चित्रित किया है। शाल्व का एसा प्रस्ताव कुरुनाथ कस ठुकरा सकते थे। दुर्योधन की चिन्ता का चित्रण परिवर्धित रूप है। पर शाल्व और दन्तवक्र की चेष्टाए कवि की नूतन उद्भावना है।

द्यूत प्रसग द्यूत' 'महाभारत का अत्यत मार्मिक प्रसग है। मिश्र जी न यथाशक्ति महाभारतीय मार्मिकता की रक्षा करत हुए इस प्रसग का सुदर चित्रण किया है।

द्यूत प्रसग की प्रमुख घटनाओ को कवि न यथावत ग्रहण किया है। 'महाभारत म शाल्व और दतवक्र की कुमत्रणा नहीं है किन्तु कृष्णायनकार न इस प्रसग स विशेष स्थिति की सयोजना की है। दुर्योधन का शाल्व और दन्तवक्र युद्ध की प्रेरणा दत हैं तो कण असुरो की मित्रता का अव्यावहारिक तथा हानिप्रद बताता है। उसक कथन का सार यह है कि असुरो की मित्रता से कृष्ण स्पष्ट शत्रु हो जायेंगे और यह राज नतिक गठबधन उचित नहीं है। कवि इस प्रसग म, यह उदघाटित करता है कि आय युद्ध म अनार्यों का सहयोग उचित नहीं है।

वर उचित नहिं कृष्णसग उचित न असुरन प्रीति।
सकल समर महि पाण्डु सुत एकाकिहि मैं जीति ॥[1]

द्यूत सम्बन्धित 'महाभारत' क निम्नलिखित प्रसग 'कृष्णायन' म नहीं है।

दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर के वभव का वणन, धतराष्ट्र क समक्ष युधिष्ठिर के अभिषेक का विस्तृत वणन धतराष्ट्र का उकसाना धतराष्ट्र का दुर्योधन का समझाना।

इन प्रसगो का विस्तार भय के कारण नहीं किया गया। द्यूत के विषय म लेखक अनेक विवेचनात्मक विचार प्रस्तुत कर सकता था किन्तु कथा प्रवाह क मध्य इस विचार क लिए उसन स्थान नहीं निकाला।

---

१ कृष्णायन, पृ० ४०३

१ म० सभा० अध्याय ५६ ५७, कृष्णायन पृ० ४०७

'महाभारत' म धतराष्ट्र की आना से विदुर धमराज को द्यूत के लिए बुलाने जाते है। कवि ने आधार ग्र थ का ही अनुकरण किया है। किन्तु 'महाभारत के विस्तृत सवाद की उपेक्षा की है।[1]

'महाभारत म युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की आना स अधिक शकुनि की ललकार का महत्ता देते हैं कृष्णायन' म व केवल धतराष्ट्र की आना मानते है। 'महाभारत' म विदुर के साथ यात्रा क उपरान्त युधिष्ठिर हस्तिनापुर आ जाते हैं। कृष्णायन' म अजु न एक महत्वपूण प्रश्न पूछत हैं

सुजन सिरोमणि तुमयहि देखू
लाय कस धम लिख सदेनू।[2]

विदुर विवशता मे उत्तर देते हैं—

कुरजन अन्न रुधिर तन माही
भाखि न सकेउ 'अन्त' मुख नाहीं ॥[3]

विदुर की विवशता का मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त सुन्दर रूप मे किया गया है। द्यूत के मध्य निम्न प्रसगो को 'कृष्णायन म स्थान नहा मिला है।

शकुनि युधिष्ठिर सवाद विदुर जी का तीव्र विरोध, दुर्योधन का विदुर जी को फटकारना विकण का धम-सम्मत बात कहना। द्यूत क्रीडा और द्रौपदी के अपमान का प्रसग समान है। प्रतिकामी के साथ न आने पर दु शासन भेजा जाता है और उस का अपमान होता है। द्रौपदी के प्रश्न और उत्तर को कवि न अत्यन्त सक्षिप्त शली में साकेतिक रूप म चित्रित किया है। कृष्णायन म कथा विकास म इस समस्या का सामाजिक एव सास्कृतिक विवेचन नहीं किया गया। द्रौपदी के वस्त्रवधन की अलौकिक घटना का कवि कोई युगसम्मत बौद्धिक समाधान प्रस्तुत न कर सका। उसे उसी अलौकिक आस्था क रूप म चित्रित किया है।

वन प्रसग द्यूत म हार कर पाण्डव वन गय। इस प्रसग को कृष्णायनकार ने अत्यन्त सक्षप म पूजाकाण्ड के उत्तराद्ध म चित्रित किया है।

वन म जाते समय पुरवासियो की अवस्था, कुन्ती का हस्तिनापुर रहन का निश्चय द्रोणाचाय का कौरवो को आश्वासन आदि प्रसगो को छोडकर कवि न साकेतिक रूप स निम्न प्रसग लिए हैं

---

१ म० सभा० ४८। १६, कृष्णायन, पृ० ४१६
२ कृष्णायन प० ४१५
३ कृष्णायन, प० ४१६

व्यास के परामर्श से अर्जुन का दिव्यास्त्र प्राप्ति हेतु जाना,[1] इन्द्र और शिव की आराधना,[2] पाण्डवों का अन्यतीर्थों में भ्रमणार्थ गमन।[3] 'महाभारत' के वन एवं विराट पर्व की कथा केवल सांकेतिक रूप में ग्रहण की गई है क्योंकि कृष्णायनकार की कथा का विकास कृष्ण के साथ चलता है, पाण्डवों के साथ नहीं। इसके लिए कवि ने नारद का निर्वाचन किया। नारद ही कृष्ण के पास आकर पाण्डवों के अज्ञातवास के उपरान्त प्रकट होने की सूचना देते हैं। दुर्वासा का प्रसंग, अज्ञातवास प्रसंग, उत्तरा का विवाह प्रसंग, प्रारम्भिक तैयारी, द्रुपद के पुरोहित का दूतरूप में हस्तिनापुर जाना आदि प्रसंगों को कृष्णायनकार ने अत्यन्त द्रुतगति से चित्रित किया है। इन स्थलों पर कथा विकास अत्यन्त विरल और गतिमान होकर चला है।

रण उद्योग एवं सन्धि प्रयास 'महाभारत' का उद्योग पर्व रण के उद्योग और सन्धि प्रयासों की घटनाओं से परिपूर्ण है। इस सम्पूर्ण पर्व में दोनों पक्षों की रण-तैयारी, अनेक दूतों का आवागमन और अन्तत भगवान कृष्ण का दूतत्व प्रमुख रूप से चित्रित हुआ है। 'महाभारत' के कथा प्रवाह में प्रासंगिक इतिवृत्त अधिक हैं, किन्तु 'कृष्णायन' में उनको स्थान नहीं दिया गया। उक्त अवान्तर कथाएं कृष्णायन के प्रबन्ध संयोजन से पृथक होने के कारण उपेक्षित हुई हैं।

'कृष्णायन' के गीताकाण्ड का प्रारम्भ भी अर्जुन और दुर्योधन के द्वारा भगवान कृष्ण से युद्ध में सहायता की प्रार्थना से होता है। सहायता की याचना और भगवान के दूतत्व के मध्य अनेक अवान्तर कथाओं को छोड़ कर कवि विस्तार से भगवान के दूतत्व का चित्रण करता है। यहां पर कवि युद्ध की भयंकरता का चित्रण करता है और शान्ति की आवश्यकता पर बल देता है।

परिवर्तन-परिवर्धन महाभारत में दुर्योधन गुप्तचरों से पाण्डवों की चेष्टाओं एवं कृष्ण के द्वारका लौटने का पता लगाकर सहायता प्राप्त करने पहुंचता है। 'कृष्णायन' में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं दिया गया और दोनों की उपस्थिति से गीता काण्ड प्रारम्भ किया है।[4] 'महाभारत' में दुर्योधन और अर्जुन के प्रवेश का पृथक वर्णन किया है[5] किन्तु 'कृष्णायन' में यह प्रसंग छोड़ दिया गया है। तथापि श्री कृष्ण की सहायता का वर्णन दोनों ग्रन्थों में समान है।

'महाभारत' में दुर्योधन सेना प्राप्त कर बलराम के पास जाते हैं तो बलराम का स्वर आशीर्वादात्मक होता है। कृष्णायनकार ने बलराम के मुख से दुर्योधन को

---

१ कृष्णायन, पृ० ४४३
२ कृष्णायन, पृ० ४४४
३ कृष्णायन, पृ० ४४६
४ म० उद्योग ७। ३४, कृष्णायन, पृ० ४६७
५ म० उद्योग, ७। ८

फटकार दिलाई है। यद्यपि 'महाभारत' के प्रसंग में बलराम दुर्योधन को सहायता की अस्वीकृति देते हैं पर उदार वचनों में—

नहि सहाय पार्थस्य नापि दुर्योधनस्य च।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्यह।[1]

'मैं श्रीकृष्ण की ओर देखकर इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मैं न तो अर्जुन की सहायता करूँगा और न दुर्योधन की'

कृष्णायनकार के बलराम का स्वर अत्यन्त उग्र है।

दुर्योधन का प्रश्न है

करि हैं अब न समर यदुरायी।
सकल नाथ मोहि मह्श जितायी॥[2]

यह प्रश्न सुनकर बलराम रुष्ट होकर जो उत्तर देते हैं उससे उनकी उग्रता प्रकट हो जाती है।

सुनत कुमत उर रोष अपारा।
बरस राम वदन अंगारा।
'विभव मुनि पूजक अविचारी।
धर्मान्तिमु निज कुल जारी।

भयहु तुमहि सन्ताप महो, गृह सौहार्द नसाय।
चहत सोइ भीषण अनल यदुकुल दन लगाय।[3]

दुर्योधन की चित्तवृत्ति की इससे अधिक भीषण व्याख्या और क्या हो सकती है। कृष्णायनकार ने बलराम के द्वन्द्व की स्पष्ट अभिव्यक्ति की है।

दुर्योधन के लौटने पर कर्ण पाण्डवों के पास जाते हैं। वहाँ संजय दूत बनकर आता है और युद्ध की हानि बताता है। महाभारत में संजय का दूतत्व विस्तार में चित्रित है। कृष्णायनकार ने उसे अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है। इस प्रसंग से कवि ने इस बात पर बल दिया है कि स्वत्व माँगने से नहीं मिलता उसके लिए संघर्ष आवश्यक है। यदि याचनामात्र से अधिकार मिल जाए तो युद्ध की स्थिति ही न रहे। पाण्डव सन्देश देते हैं कि या तो हमारा अधिकार दो अन्यथा संघर्ष होगा।

'महाभारत' के निम्न प्रसंग छोड़ दिये गये हैं

धृतराष्ट्र का संजय को सन्देश देना, दुर्योधन की कटूक्तियाँ युधिष्ठिर के पृथक् सन्देश।

---

१ म० उद्योग ७। २६
२ कृष्णायन, पृ० ४७६
३ कृष्णायन, पृ० ४६६ ४७०

इन प्रसंगों में युद्ध के अनुकूल एव प्रतिकूल प्रभावों की विस्तृत चर्चा की गई है। संजय अनेक दुर्गुण बताकर युधिष्ठिर को युद्ध से विरत करने की चेष्टा करते हैं। युधिष्ठिर भी यही चाहते हैं किन्तु क्षत्रिय भिक्षावृत्ति को कैसे अपना सकता है? अतः अधिकार प्राप्ति के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाता है।

युद्ध की विस्तृत कथा का संक्षेप करने के लिए कवि ने प्रजागर पर्वान्तर्गत कथा को छोड़ दिया है और संजय के उत्तर को संक्षिप्त करके भगवान के दूतत्व का प्रारम्भ किया है।

'महाभारत' के निम्न प्रसंग 'कृष्णायन' में नहीं लिए गये

धृतराष्ट्र का विदुर को उपदेश,[1] धृतराष्ट्र को सनत्सुजात का उपदेश[2] व्यास एवं गान्धारी का परामर्श[3] भीष्म जी के द्वारा पाण्डवों के गुण एवं शक्ति का परिचय[4]।

कृष्ण के दूतत्व से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का संक्षेप किया है और पात्रों के विस्तृत विवाद को नहीं लिया गया। इस प्रसंग में निम्न स्थल छोड़ दिए हैं

युधिष्ठिर एवं कृष्ण का विस्तृत वार्तालाप, कृष्ण और भीम की वार्ता, भीम का शान्ति संदेश तथा कृष्ण का उन्हें उत्तेजित करना। अर्जुन एवं नकुल का कथन।

इन प्रसंगों को छोड़कर कवि ने द्रौपदी के कथन का मार्मिक चित्रण किया है। महाभारत में द्रौपदी कृष्ण को अपने अपमान की स्मृति दिलाती है और कहती है कि शान्ति तथा संधि करते हुए मेरे पूर्व अपमान को न भूलिएगा——

अयं त पुण्डरीकाक्ष दुःशासन कराहृतः
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां सन्धिमिच्छता।[5]

× × ×

करन लगहिं अरि संग जब संधि आपु विश्वेश।
दुःशासन कर्षित प्रभो। बिसरहिं नहिं यह केश।[6]

भगवान की यात्रा मार्ग के शुभाशुभ शकुन और वृक स्थल पर आकर ठहरने तक की कथा दोनों ग्रन्थों में समान रूप से मिलती है। महाभारत में दुर्योधन कृष्ण के लिए मार्ग में विश्राम-स्थलों की व्यवस्था करता है। कृष्णायन में वह स्वागत के

---

१ म० उद्योग० अध्याय ३४
२ म० उद्योग० अध्याय ४२
३ म० उद्योग० अध्याय ६७
४ म० उद्योग० अध्याय ४९
५ म० उद्योग० ८२।३६
६ कृष्णायन, पृ० ४८३

हेतु अस्वीकृति देता है और यह कार्य धृतराष्ट्र अन्य पुत्रों से करवाते हैं।[1] यद्यपि इस कथा परिवर्तन का कोई महत्त्वपूर्ण कारण नहीं कहा जा सकता फिर भी इससे कवि की कौरवों, विशेषतः दुर्योधन के प्रति भावना स्पष्ट हो जाती है। वह किसी प्रकार की उदारता की सम्भावना भी दुर्योधन के चरित्र में स्वीकार नहीं करता।

'कृष्णायन' में भीष्म द्रोण और विदुर दुर्योधन की भावना के विरोध में सभा त्याग कर चल देते हैं। इस प्रकार का कोई संकेत 'महाभारत' में नहीं है। भगवान कृष्ण कुंती के पास जाकर कुशल पूछते हैं और पुनः दुर्योधन के पास जाते हैं। वह भोजन का निमंत्रण देता है किन्तु कृष्ण स्वीकार नहीं करते। वे विदुर के यहां जाकर सब परिस्थिति से अवगत होते हैं। विदुर प्रेम में वशीभूत होकर भगवान को लौटने की प्रार्थना करते हैं पर कृष्ण उनको अपने दूतत्व का महत्त्व समझाते हैं।

उक्त कथांश दोनों ग्रंथों में समान है। अन्तर केवल विस्तार और संक्षेप का है। कृष्णायनकार ने अत्यन्त संक्षिप्त शैली में 'महाभारत' के पांच अध्यायों की कथा चित्रित की है। दुर्योधन और कृष्ण का संवाद 'कृष्णायन' में भावानुवाद के रूप में मिलता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है। महाभारत में दुर्योधन का निमंत्रण पाकर कृष्ण स्पष्ट उत्तर देते हैं

सम्प्रीति भोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥[2]

अर्थात् भोजन प्रीति में या आपत्ति में होता है और हमारे साथ तुम्हारी प्रीति नहीं तथा आपत्ति में हम नहीं हैं।

परि विपत्ति अथवा वश प्रीति
खात पराम सुजन जग रीति
मोहिं सग प्रीति तुम्हारि नहिं विपति ग्रस्त मैं नाहिं।
कहि कारण भोजन करहु, बस निवसहु गृहमाहिं॥[3]

महाभारत के एक श्लोक में व्यक्त भाव को कवि ने चार पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है। इस प्रसंग के उपरान्त विदुर के घर भोजन तथा सभा प्रवेश का चित्रण समान रूप से श्लाघ्य है।

'महाभारत' में भगवान कुलक्षय की भीति दिखाकर कौरवों को युद्धविरत करने की चेष्टा करते हैं किन्तु 'कृष्णायन' में कुल क्षय के साथ एक राष्ट्र निर्माण की भावना पर बल दिया गया है। कृष्ण का कथन है कि कुम्भ को सम्राट स्वीकार करके हमने

---

१ म० उद्योग ८५।११, १४ १५ १७ कृष्णायन, पृ० ४८६
२ म० उद्योग, ९१।२५
३ कृष्णायन पृ० ४९०

अपने वंश के एकछत्रराज्य की कामना त्याग दी है, जो बलिदान हमने किया है वह इस संघर्ष के कारण व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।[1]

भगवान के वक्तव्य के पूर्व अनेक अवान्तर कथाओं को छोड़ दिया गया है। इस प्रबन्ध में इनकी कोई उपयोगिता नहीं थी। परशुराम द्वारा दम्भोद्भव की कथा से नरनारायण स्वरूप अर्जुन एवं कृष्ण के महत्व का प्रतिपादन,[2] कण्व मुनि द्वारा दुर्योधन को समझाना।[3] मातलि का उपाख्यान।[4] गरुड़ का गर्व भंजन।[5] गालव विश्वामित्र का उपाख्यान।[6] ययाति का स्वर्गपतन।[7]

'महाभारत' में उक्त प्रसंगों के द्वारा भगवान कृष्ण की लोकव्यापी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। आधार ग्रन्थ के इस विस्तार को 'कृष्णायन' में स्थान नहीं मिला। संकेत रूप में कवि ने कृष्ण की महत्ता को स्वीकार कर यथा समय उसकी अभिव्यक्ति की है।

कृष्ण के वक्तव्य के उपरान्त धृतराष्ट्र, भीष्म तथा अन्य व्यक्ति दुर्योधन को समझाते हैं किन्तु वह किसी की बात नहीं मानता। 'महाभारत' में दुःशासन कृष्ण की बात सुनकर कहता है कि ऐसा लगता है जैसे भीष्म, द्रोण आदि हमको बाँधकर पाण्डवों के आधीन कर देंगे। 'कृष्णायन' में ऐसा प्रसंग नहीं है।[8] गान्धारी के द्वारा दुर्योधन को समझाने का प्रसंग भी 'कृष्णायन' में छोड़ दिया गया। सात्यकि के द्वारा दुर्योधन की कुटिलता की सूचना और कृष्ण का विराट दर्शन कृष्णायनकार ने यथावत चित्रित किया है।

भगवान के दूतत्व के प्रसंग को लेकर कृष्णायनकार ने एक विशेष बात पर बल दिया है। वह एक राष्ट्र के निर्माण की महती आवश्यकता समझता है। एक राष्ट्र, एक संस्कृति निर्माण के लिए छोटे छोटे राज्यों को स्वार्थ का त्याग करना होता है, तभी विराट और शक्तिशाली राष्ट्र की स्थापना होती है।

युद्ध प्रसंग—'महाभारत' में वर्णित युद्ध प्रसंग को तीन भागों में विभाजित किया गया है—

१ मन्त्र निर्माण।

---

१ म० उद्योग० ६४। २३-२५ कृष्णायन, पृ० ४९७
२ म० उद्योग० अध्याय ९६
३ म० उद्योग० अध्याय० ९७
४ म० उद्योग० अध्याय० १०३
५ म० उद्योग० अध्याय १०५
६ म० उद्योग० अध्याय १०६
७ म० उद्योग० अध्याय १२१
८ म० उद्योग० १२८। २३-२४

२ अर्जुन मोह।
३ रणस्थली।

मिश्रजी ने सैन्य निर्माण का चित्रण अत्यन्त संक्षेप में किया है। शेष दो भागों का विस्तार से वर्णन हुआ है। सैन्य निर्माण में दोनों शिविरों के सेनापतियों का चुनाव, भीष्म के प्रसंग में कर्ण का युद्ध से विरत होना। उलूक का दूतत्व तथा अपने वीरों का वर्णन प्रमुख है।

महाभारत में पहले पाण्डवों के सेनापति के चुनाव का प्रसंग है 'कृष्णायन' में कौरव पक्ष को प्रथम रक्खा गया है। युधिष्ठिर क्षणभर को इस युद्ध प्रसंग से क्षुब्ध होते हैं पर कृष्ण उनको कर्तव्य का ज्ञान करा कर उत्साहित कर देते हैं। यह प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है।

'महाभारत' में भीष्म कर्ण के साथ युद्ध करने के लिए स्पष्ट अस्वीकृति देते हैं। कृष्णायन में भीष्म कर्ण के नायकत्व पर आपत्ति करते हुए उसे अर्धरथी बताते हैं तो कर्ण स्वयं युद्ध से विरत होता है।[1] कृष्णायन में कुरुक्षेत्र के मेले के कारण कथा प्रवाह युद्ध से पृथक होकर क्षण भर के लिए आनन्दित वातावरण में हो जाता है। यह कवि की सद्भावना है। इससे वह राजनीति की एक विशेषता बताना चाहता है कि पवित्र त्यौहार पर युद्ध जैसा जघन्य कार्य भी रोका जा सकता है।

उलूक के दूतत्व का कवि ने यथावत चित्रण किया है। महाभारत का उलूक दुष्ट और उद्दण्ड है 'कृष्णायन' का दूत मूल रूप में विनीत है।[2] युद्ध का यह प्रसंग कृष्णायन में संक्षेप में चित्रित है। द्वितीय प्रसंग अर्जुन का मोह है। दोनों सेनाओं के मध्य रथारूढ़ होकर वह मोह ग्रस्त हो जाता है और कृष्ण मोह के बादलों को विच्छिन्न करने के हेतु ज्ञान का उपदेश देते हैं। इस प्रसंग में कथा का अभाव है अतः इस प्रसंग के प्रभाव पर धर्म-दर्शन नामक अध्याय में प्रकाश डाला जायगा।

रणस्थली महाभारत के सम्पूर्ण युद्ध का वर्णन कवि ने जय काण्ड में किया है। इसमें कवि की विशेषता यह है कि उसने किसी भी रूप में कृष्ण को चित्रपट से हटने नहीं दिया। युद्ध की प्रमुख घटनाओं का वर्णन के प्रभाव के अन्तर्गत चित्रित करते हुए पाण्डव विजय की घोषणा धर्म विजय के रूप में की है।

परिवर्तन-परिवर्धन महाभारत में युधिष्ठिर आशा मांगने जाते हैं तो अर्जुन नकुल सहदेव आदि उनको रोकने की चेष्टा करते हुए पूछते हैं कि राजन क्या कर रहे हैं? कृष्णायन में धर्मराज को शत्रुपक्ष की ओर जाते देखकर सब भयभीत होकर कृष्ण से पूछते हैं।[3]

---

१ म० उद्योग० १५६। २४, कृष्णायन पृ० ५१०
२ म० उद्योग० १६१। १०, कृष्णायन, पृ० ५२८
३ म० भीष्म० ४३। १६।१८, कृष्णायन, पृ० ६१६

कृष्ण के उत्तर दोनों ग्रंथों में समान है।

एषभीष्म तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च।
अनुमान्य गुरून्सर्वान्यास्यते पार्थिवाऽरिभिः।[1]

× × ×

धर्म युद्ध हित बद्धकटि, धर्म निधान नरेश
गुरुजन टिप नवनलहन, प्राणिप समर निदेश।।[2]

'महाभारत' में, द्रोण आदि के भाग्य न लेने पर शाप देने की बात कही। कृष्णायन में इस प्रसंग को नहीं लिया गया।[3] कृष्णायन में अत्यन्त सौहार्द पूर्ण वातावरण में इस स्थिति का चित्रण है।

दूरहि ते लखि स्यन्दन त्यागा
गत रण राग, दगन अनुरागा

× × ×

विगत निमेष विलोचन निश्चल
विस्मत क्षण, रण क्षेत्र स्य दल।[4]

भीष्म की स्थिति का प्रकाशन कवि ने मार्मिकता से किया है। मानसिक आसक्ति, व्यावहारिक विवशता का एक साथ व्यक्ति के हृदय पर आक्रमण और सयम के साथ इन सब परिस्थितियों को स्वीकार कर युद्ध करने की बलवती भावना का प्रकाशन सजीव रूप में हुआ है। कवि ने 'महाभारत' की स्पष्टोक्तियों का उदार समर्पण में परिवर्तित कर दिया है। इस स्थल पर कवि पाठक के हृदय को अधिक प्रभावित कर सका है।

इस प्रेममय मिलन के उपरान्त भीषण युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। कवि ने युद्धोन्माद का हृदय-ग्राही चित्रण किया है। भीष्मपतन तक के शेष युद्ध का चित्रण कृष्णायनकार सांकेतिक शैली में करता है। वह घटनाओं की सूचना देता हुआ मुख्य घटना पर आकर विराम लेता है।

महाभारत में दुर्योधन भीष्मपतन तक कर्ण से विशेष चर्चा नहीं करता। किन्तु दोनों ग्रन्थों में आठवें दिन कर्ण दुर्योधन को ताना देता है कि समुचित समय आने पर तुमने भीष्म को अधिनायक बनाकर मेरा अपमान कर दिया।

---

१ म० भीष्म० ४३।२२
२ कृष्णायन पृ० ६१६
३ म० भीष्म० ४३। ३८, ४३ ७६
४ कृष्णायन पृ० ६१६,
५. कृष्णायन पृ० ६३७,

मूलग्रन्थ मे दुर्योधन अपनी सेना की भागना देखकर युद्ध भूमि म ही कण के साथ अन्य निश्चय की घोषणा करता है। 'कृष्णायन' म वह पहले कण के पास बाद म भीष्म के पास जाकर, ऐसी अभिव्यक्ति करता है।[1] सेना के पराजय की स्थिति म कण के पास पगमन हेतु जाना और भीष्म स ऐसा प्रस्ताव करना परिस्थिति के अनुकूल मनस्थिति का परिचायक है। यह प्रसग कवि की मौलिक निजी सूझ है। इसस प्रथमत कण के प्रति दुर्योधन का अटूट विश्वास प्रकट होता है दूसरे परास्त व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक मनोवृत्ति का उदघाटन होता है।

'महाभारत' म बाणो से आच्छादित रथ को देखकर कृष्ण रथ से कूद पडत हैं, 'कृष्णायन' म अजुन की शिथिलता के कारण कृष्ण चतुराई स रथ चलाते हैं। और दुर्योधन घेरा डालता तब व रथ स कूदते हैं। इसस भक्त के प्रण की रक्षा होती है। अजुन म शक्ति का सचार होता है।

दसवें दिन के युद्ध म निम्न प्रसगो को छोड दिया है।

भीष्म से मृत्यु का उपाय पूछना, भीष्म दुर्योधन सवाद महारथियो का द्वन्द्व युद्ध। इन प्रसगो को छोड कर कवि सीधा अजुन भीष्म युद्ध का चित्रण करता है। कृष्णायन म पहले वह स्वय युद्ध के लिए आता है और पुन अजुन स रक्षित होकर आता है।

एव ते पाण्डवा सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
विव्युधु समरे भीष्म परिवार्य समन्तत ॥[2]

भीष्म शिखण्डी स कहत हैं —

निगटु सग नहि रणकरत रहे पूव जे नारि।[3]

इस कारण युद्ध विरत भीष्म पाथ के बाणों स घायल होकर गिर पडते हैं। पतन से पूव शिखण्डी क मुख से प्राचीन बातो की पुन स्मृति और भीष्म द्वारा यह सोचना कि वास्तव म धन के आधार पर पले इस शरीर को अब गिर जाना चाहिए कवि की मौलिक सूझ है। इससे सिद्धात रूप म पराधीन व्यक्ति की मनस्थिति स्पष्ट होती है।

महात्याग ममगौरव धामा, दास्यहि आजु तासु परिणामा।

पतन क उपरान्त अजुन स उपधान और कण मिलन प्रसगो म पूण साम्य है। कवि ने महाभारत के इन विस्तृत प्रसगो को अत्यन्त सक्षेप म प्रस्तुत किया। भीष्म

---

१ म० भीष्म० ५८।३६, कृष्णायन पृ० ६४६
२ म० भीष्म० ११६।१
३ कृष्णायन पृ० ६५६
४ कृष्णायन, पृ० ६६१

एव कण के वार्तालाप मे कण की दृढ मत्री और नियति-शक्ति की स्थापना हुई है। कण के हृदय म भीष्म के प्रति उदारभाव उदित हाने हैं और भीष्म कण का सदुपदेश देकर उसके जन्म की कथा कह कर, सन्धि की चेष्टा करत हैं। कण स्थिति की वास्तविकता का समझ कर युद्ध के लिए आज्ञा लेकर चल देता है।

महाभारत म नारद द्वारा कण न जन्म-वृत्तभीष्म को बतान की बात कही गई है, कृष्णायन में नारद का प्रसग नही केवल व्यासजी का नाम है।[1] 'महाभारत' का कण अधिक भावुक नहीं होता कृष्णायन' मे कण भावना मे निमग्न होकर अपन जन्म की घटना का दयनीय बनाता है।

पै न जननि प्रति ममतउर रोपा
देत मदा मैं मार्यहि दोषा।[2]

कण तथा अन्य माय महारथियों के परामर्श न द्रोणाचाय सेनापतिपद पर विभूषित हात हैं। इस स्थल पर निम्नस्थ प्रसगों का छोड दिया है। राजाओं द्वारा कण का स्मरण[3] कण की शूरता का वणन कण का रथयात्रा[4] भीष्म जी के प्रति कण के वचन।[5] द्रोण के सेनापतित्व को लेकर महाभारत म उक्त प्रसग विस्तार से चित्रित है कृष्णायन म मूल उद्देश्य दूसरा होन के कारण इन विस्तृत प्रसगों की सूचना भी नही दी गई।

परिवतन-परिवधन दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर को जीवित पकडने की याचना दोनो ग्रन्थों म समान है। महाभारत मे दुर्योधन अपना मन्तव्य स्पष्ट कर देता है। कृष्णायन म केवल 'पाठ जो मातुल पुत्र रटावा' कहकर कुरुराज क मन्तव्य की परोक्ष अभिव्यक्ति की है। कृष्णायनकार महाभारत' जैसी स्पष्टता का प्रकाशन नहीं कर सका और आधार ग्रन्थ के प्रभाव का ग्रहण करने म भी आंशिक रूप म सफल हुआ है। मूल ग्रन्थ म द्रोण उदघोषणा के साथ युधिष्ठिर का बाधन की प्रतिज्ञा करत है कृष्णायन म वह कवन कुरुराज का विश्वास दिलाते हैं और प्रयत्न की प्रतिज्ञा करत हैं

कृत प्रण करि हौ यत्न प, गहन हतु कौन्तेय।[7]

सघष क प्रारम्भ म सकुल युद्ध होता है। अर्जुन द्रोण का रोकने के लिए यत्न है तो चिरप्रतिनिधि कण सामने आ जाता है। उससे युद्ध करके धमराज की

१ म० भीष्म० ११६। ६, कृष्णायन, पृ० ६६६
२ कृष्णायन पृ० ६६७
३ म० द्रोण० १। ४४
४ म० द्रोण० १। ४७
५ म० द्रोण० २। २६
६ म० द्रोण० ३। १० १२
७ कृष्णायन पृ० ६७२

मूलग्रंथ में दुर्योधन अपनी सेना को भागता देखकर युद्ध भूमि में ही कर्ण के साथ अन्य निश्चय की घोषणा करता है। 'कृष्णायन' में वह पहले कर्ण के पास बाद में भीष्म के पास जाकर, ऐसी अभिव्यक्ति करता है।[1] सेना के पराजय की स्थिति में कर्ण के पास परामर्श हेतु जाना और भीष्म से ऐसा प्रस्ताव करना परिस्थिति के अनुकूल मनस्थिति का परिचायक है। यह प्रसंग कवि की मौलिक निजी सूझ है। इससे प्रथमतः कर्ण के प्रति दुर्योधन का अटूट विश्वास प्रकट होता है दूसरे परास्त व्यक्ति की द्वन्द्वात्मक मनोवृत्ति का उद्घाटन होता है।

'महाभारत' में बाणों से आच्छादित रथ को देखकर कृष्ण रथ से कूद पड़ते हैं, 'कृष्णायन' में अर्जुन की शिथिलता के कारण कृष्ण चतुराई से रथ चलाते हैं। और दुर्योधन घेरा डालता तब वे रथ से कूदते हैं। इससे भक्त के प्रण की रक्षा होती है। अर्जुन में शक्ति का संचार होता है।

दसवें दिन के युद्ध में निम्न प्रसंगों को छोड़ दिया है।

भीष्म से मृत्यु का उपाय पूछना, भीष्म दुर्योधन संवाद महारथियों का द्वन्द्व युद्ध। इन प्रसंगों को छोड़ कर कवि सीधा अर्जुन भीष्म युद्ध का चित्रण करता है। कृष्णायन में पहले वह स्वयं युद्ध के लिए आता है और पुनः अर्जुन से रक्षित होकर आता है।

एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम्।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः॥[2]

भीष्म शिखण्डी से कहते हैं —

तिनहु संग नहिं रणकरत रहे पूर्व जे नारि।[3]

इस कारण युद्ध विरत भीष्म पार्थ के बाणों से घायल होकर गिर पड़ते हैं। पतन से पूर्व शिखण्डी के मुख से प्राचीन बातों की पुनः स्मृति और भीष्म द्वारा यह सोचना कि, वास्तव में धन के आधार पर पले इस शरीर को अब गिर जाना चाहिए कवि की मौलिक सूझ है। इससे सिद्धान्त रूप में पराधीन व्यक्ति की मनस्थिति स्पष्ट होती है।

महात्याग ममगौरव धामा दास्यहि आजु तासु परिणामा।[4]

पतन के उपरान्त अर्जुन से उपधान और कर्ण मिलन प्रसंगों में पूर्ण साम्य है। कवि ने महाभारत के इन विस्तृत प्रसंगों को अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया। भीष्म

---

१ म० भीष्म० ५८।३६, कृष्णायन पृ० ६४६
२ म० भीष्म० ११६।११
३ कृष्णायन पृ० ६५६
४ कृष्णायन, पृ० ६६१

एव कण के वार्तालाप म कण की दृ मत्री और नियति-शक्ति की स्थापना हुई है। कण के हृदय म भीष्म के प्रति उदारभाव उदित होते हैं और भीष्म कण का [illegible] देकर उसके जन्म की कथा कह कर, सधि की चेष्टा करते हैं। कण स्थिति की दान्त-विकता को समझ कर युद्ध के लिए आज्ञा लेकर चल देता है।

'महाभारत' म नारद द्वारा कण जन्म-वृत्तभीष्म को बताने का [illegible] है, कृष्णायन' मे नारद का प्रसग नही, केवल व्यासजी का नाम है।[1] 'महाभारत' क कण अधिक भावुक नही होता कृष्णायन' म कण भावना म निमग्न [illegible] की घटना को दवगति बताता है।

पै न जननि प्रति ममउर रोषा
देत सदा मैं भाग्यहि दोषा।[2]

कण तथा अन्य मान्य महारथियों के परामश न [illegible] विभूषित होते हैं। इस स्थल पर निम्नस्थ प्रसगा का [illegible] है। [illegible] कण का स्मरण[3] कण की शूरता का वणन[4] कण का रथयात्रा[5] [illegible] कण के वचन।[6] द्रोण के सेनापतित्व को लेकर 'महाभारत' में [illegible] चित्रित है 'कृष्णायन' म मूल उद्देश्य दूसरा होन क [illegible] सूचना भी नही दी गई।

परिवतन परिवधन दुर्योधन द्वारा युधिष्ठिर का [illegible] दोना ग्रन्थो म समान है। महाभारत म दुर्योधन अपना [illegible] 'कृष्णायन' म केवल ' पाठ जो मातुल पुत्र रटावा [illegible] अभिव्यक्ति की है। कृष्णायनकार महाभारत' जसी [illegible] मकता और आधार ग्रन्थ के प्रभाव का ग्रहण करन म [illegible] है। मूल ग्रन्थ म द्रोण उद्घोषणा के साथ युधिष्ठिर [illegible] 'कृष्णायन म वह केवल कुरुराज का विश्वास [illegible] करते हैं

कुन प्रण करि हो यत प, [illegible]

सघष के प्रारम्भ म सकुल युद्ध होता है। [illegible] मे करते है तो चिरप्रतिक्षित कण सामन आ [illegible] परि-

---

१ म० भीष्म० ११६। ६ [illegible]
२ कृष्णायन, पृ० ६६७
३ म० द्रोण० १। ४४
४ म० द्रोण० १। ४७
५ म० द्रोण० २। २६
६ म० द्रोण० ३। १० १२
७ कृष्णायन, प० ६७२

रक्षा के निमित्त आगे बढते हैं। 'कृष्णायन' में उक्त सम्पूर्ण वृत्त यथावत चित्रित किया गया है।

'महाभारत' में सशप्तकों की ललकार पर अर्जुन युद्ध के लिये तयार होते हैं तो युधिष्ठिर से वार्तालाप होता है। कृष्णायन' में कृष्ण ललकार में किसी दुरभिसंधि की स्थिति देखकर, युधिष्ठिर की रक्षा के लिये सत्यजित को नियुक्त कर अर्जुन को युद्ध की आज्ञा देते हैं।[1] अर्जुन और सशप्तकों का भयकर युद्ध होता है। सशप्तकों की पराजय होती है किन्तु वे नारायणी सेना का सहारा पाकर पुन युद्ध करने के लिये स्थिर होते जाते है।

'महाभारत' में नारायणी सेना की उपस्थिति का चित्रण है।[2] 'कृष्णायन' में सशप्तकों की प्रथम पराजय के उपरान्त दुर्योधन द्वारा नारायणी सेना भेजने का सकेत है।

विचलित संख्यक विगत जब कुरुपति ताही काल
पठयो नारायण अनी हरि प्रदत्त विकराल ॥[3]

सत्यजित के वध का चित्रण करके शतानीक क्षेत्र, वसुदान आदि के वध का वर्णन किया गया है। गुरुद्रोण के भयकर युद्ध के समय सात्यकि आदि उन्हें घेर लेते हैं तो अर्जुन का शखनाद सुनाई देता है। अर्जुन का आगमन और भगदत्त की गजसेना के विनाश तथा भगदत्त-वध का प्रसग कवि ने मार्मिकता से चित्रित किया है। महाभारत के विस्तृत प्रसग को संक्षिप्त करके भीम भगदत्त और अर्जुन भगदत्त युद्ध का सजीव वर्णन किया है।

सोऽङ्कुशमग्निसंकाशं तीक्ष्णास्तोमरान् यं चतुर्दश।
प्रप्रेषयत सव्यसाची द्विधैकैकमथाच्छिनत ॥[4]

× × ×

प्रेरेतोमर प तवहु प्रबल प्राग्ज्य अवनीप।
करतविफल काटउ विजय अथचन्द्र नर शीप ॥[5]

उक्त प्रसगों के कथाप्रवाह में कवि ने महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए। उसकी दृष्टि महाभारतीय दृष्टि से समान है अत उद्देश्य की समानता के कारण भारतीय आधार का परिवर्तन सीमित रूप में ही हो पाया है।

---

१ म० द्रोण० १७।१ ३८ ४४, कृष्णायन, पृ० ६७८
२ ततस्ते सत्यवतत संशप्तकगणा पुन।
नारायणाश्चगोपाला मत्यु कृत्वा नियतनम ॥ म० द्रोण० १८।३१
३ कृष्णायन पृ० ६८०
४ म० द्रोण० २९।७
५ कृष्णायन पृ० ६८४

अभिमन्यु-वध प्रसग 'कृष्णायन' म गुरुद्रोण के चक्रव्यूह निर्माण को देख कर युधिष्ठिर चिन्तित हो उठते हैं और भीम से अपनी चिता प्रकट करते हैं। आधार ग्रन्थ म युधिष्ठिर सीधे अभिमन्यु से बात करते हैं।[1] 'महाभारत' मे युधिष्ठिर अभिमन्यु के व्यूह भेदन ज्ञान से परिचित हैं और व्यूह भेदन मे समर्थ व्यक्तियो मे अभिमन्यु का नाम भी लेते हैं।

'कृष्णायन' मे अभिमन्यु स्वय अपनी शक्ति का परिचय देता है।

त्व वाजुनो वाकृष्णोवा भिन्द्यात् प्रद्युम्न एव वा।[2]

कृष्णायनकार ने—

नृपहि शोक उद्विग्न तात मन।

करि मैं सकल व्यूह विध्वसन[3] —कहलाकर अभिमन्यु की शक्ति और साहस का परिचय दिया है। आधार ग्रन्थ म धमराज की चिता की मात्रा अधिक दिखाई गई है। कृष्णायन म कवि अपने महान चरित्र को अधिक चिंतित रूप मे प्रस्तुत नही कर सका।

परिवतन परिवधन 'महाभारत' म द्रोणाचाय के द्वारा अभिमन्यु की प्रशसा करने पर दुर्योधन पक्षपात का आरोप लगाता है। 'कृष्णायन' मे लक्ष्मण वध के उपरात वह आचाय पर आरोप लगाता है।[4] यह परिवतन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। महाभारत' म दुर्योधन के सतत सदेहशील चरित्र का प्रकाशन होता है कृष्णायनकार ने पुत्र के दुख स दुखी पिता के हृदय का क्षोभ इन पक्तियो मे स्पष्ट किया है।

लेहि प्रथम मम सुत प्रतिशोधा
प्रविशन देहि व्यूह तव आरिगण।[5]

'कृष्णायन' म द्रोणाचाय चाहते है कि अन्य पाण्डव व्यूह म प्रवेश कर जायें जिससे वे जीवित युधिष्ठिर को पकड सक। पर दुर्योधन सुत प्रतिशोध की ज्वाला से ज्वलित किसी को अन्दर प्रविष्ट न कराने की आज्ञा देता ह। वह समझता है कि इन सबके आने स अभिमन्यु का पक्ष प्रबल हो जायेगा और लक्ष्मण का प्रतिशोध न लिया जा सकेगा। द्रोणाचाय कुरुराज के मन की अवस्था का जान लेते हैं और विवशता म अभिमन्यु पर सामूहिक आक्रमण करते हैं। कवि ने अपनी सूझ से यह उल्लेखनीय परिवर्तन किया है।

---

१ म० द्रोण० ३५।१७, कृष्णायन पृ०६८५
२ म० द्रोण० ३५।१५
३ कृष्णायन, पृ० ६८६
४ म० द्रोण० ३६।१८
५ कृष्णायन पृ० ६९१

अभिमन्यु बारी-बारी से कर्ण शल्य आदि को परास्त करता है। अन्त में अभिमन्यु दुःशासन सुत के गदाप्रहार से धराशायी हो जाता है। इस प्रसंग को कवि ने पूर्ण प्रभाव के साथ चित्रित किया है

दौःशासनिरथोत्थायकुरूणां कीर्ति वर्धनः।
उत्तिष्ठमानं सौभद्रं गदया मूर्ध्न्य ताडयत॥[1]

महाभारत में दुःशासन पुत्र के वार को 'कुरूणां कीर्तिवर्धनः' कहा है किन्तु कृष्णायनकार अधम युद्ध करने वाले को कुलांगार कहकर सम्बोधित करते हैं।

दुःशासन सुत पुनि उठेउ, उठिनहिं सकेऊ कुमार।
कुलांगार कीन्हेउ उठत, शिशु शिर गदा प्रहार॥[2]

युद्ध की समाप्ति पर अर्जुन लौटते हैं। महाभारत में अर्जुन के हृदय में आशंका का उदय होता है। अमंगल सूचनाएं मिलती हैं और वे कृष्ण से किसी अनिष्ट की आशंका व्यक्त करते हैं, कृष्ण बार बार भाइयों की सुरक्षा का आश्वासन देते हैं।[3] 'कृष्णायन' में लौटते हुए अर्जुन युयुत्सु द्वारा किसी शिशु के मरने की बात जानकर आशंका ग्रस्त होते हैं।

को यह शिशु जेहि समर सहारी
हास उत्रास शत्रु दल भारी।
कुशल तो तात सुभद्रा-नन्दन।[4]

कृष्णायनकार ने विस्तार कम करने के हेतु युयुत्सु की घोषणा के आधार पर अर्जुन की आशंका व्यक्त की है। इससे कवि ने दो प्रसंगों को एक रूप होने के कारण एक कथांश में मिला दिया है।

महाभारत में जयद्रथ-वध[5] की प्रतिज्ञा क्रोध और प्रतिशोध की पृष्ठभूमि में हुई है। 'कृष्णायन' में कवि ने इस प्रसंग में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन किया है। अर्जुन कहते हैं कि 'जो मोह कृष्ण के ज्ञानोपदेश से दूर नहीं हुआ वह पुत्र वध से दूर हो गया। मुझे ज्ञान हो गया है कि इस संसार में कोई भी जन्मगत सम्बन्धी नहीं है।

देह न सके जो सुम प्रभु नाना।
दीन्ह सुवन करि निज बलिदाना॥[1]

---

१ म० द्रोण० ४६।१२
२ कृष्णायन, पृ० ६६६
३ म० द्रोण० ७२।६७
४ कृष्णायन, पृ० ६६७
५ म० द्रोण० ७३।२०,२१,४६,४७

समझेउ आजहि तात मैं व्यय जगमगत नात।
सहज बधु नहिं काउ जगत, सुजनहि सुजनन आन।[१]

जयद्रथ वध प्रसंग कृष्णायनकार ने कृष्ण की महत्ता प्रदर्शन हेतु इस कथा मे जो परिवर्धन किया है वह इस प्रकार है। महाभारत' में अर्जुन की प्रतिज्ञा असफल होने की अवस्था में कृष्ण क्या करेंगे? ऐसा प्रसंग नहीं है। कृष्णायन' में कृष्ण अपने सारथी दारुक को बुलाकर कहते हैं कि पार्थ हित युद्ध के लिए कल रथ ले आना, और जब मैं शंखनाद करूँ तो उस रथ को मेरे पास ले आना जिससे यदि अर्जुन प्रतिज्ञा पूर्ति मे असफल हो जाता है तो मैं जयद्रथ तथा अन्यों का विनाश कर दूगा।[२]

यह परिवर्धन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि यह बताना चाहता है कि कृष्ण ने जो कुछ किया वह धर्म राष्ट्र संस्थापनार्थाय किया। यदि अर्जुन असुर-वृत्ति-सम्पन्न रिपु को मारने में समर्थ नहीं होते तो कृष्ण का यह कार्य करना उचित होगा। उससे कृष्ण की महत्ता की स्थापना स्वत हो जाती है।

प्रारम्भ में आचार्य और शिष्य का युद्ध होता है अर्जुन कृष्ण के संकेत से द्रोण को बिना परास्त किए आगे बढ़ जाते हैं। दुर्योधन यह देखकर आचार्य को कटुवचन कहता है किन्तु आचार्य का रौद्र रूप देखकर विनम्र हो जाता है। तब आचार्य उसे कवच बाँधकर अर्जुन से युद्ध करने भेजते हैं। दुर्योधन अनेकबार परास्त होता है। अर्जुन उल्लेखनीय व्यक्तियों का वध करते हुए बढ़ जाते हैं। अम्बिष्ठ नियतायु दीर्घायु आदि का वध होता है। इस प्रसंग में कवि 'महाभारत' के एक एक अध्याय की कथा को एक-एक दोहे के अन्तर्गत संक्षेप करता हुआ द्रुतगति से आगे बढ़ता है। मध्य मे युधिष्ठिर की आकुलता का चित्रण किया गया है।

विन्द अनुविन्द के वध प्रसंग में कृष्णायन में महाभारत के अतिप्राकृत तत्व-अर्जुन द्वारा जलाशय निर्माण और नारद आगमन प्रसंग का अभाव है। इस प्रसंग को कवि ने अत्यन्त स्वाभाविक रूप में चित्रित किया है। 'महाभारत' में विन्द अनुविन्द प्रसंग के उपरान्त कर्ण एवं भीम के युद्ध का विस्तृत चित्रण है। कृष्णायन' में कवि इस प्रसंग के उपरान्त दुर्योधन द्वारा कर्ण से की गई प्रार्थना का वर्णन करता है। कवि मध्य के प्रसंगों को छोड़ कर युधिष्ठिर की चिन्ता विमोचन-हेतु देवदत्त का उद्घोष

१ कृष्णायन पृ० ७०१

२ सकि है जो नहिं हति रिपुहि, पार्थ रहत दिन नेय।
करिहौं पूर्ण वयस्य प्रण, बधि मे सिंधु नरेन्द्र।
बाजहि जहिं क्षण स्वर ऋषभ, पाचजन्य यहघोर।
हाँकेउ मुनतहिंतात तुम रथ सेवेगमम ओर कृष्णायन, पृ० ७०५

३ म० द्रोण० ६६।५६ ६२

४ कृष्णायन, पृ० ७१७

प्रस्तुत कराता है। महाभारत' में भूरिश्रवा और सात्यकि के प्रसंग से पूर्व आये अनेक लघु वृत्तों को छोड़ कर कृष्णायनकार सीधे भूरिश्रवा के हाथ कटने और वध का चित्रण करता है।[1] हरि सूर्य को अस्तोन्मुख दिखाते हैं और जयद्रथ का वध होता है। महाकवि ने भक्ति भावना से आलोडित होकर कृष्ण के ईश्वरत्व का संकेत किया है। कृष्ण के द्वारा अस्तोन्मुख रवि दिखाने की अति प्राकृत घटना को युग सम्मत रूप देने का प्रयास न करके यथावत चित्रित किया है।[2]

'द्रोण वध' जयद्रथ वध के पश्चात कवि रात्रियुद्ध का सांकेतिक चित्रण कर घटोत्कच-वध की सूचना देता है। महाभारत के इस प्रसंग को कवि ने आख्यानबद्ध नहीं किया।

'महाभारत' में द्रोण का पराक्रम सर्वोपरि अंकित किया गया है। यहाँ युधिष्ठिर के असत्य भाषण से द्रोण विचार निमग्न होते हैं तो धृष्टद्युम्न उनका शिरश्छेदन करता है। कृष्णायन में कवि ने अपनी मौलिकता से इस प्रसंग को परिवर्तित किया है।

भीम गुरु के प्रति कटु वचन कहते हैं उनको सुनकर ग्लानि से द्रोण का ब्राह्मणत्व जागरूक होता है[3] और अन्त प्रेरणा शरीर त्यागने को कहती है। वे विचार करते ही होते हैं कि उनका सिर काट डाला जाता है।[4]

इस परिवर्तन से कवि ने युधिष्ठिर के चरित्र पर लगे कलंक को धोने की चेष्टा की है। और यह सिद्ध किया है कि अन्ततः स्वधर्म पालन ही श्रेयस्कर होता है। ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्ति को अपनाकर ब्राह्मत्व की पवित्रता से वंचित हो जाता है। अश्वत्थामा का नारायणास्त्र भी कृष्ण के चातुर्य से विफल हो जाता है। नारायणास्त्र के प्रतिकार स्वरूप भीम के शस्त्र प्रदान को कृष्ण रोक देते हैं। यह प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है।[5]

---

१ चहेउ करन जासहिन्न सिर काढ़ि कराल कृपाण।
शिष्य दयित अर्जुन तजेउ, ताहिक्षण सुर बाण। कृष्णायन पृ० ७२२

२ अस्तोन्मुख रवि हरि दरसावा॥ कृष्णायन पृ० ७२४

३ विषम वृकोदरवाणि, अक्षर अक्षर मर्मविद
उपजी भीषण ग्लानि, ज्ञान-खानि आचार्य उर॥ कृष्णायन पृ० ७२६

४ कृष्णायन, पृ० ७३०

५ एवमुक्त्वा तु तं कृष्णो रथाद् भूमिमपातयत्।
निःश्वसन्तं यथा नागं क्रोध संरक्त लोचनम्॥ म० द्रोण० २००।१८

× × ×

ज्वाला वलयित भीम तनु लखिधाये यदुराय।
गन्य द्रौनि को हेउ विरथ, सतत भक्त सहाय॥ कृष्णायन, पृ० ७३१
(कवि इस प्रसंग में 'महाभारत' के श्लोकों का भावानुवाद करता दिखाई देता है।)

सबके परामर्श से कर्ण सेनापति बनता है। 'महाभारत' में प्रथम दिन के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। 'कृष्णायन' में इस प्रसंग का प्रारम्भ कर्ण द्वारा आत्म प्रशंसा और शल्यको सारथी रूप में मांगने से होता है।[1] कवि ने सत्रहवें दिन के युद्ध की कथा पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है। इस दिन की प्रमुख घटना है कर्ण-वध।

कर्ण वध से पूर्व कवि अनेक घटनाओं का चित्रण करता है। पर्याप्त अनुनय विनय के उपरान्त शल्य सारथ्य स्वीकार करते हैं।[2] वे उत्तर में मनमाने वचन कहने की छूट प्राप्त कर लेते हैं। दोनों ग्रन्थों में यह प्रसंग समान है। 'महाभारत' में दुर्योधन शल्य की समानता कृष्ण से करता है 'कृष्णायन' में इस प्रकार की समता का उल्लेख नहीं है।

'कृष्णायन' में भीम द्वारा दुःशासन वध का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है। 'महाभारत' में भीम पहले दुःशासन से पूछता है कि किस हाथ से उसने द्रौपदी के बाल खींचे। दुःशासन का गर्व पूर्ण उत्तर पाकर भीम उसका हाथ उखाड़ कर उसमें ही मारता है पुनः वक्ष का रक्तपान करता है। कृष्णायन के चित्र में इतनी भयंकरता नहीं आ पाई जितनी 'महाभारत' में चित्रित है।

कर्णार्जुन का द्वन्द्व प्रारम्भ होता है तो अर्जुन कर्ण के आत्मज को मारकर अपने पुत्र का बदला लेता है।[3] कवि 'महाभारत' के आधार पर दोनों वीरों की तुलना करता है। कर्ण-वध के प्रसंग में कवि 'महाभारत' में वर्णित कथा से दो अंशों को लेता है। कर्ण द्वारा सर्पमुख बाण का प्रहार और कृष्ण के सञ्चालन कौशल से अर्जुन की रक्षा तथा कर्ण के रथ का पहिया धंसना तथा अर्जुन द्वारा वध। इन प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त संक्षेप में चित्रित किया है। 'महाभारत' में आये अश्वसेन और कर्ण के वार्तालाप, शल्य और कर्ण की वार्ता को कवि ने छोड़ दिया है। सर्पमुख बाण के प्रसंग को लेकर कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष की स्थिति का प्रकाशन हो सकता था पर सम्भवतः कवि को इसके हेतु न तो अवकाश रहा होगा और न विचारधारा। 'महाभारत' में वर्णित शल्य और कर्ण के प्रसंग को भी अवांछित समझ कर छोड़ दिया गया क्योंकि इस प्रसंग से वीरता के कटुरूप का प्रकाशन होता है।

कर्ण वध के उपरान्त जयकाण्ड की शेष कथा 'महाभारत' के अन्तिम दिन एवं रात्रि की घटनाओं पर आधारित है। निम्न प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान हैं।

कर्ण-वध के उपरान्त सेनाओं का पलायन। कृपाचार्य का सन्धि के लिए दुर्योधन को समझना। शक्ति एवं सामर्थ्य की असमर्थता को देखकर कृपाचार्य कुरुराज से सन्धि के लिए कहते हैं।

---

१ हमरे दल महँ कृष्ण सम, रथनागर भट ना,
जीतहुँ अर्जुन जो सहहुँ, सारथि शल्यनरेश। कृष्णायन, पृ० ७३३

२ कृष्णायन, पृ० ७३४

३ कृष्णायन, पृ० ७४५

ते वय पाण्डु पुत्रेभ्यो हीना स्सबल शक्तित ।
तदत्र पाण्डव साधर्स धि म ये क्षम प्रभो ।[1]

× × ×

करत सधि व इन सग कुरुराई
नही कछु लाज न जगत हसाई ।[2]

दुर्योधन कृपाचाय के सधि प्रस्ताव को अस्वीकत कर देता है । 'अस्वीकति' के कारण दोनो ग्रन्थो म समान है । महाभारत 'म इस प्रवस्था मे भी दुर्योधन का स्वरूप क्षत्रियोचित और गव युक्त रहता है । 'कृष्णायन' म उस विवश और निरुपाय भाग्य वादी के रूप मे चित्रित किया है । प्रतिशोध की अग्नि भयकर होती है । इस तथ्य का प्रकाशन सशप्तको की अभिव्यक्ति म हो जाता है । महाभारत म यह प्रसग नही है । यदि न तत्कालीन सम्भावना के आधार पर सशप्तको स दुर्योधन को युद्ध के लिए प्रेरित किया है । इस मौलिक उदभावना का कारण यह है कि अपनापक्ष उचित हो अथवा अनुचित, मान एव प्रतिष्ठा की रक्षाथ अतिम श्वास तक युद्ध करना क्षत्रिय का कतव्य है । दुर्योधन की चिता और क्षोभ को देखकर सुशर्मा कहता है ।

जायगह निज चहत जो जाता ।
करहि कुरुपतिहु विपिन प्रयाण ।
एकहु सशप्तक जियत जब तब महिनल नाहि ।
अरि विनाश प्रणबद्ध हम तनि है समर नाहि ।[3]

कुरुराज ना इन शब्दों स प्रेरणा मिली और अश्वत्थामा न शल्य के सनाप तित्व का प्रस्ताव किया और सवसम्मति स स्वीकत हुआ ।[4]

परिवतन परिवधन महाभारत म शल्य वीरता पूवक सनापति के पद का सहष स्वीकार कर लेत ह । 'कृष्णायन' म शल्य प्रथम कुरुराज के मन स भय निवारण करत ह तब सनापति पद स्वीकार करते हैं । शल्य कहते है कि तुम जिसका सनापति बनाते हो कण उसी का वध करा देते हैं और कण-वध स तुम्हार मन भी पराम्त हो

---

१ म० शल्य० ४।४४
२ कृष्णायन, पृ० ७५०
३ कृष्णायन पृ० ७५२ ५३
४ अय कुलन रूपेण तेजसा यशसा श्रिया ।
सवगुणै समुदित श यो नोऽस्तु चमूपति । म० शल्य० ६।१६
× × ×
सेनप निजकर मद्रपति, वधहु शत्रु रणमाहि । कृष्णायन, पृ० ७५४

गये हैं। अत केवल मृत्यु मात्र का वरण करने के लिए मैं सेनापति नहीं बनता।[1] इस परिवतन से कवि न उस समय उपस्थित व्यक्तियो की मानसिक स्थिति का स्पश तो किया है किन्तु आधार ग्रंथ के शल्य का चरित्र दुबल हो गया है। महाभारत की भावना इस दोहे मे स्पष्ट है।

> चहत युद्ध प आपुजो बद्धकक्ष तजि भीति।
> सकत अबहुँ मैं कृष्ण सह, पाण्डु सुनन रणजीति।[2]

शल्य के निश्चयानुसार युद्ध होता है। कृष्ण भेद की नीति समझाते हैं और परिणाम स्वरूप कौरव दल विघटित हो जाता है। 'महाभारत' मे शल्य वध के लिए कृष्ण युधिष्ठिर को प्रेरणा देते है। 'कृष्णायन' म कृष्ण अर्जुन को प्रेरणा देते हैं किन्तु "प्रकटउ विक्रम धम नरेशा लहि एकाकि बधेउ मद्रेशा" के अनुसार धमराज मद्रेश को समाप्त करते हैं। नकुल द्वारा कण के पुत्रो का वध, सहदेव के द्वारा शकुनि का वध और कुरुराज का पलायन—उक्त प्रसग साकेतिक रूप से वर्णित ह।

अपने सभी प्रमुख वीरो के वध स व्याकुल होकर दुर्योधन रण स भाग कर एक तालाब मे आकर छिप जाता है। 'महाभारत' मे व्याध कृपाचाय और दुर्योधन का सवाद सुनते हैं कृष्णायन म व्याध दुर्योधन को ह्रद मे प्रवेश करते देखते हैं। यह परिवतन सम्भवत इस हेतु किया कि धमराज को पुष्ट सूचना मिले। कृष्ण सात्यकि तथा सभी पाण्डव आकर ह्रद को घेर लेते हैं। 'महाभारत' म पहले युधिष्ठिर और दुर्योधन का सवाद है कृष्णायन' म भीम प्रारम्भ मे ही कुरुराज को ललकारते हैं।[3] उत्तर का विस्तार से वणन किया गया है। कृष्णायन म दुर्योधन भीम की एक ललकार सुनकर ह्रद स बाहर आ जाता है।

'कृष्णायन' में निम्न प्रसगो को छोड दिया है।

युधिष्ठिर की उदारता मे पाचो म से एक के साथ युद्ध करने की अनुमति। युधिष्ठिर को कृष्ण की फटकार कृष्ण द्वारा भीम की प्रशसा। इस स्थल पर बलराम

---

१ सेनप पद करि मोहि प्रदाना, चहत जो केवल मम बलिदाना।
सकिहौ मे न ताहि स्वीकारी जदपि वृद्ध मोहि प्राण न भारी॥
कृष्णायन, पृ० ७६२

२ कृष्णायन पृ० ७५५

३ स ते दर्पो नर श्रेष्ठ सच मान क्वते गत।
यस्त्व सस्तभ्य सलिल भीतो राजन् व्यवस्थित। म० शल्य० ३१।२०
सतत निज भुजशौय प्रलापी, लाज न पक दुरत अघपापी।
कृष्णायन पृ० ७६१

जी आ जाते हैं। उनकी पूजा होती है और भीम तथा दुर्योधन युद्ध के लिए बढ़ते हैं। युद्ध का चित्रण, उरुभंग और चरण प्रहार तथा बलराम के रोष का यथावत संकेत किया गया है।

कृष्णायनकार चार्वाक मत का विरोधी है। इस कारण दुर्योधन के द्वारा चार्वाक की प्रतिष्ठा कराकर इस मत को प्रस्तुत किया है। यह प्रसंग इसलिए उठाया है कि आरोहण काण्ड में भारतीय दर्शन एवं धर्म की प्रतिष्ठा के लिए चार्वाक दर्शन का विरोध करना है। यहीं से आरोहण काण्ड के वैचारिक रूप की पृष्ठभूमि प्रारम्भ कर दी गई है।

'महाभारत' में दुर्योधन के उरुभंग के पश्चात् कृष्ण सहित पाण्डव किसी अन्य स्थल को जाते हैं और पीछे अश्वत्थामा समस्त शेष व्यक्तियों का वध करते हैं। 'कृष्णायन' में इस प्रसंग को अत्यन्त सुन्दर रूप में परिवर्तित किया है। दुर्योधन की मृत्यु देखकर युधिष्ठिर ग्लानि में भर जाते हैं। और कुरुराज धृतराष्ट्र तथा माता गान्धारी के पास जाने को व्याकुल होते हैं। कृष्ण की सम्मति से सब वहीं रहते हैं और कृष्ण नगर में जाते हैं।[1] इस स्थल पर कवि ने कथानक का संक्षेप करने के हेतु सौप्तिक पर्व की घटना को सांकेतिक रूप से चित्रित किया है और कथाक्रम में परिवर्तन भी। महाभारत में दुर्योधन सौप्तिक पर्व की घटना के उपरान्त मृत्यु को प्राप्त होता है। 'कृष्णायन' में वह वहीं समाप्त हो जाता है।[2] 'महाभारत' में गान्धारी कुरुक्षेत्र की भूमि में अनेक मृतवीरों पुत्रों को देखकर विलाप करती हैं और कृष्ण को शाप देती हैं। 'कृष्णायन' में १८ वें दिन की रात्रि में ही जब कृष्ण व्यास जी के साथ मिलने जाते हैं तो शाप देती हैं।[3] महाभारत में पुत्रवध से व्याकुल द्रौपदी अश्वत्थामा के वध की आज्ञा देती है 'कृष्णायन' में भीम के रोष को शान्त करती हुई गुरुपुत्र को क्षमा करने को कहती है।[4] 'कृष्णायन' में द्रौपदी की अभिव्यक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि और आदर्श से समन्वित है। वह अपने दुःख को नहीं भूलती किन्तु वही दुःख औरों को प्राप्त हो ऐसा भी नहीं चाहती। 'कृष्णायन' की कथा में द्रौपदी को अल्पस्थान मिला अतएव कवि उसके व्यक्तित्व को 'महाभारत' के अनुरूप चित्रित नहीं कर सका। यह स्थल कवि ने द्रौपदी के ऊँचे आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए उपयुक्त समझा और नारीत्व की करुणा तथा ममता का रूप उपस्थित किया।

---

१ कृष्णायन, पृ० ७७०
२ म० सौप्तिक० ९।५६-५८ कृष्णायन, पृ० ७६९
३ म० स्त्री० २५।४४-४५, कृष्णायन, पृ० ७७४
४ म० सौप्तिक० ११।१४-१५

महाभारत की द्रौपदी—

तस्य पाप कृता द्रौणेन चेद्य त्वया रणे।
ह्रियते सानुबन्धस्य युधि विक्रम्य जीवितम् ॥
इहैव प्रायमासिष्ये तन्निबोधत पाण्डवा ।
न चेत् फलमवाप्नानि द्रौणि पापस्य कर्मण ॥[1]—कहकर स्पष्ट

करती है—

यदि रण मे सम्बन्धियो सहित द्रोण कुमार के प्राण नहीं हर लेन तो मैं अन शन करके प्राण त्याग दूंगी। किन्तु कृष्णायन म—

इमहुनाथ यह दासि अभागी याचति प्राण दान द्विज लागी।
बधेउ इन्हहिं निज सुत, पितु मारे मरनि न नाय यहुरि म पायी
दवसिहिन यह दुख मम लागी करहु न मथ गुरु तियहि अभागी।[2]

द्रौपदी के चारित्रिक उत्कर्ष हेतु कवि का यह परिवर्तन मौलिक और श्लाघ्य है। इससे वह नारी के हृदय की शाश्वत करुण भावना और दया का प्रकाश करता है।

आरोहण काण्ड की कथा का कवि न अनेक स्थानो स ग्रहण करके 'महाभारत से गृहीत कथा का अत्यन्त संक्षेप म चित्रित किया है। युधिष्ठिर विजयी होकर पुरी म प्रवेश करते हैं और बाधाव के कारण उनके मन म ग्लानि का भाव आविर्भूत होता है। कृष्ण ग्लानि का शमन करते हैं। विजय समारोह म अधिक उल्लास नहीं आ पाता युधिष्ठिर भीष्म स राजनीति का उपदेश ग्रहण करते है। महाभारत म राज दान धम के अनेक नीति तत्वो का वणन है। 'कृष्णायन म केवल राजनैतिक स्थलो की संक्षिप्तता मिलती है। अपन काव्य ग्रन्थ म चरित-नायक के जीवन की पूर्णता के कारण कृष्ण का स्वर्गारोहण जिस दार्शनिक पृष्ठभूमि म कराया गया है वही लखक का उद्देश्य व्यक्त करना है। अन्तिम समय मे मत्रेय की उपस्थिति आगवत' स प्रभावित है।

परिवतन-परिवधन 'महाभारत' म युधिष्ठिर धृतराष्ट्र का आग करके हस्तिनापुर म प्रवेश करते हैं।[3] 'कृष्णायन म धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के स्वागत की तयारी नगर म रह कर ही करते हैं। कवि न स्वागत की तैयारी का चित्र आकर्षक रूप म अंकित किया है

आपु वद्ध नृप स्वागत हेतु
विद्यमान द्विजसचिव समेतू[4]

महाभारत म युधिष्ठिर के अभिषेक के उपरान्त सबको यथायोग्य पद देने की चर्चा बहुत बाद म आती है 'कृष्णायन म पहले यही काय होता है। महाभारत' म

१ म० सौप्तिक० ११।१४-१५
२ कृष्णायन, पृ० ७७७ ७७८
३ म० शान्ति० ३७।३०, कृष्णायन पृ० ७८४
४ कृष्णायन, पृ० ७८५

चार्वाक धमराज को अपशब्द कहता है और मारा जाता है 'कृष्णायन' मे वह सीधे अपशब्द न कहकर व्याज स्तुति से निदा करता है। मूल ग्रन्थ म चार्वाक कहता है

कि तेन स्याद्धि कौतेय कृत्वेम ज्ञाति सक्षयम् ।
घातयित्वा गुरुश्चैव मृत श्रेयो न जीवितम् ॥[1]

'कृष्णायन का चार्वाक अभियक्ति मे अधिक पटु है—वह धमराज को नीतिन होन और बधुबाधवो के मरवाने की कला पर धयवाद देता है और कहता है

अरिन सहित तुमनेहि हु अनगन, जोर स्वाय यनजनु ईधन।[2]

चावाक के वचनो से उसकी दुष्टता प्रकट हो जाती है और वह मारा जाता भगवान कृष्ण युधिष्ठिर का चार्वाक के शब्दा पर ध्यान न देने का परामश देकर ई समभात है। इस स्थल पर कवि न धमराज के हृय का स्वाभाविक चित्रण या है किन्तु महाभारत का धमराज अधिक शकालु और जिज्ञासु है 'कृष्णायन इसका सकेत मात्र है।

उक्त प्रसग के उपरान्त महाभारत की कथा कृष्णायन मे शिथिल हो जाती है। भीष्म कृष्ण का स्तवन करते और कृष्ण के परामश से धमराज को नीति का उपदेश देना स्वीकार करते हैं। मूलग्रन्थ मे युधिष्ठिर को उपदेश प्राप्ति की आज्ञा व्यास जी दते हैं। कृष्णायन म कृष्ण भीष्म धम लोकधम राज्य धम, रण धम आदि का उपदेश दत है। कवि ने महाभारत मे वर्णित राज्य धमानुशासन पव का सक्षेप कर दिया है इस पर भी अनक महत्वपूण विषय छूट गय हैं। उदाहरण के लिए दण्डधम की जो यापक व्यवस्था महाभारत म है वह कृष्णायन म नही हो पाई।

अश्वमघ के कारण अजुन की यात्राओ का वणन, द्वारका म गोपालो के द्वारा अन्य का रोकन और यन का चित्रण यथावत किया गया है। महाभारत' के एक दनाश के आधार पर कवि ने द्वारका के गोपालो की वीरता का सकेत किया है। यन होता है और कवि पाचो पाण्डवो म कृष्ण की भक्ति चित्रित करता है इस प्रकार कृष्ण की अद्वितीय महत्ता की घोषणा कर देता है। उपसहार का प्रसग 'भागवत से प्रभावित होने के कारण हमारी विवेचना के क्षेत्र म नही आता।

कृष्णायण मिश्रजी के अतिरिक्त कृष्ण जीवन पर आधारित विगाहराम की यह रचना भी महाभारत के कथानक स प्रभावित है। यद्यपि कथा सग्रहण और विकास की दृष्टि स उसका महत्व अधिक नहा है। तथापि कृष्ण की व्रज और

---

१ म० शान्ति० ३८।२७

द्वारका सम्बन्धी घटनाओं का महाभारतीय प्रसंगों के साथ सुन्दर समन्वय किया गया है। इसमें कवि ने बालकाण्ड, रहस्यकाण्ड, मथुरा काण्ड, मगलकाण्ड, पाण्डवकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तर काण्ड शीर्षकों में कृष्ण के समग्र जीवन को चित्रित किया है। मिश्र जी की दृष्टि राष्ट्रीय और सास्कृतिक पुनरुत्थान की ओर रही है किन्तु विसाहू राम की दृष्टि परम्परागत भक्ति भावना से युक्त है। उन्होंने 'महाभारत' के कृष्ण के जीवन की मुख्य घटनाओं को लेते हुए राधाकृष्ण पर अधिक बल दिया है। यहा पर समस्त घटनाएं भगवान कृष्ण के ईश्वरत्व की छाया में घटित होती है।

महाभारत' की कथा, मगल काण्ड, पाण्डव काण्ड और युद्धकाण्ड में आयी है। मगल काण्ड की कथा पाण्डवो के सक्षिप्त परिचय से प्राप्त होती है।[1] इसमें वारणावत यात्रा,[2] द्रौपदी विवाह,[3] खाण्डव दाह[4] सभानिर्माण[5] आदि प्रसंगो को लिया गया है। इन स्थलो में कथा सांकेतिक वर्णनात्मक रूप में व्यक्त हुई है। पाण्डव काण्ड में भीष्म और अम्बा की कथा से युद्ध पूर्व तक की समस्त कथा का सक्षेप किया है।[6] इस स्थल पर शिखण्डी कर्ण-जन्म[7] पाण्डु मृत्यु[8] हिडिम्ब वध[9] और द्रौपदी स्वयवर[10] प्रमुख घटना हैं। उक्त समस्त प्रसंग महाभारत' के अनुकरण पर अपरिवर्तित रूप में चित्रित हैं। इन कथा-खण्डो का उद्देश्य भगवान कृष्ण के महत्व का प्रतिपादन और भारती युद्ध में उनके व्यापक भाग का प्रदर्शन है। द्रौपदी चीर हरण जैसे मार्मिक प्रसंग को भी सूचनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है।

कृष्ण के दूतत्व प्रसंग में कवि कर्म की महत्ता को जन्मगत वशिष्ट्य से महान बताता है और जातिगत भेदाभेद का विरोध करता है। यही एकमात्र स्थल ऐसा है जहां पर कवि वर्णनात्मकता को छोड़कर विचार प्रधान होकर तात्त्विक विवेचना करता है।

युद्ध का समस्त वृत्त भगवान कृष्ण की अलौकिक छत्रछाया में वर्णित है और चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी कवि किसी अन्य पात्र को प्रधानता नहीं देता निष्कर्ष

---

१ कृष्णायण पृ० २५४
२ कृष्णायण पृ० २५४
३ कृष्णायण पृ० २५५
४ कृष्णायण पृ० २६२
५ कृष्णायण पृ० २६५
६ कृष्णायण पृ० ३१३
७ कृष्णायण पृ० ३१६
८ कृष्णायण पृ० ३२८
९ कृष्णायण पृ० ३१७
१० कृष्णायण पृ० ३२२
११ कृष्णायण पृ० ३२५

की कथा वर्णित है। और इसी पव का सक्षेप 'शान्ति सन्देश' म किया गया है। इसी पव के अध्याय १४४ से १४६ तक की कथा 'कुन्ती और कर्ण' शीर्षक म विन्यस्त की गई है उसमे सम्बद्ध प्रासगिक आख्यान के आधार पर "युयुत्सु' की पृथक प्रसग सृष्टि की है। 'समर सज्जा' प्रसग म युद्ध की तयारी का चित्रण है। यह उद्योग पव के अन्तिम अध्यायो के अनुसार किया गया है। इस पव के प्रारम्भिक अध्याय ११, १२ और १३ का "नहुष" मे सक्षिप्त किया है, जो 'जयभारत' का प्रथम सर्ग है।'

भीष्म पव भीष्मपर्वीय श्रीमदभगवदगीता के आधार पर 'अर्जुन का मोह' रचित है। इसमे गीता की दार्शनिकता का आख्यान है। इसके उपरान्त 'युद्ध प्रसग' अतिविस्तार से लिखा गया है। जिसमे अन्य पर्वों का युद्ध भी समाविष्ट है। भीष्म के सेनापतित्व के युद्ध के दसवें दिन की घटनाओ का चित्रण अधिक है। इसके साथ कृष्ण का शस्त्र ग्रहण, भीष्म देहपात और अर्जुन की वीरता का चित्रण है।

द्रोण पव 'जयभारत' के ३७६ से ३८८ पृष्ठ तक द्रोणपव के युद्ध का चित्रण किया गया है। इसमे साकेतिक रूप से अभिमन्यु, जयद्रथ, द्रोण-वध का वर्ण्य विषय गया है। युद्ध की भयकरता का आभास भी यदा कदा मिल जाता है।

कर्ण पव ३८८ से ३६८ तक के पृष्ठो म कर्ण के सेनापतित्व के युद्ध का चित्रण है। शल्य कर्ण कटुसवाद, घटोत्कच वध और अन्तत कर्ण वध इसका वर्ण्य विषय रहा। इसमे कवि ने दुशासन-वध के वीभत्स चित्र को स्थान दिया है और कर्ण-वध का चित्र भी विशेष रूप से चित्रित हुआ है।

शल्य पव शल्य पव के युद्ध को सत्रह पृष्ठो का विस्तार मिला है। इसमे शल्य के युद्ध के उपरान्त भीम और दुर्योधन के गदा युद्ध का भी पर्याप्त विस्तार है। प्रमुख रूप से बलराम का क्रोध, युधिष्ठिर का दुख आदि घटनाओ को भी विन्यस्त कर दिया है।

सौप्तिक पव इस पव का सक्षेप 'हत्या' म अभिव्यक्त है। प्रमुख रूप से अश्वत्थामा का रात्री म पाण्डव-पुत्रो की हत्या, दुर्योधन मरण, ब्रह्मास्त्रो का युद्ध और मणि छीनने की घटना को यथाल्प विस्तार मिला है।

स्त्री पव इस पव से 'विलाप' और 'कुरुक्षेत्र' की कथा का चयन किया है। विलाप म सामूहिक रुदन का विशेष रूप धृतराष्ट्र विलाप का चित्रण है। कुरुक्षेत्र म रण भूमि म गान्धारी के विलाप कृष्ण को शाप देने की घटना चित्रित हुई है।

शान्ति पव इस पव का धार्मिक विवेचन यत्किचित रूप से 'अन्त' शीर्षक म अभिव्यक्त है। कवि ने अत्यन्त सक्षेप म भीष्म के विचारों का चित्रण किया है।

अनुशासन पव इस पव का चित्रण भी 'अन्त' शीर्षक म नवम और दसवें पद मे किया है। साकेतिक रूप म कवि ने भीष्म का देह त्याग, युधिष्ठिर को कृष्ण का ... आदि प्रसगो का लिया है।

आश्वमेधिक पर्व "अंत" शीर्षक में ही ग्यारहवें पद्य से इस पर्व की कथा को ग्रहण किया है। इसमें परीक्षित का जीवन, अर्जुन द्वारा अश्वरक्षा, त्रिगर्तों की पराजय, प्राग्ज्योतिषपुर का युद्ध, दु:शला से मिलन, उलूपी, बभ्रुवाहन की कथा का संक्षेप किया गया है।

आश्रमवासिक पर्व 'अंत' शीर्षक के कुछ भाग में इस पर्व की कथा का संक्षेप और गान्धारी, कुन्ती, धृतराष्ट्र आदि के वनवास की कथा का चित्रण है।

मौसल पर्व इस पर्व की कथा 'अन्त' की १३ पंक्तियों में वर्णित है। इसका प्रतिपाद्य वृष्णिवंश का पतन और व्याधों से अर्जुन का युद्ध है।

महाप्रस्थानिक पर्व "अन्त" के ही चार पद्यों में इस पर्व की प्रमुख घटना युधिष्ठिर का राज्य-व्यवस्था करके हिमालय जाने का वृत्त संक्षिप्त रूप से चित्रित हुआ है। कुछ घटनायें 'स्वर्गारोहण' में विन्यस्त की गई हैं। चारों भाइयों का पतन इसी सर्ग में होता है।

स्वर्गारोहण पर्व इस पर्व का संक्षेप "स्वर्गारोहण" शीर्षक में किया गया है। इसमें धर्मराज के पुत्र युधिष्ठिर की नरक यात्रा, शरीर त्याग, दिव्य मिलन का चित्रण है।

जयभारत की कथा संग्रहण प्रवृत्ति का आलोचन करने पर स्पष्ट होता है कि कवि ने सम्पूर्ण महाभारत का आख्यान नहीं किया है। इसमें वर्णित प्रसंग व्यवस्था के अनुरूप एक दूसरे से सम्बद्ध हैं अन्यथा उनकी स्वतन्त्र सत्ता भी विद्यमान है। कवि ने कुछ पर्वों की कथा का विस्तार से और कुछ पर्वों की कथा का अत्यन्त संक्षेप में ग्रहण किया है। उसने युद्ध के उपरान्त महाभारत के धर्म-दर्शन सम्बन्धी विवेचन का संक्षिप्त रूप भी नहीं दिया, उसका आलेखन मात्र किया है। यदि कवि 'महाभारत' के दार्शनिक प्रसंगों की ओर अधिक विवेचनात्मक दृष्टि रखता तो जीवन-दर्शन की दृष्टि से जयभारत और भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ हो सकता था। घटना चित्रण में कवि ने सोद्देश्य परिवर्तन किए हैं जिनसे युग धर्म की सटीक अभिव्यक्ति हो पाई है।

परिवर्तन-परिवर्धन नहुष से कौरव पाण्डव तक "जयभारत" का प्रारम्भ नहुष के आख्यान से हुआ है। यद्यपि यह कथानक उद्योग पर्व के अन्तर्गत आया है[1] फिर भी कवि ने पाण्डव कौरव वंश-परम्परा की सम्बद्धता के कारण इस कथा का स्थानान्तरण किया है। नहुष से ययाति और ययाति से यदु पुरु तथा उनके उपरान्त वंशपरिचय की कथा कौरव-पाण्डव शीर्षक तक चलता है। इस कथा खण्ड में कवि ने निम्न परिवर्तन किए हैं

'महाभारत' के वृत्त तत्त्व का मार्मिक चित्रण किया है।' महाभारत' में नारद-नहुष वार्तालाप नहीं है किन्तु कवि ने मानव की शक्ति की विवेचना के हेतु

[1] म० उद्योग० १०।३८ ७७, जयभारत, पृ० १०

इस प्रसंग की सृष्टि की है। 'महाभारत' में नहुष की दृष्टि इन्द्राणी पर उपवन में पड़ी पर 'जयभारत' में नहुष उसे स्नान करते देखता है।[1] 'महाभारत' में नहुष देखते ही शची की प्राप्ति का आदेश देते हैं पर 'जयभारत' में वे यह विचार करते हैं, कि मैंने स्वयं शची की उपेक्षा की है।[2] 'महाभारत' में देवता नहुष को समझाते हैं पर नहुष इन्द्र के पूर्व कर्मों का स्मरण दिलाता हुआ अपने वचनों पर दृढ़ रहता और शची को बुलाने की रीति पूछता है।[3]

यदु और पुरु के प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' के कुछ प्रसंगों को छोड़ दिया है, वे ये हैं

कच-देवयानी प्रसंग[4] देवयानी को ययाति का कुएं से निकालना[5] शुक्राचार्य और वृषपर्वा का वार्तालाप,[6] यदु को ययाति का शाप।[7]

निम्न प्रसंग संक्षिप्त रूप में चित्रित हुए हैं।

शर्मिष्ठा और देवयानी का कलह,[8] शर्मिष्ठा का दासत्व,[9] ययाति को वृद्धत्व प्राप्ति।[10]

कवि ने इन प्रसंगों को संक्षेप में चित्रित करके अतिभोग का विरोध किया है। आख्यान की लघुता के कारण सांकेतिक चित्रण की प्रधानता रही। 'योजनगन्धा' के प्रसंग में कवि ने दो पद्यों में शान्तनु तक की वंश परम्परा का परिचय दिया है। शान्तनु और योजनगन्धा के प्रथम परिचय और प्रेम प्रकाशन को 'महाभारत' से यथावत स्वीकार किया गया है।[11] 'महाभारत' में शान्तनु प्रेम निवेदन के समय अपने राजा रूप को छिपाते नहीं किन्तु 'जयभारत' में वे पहले न बता कर बाद में बताते हैं।[12] 'महाभारत' में शान्तनु स्वयं अपनी इच्छा को भीष्म के समक्ष रखते हैं, किन्तु 'जय-

१ जयभारत, पृ० ११
२ म० उद्योग० ११।१७ १८ जयभारत पृ० १२
३ म० उद्योग० ११।१८ जयभारत, पृ० १५
४ म० उद्योग० १२।३ ८ जयभारत पृ० १६
५ म० आदि० ७७।२३ ३८ जयभारत पृ० २३
६ म० आदि० ७८।२१ २२
७ म० आदि० ८०।२-८
८ म० आदि० ८४।६
९ म० आदि० ७८।६ ११
१० म० आदि ८०।२२
११ म० आदि० ८३।३७
१२ म० आदि० १००।४८ ५०, जयभारत पृ० ३१ ३२
१३ म० आदि० १०० । ४८ ५०, जयभारत पृ० ३२

भारत म देवव्रत भीष्म का परोक्ष रूप से पिता की अवस्था का ज्ञान हाता है और वे प्रतिज्ञा करते है।[1]

'कौरव पाण्डव' प्रसग म कवि धारा शैली से दोना वशो का परिचय देता है और 'महाभारत के विस्तृत आख्याना को भी सक्षिप्त करता हुआ भीष्म और अम्बा के प्रसग को साकेतिक रूप मे प्रस्तुत करता है। अम्बा की तपस्या और शिखण्डी रूप का परिचय, उसी रूप म देकर कवि व्यास से पाण्डु धृतराष्ट्र और विदुर की उत्पत्ति और परवर्ती सन्तान परम्परा का उल्लेख करता है।

इस प्रसग मे कोई उल्लेखनीय परिवतन नही किन्तु 'महाभारत के आधार पर समस्त कथा का वणन है। पाण्डवा के जन्म प्रसग म अतिप्राकृत तत्व को दबाने की चेष्टा अवश्य की है।[2] इस अलौकिक रूप का कोई बौद्धिक परिवतन न करके कवि न उसे विश्वास से पुष्ट करने का प्रयास किया है।

वधु विद्वेष से लाक्षागृह तक वपुर्विद्वेष को कवि न महाभारत के अनुरूप चित्रित किया है। दुर्योधन का भीम को विष देना, भीम का नागलोक पहुच कर वापिस आना आदि प्रसग सक्षेप मे कहे गये हैं। कवि ने इन प्रसगा म एक उल्लेखनीय परिवतन किया है। 'महाभारत' म भीम का नागा के पास जाना और वहा की सभी घटनाए अलौकिक सत्य के रूप म चित्रित की गई है, पर कवि ने "उन्हें सत्य वा स्वप्न कहें" कहकर अपने आपको बचा लिया है।[3]

परिवतन इस प्रसग म कवि न निम्नाकित परिवतन किए हैं।

कुए म अगूठी गिरने की घटना को कवि ने छोड दिया है और द्रोण द्वारा राजकुल म रहने की याचना नही कराई, 'महाभारत' म भीष्म द्राण का लेने आते है पर जयभारत' म द्रोण कुमारो के साथ जाते हैं।[4] द्रुपद की कथा यथावत सक्षिप्त की गई है और शस्त्र शिक्षा सक्षेप करके अर्जुन की वीरता का प्रधानता दी गई है।

एकलव्य के प्रसग म कवि ने कोई उल्लेखनीय परिवतन नही किया। एकलव्य की प्राथना पर द्राण की अस्वीकृति वर्णभेद के कारण रही, किन्तु एकलव्य ने गुरुभक्ति का चरम रूप उपस्थित किया।[5] यह तत्कालीन सम्भावना के आधार पर किया गया है किन्तु महाभारतीय सत्य न हाने के कारण कवि इस विषय पर अधिक

---

१ म० आदि० १०० । ५६ ७३ जयभारत, पृ० ३३ ४२
२ जयभारत, प० ४२
३ म० आदि० १२७ १२८ जयभारत, प० ४६
४ म० आदि० १३० । ३८ ३६, जयभारत पृ० ५०
५ जयभारत, प० ५७

और समुचित प्रकाश न डाल सका है। युधिष्ठिर की उक्ति में भावी युद्ध की सम्भावना व्यक्त कर दी गई है।

इसके उपरान्त राजकुमारों की परीक्षा का वृत्त आता है। इस वृत्त में 'महाभारत' की घटनाओं का यथावत चित्रण किया गया है। पृथक् रूप में सबने शस्त्र-कौशल दिखाया। मुख्यरूप से अर्जुन और कर्ण का प्रसंग आया। कर्ण अंगराज बना। यहाँ कवि ने सांकेतिक रूप में कर्ण का जन्म, परशुराम से शिक्षा और भाग्यहीनता की चर्चा चार पंक्तियों में की है।

'महाभारत' में कर्ण को अंग राज्य विधिवत् प्रदान किया जाता है, किन्तु 'जयभारत' में बीच में ही भीम के बोलने और अधिरथ के आ जाने से यह प्रसंग रुक जाता है।[1] 'महाभारत' में नकुल युधिष्ठिर की वार्ता नहीं है किन्तु 'जयभारत' में युधिष्ठिर का उत्कर्ष दिखाने के लिए इस प्रसंग की सृष्टि की गई।[2]

'जयभारत' में कौरवों के संघर्ष का संकेत किया है।[3] आदिपर्व के १३७ वें अध्याय में द्रुपद की तपस्या का वर्णन नहीं है किन्तु कवि ने इस प्रसंग सृष्टि से द्रुपद की प्रतिशोधात्मक भावना का प्रकाशन किया है।

लाक्षागृह प्रसंग 'जयभारत' में अत्यन्त संक्षेप में वर्णित है। धृतराष्ट्र ने दुर्योधन के हित के कारण युधिष्ठिर को वारणावत जाने का आदेश दिया। इस प्रसंग का यथावत् स्वीकार करके कवि ने विदुर की सदाशयता का चित्रण किया है।

इन प्रसंगों के चित्रण में कवि ने ऐसे परिवर्तन नहीं किए जिनसे उनकी विशेष दृष्टि प्रकाशित हो सके। 'महाभारत' के आख्यानों को अपने शब्दों में कहने और यदा-कदा किसी विचार तन्तु को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति प्रमुख रही है। 'महाभारत' में अधिक विस्तृत कथा का रूप वर्णनात्मक रहा और कहीं कहीं ही संवेदनात्मक हो पाया है उसी प्रकार 'जयभारत' में भी संवेदना के स्फुलिंग मिलते हैं। यदि कवि अपनी जैसी मार्मिकता की सृष्टि कथा के मध्य हो पाता तो यह ग्रन्थ और अधिक समादृत होता।

हिडिम्बा से मूलतः 'महाभारत' के निम्न प्रसंग 'जयभारत' में विद्यमान नहीं है। हिडिम्ब द्वारा हिडिम्बा को मानव खाने का आदेश[4] हिडिम्बा के उन्मुक्त प्रेम की अभिव्यक्ति[5] हिडिम्बा के विषय में राक्षस एवं भीम की वार्ता।[6] युद्ध के समय

१ म० आदि० १३४।३७-३८ जयभारत पृ० ६७

२ जयभारत, पृ० ६५

३ म० आदि० १७ जयभारत, पृ० ६६

४ म० आदि० १५१।८-१४

५ म० आदि० १५१।२५-३०

६ म० आदि० १५२।२२-२७

हिडिम्बा की कुन्ती से वार्ता।[1] भीम द्वारा हिडिम्बा के वध की इच्छा और युधिष्ठिर की वर्जना।[2]

प्रसग के विस्तार भय से उपयुक्त अंशों को छोड दिया गया है। शेष कथाश को यत्किंचित परिवर्तन के साथ ग्रहण किया गया है। 'महाभारत' में हिडिम्बा और भीम की वार्ता की स्पष्टता को कवि ने 'जयभारत' में सामान्य शिष्ट वार्तालाप में परिवर्तित कर दिया।[3] 'महाभारत' में हिडिम्बा सबको साथ लेकर भाग जाने का प्रस्ताव रखती है परन्तु 'जयभारत' में अकेले भीम से यह प्रस्ताव किया गया है।[4]

✓ इन परिवर्तनों के साथ कवि हिडिम्बा का मानवीरूप देता हुआ भीम-पत्नी के रूप में चित्रित करता है। सबकी सम्मति से दोनों व्योम विहार करते हैं।

हिडिम्ब-वध के उपरान्त एकचक्रा नगरी में भीमको बकराक्षस का वध करना पड़ता है। यह प्रसग आतिथेयी की रक्षा हेतु उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। इस प्रसग में कुन्ती की करुणा, त्याग, वात्सल्य इस प्रकार वर्णित है कि सभी भावनाओं पर कर्तव्य की विजय होती है।

परिवर्तन परिवर्धन 'महाभारत' के प्रस्तुत प्रसग में कवि ने अपने आदर्श एव विचारों के कारण निम्नस्थ परिवर्तन किए हैं। 'महाभारत' में ब्राह्मण परिवार के सभी सदस्य कर्तव्य-पालन के सिद्धान्त का उल्लेख करते हैं 'जयभारत' में इस विवेचन को स्थान नहीं दिया गया।[5] 'महाभारत' में ब्राह्मणी अपने मरने का प्रस्ताव रखकर पति के द्वितीय वरण का समर्थन करती है पर 'जयभारत' में यह स्पष्टोक्ति नहीं है।

'महाभारत' में कुन्ती और ब्राह्मण की वार्ता के पूर्व ही भीम अपना निश्चय कर लेते हैं। 'जयभारत' में भीम का बाद में पता चलता है।[6] 'महाभारत' में कुन्ती भीम की अतिमानवीय शक्ति से परिचित है अत वह ब्राह्मण को पूर्ण आश्वासन देती है, 'जयभारत' में माता का द्वन्द्व वर्णित है। कुन्ती के हृदय में प्रेम एव कर्तव्य का सघर्ष साधारण मानवी के रूप में चित्रित हुआ है।

लक्ष्य वेध लक्ष्यवध प्रसग में कवि ने 'महाभारत' के स्वतन्त्र उपाख्यानका सक्षिप्त वृत्त दिया है। कल्माषपाद की क्रूरता और वशिष्ठ की उदारता से मनुष्यता

१ म० आदि० १५३।२ १०
२ म० आदि० १५४।१ २
३ जयभारत, पृ० ७५ ७६
४ म० आदि० १५२।५ ६ जयभारत पृ० ७८
५ म० आदि० १५७।५ २४, म० आदि० १५८।६ ८
६ म० आदि० १५६।१६ जयभारत पृ० १०२
७ म० आदि० १६०।१४ जयभारत पृ० १०० १०१
म० आदि० १६१।२०-२१

का प्रतिपादन किया गया है। वशिष्ठ ने पुत्र के हत्यारे पर क्रोध न करके करुणा की उस पर वह भी मानवता का आचरण करने लगा। इस प्रसग म प्रतिशोध की तुलना म करुणा और क्षमा की महत्ता बताई है। सम्भवत युधिष्ठिर की अत्यधिक सहन शीलता से महाभारतकार भी यही कहना चाहते हैं। 'महाभारत मे शक्ति क शाप क उल्लेख किया है, जिसके वशीभूत होकर कल्माषपाद ने वशिष्ठ के पुत्रो को खा लिया किन्तु 'जयभारत' म वशिष्ठ विश्वामित्र के सघष का उल्लेख नही है।[1] 'महाभारत' मे कल्माषपाद की आन्तरिक ग्लानि का चित्रण नही है जयभारत' म कवि ने इस उद्भावन को स्थान दिया है।[2]

द्रौपदी के लक्ष्यभेद प्रसग को कवि ने मूल भावना से यथावत स्वीकार किया है। द्रौपदी के जन्म आदि के प्रसग को न लेकर पचपतित्व का समाधान किया है महाभारत' म द्रौपदी का पचपतित्व धार्मिक आधार पर सिद्ध है और 'जयभारत' मे महाभारत' के अनुसार ही द्रौपदी के पचपतित्व का समथन किया है।[3] मूल वृत्त के पूव जन्म की कथा का छोडकर भी कवि न उसके सत्य को स्वीकार किया है।

इस प्रसग की विवेचना इन्द्रप्रस्थ खण्ड म की गई है। कवि द्रौपदी विवाह की सामाजिक स्वीकृति के लिए आतुर है अत वह विरोधी उक्तियो की सम्भावनाओं पर विचार करता है। क्या यह विवाह अनायता' है? कवि इसे नहीं मानता, वह विवरण के मुख से 'मन' को प्रमाण मानकर इस काय का समथन करता है। जिस काय को सामाजिक समथन प्राप्त हो जाय वह अधम नहीं। यह जीवन के अनेक रूपो म देखा जा सकता है। अत द्रौपदी का विवाह धम-सम्मत ही है। कवि न इसे धमाचरण का अपवाद रूप माना है।

परिवतन इस प्रसग म कवि ने स्पष्ट परिवतन नहीं किया। व्यास जी द्वारा प्रस्तुत प्रतिप्राकृत विधान को व्यास जी की सम्मति के रूप म स्वीकार कर उसे विवक सम्मत रूप दिया है।[4]

वनवास प्रसग की सृष्टि पचपतित्व की मर्यादा की व्यावहारिकता के हेतु की गई है। विप्र-गोधन-हरण के प्रसग म नियम भग के कारण अजुन को वनवास मिला। बारह वष के लिए अजुन ने यह वनवास ग्रहण किया। इस अवधि म मणिपुर म चित्रागदा स विवाह द्वारका म सुभद्रा-हरण मुख्य घटनाएं घटित हुई।

यहा पर निम्न प्रसग छोड दिए गए हैं

वगा का प्रसग अजुन द्वारा अप्सराओ की मुक्ति इसके अतिरिक्त कवि न

---

१ म० आदि० १७५।१३ १४ ४० ४१, जयभारत प० १०७

२ जयभारत प० १०६ ११०

३ जयभारत, पृ० ११८ १२०

४ जयभारत पृ० १२५

महाभारत के वे सभी प्रसग छोड दिए हैं जो मध्यवर्ती कथाओं के रूप में चित्रित हुए हैं। वनवास के इस प्रसग में अर्जुन के शौर्य का समुचित आख्यान हुआ है।

राजसूय यज्ञ के रूप में कवि ने 'महाभारत' के आधार पर समस्त वृत्त को सक्षिप्त किया है। युधिष्ठिर के लिए यह यज्ञ आवश्यक था क्योंकि चक्रवर्ती राजा की स्थिति इस के लिए अनिवार्य हो गई थी। चारों भाइयों ने दिग्विजय की और जरासन्ध को मारकर अनेक राजाओं को अपने पक्ष में कर लिया गया। अर्घ्यदान प्रसंग में कवि ने ग्रन्थ में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। 'महाभारत' में सभा भवन देखते हुए दुर्योधन का उपहास विस्तृत रूप में है किन्तु कवि ने उसका सांकेतिक उल्लेख किया और आत्मजलन का दोष दुर्योधन पर ही डाल दिया।[१]

'द्यूत' का प्रसंग अत्यन्त मार्मिक रूप से चित्रित किया गया है। कवि ने महाभारत' के समाधान को यथावत स्वीकार कर अपने युग की बौद्धिकता को भी सन्तुष्ट किया है।

द्यूत प्रसग 'महाभारत' में धृतराष्ट्र विदुर को इन्द्रप्रस्थ जाने का आदेश देते हैं जयभारत' में इस तरह की प्रस्तावना पर विचार नहीं किया गया।[२] 'महाभारत' में दुर्योधन युधिष्ठिर के वैभव से जितना चिन्तित होता है 'जयभारत' में दुर्योधन का उतना द्वन्द्व नहीं दिखाया गया।[३] भेंट में मिली वस्तुओं की गणना भी कवि ने छोड दी है।[४] युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र की वार्ता का उल्लेख नहीं किया गया।[५]

विस्तार भय से दुर्योधन के मानसिक सन्ताप को व्यक्त करने की उक्त स्थितियों पर विचार न करके कवि ने द्यूत का सक्षिप्त चित्रण किया है और द्रौपदी के प्रसग को कुछ विस्तार से प्रस्तुत किया है।

द्रौपदी प्रसग की अतिप्राकृतता के समाधान में युग की बौद्धिकता का परिचय दिया है। कवि को कर्ण का उद्धत पशुत्व और दुःशासन का अत्याचार दोनों ही अस्वीकृत है। उसने व्यासजी की भाषा में इनका विरोध किया है। महाभारत' में कृष्ण ईश्वर रूप में रक्षा करते हैं किंतु जयभारत में इस प्रसग में व्यासजी के समाधान को नहीं माना गया और दुःशासन के मन में पाप का भय-सचार करके स्थिति को संभाला गया है।[६] 'महाभारत में द्यूत के समय गान्धारी आगमन नहीं है।

---

१ म० सभा० ४७।२ १५ जयभारत पृ० १४४
२ म० सभा० अध्याय ४६
३ म० सभा० अध्याय ५०
४ म० सभा० अध्याय ५० ५३
५ म० सभा० अध्याय ५५
६ म० सभा० अध्याय ४६, जयभारत पृ० १४८

किन्तु गान्धारी की उपस्थिति में सभासदों के मत को चित्रित करके स्थिति को विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया है।

द्यूत के उपरान्त अनुद्यूत के कारण पाण्डवों के वनवास का वर्णन किया गया। भीष्म ने इच्छा मृत्यु को युधिष्ठिर के आधीन कर दिया। इस रूप में इस मार्मिक प्रसंग की समाप्ति हुई। द्यूत के प्रसंग में कवि ने युधिष्ठिर की नैतिकता मानवता को सहनशीलता के अनुपम व्यवहार से अभिव्यक्त किया है।

वनगमन से उद्योग तक वनगमन प्रसंग में कवि ने पाण्डवों का वनगमन और कृष्ण की वार्ता का संक्षिप्त रूप दिया है।[1] विदुर और कुन्ती का वार्तालाप छोड़ दिया गया है। कौरव-पक्ष की ओर से द्रोण के आश्वासन का यह कहकर चित्रित किया है, कि व प्रेम के कारण न जा सके। महाभारत में इस प्रसंग में कृष्ण आते हैं और शाल्व-वध की कथा सुनाते हैं पर 'जयभारत' में इस वृत्त को छोड़ दिया गया है। धृतराष्ट्र की चिन्ता भी कवि ने विषय से पृथक् रखनी है। इस प्रसंग को 'महाभारत' का आधार मात्र मिला है। कवि ने पारिवारिक रूप से सुभद्रा का द्रौपदी के पुत्रों सहित द्वारका जाने का वर्णन किया है। द्रौपदी अपमान की कथा कहती है और कृष्ण उचित समय की प्रतीक्षा के लिए समझाकर चले जाते हैं।

वन के समय का सदुपयोग करने के हेतु अर्जुन अस्त्र लाभ के लिए यात्रा पर निकलते हैं। यह प्रसंग महाभारत की कथा के आधार पर अपरिवर्तित रूप से चित्रित हुआ है। किरातार्जुन युद्ध का संक्षिप्त चित्रण करके कवि अर्जुन को स्वर्ग की यात्रा पर ले जाता है। उर्वशी के प्रसंग में अर्जुन की नैतिकता की अभिव्यक्ति हुई है। वे एक साथ वीरत्व और तपस्या के धनी हो जाते हैं।

तीर्थ यात्रा प्रसंग में निम्नस्थ प्रसंग छोड़ दिए गए हैं 'महाभारत' में तीर्थ यात्रा के प्रसंग में आने वाले प्रमुख उपाख्यान अनेक तीर्थों के महत्व का वर्णन भीष्म पुलस्त्य संवाद कुरुक्षेत्रवर्ती तीर्थों का वर्णन[2] अनेक दिशाओं का वर्णन आदि।

महाभारत में जिन वर्णनों का अधिक विस्तार मिला है कवि ने उनका सांकेतिक चित्रण किया है। अनेक तीर्थों के वर्णन की चर्चा भी अनुपयोगी समझी गई।

निम्न प्रसंगों का उल्लेख मात्र है

सावित्री सत्यवान,[3] नल दमयन्ती[4] लोमश मुनि का आगमन[5] लोमशा सरयू

---

१ म० वन० अध्याय ८१

२ म० वन० अध्याय ८२

३ जयभारत, पृ० १६७

४ जयभारत पृ०, १६७

५ म० वन० अध्याय ६०, जयभारत, पृ० १६८

मे स्नान और गया म गमन, घटोत्कच द्वारा पाण्डवों की सहायता, नहुष का सर्पयोनि से छुटकारा, हनुमान से भेंट।

तीर्थयात्रा प्रसग के उपरात "द्रौपदी और सत्यभामा की वार्ता म कवि न पत्नीधर्म की व्याख्या की है। द्रौपदी सती धर्म का उपदेश देती है। इस प्रसग म कवि ने अर्जुन द्रौपदी की प्रेमवार्ता सत्यभामा द्रौपदी का सवाद, इन दो प्रसगों को प्रधानता दी है। प्रेम-वार्ता का आधार इस पर्व का कोई एक अध्याय नहीं है, अपितु इतस्तत विकीर्ण प्रेमोक्तियों के आधार पर इस वस्तु की कल्पना की गई है। सत्यभामा द्रौपदी सवाद का कवि ने अध्याय २३३ के आधार पर तैयार किया है, किन्तु इसमे भी स्त्री धर्म की वसी विवेचना नही हो पाई जो 'महाभारत' म प्राप्त है। नारी के सात्विक प्रेम प्रदान को कवि न अभिव्यक्त किया है किन्तु स्त्री धर्म के रूप म उस से भी अधिक तात्विक उक्तिया कही जा सकती थी।

'वन वैभव" शीर्षक के अतगत कवि न कौरवों की घोषयात्रा का सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। इस अश मे वर्णित कथा-सकत इस रूप म दिये गये है

शकुनि का दुर्योधन को यात्रा का परामर्श देना, दुर्योधन का शिकार के हेतु धतराष्ट्र से आज्ञा लेना, धतराष्ट्र का पाण्डवों की उपस्थिति का सकेत देना कौरवो के आगमन की सूचना पाकर भीम का क्रुद्ध होना और युधिष्ठिर का उसे शान्त करना, चित्ररथ के साथ कौरवो का सघर्ष और परास्त होना कुरुराज को बचाने के हेतु प्रार्थना पर भीम का क्रोध, किन्तु धर्मराज का शरणागत की महत्ता बताकर उसे शान्त करना, अर्जुन का चित्ररथ से युद्ध करके उसे छुडाना।

'महाभारत मे दुर्योधन मार्ग म ठहरता है और उसका अभिनन्दन होता है जयभारत म यह प्रसग नही है।[1] महाभारत म दुर्योधन कर्ण का पराजय की सूचना देता है 'जयभारत म वे स्वय आकर राजा को धैर्य बधाते हैं।[2] महाभारत म स्वय दुर्योधन को बुलाकर पाताललोक म समझाते है[3] जयभारत म यह प्रसग छोड दिया गया है। कर्ण के दिग्विजय के प्रसग को सूचनात्मक रूप म चित्रित करके कवि इस प्रसग की इति कर देता है।

वनमृगी के प्रसग का लेकर कवि ने आहार म सयम की प्रतिष्ठा की है और मानवीय करुणा का उभारा है। यह प्रसग महाभारत के वनपर्व के २५८ वे अध्याय का सक्षिप्त रूप है।

'महाभारत म जयद्रथ दूर से द्रौपदी को देखकर अपरिचिता के रूप म उसका सौन्दर्य चित्रण करता है। 'जयभारत म वह सीधे प्रयमि कृष्णा' कहकर बात का

---

१ म० वन० अध्याय २४७
२ म० वन० अध्याय २४८। ४ जयभारत, पृ० २१६
३ म० वन० अध्याय २५१ २५२

आरम्भ करता है।[1] 'महाभारत' म जयद्रथ पहले कोटिकास्य राजा को भेजता है। 'जयभारत' म स्वय जाता है।[2] 'महाभारत' मे धात्रेयिका पाण्डवो को लौटने पर सूचना देती है किन्तु 'जयभारत' म पाण्डव द्रौपदी की पुकार सुनकर आ जाते हैं।[3] 'महाभारत' मे पाण्डवा को कुटी पर आने से पूव अमगल सूचनाए प्राप्त होती हैं। 'जयभारत' मे कवि ने एसा चित्रण नही किया। जयद्रथ का पकडा जाना और शकर से वरदान प्राप्ति की विस्तृत कथा को कवि ने चार पक्तियो मे ही सूच्य शैली म प्रस्तुत कर दिया है।

दुर्वासा प्रसग वणनात्मक रूप मे अत्यन्त सक्षेप मे चित्रित हुआ। महाभारत' के दो सौ बासठवें अध्याय को एक पक्ति मे चित्रित करके, कवि पाण्डवो की चिन्ता का वणन करता है। महाभारत' म दुर्योधन दुर्वासा को सायास पाण्डवो के पास भेजता है। जयभारत मे यह प्रसग नही है। महाभारत' मे चिन्ताकुल द्रौपदी कृष्ण का स्मरण करती है और कृष्ण आकर द्रौपदी की बटलोई के शाक को खाकर, दुर्वासा को तृप्त करते हैं जयभारत' मे मुनि के दो चार शिष्य अपने गुरु के कृत्य पर रोष करते हैं और स्नान म ही तृप्त होकर युधिष्ठिर के पास तृप्ति की सूचना भेजते हैं।[4] कवि ने 'महाभारत के अतिप्राकृत तत्व को बुद्धिसम्मत रूप देन का प्रयास नही किया और तृप्त होन के कारणो पर कोई प्रकाश भी नही डाला। हा शिष्या के क्षोभ म अनुचित न्याय का विरोध अवश्य किया है।

'महाभारत के कीचक-वध-वृत्त को कवि ने सर धी नाम से प्रस्तुत किया है। इस वृत्त का कवि वणनात्मक रूप से कह गया है। 'महाभारत' के निम्न प्रसगो को छोड दिया है।

✓ द्रौपदी का पाण्डवा के दुख से दुखी होकर भीम के समक्ष विलाप।[5] भीम एव द्रौपदी का सवाद।[6] उपकीचको का सरन्ध्री को बाधकर श्मशान भूमि म ले जाना और भीम का सबको मार कर सरन्ध्री को छुडाना।[7]

निम्नस्थ प्रसगो म परिवतन किया है

महाभारत म कीचक सरन्ध्री म और बाद म बहन मे बात करता है

जयभारत म वह पहल सरन्ध्री स और बाद म बहन स बात और फिर सरन्ध्री मे

१ म० वन० २६४ । ११ १७ जयभारत, पृ० २२३
२ म० वन० २६५ । ६ जयभारत, पृ० २२३
३ म० वन० २६६ । २ ६ जयभारत पृ० २२६
४ म० वन० २६३ । ७ १२ जयभारत पृ० २३०
५ म० विराट० १६ । २०
६ म० विराट० अध्याय २१
७ म० विराट० अध्याय २३

करता है।[1] 'महाभारत' में पर्व विशेषमें मदिरा ले जानेका कार्य सैरन्ध्री को सौंपा जाता है, 'जयभारत' में यह कार्य चित्र से कराया गया है।[2] 'महाभारत' में सुदेष्णा सैरन्ध्री को रक्षा का वचन देती है पर 'जयभारत' में वह उसे भाभी शब्द से सम्बोधित करती है।[3]

महाभारत में दरबार में सैरन्ध्री के अपमान के समय वल्लभ भीम की उपस्थिति है और युधिष्ठिर संकेत से भीम को उत्तेजित होने से रोकते हैं। 'जयभारत' में भीम इस वृत्त को सुनते हैं।[4] 'महाभारत' में द्रौपदी भीम के सामने युधिष्ठिर के जुए से जीविका चलाने को भाग्य की विडम्बना मानकर दुःखी होती है, 'जयभारत' में ऐसा उल्लेख नहीं है।

सैरन्ध्री के लघु वृत्त में कवि ने यही उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं। भीम कीचक को रात्रि में बुलाकर मार देते हैं। यहां भी कवि ने संक्षेप किया है और महाभारत' के युद्ध के प्रसंग को केवल चार पंक्तियों में चित्रित कर दिया है।

बृहन्नला के प्रसंग को कवि ने पृथक रूप से व्यक्त किया है किन्तु इस प्रसंग का कथा विकास समुचित रीति से नहीं हो पाया। महाभारत के गौहरण पर्व के कुछ स्थलों को लेकर यदि इस कथानक का विकास होता तो अधिक सुन्दर होता। कवि ने इस प्रसंग में निम्न परिवर्तन किए हैं

'महाभारत' में त्रिगर्तों एवं कौरवों के मत्स्यदेश पर हुए आक्रमण को केवल सूचनात्मक रूप में दो पंक्तियों में कहा गया है।[5] 'जयभारत' में 'महाभारत' के निम्न अन्य प्रसंग भी उपेक्षित करके छोड़ दिए गये हैं।

त्रिगर्तों का भयंकर युद्ध चित्रण[6] विराट का पकड़ा जाना और भीम द्वारा छुड़ाना[7] राजधानी में पाण्डवों का सत्कार।[8]

'महाभारत' में द्रौपदी अर्जुन की सम्मति से बृहन्नला का सारथी बनाने की बात कहती है 'जयभारत' में उत्तरा सीधे बृहन्नला से बात करती है।[9] कवि ने इस

---

१ म० विराट० १४। ३ ७ जयभारत पृ० २४४, २४७
२ म० विराट० १५।६, जयभारत प० २५८
३ म० विराट० १५। १६, जयभारत प० २६०
४ म० विराट० १६। १६ १८, जयभारत, पृ० २७१
५ म० विराट० १३ ३२ जयभारत प० २७८
६ म० विराट० अध्याय ३२
७ म० विराट० ३३।४२ ४४
८ म० विराट० ३४।६
९ म० विराट० ३६।१३, १७ १९, जयभारत, प० २७०

उपाख्यान ।[१] गालव की कथा ।[२] ययाति की कथा ।[३] कुन्ती द्वारा विदुला की कथा ।[४] वस्तुत 'जयभारत' की कथा सयोजना मे उक्त प्रासगिक वृतो की आवश्यकता भी नही थी ।

परिवतन परिवधन महाभारत म कृष्ण माग म ऋषिया के दशन और विश्राम करते हुए जाते हैं 'जयभारत' म सीधे राजधानी पहुच कर दरबार मे उपस्थित होते हैं ।[५] 'महाभारत' मे कण समरयन के रूपक के साथ युद्ध की अनिवायता पर बल देता है 'जयभारत' म अपने मन की विवशता से आधार पर पाण्डव पक्ष को स्वीकार नही करता ।[६] शेप सभी प्रसगो मे कवि ने सक्षिप्तिकरण की प्रवृत्ति अपनाई है और उल्लेखनीय परिवतन नही किया । 'कुन्ती एवकण' के प्रसग मे 'महाभारत' की कथा को यथावत स्वीकार किया गया है किन्तु आधार ग्रन्थ म कण का स्वर अधिक उग्र और स्पष्ट है जयभारत म वह आदि से अन्त तक विनीत रूप म अपनी विवशता का चित्रण करता है ।[७]

महाभारत मे युयुत्सु रणभूमि मे युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर पाण्डव-पक्ष ग्रहण करता है । जयभारत मे वह पहले कण स परामश करता है ।[८]

स्थानान्तरण युयुत्सु और समर-सज्जा प्रसगो का स्थानान्तरण किया गया है । आधार ग्रन्थ म युयुत्सु समरोद्यत सेनाओ के समक्ष पाण्डव-पक्ष म मिलता है । जयमारत म यह काय पहले ही कराया गया है। जयभारत मे समर सज्जा का समस्त रूप साकेतिक रक्खा गया है । अजुन के मोह म गीता के विचार पक्ष का आलेखन यथावत किया गया है । गीता म जिस रूप म पृथक पृथक सिद्धान्तो का विस्तृत विवेचन है 'जयभारत' का कवि उस गम्भीरता और व्यापकता का स्पश तो नही कर पाया किन्तु उसने युगानुरूप गीता के सिद्धान्तो का पयालोचन किया है । गीता के कमयोग का सार इस प्रसग म स्पष्ट रूप स व्यक्त हुआ है ।

युद्ध महाभारत के भीष्मपव से शल्य पव तक के युद्ध का सक्षेप युद्ध शीषक म किया है । महाभारत क विशाल युद्ध वणन को इतन सक्षेप म केवल साकेतिक रूप

---

१ म० उद्योग० अध्याय ६७
२ म० उद्योग० अध्याय १०६
३ म० उद्योग० अध्याय ११६
४ म० उद्योग० अध्याय १३२
५ म० उद्योग० अध्याय ८३ ८४ जयभारत, प० ३१६
६ म० उद्योग० अध्याय १४० जयभारत, प० ३३८
७ म० उद्योग० १४६।१४ जयभारत पृ० ३४१
म० भीष्म० ४३।६६ जयभारत प० ३४६

में ही चित्रित किया जा सकता था अतः कवि ने प्रमुख घटनाओं का संकुचित वर्णन करके इस प्रसंग की पूर्ति की है।

महाभारत के निम्न प्रमुख स्थल लिए गये हैं

कृष्ण का आयुध ग्रहण।[1] भीष्म का पतन और उपधान मांगने पर अर्जुन द्वारा पूर्ति।[2] कर्ण भीष्म मिलन।[3] अभिमन्यु-वध का संक्षिप्त वृत्त।[4] जयद्रथ वध के प्रसंग में युधिष्ठिर की रक्षा का प्रसंग अर्जुन का द्रोण की उपेक्षा करके व्यूह में प्रवेश भीम का पराक्रम।[5] युधिष्ठिर के असत्य भाषण की पृष्ठभूमि में द्रोण का वध।[6]

कर्ण का सेनापतित्व शल्य का संघर्ष और दुर्योधन का शान्ति कराना।[7] घटोत्कच मरण।[8] कर्ण के द्वारा चारों भाइयों की पराजय।[9] कर्णार्जुन युद्ध में कर्ण की पराजय।[10] युधिष्ठिर द्वारा शल्य का पतन, नकुल सहदेव द्वारा उलूक एवं शकुनि का वध।[11] कृपाचार्य द्वारा दुर्योधन को संधि का परामर्श, दुर्योधन का व्यंग्यपूर्ण उत्तर और प्रस्ताव की अस्वीकृति।[12] चरों से सूचना पाकर पाण्डवों का ह्रद के पास जाना। भीमसेन की व्यंग्योक्ति, युद्ध में दुर्योधन का पतन बलराम का आगमन और बाधित होना।[13]

युद्ध के प्रसंग में कवि ने उक्त स्थलों का सांकेतिक वर्णन किया है। दुर्योधन के पतन के उपरान्त युधिष्ठिर द्वारा स्नेह का प्रदर्शन युधिष्ठिर के चरित्र—विकास का एक रूप है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर दुर्योधन से क्षमायाचना नहीं करते 'जयभारत' में धर्मराज क्षमा मांगते हैं।[14]

हत्या से स्वर्गारोहण तक हत्या प्रसंग की सृष्टि सौप्तिक पर्व के आधार पर की है। इसमें कवि ने आधार ग्रन्थ के निम्न प्रसंगों को छोड़ दिया है।

---

१ जयभारत, पृ० ३७३-३७४
२ जयभारत, पृ० ३७६
३ जयभारत, पृ० ३७८
४ जयभारत पृ० ३७९-८०
५ जयभारत पृ० ३८१-३८३
६ जयभारत, पृ० ३८६
७ जयभारत, पृ० ३९०
८ जयभारत, पृ० ३९१
९ जयभारत, पृ० ३९४
१० जयभारत पृ० ३९६
११ जयभारत, पृ० ३९७
१२ जयभारत, पृ० ३९८-४००
१३ जयभारत पृ० ४०१-४०७
१४ जयभारत, पृ० ४१०

कृपाचार्य द्वारा दैव की प्रबलता का विवेचन।[1] अश्वत्थामा का अस्त्र प्राप्ति हेतु भगवान शिव की स्तुति,[2] स्तुति के समय अग्निवेदी भूतों का प्राकट्य।[3]

इन प्रसंगों की उपेक्षा करके कवि ने अनावश्यक विस्तार और अतिप्राकृत तत्त्वों की उपेक्षा की है। शेष कथा 'महाभारत' के अनुसार सूचनात्मक रूप में कही गई है। पाण्डवों का शोक, भीम का अश्वत्थामा को मारने के लिए उद्यत होना और ब्रह्मास्त्र के भयंकर प्रयोगों की कथा कवि ने दो पृष्ठों में संक्षिप्त रूप में वर्णित की है। इस कथा के विकास में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है। अश्वत्थामा की क्रूरता और अमानवीय अत्याचार की अभिव्यक्ति के साथ द्रौपदी के चरित्र का उत्कर्ष 'वह भूला अपना मनुष्यत्व तुम अपने को न भुलाना' कहला कर किया गया है। अर्जुन ब्रह्मास्त्र छोड़ते हुए प्रथम आचार्य पुत्र की कुशल याचना करते हैं, और तदुपरान्त अपने क्षेत्र की व्यवस्था करते हैं।

विलाप और कुरुक्षेत्र दीपकों में कवि ने स्त्रियों के विलाप और विशेषतः गान्धारी तथा कृष्ण के वार्तालाप को स्थान दिया है। 'महाभारत' के निम्न प्रसंग छोड़ दिये गए हैं

गान्धारी द्वारा पाण्डवों को शाप देने की तैयारी और व्यास जी का उनको समझाना।[4] कृष्ण का धृतराष्ट्र का क्रोध करने पर फटकारना।[5] धृतराष्ट्र द्वारा भीम की लौह प्रतिमा भंग होना।[6]

परिवर्तन परिवर्धन उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त कवि ने निम्न परिवर्तन किए हैं। 'महाभारत' में संजय धृतराष्ट्र की दुर्बलता बताकर उन्हें समझाते हैं, जयभारत में संजय धृतराष्ट्र स्वयं पश्चात्ताप करते हैं।[7] 'महाभारत' में गान्धारी स्वयं कृष्ण को वंश के नाश का शाप देती है। जयभारत में वह प्रश्न वाचक रूप में पूछती है और कृष्ण उसको स्वीकृति देते हैं।[8]

त्वमप्युपस्थिते वर्षे षट्त्रिंशे मधुसूदन।
हतज्ञातिर्हतामात्यो हतपुत्रो वनचरः॥[9]

---

१ म० सौप्तिक० अध्याय २
२ म० सौप्तिक० अध्याय ६
३ म० सौप्तिक० अध्याय ७
४ म० स्त्री० अध्याय १४
५ म० स्त्री० अध्याय १३
६ म० स्त्री० अध्याय १२
७ म० स्त्री० १।४३ जयभारत, पृ० ४१६
८ म० स्त्री० २५।३२ ४५ जयभारत, पृ० ४२८
९ म० स्त्री० २५।४४

'जयभारत' में

> कुरुकुल सरीखा वंश कुल की आट परस्पर नष्ट हो।
> तो पूछती हूँ कृष्ण क्या तुमको न इससे कष्ट हो?[1]

महाभारत' के प्रसंग में जीवन की वास्तविकता की कटुता का रूप विद्यमान है। गान्धारी समस्त दोष कृष्ण पर थोपती है। संग्राम और अपने पुत्रों की हत्या का उत्तरदायी मानकर वह उनको शाप देती है। 'जयभारत' में कटुता का स्वर उपशमित है। गान्धारी के चरित्र के उत्कर्ष के हेतु कवि ने प्रश्न करा दिया। इस प्रश्न में यद्यपि गान्धारी की मानसिक वेदना का प्रतिकार अवश्य निहित था। आधार-ग्रन्थ में गान्धारी का स्वर उग्र है 'जयभारत' में वह विनम्र है और अन्त में क्षमा याचना करती है।

शान्ति-पर्व में महाभारत के शान्तिपर्व अनुशासनपर्व आश्वमेधिक पर्व आश्रमवासिक पर्व मौसल पर्व महाप्रस्थानिक पर्व की घटनाओं का संग्रह है। यह समस्त अध्याय सूचनात्मक है। कवि की लेखनी घटनाओं के घटित होने की सूचना देती हुई आगे चलती है।

महाभारत के निम्न प्रसंगों का उल्लेख किया गया है

युधिष्ठिर द्वारा कर्ण को जलांजलि दान।[2] भीष्म से ज्ञान प्राप्ति।[3] अर्जुन द्वारा विभिन्न स्थानों की विजय अश्वरक्षा त्रिगर्तों की पराजय,[4] प्राग्ज्योतिषपुर का युद्ध बभ्रुवाहन का प्रसंग[5], धृतराष्ट्र आदि की वन-यात्रा[6] यादव-कुल संहार।[7] पाण्डवों का हिमालय गमन।[8]

उक्त समस्त प्रसंगों का वर्णन संकुचित शैली में किया है और कथा परिवर्तन एवं परिवर्धन का अवसर ही कवि को प्राप्त नहीं हुआ। उक्त प्रसंगों में कवि ने चारित्रिक उत्थान की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। युधिष्ठिर और सुभद्रा का वार्तालाप सुभद्रा के चरित्र का उत्कर्ष प्रस्तुत करता है। महाभारत में विस्तृत युद्ध

---

१ जयभारत, पृ० ४२८
२ म० स्त्री० २७।१३, २६ जयभारत, पृ० ४२९
३ म० शान्ति० २५।२५५
४ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७३ जयभारत, पृ० ४३१
५ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७४ जयभारत, पृ० ४३१
६ म० आश्वमेधिक० अध्याय ७४ जयभारत, पृ० ४३२
७ म० आश्वमेधिक० अध्याय ८६, ८१ जयभारत, पृ० ४३४
८ म० आश्रमवासिक० अध्याय १५ जयभारत, पृ० ४३४
९ म० मौसल० अध्याय३ जयभारत पृ० ४३४
१० म० महा० ७।५ जयभारत पृ० ४३४

के उपरान्त भी पाण्डव विरोधी तत्व देश मे बच रहे थे अत उनका शमन भी आव
श्यक था। इसके उपरान्त ही एक धर्मनिष्ठ राष्ट्र की पुनर्स्थापना सम्भव थी। अत
'जयभारत' की पूर्णता के हेतु उक्त समस्त प्रसंगो को स्वीकार करना श्रेयस्कर रहा।

स्वर्गारोहण स्वर्गारोहण शीर्षक मे कवि ने पाण्डवो की हिमालय-यात्रा और
क्रमश पतन तथा युधिष्ठिर का परीक्षोपरान्त स्वर्ग-गमन की कथा का विस्तार दिया
है पाण्डवो के पतन प्रसंग मे कवि ने एक परिवर्तन किया है।

'महाभारत' मे गिरने का कारण भीमसेन पूछते है पर 'जयभारत' मे स्वयं
गिरने वाला व्यक्ति प्रश्न करता है।[1] इस प्रसंग मे कवि ने कथानक के विकास की
ओर कम ध्यान दिया है और युधिष्ठिर की अतिमानवीयता का चित्रण किया है।
समस्त पाण्डवो के पतन के उपरान्त इन्द्र के समक्ष धर्मराज कुत्ते का त्यागने की बात
स्वीकार नहीं कर पाये। उन्होंने स्वर्ग न जाना उचित समझा किन्तु अपने साथी कुत्ते
को नहीं त्यागा।

अयश्वा भूतभव्येश भक्तो मा नित्यमेवह।
स गच्छेत मया साध मानशस्या हि मे मति ॥[2]

× ×

+

तुम जावो मेरा भाग्य नहीं
जो मैं सुदेव दर्शन पाऊं।
शरणागत अनुजीवक सहचर
यह श्वान छोड़ क्या कर जाऊं।[3]

कवि ने महाभारत की मूल भावना के अनुरूप युधिष्ठिर के चरित्र को उन्नत
रूप मे प्रस्तुत किया है। मूल ग्रन्थ मे युधिष्ठिर कुत्ते को साथ ले जाने का आग्रह
करते है और उसके अभाव मे स्वर्ग जाने की कामना नहीं करते जयभारत मे आधार
ग्रन्थ की स्थिति को यथावत स्वीकार किया गया है।

धर्म की परीक्षा मे युधिष्ठिर सफल होते है। कवि ने मानव के उत्कर्ष मा
कथा को यहां समाप्त कर दिया है। इसके आगे वह महाभारत के अतिप्राकृत स्थल
को नहीं ले पाया। यहां तक भी वह आस्था और विश्वास के साथ चलता रह
आधार ग्रन्थ की अतिप्राकृत बातों को पूर्ण रूप से युगानुरूप रंग नहीं दे पाया। भ
की प्रबल भावना के कारण आधार ग्रन्थ की देवत्व सम्पन्न कथा को यत्किंचित प
वर्तन से ही चित्रित कर पाया है।

जयभारत, पृ० ४४०

१ म० महा० २।५२,
२ म० महा० ३।७
३ जयभारत पृ० ४४७

निष्कर्ष — 'महाभारत' के पुनराख्यान में 'जयभारत' की उपलब्धि सांस्कृतिक जीवन-दर्शन की स्थापना है। युधिष्ठिर अनासक्त सामाजिक उच्चादर्श सम्पन्न राजा और धर्मपरायण व्यक्ति हैं। वे सर्वदा उस त्याग के लिए प्रस्तुत हैं जिससे मानव का कल्याण हो। ऐसे सात्विक त्याग के प्रतिपादन के लिए गुप्त जी ने युधिष्ठिर के आदर्श को जनता के समक्ष रखा। तथापि जीवन दर्शन की सर्वांगीण व्याख्या के क्षेत्र में यह काव्य दुर्बल है। महाभारत के जीवन दर्शन की पूर्णता का आभास मात्र मिलता है। कवि ऐसे स्थलों को भी छोड़ गया है जिनसे वह व्यापक रूप में अपने युग के आलोक में किसी सामाजिक जीवन दर्शन की स्थापना कर सकता था।

महाभारत का कर्ण-प्रसंग

'महाभारत' के कथा प्रवाह के अनेक प्रमुख प्रसंगों में कर्ण की कथा व्यक्ति के पौरुष के संघर्ष की कथा है। कर्ण 'महाभारत' का अत्यन्त यशस्वी पात्र है। उसके जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं में ऐसा मर्म विद्यमान है जो 'महाभारत' के प्रत्येक पाठक को आकर्षित करता है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में एक ओर वर्ण-व्यवस्था की सतत स्वीकृति कर्म के अनुसार व्यक्ति की जाति को सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि प्राप्त होती है, तो दूसरी ओर कुल-जाति विहीन पुरुषत्व का [illegible] अर्जित मान भी अभिनन्दनीय है। धर्म की गति जितनी ही सूक्ष्म है उतनी ही सूक्ष्म उसकी व्यावहारिक उपेक्षा। इसी आधार पर महाभारतकार ने कर्ण का चरित्रांकन किया है। कर्ण के जन्म से लेकर मृत्यु तक, उसके जीवन में कितने उत्थान-पतन आये, यह नहीं कि महाभारत के अन्य पात्रों का जीवन समरस रहा किन्तु स्थिति सापेक्ष मानसिक संवेदनाएँ और दुर्बलताएँ जितनी कर्ण के समक्ष आईं उतनी किसी अन्य पात्र के सामने नहीं। पाण्डवों और कौरवों के संघर्ष में उनकी सम्पूर्ण आपत्तियों के उत्तरदायी वे स्वयं हैं। इसमें भी पाण्डवों के जीवन में कष्ट अधिक रहे। किन्तु कर्ण का इस संघर्ष के मध्य नाटकीय रूप में आना और प्रमुख बन जाना 'महाभारत' की असाधारण घटना है। इस असाधारण व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध महाभारत की असाधारण घटनाएँ आज के कथाकार को युग निरपेक्ष [illegible] के रूप में दिखाई देती हैं। उसके समक्ष कर्ण का चरित्र कर्ण-जीवन की घटनायें, नवीन समस्या लेकर उपस्थित होता है। उच्चकुल में उत्पन्न होकर जो हीन समझा रहा पौरुष की अदम्यता के कारण भी जो निरंतर हारता रहा और अन्त में दैवीय घटना के फलस्वरूप मृत्यु को प्राप्त हुआ ऐसे कर्ण का जीवन वर्ण-व्यवस्था की नई व्याख्या की प्रेरणा देता है।

'महाभारत' में कर्ण की कथा का विकास — जन्म दो कथान्तर।

महाभारत में आदिपर्व से शान्तिपर्व तक कर्ण की कथा व्याप्त है। अनेक प्रसंग एक से अधिक स्थलों पर कुछ परिवर्तन के साथ मिलते हैं। एक ही कथा प्रसंग कहीं संक्षिप्त कहीं विस्तार से प्राप्त होता है। कर्ण के जन्म कुन्ती और सूर्य द्वारा समागम और कुण्डल-हरण-कथा महाभारत में दो कथान्तरों के साथ प्राप्त होती है।

यह प्रसंग मुख्यरूप से आदिपर्व और वनपर्व में आता है। आदिपर्व वाला कथारूप संक्षिप्त और वनपर्व वाला वृहत्तर है। आदिपर्व में भी पिता के घर साधु दुर्वासा की सेवा और स्पष्ट रूप से पुत्र हेतु वर प्राप्ति की कथा दोनों स्थानों पर आई है।[1] दोनों प्रसंगों में एक भेद यह है कि प्रथम में मामा द्वारा वर देने की बात कही गई है किन्तु द्वितीय प्रसंग में कुन्ती के भावी संकट की ओर संकेत कर दिया गया है।

तस्यै स प्रददौ मन्त्रमापद्धर्मान्ववेक्षया।
अभिचाराभिसंयुक्तमब्रवीच्चैव तां मुनिः॥[2]

✓ सम्भवतः यह स्पष्टीकरण कुन्ती के चरित्र रक्षा हेतु किया गया है। कुन्ती वरदान में प्राप्त मन्त्र की परीक्षा हेतु सूर्य का आवाहन करती है। सूर्य प्रकट होते हैं। कुन्ती भयभीत हो जाती है पर सूर्यदेव उस स्थिति की गम्भीरता और देवत्व का अलौकिक शक्ति से अभिभूत कर उसके कन्यात्व की सुरक्षा का वचन देकर पुत्र उत्पन्न करते हैं। पुत्र तत्काल उत्पन्न होता है। उसके उपरान्त एक समय सूर्य स्वप्न में कर्ण को दान देने है और उसे कुण्डल न देने की चेतावनी भी। किन्तु वह अपनी दानशीलता पर दृढ़ रहता है।[3]

कथा का द्वितीय वृहत्तर रूप सम्भवतः तीन अध्यायों में वर्णित हुआ है। सूर्य स्वप्न में कर्ण को दान देकर इन्द्र को कवच कुण्डल न देने की चेतावनी देते हैं। किन्तु कर्ण अपने प्रण पर दृढ़ रहता है। इस प्रसंग में सूर्य एवं कर्ण का संवाद है फलस्वरूप सूर्य देवराज इन्द्र से एकघ्नी शक्ति माँग लेने का परामर्श देते हैं। इसे कर्ण स्वीकार कर लेता है। कथा का वृहत्तर रूप अधिक यथार्थ और मनोवैज्ञानिक है। कुन्ती सूर्य के साथ समागम करने से पूर्व मानसिक और सामाजिक भय का प्रदर्शन करती है। इस पर सूर्यदेव कुन्ती को अपने तेज और शाप से भयभीत करते हैं।[4] यहाँ पर कुन्ती द्वारा सामाजिक नियम की विवेचना अत्यन्त सुन्दर रूप में हुई है। कुन्ती कहती है कि मेरे माता पिता तथा अन्य गुरुजन ही मेरे इस शरीर को देने का अधिकार रखते हैं। मैं अपने धर्म का लोप नहीं करूँगी। स्त्रियों के सदाचार में अपने शरीर की पवित्रता ही बनाये रखना प्रधान है और संसार में उसी की प्रशंसा की जाती है।[5] सूर्य इसके उत्तर में कुन्ती को समझाते हैं और गर्भ-स्थापन करते हैं। कुन्ती को यह आश्वासन प्राप्त हो जाता है कि वह सूर्य से समागम के उपरान्त भी कन्या रह सकती है।[6]

---

१ (क) म० आदि० ६७। १३२ १३३ (ख) म० आदि० ११०। ४ ५
२ म० आदि० ११०। ६
३ म० आदि० ११०। दाक्षिणात्य श्लोक २६ २७
४ म० वन० अध्याय ३०० ३१०
५ म० वन० ३०६। १८
६ म० वन० ३०६। २३
७ म० वन० ३०७। ११

इस प्रसंग में कथा की वास्तविकता की रक्षा करने का पूर्ण प्रयास किया गया है। इन्द्र अमोघशक्ति देते समय कर्ण से कह देते हैं कि "जिसको लक्ष्य करके तुम यह शक्ति माँग रहे हो, वह तो पुरुषोत्तम, अचिन्त्यस्वरूप कृष्ण से सुरक्षित है।"[1] यह जान लेने पर भी कर्ण उस शक्ति को लेता है। शक्ति देते समय इन्द्र एक बात यह जोड़ देते हैं कि इसका प्रयोग आत्म संकट की अवस्था में ही करना श्रेयस्कर होगा अन्यथा यह शक्ति उलटी पड़ेगी।[2] इस प्रकार महाभारतकार ने वनपर्व में यथार्थरूप से इस कथा का विकास प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि देवत्व और मनुजत्व के भीषण संग्राम में देवत्व विजय प्राप्त करने के साधन संगृहीत कर लेता है। 'महाभारत' में देवताओं से सम्बद्ध प्रत्येक आख्यान को धर्म सम्मत घोषित किया है। यह इसलिए हो सका है कि धर्म का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है।[3] इस रूप में दैवत्व से संघर्ष हुआ करता कर्ण अपने कर्तव्य पथ पर सर्वदा अडिग रहता दिखाई देता है। कर्ण का जन्म कितनी विकट परिस्थितियों में हुआ और उससे भी अधिक भयंकरताएँ उसके जीवन में आईं। जन्म और कुण्डल-हरण के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर कथा में कर्ण की प्रधानता लक्षित होती है।

संक्षिप्त रूप से महाभारत में कर्ण का आगमन रंगभूमि में राजकुमारों के प्रदर्शन के समय होता है। जिस समय अर्जुन की जयकारों से सभा स्थल गूंज रहा था तभी कर्ण आया[4] और अर्जुन की प्रतिद्वंद्विता स्वीकार की। कुल को बीच में रख कर दोनों का युद्ध तो रोक दिया गया किन्तु दुर्योधन ने अर्जुन के समान वीर को अपनाने का स्वर्ण अवसर नहीं खोया और कर्ण को अंगदेश का राज्य दे दिया। प्रत्युपकार में अटूट मैत्री का वर मिला।

द्रोणाचार्य को अपने से विमुख देखकर कर्ण शस्त्रास्त्र प्राप्त करने के हेतु ब्राह्मण बनकर परशुराम के पास गया[5] 'महाभारत' में यह वर्णन शान्तिपर्व में आता है। वहाँ अन्तिम रूप में कर्ण को शाप मिला। फिर भी वह अपने पौरुष का स्वाभिमान रख कर लौट आया।

दुर्योधन को सन्तुष्ट करने के हेतु कर्ण दिग्विजय करने निकला[6] और अन्त में यज्ञ में स्वयं पूजित हुआ। कर्ण की दिग्विजय उसके पराक्रम के प्रभाव को और अधिक विस्तीर्ण करने के हेतु हुई। उद्योग पर्व में कर्ण और कृष्ण तथा कर्ण और कुन्ती दोनों के मार्मिक वार्तालाप हैं।[7] कृष्ण नीति से बात करते हैं और कर्ण नीति के आधार से

१ म० वन० ३०७।३२ ३३
२ म० सभा० ६७।४७
३ म० आदि० अध्याय १ ५
४ म० शान्ति० अध्याय ३
५ म० वन० अध्याय २५४
६ म० वन० अध्याय १४० १४३
७ म० वन० अध्याय १४५ १४६

ही कृष्ण को उत्तर देता है। वह दुर्योधन की मित्रता नहीं छोड़ सकता इस कारण युद्ध की अनिवार्यता पर प्रकाश डालता है। जब किसी प्रकार युद्ध का टलना सम्भव नहीं जान पड़ा तो कुंती कर्ण के पास जाती है। माँ और बेटे के क्षणिक मिलन का यह स्थल महाभारतकार ने करुणा की लेखनी से लिखा। कर्ण कथा के प्रवाह में यह अत्यन्त कोमल स्थल है।

कर्ण और कुंती के मिलन से कर्ण के व्यक्तित्व पर एक गहरा मानसिक आघात हुआ। अब वह किस उत्साह से भाइयों से लड़ सकेगा। किन्तु युद्ध की अनिवार्य आवश्यकता के कारण कर्ण को ऐसा करना ही पड़ा। महाभारत के युद्ध में कर्ण द्रोण के सेनापतित्व में युद्ध में आया और घटोत्कच के प्रहारों से कौरवों के बचाव के हेतु उसने इन्द्र की शक्ति छोड़ दी। यहाँ एक बार पुनः कर्ण के भाग्य ने उसके साथ छल किया। कर्ण के सेनापतित्व का समय आया। कर्ण सेनापति बना।

कर्ण पर्व में कथा का प्रवाह कम है। युद्ध वर्णन तथा भाव अन्य प्रसंगों से कर्ण का जीवन चित्रित हुआ है। कर्ण अन्त तक विपरीत परिस्थितियों से लड़ा। कवच कुण्डल हीन एकघ्नी से रहित और उस पर कुंती को दिए वचन के कारण कर्ण के पास कुछ बचा ही न था। फिर भी वह लड़ा और वीर गति को प्राप्त हुआ।

कर्ण के उक्त संक्षिप्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्ण के व्यक्तित्व ने कौरवों की सामरिक नीति को प्रभूतमात्रा में प्रभावित किया। दुर्योधन का अर्जुन का भय कर्ण के प्राण से समाप्त हो गया था। कर्ण की कथा महाभारत के युद्ध की गाथा कथा है। कर्ण की दशा की व्यावहारिकता जीवन की अनेक जटिलताएँ चरित्र की वीरोचित गति के कारण आधुनिक कवियों ने कर्ण के जीवन को महाभारत की पृष्ठभूमि में सामयिक उपयोगिता की कसौटी पर परख कर चित्रित किया है।

कवि की दृष्टि से कर्ण के जीवन पर लिखे गए सभी प्रबंध काव्यों में सामान्यतः कवि दृष्टि कर्ण के चारित्रिक उत्थान की ओर अधिक रही है। महाभारतीय पात्रों में कर्ण का चरित्र अत्यन्त मानसिक द्वंद्वात्मक परिस्थितियों के आधार पर चित्रित किया गया है। कर्ण जन्म की घटना से कानीन सामाजिक न्याय के विरुद्ध रही। अतः कर्ण उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण भी नीच उपेक्षित रहा। जन्म की इस घटना का ऐतिहासिक सम्बन्ध तो है ही किन्तु वह शाश्वत रूप में एक सामाजिक तथा सदाचारिक सम्बन्ध लिए है। आधुनिक कवियों ने इसको युग सापेक्ष और युग निरपेक्ष—दोनों आधारों पर जीवन का प्रयोग किया है। युग-सापेक्ष घटना के रूप में कर्ण जन्म का सम्बन्ध ऐतिहासिक है और इतर रूप में सामाजिक। इस प्रकार से जन्म को लेकर कवि सामाजिकता का विश्लेषण कई दृष्टियों से कर सका है।

सभी कवियों की दृष्टि कर्ण के जीवन की मार्मिकता के उद्घाटन की ओर रही। पाण्डवों के प्रति सहानुभूति रखने वाले कवियों ने भी कर्ण के पौरुष और शौर्य की प्रशंसा की है। उन्होंने इस मर्म को समझा और उसकी चेष्टा की, कि उसे परि

स्थिति में एक वीर व्यक्ति का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या हो सकता है ? महाभारतीय सभी घटनाओं का यत्किंचित परिवर्तन के साथ स्वीकार करते हुए आधुनिक कवियों ने कथा को युग सापेक्षता सामयिकता में चित्रित किया है। कवि अपनी विचार धारा के आधार पर ही प्राचीन कथा का प्रयोग किया करता है कथा की प्राचीनता को कवि विचारों के नवीन आलोक से मंडित कर उस काव्य की सामयिक आवश्यकता का प्रतिपादन करता है।

रश्मिरथी

रश्मिरथी' की रचना महाभारत' के कर्ण प्रसंग पर आधारित है। कवि की दृष्टि कर्ण चरित्र के गुणों की सामयिक व्याख्या करते हुए उनके पुन प्रतिष्ठित करने की कल्याणकारी भावना से पूर्ण है। मानव के कतिपय गुण दान, दया, धर्मपालन, आत्मपूर्ण जीवन वीरत्व अदम्य विश्वास मैत्री आदि कर्ण के व्यक्तित्व के मुख्य आधार रहे हैं। इन्हीं गुणों के कारण जाति से उपेक्षित, समाज से तिरस्कृत कर्ण महाभारत' का यशस्वी पात्र बना। दिनकर 'महाभारत की कथा के संदर्भ में कर्ण के उक्त गुणों की स्थापना मानव मात्र के हृदय में करना चाहते हैं। इन स्वभावज मानवीय गुणों के अभाव में व्यक्ति स्वयं से दुखी सामाजिक व्यवस्था से त्रस्त और जीवन से भयभीत है। अतः एक उच्चादर्श सम्पन्न जीवन की कल्पना के लिए पुरुषार्थ के चरम आलोक की अपेक्षा है। यह आलोक 'महाभारत के कर्ण में विद्यमान है जिससे प्रेरणा प्राप्त कर आज का जातिविहीन मानव गुणों के बल पर उन्नति की कल्पना कर सकता है।

वस्तु सकलन

'रश्मिरथी की कथा सम्पूर्ण 'महाभारत' का संक्षेप नहीं है। इसमें कवि ने कर्ण जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का कर्ण के नायकत्व में वर्णन किया है।

आदिपर्व रश्मिरथी' के प्रथम सर्ग की कथा आदिपर्व के अध्याय ११०, १३५ १३६ से ग्रहण की गई है। कर्णजन्म के प्रसंग का परिचयात्मक रूप में चित्रित करते हुए कवि रंगभूमि प्रसंग से कथा का विकास करता है। अध्याय १३५ के आधार पर कर्ण कृपाचार्य वार्ता और अध्याय १३६ में भीम की कटूक्तियाँ और कुन्ती की मूर्छा का प्रसंग गृहीत है।

सभापर्व इस पर्व की कथा प्रत्यक्षतः कर्ण के जीवन से सम्बद्ध नहीं है अतः कवि ने मानसिक अभिव्यक्ति करते हुए कथा को आगे बढ़ाया है।

वनपर्व इस पर्व के अध्याय ३०९ ३१० की कथा से चतुर्थ सर्ग की रचना की है। इन्द्र ब्राह्मण के वेष में कवच कुण्डल की याचना करने आते हैं और कर्ण सूर्य की चेतावनी की उपेक्षा करता हुआ दानव्रत पर अटिग रहता है।

उद्योगपर्व 'रश्मिरथी' के तृतीय सर्ग की कथा उद्योगपर्व से गृहीत है। कृष्ण का दूतत्व, कर्ण से वार्ता और कर्ण जन्म रहस्य की कथा अनेक अध्यायों में संक्षिप्त की गई है। अध्याय १४० से १४२ तक का महाभारतीय कृष्ण और कर्ण संवाद और अध्याय १४४ से १४६ तक की कथा पंचमसर्ग के कर्ण-कुन्ती वार्तालाप में वर्णित है।

भीष्मपर्व इस पर्व से केवल अध्याय १२२ के आधार पर षष्ठ सर्ग में कर्ण और भीष्म के संवाद की अवतारणा की है।

द्रोणपर्व द्रोण के सेनापतित्व में कर्ण ने युद्ध किया। इस पर्व के अध्याय ३३ से ४६ तक की कथा अभिमन्यु-वध, अध्याय ८७ से १४७ तक जयद्रथ-वध अध्याय १६६ से १८१ तक घटोत्कच वध का संक्षिप्त रूप में षष्ठ सर्ग में चित्रित किया है।

कर्णपर्व 'रश्मिरथी' के सप्तम सर्ग की कथा कर्णपर्व का सार है। अध्याय ३६ से ४५ तक शल्य कर्ण संवाद अध्याय ६३ से चार पाण्डवों की पराजय युद्ध और मृत्यु के उपरान्त कृष्ण युधिष्ठिर संवाद में काव्य की समाप्ति होती है।

शान्तिपर्व इस पर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय में भीष्म जी परशुराम के शाप का वृत्त युधिष्ठिर को सुनाते हैं। दिनकर ने अब वस्तु-विकास की दृष्टि से इस वृत्त को द्वितीय सर्ग में स्थान दिया है। इस प्रकार कर्ण के जीवन के मार्मिक प्रसंगों से कवि ने वस्तु विन्यास किया है, जिससे बीच बीच में विचारों की सैद्धान्तिक विवेचना भी हो सके।

वस्तु विकास परिवर्तन परिवर्धन

'रश्मिरथी' की कथा का प्रारम्भ वीर की प्रशस्ति और कर्ण के जन्म-परिचय से होता है। रंगभूमि के प्रसंग में कवि ने विशेष परिवर्तन नहीं किया। अर्जुन की सामूहिक प्रशंसा के मध्य कर्ण अपना पौरुष प्रकट करता है। 'महाभारत' में जब वह अपने को अर्जुन के समान योद्धा मानकर कहता है

> पार्थ यत् ते कृतं कर्म विशेषवदहं ततः।
> करिष्ये पश्यतां नृणां मात्मना विस्मयं गमः।[1]

रश्मिरथी का कर्ण उसी अर्थ में कहता है

> तूने जो जो किया उसे मैं भी दिखला सकता हूँ।
> चाहूँ तो कुछ नई कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।।[2]

महाभारत के कर्ण की उक्ति में जो शक्ति परीक्षण की कामना और अर्जुन की शक्ति के प्रति व्यंग्य का भाव है कवि ने उसे पर्याप्त सफलता से अंकित किया है। कर्ण अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के लिए तैयार हो जाता है किन्तु बीच में कृपाचार्य कुल

१ म० आदि० १३५।६
२ रश्मिरथी, पृ० ३

परम्परा की आड लेकर कर्ण का अपमान करते हैं। मूल ग्रंथ में कृपाचार्य के प्रश्न का उत्तर दुर्योधन देता है किन्तु 'रश्मिरथी' में कर्ण का वीरत्व स्वतः प्रदीप्त हो उठता है और वह कुल, गोत्र की व्याख्या इस प्रकार करता है।

जाति जाति रटते जिनकी पूंजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूं जाति। जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
× × ×
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझ में तेज प्रकाश
मेरे रोम रोम में अंकित है मेरा इतिहास।[1]

इसके उपरान्त दुर्योधन कर्ण की वीरता की प्रशंसा करता हुआ उसे अंगदेश का राज्य प्रदान करता है और भीम के व्यंग्य का उत्तर देता है।

इस प्रसंग में कवि ने द्रोण और अर्जुन की विशेष मनःस्थिति का चित्रण किया है। 'महाभारत' में ऐसा कोई संकेत नहीं कि इसी स्थल पर अर्जुन और द्रोण कर्ण के उत्कर्ष से चिन्तित हुए हों किन्तु 'रश्मिरथी' में दोनों का मन अस्वस्थ हो जाता है जिसका निराकरण स्वयं द्रोण इस प्रकार करते हैं कि 'मैं—शिष्य बनाऊँगा न कर्ण को यह निश्चित है बात' —यहीं पर दिनकर एकलव्य से अंगूठा लेने की बात पर प्रकाश डालते हैं। द्रोण के हृदय में इस प्रकार की भावनाओं का जन्म नितान्त स्वाभाविक है—यह सम्भावना कथा का परिवर्धित रूप है।

रंगभूमि की इस घटना के बाद कथाक्रम के निर्वाह की दृष्टि से कवि ने शान्ति पर्व के नारदोक्त उपाख्यान को ग्रहण किया। शान्तिपर्व के द्वितीय और तृतीय अध्याय में नारद जी युधिष्ठिर को बताते हैं कि किस प्रकार से उनके अग्रज कर्ण को मुनि का शाप प्राप्त हुआ। कवि पहले परशुराम के व्यक्तित्व का वर्णन करता है। परशुराम के व्यक्तित्व में क्षात्रधर्म और ब्राह्मणधर्म का समन्वय है। धर्म और जीवन की रक्षा-हेतु यह समन्वय अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि उद्धत राज्यत्व को केवल धर्म से नहीं रोका जा सकता, उसके लिए शक्ति की आवश्यकता है। कर्ण शस्त्र विद्या सीखने आता है किन्तु एक दिन की घटना के कारण उसे शाप मिलता है। 'महाभारत' में कीड़े के पूर्व जन्म की स्थिति का वर्णन है जिसमें घटना अलौकिक स्वरूप धारण करती है—परशुराम को काटने वाला कीड़ा दंश नामक असुर था। उसे भृगु ने कीट की योनि में जन्म लेने का शाप दिया था। दिनकर ने 'रश्मिरथी' में इसका कोई उल्लेख नहीं किया क्योंकि इस युग का कवि इस प्रकार की अलौकिक बातों को स्वीकार करने में असमर्थ है। परशुराम ब्रह्मास्त्र भूलने का शाप देते हैं और कर्ण पूरी शक्ति के साथ उसे स्वीकार करता है। दिनकर के परशुराम अपने शाप पर औचित्य की दृष्टि से विचार करते हैं मन और मस्तिष्क में थोड़ा संघर्ष होता है किन्तु मस्तिष्क की कठोरता विजयी होती है।

---

१ रश्मिरथी, पृ० ४५

ग्राह बुद्धि कहती कि ठीक था, जो कुछ किया, परन्तु हृदय
मुझमें पर विद्रोह तुम्हारी मना रहा जानें क्या जय।[1]

परशुराम के प्रति संघर्ष से कर्ण को कोई लाभ नहीं होता और वह लौट आता है।

तृतीय सर्ग में कवि कर्ण और कृष्ण के संवाद का चित्रण करता है। प्रसंग रूप में कवि दुर्योधन की दुरभिसन्धि का वर्णन करता हुआ कृष्ण और कर्ण-संवाद पर आ जाता है। यहां कवि ने कृष्ण के विराट रूप का पौराणिक विश्वास पर ही ग्रहण किया है। कृष्ण के स्वरूप में विष्णु महेश जलपति, धनद दिखाई देते हैं।

भगवान कृष्ण कर्ण को समझाते हैं। कर्ण दुर्योधन के पक्ष को छोड़ना अस्वीकार करता हुआ पाण्डवों की जय का प्रतिपादन करता है। वह मित्रता की महत्ता का वर्णन करता है तथा युद्ध की अनिवार्यता पर बल देता है। महाभारत में कर्ण अनेक अपशकुनों और पराजय सूचक स्वप्नों पर प्रकाश डालता है किन्तु 'रश्मिरथी' में संवाद का यह भाग नहीं लिया गया। कारण यह है कि कवि कथा की अलौकिकता का स्वीकार नहीं करता वह कथा के सामान्य रूप को लेकर अपने विचारों का प्रतिपादन करता है।

चतुर्थ सर्ग में इन्द्र के द्वारा कर्ण के कवच और कुण्डल मांगने की कथा वनपर्व के कुण्डलाहरण पर्व में गृहीत है। इस सर्ग में कवि ने पहले दान की महत्ता का वर्णन किया है। दान की परम्परा का कवि गांधी जी तक ले लेता है। दोपहर के समय कर्ण से दान मांगने विप्र-वेषधारी इन्द्र आते हैं। मूल ग्रन्थ में इन्द्र सीधे कवच कुण्डलों की याचना करते हैं। कर्ण उनको कुछ और लेने के लिए कहता है किन्तु देवराज अपनी नियोजित मांग से नहीं टलते। इस पर कर्ण उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करके अपने अवध्य रूप के वध होने की आशंका प्रकट करता है। देवराज से कर्ण स्वयं उनको शक्ति मांगता है। मूलग्रन्थ के वर्णन में इस प्रसंग में ऐसा लगता है जैसे इन्द्र और कर्ण में कोई समझौता हो रहा हो—

यदि दास्यामि ते देव कुण्डले कवचं तथा
वध्यतामुपयास्यामि त्वञ्चावज्ञां यास्यताम्
तस्माद् विनिमयं कृत्वा कुण्डले वर्म चोत्तमम्
हरस्व शक्र कामं मे न दद्यामहमन्यथा।[2]

दिनकर जी को यह राजनैतिक समझौता कर्ण के चारित्रिक उभार के हेतु उचित नहीं लगा अतः उन्होंने इस कथा रूप में परिवर्तन किया। इन्द्र विप्ररूप में पहले अत्यन्त मनोरञ्जनात्मक रूप में कर्ण का वचन बद्ध कर लेते हैं और तब उससे कवच कुण्डल मांगते हैं।

---

१ रश्मिरथी पृ० २४

२ म० वन० ३१० । १६-१७

भली भांति कसकर दाना को बोला नीच भिखारी।
धन्य धन्य राधेय! दान के अति अमोघ व्रतधारी,

× × ×

क्योंकि मांगना है जो कुछ उसको कहने डरता हूं,
और साथ ही एक द्विधा का भी अनुभव करता हूं।[1]

इन्द्र मांगते मांगते पुनः आत्मविश्लेपण करने लगते हैं तो दानी कर्ण के हृदय में अपने व्रत के प्रति और भी विश्वास हो जाता है—वह यहां तक कह देता है कि

विप्रन्द्र मांगिए छोड़ सकोच वस्तु मन चाही
मरू अपना की मृत्यु कर यदि एकबार भी नाहीं[2]

इतनी उत्कठित उद्वेलना और इतनी निर्मम याचना। इन्द्र के मांगने पर कर्ण का वास्तविकता का भान होता है। कर्ण ने कवच कुण्डल दिए और साथ में उसने नैतिक रूप से अर्जुन का पराजय भी घोषित की। कर्ण के कवच-कुण्डल-दान को देखकर इन्द्र सहम जाते हैं। उनके मन में ग्लानि और क्षोभ उत्पन्न होता है। यहां भी कवि ने कथा को मनोवैज्ञानिक मोड़ दिया और चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व की स्थापना करके स्थिति को भावात्मक बनाया है। पाठक का साधारणीकरण निश्चित ही कर्ण की भावना के साथ होता है। वह मन से यह अनुभव करता है कि इन्द्र ने छल के द्वारा कर्ण को दिव्य शक्ति से वंचित कर दिया। इन्द्र का दान भी कर्ण के दान से लघुतम है।

कर्ण और कुन्ती-वार्तालाप का प्रसंग अत्यन्त करुण रूप उपस्थित करता है। कुन्ती विनाश को निकट जानकर कर्ण के पास जाती है। मूल ग्रंथ में कुन्ती सीधे कर्ण से कहती है कि तू मेरा पुत्र है और अपने ही भाइयों से लड़ने के लिए उद्यत हो रहा है। कर्ण बात की सत्यता को समझ कर भी उसे नहीं मानता। वह माता पर आरोप लगाता है कि उचित समय पर उसने कर्ण की सुध नहीं ली। रश्मिरथी में कुन्ती का आत्म संघर्ष अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है।

एक ही गोद के लाल कोख के भाई,
सत्य ही लड़ेंगे हो दो ओर लड़ाई

/ × /

जो मैं इसको उर पर फूली में ही
जिसकी भी गरदन कटे कटेगी मैं ही।[3]

---

१ रश्मिरथी पृ० ६७
२ रश्मिरथी पृ० ६८
३ रश्मिरथी पृ० ८२

सप्तम सग की अवतारणा कण के सेनापतित्व के युद्ध को लेकर हुई है। कण अपने पूण उत्साह के साथ कृष्ण और अजुन का पकडना चाहता है कि युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव क्रमश कण के सामन आते है। उनका हल्का सा अनमेल युद्ध होता ह और व पराजित होत ह। कण उनको नही पकडता, इस पर शल्य पूछते हैं तो वह उत्तर देता है

य चार पुत्र प्रच्छन्न दान है किसी महावक्ष दानी क।[1]

कुछ दर बाद ही कण और अजुन एक दूसरे के समक्ष आ जात ह दोना म प्रथम वाक् युद्ध होता है फिर शस्त्र युद्ध प्रारम्भ होता है। कवि 'महाभारत के युद्ध-प्रसग का अपनी सामर्थ्यानुसार यथावत चित्रित करता है। एक बार अजुन मूछित होता है और इधर अश्वसन साप कण के पास आता है। पर कण वीर धम की महत्ता की स्थापना करता है और अश्वसन की प्राथना नही मानता। सघष की विकरालता और भी बढ़ती है। कण का रथ पथ्वी म धस जाता है और शल्य उसे निकालन की चेष्टा करत है। कवि ने इस प्रसग का दवी आघात क रूप म ही ग्रहण किया है—कण स्वय रथ चक्र का निकालन का प्रयास करता है पर असफल होता है—इसी समय कवि युद्ध धम और अधम पर विचार करता है। कृष्ण कण का अभिमन्यु वध आदि घटनाओ की स्मति दिलात ह और प्रतिपादित करत हैं कि अधम का नाश करन क लिय नीति का कुशलता अनिवाय है। कण क मन म युद्ध मे सभी निम्न स्तर पर आ गय है।[2]

दिनकर इस स्थल पर कण क हृदय का एक दुविधा का चित्रण करत हैं कि उसे इस बात का पश्चाताप है कि उसन द्रौपदी क अपमान क समय दुर्योधन का क्या नही रोका ? इसी वार्तालाप क बीच अजुन कण का वध करता है। सारी सना म पाण्डव-पुत्र अजुन का जयकार होता है। युधिष्ठिर क सामन कृष्ण कण के दान और वीरता की प्रशसा करते हैं।

समीक्षा रश्मिरथी की समीक्षा क लिए भूमिका म कवि द्वारा उद्गीत विचार सहायक हो सकत हैं। दिनकर लिखत है कि यह युग दलिता और उपक्षिता क उद्धार का युग है। अतएव यह बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्र भारती के जागरूक कवियो का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय जो हजारा वर्षो स हमार सामन उपेक्षित एव कलकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खडा रहा है। कण चरित क

---

१ रश्मिरथी पृ० १७०

२ सुयोधन का खडा कल तक जहा पर,
न हैं क्या आज पाण्डव ही वहां पर ?
उन्होंने कौन सा अपधम छोडा
किए से कौन कुत्सित कम छोडा। —रश्मिरथी, पृ० १६५

उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके अपने सामर्थ्य से सूचित होता है।'[1]

दिनकर की यह उक्ति आधुनिक युग में साहित्य जगत के सामाजिक दृष्टिकोण के परिवर्तन की सूचना देती है। इस परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध सामाजिक क्रान्ति से जोड़ा जा सकता है। कर्ण के जीवन पर काव्य रचना करते समय दिनकर की दृष्टि में दलितों और उपेक्षितों के उद्धार की भावना रही। दिनकर कर्ण की प्रशस्ति में मानवता के उन गुणों की प्रशस्ति करते हैं जो जन्म से नहीं किन्तु कर्म से जाने जाते हैं। निःसन्देह कर्ण को वह कुछ नहीं प्राप्त हो सका जो स्वतः कर्ण के अन्य भाइयों को मिला। कर्ण की सम्पूर्ण उपलब्धियाँ उसके पौरुष के परिणाम स्वरूप हुईं। वह स्पष्ट रूप से अपने पौरुष की घोषणा रंगभूमि में करता है।

पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से।[2]

आधुनिक काव्यकार स्थिति और चरित्र दोनों को एक विशेष मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखना चाहता है। वह उसी घटना को काव्य विषय के रूप में स्वीकार करता है जिसमें उसे सामाजिक संघर्ष के साथ मानसिक संघर्ष की उक्त भूमि प्राप्त हो। इस दृष्टि से भी कर्ण का जीवन विविध संघर्षों से संकुल है। वह समाज से तो लड़ता ही रहा, किन्तु उसे अपने से भी लड़ना पड़ा। कर्ण के जीवन में एक विवाद का स्थान हो सकता है कि यदि कर्ण दलितों और उपेक्षितों का प्रतीक है तो उसने पाण्डव पक्ष क्यों नहीं अपनाया? वह राज्यपक्ष की ओर क्यों मुड़ा? 'महाभारत' में जितनी यातनाएं पाण्डव पक्ष को प्राप्त हुईं उतनी कौरवों को नहीं। वह निरन्तर अर्जुन का प्रबल विरोधी क्यों बना रहा? और उसने अनेक स्थानों पर 'महाभारत' के युद्ध को अपना और अर्जुन का युद्ध क्यों कहा? इन सभी समस्याओं पर विचार करते समय यह देखना है कि प्रारम्भ से ही कर्ण को जो उपेक्षा प्राप्त हुई वह पाण्डवों के पक्ष से थी। रंगभूमि में अर्जुन से लड़ने का इच्छुक होने पर जाति का प्रश्न उसके समक्ष आया। यहाँ दिनकर ने कर्ण की मनोवृत्तियों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। कर्ण का मानसिक द्वन्द्व उसे पाण्डव विरोधी शिविर में ले आया और घटना की विशेष स्थिति के कारण वह कौरवों के पक्ष में आ गया। उसे स्पष्ट ज्ञात हो गया था कि कृष्ण पाण्डव पक्ष का समर्थन करते हैं। सभी दिव्य शक्तियाँ पाण्डवों का पक्ष लेती हैं अतः यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो कौरवों का दुर्बल पक्ष कर्ण के पौरुष से जगमगा गया और इसी कारण कर्ण ने कौरवों का पक्ष लिया।

---

१ रश्मिरथी, भूमिका पृ० ख-ग
२ रश्मिरथी, प० ५

विचारधारा की इस पृष्ठभूमि में 'रश्मिरथी' की रचना हुई। इस काव्य की उपलब्धि कथानक के परिवर्तन में न होकर कथा विकास के मध्य विवेचित सिद्धान्तों के मूल्यांकन में है। कुछ परिवर्तन और मौलिक उद्भावनायें पाठक को निश्चित ही काव्य प्रतिभा के उच्च धरातल पर ले जाती हैं। कर्ण के प्रदर्शन पर द्रोण की चिन्ता, परशुराम द्वारा अत्याचारी राजाओं की लोलुपता और शक्तिशाली अहंत्व से उनका शमन, कर्ण की दानशीलता और ममत्व से पूर्ण चार भाइयों का प्राणदान आदि प्रसंग यह सिद्ध करते हैं कि दिनकर का उद्देश्य केवल मात्र कथात्मक काव्य की रचना नहीं है अपितु वह आधुनिक सामाजिक दर्शन की नवीन व्याख्या करते हैं। 'महाभारत' के मुख्य प्रसंगों के मध्य विचार-दर्शन इस काव्य की मुख्य उपलब्धि है। कर्ण ने ओजपूर्ण अभिव्यक्ति में जातिवाद का घोर विरोध किया है। दान को जीवन की अजस्र धारा और त्याग को जीवन की महनीय निधि माना है। कवि का जीवन दर्शन इस तथ्य की उपस्थापना करता है कि व्यक्ति को गुण कर्म से सामाजिक उच्चता प्राप्त करके जाति या कुल के अवरोध को समाप्त कर पुरुषार्थ के बल पर उन्नति करनी चाहिए। अब वह समाज-व्यवस्था भी परिवर्तन योग्य है जिसमें उक्त सुविधाएं अप्राप्त हों। सम्पूर्ण काव्य में दिनकर की दृष्टि ऐसी समाज व्यवस्था के निर्माण में रत है जो व्यक्ति के गुणों पर आधारित हो। मानव मात्र की यही मंगल कामना इस काव्य का महान उद्देश्य है।

सेनापति कर्ण

महारथी कर्ण के जीवन पर आधृत लक्ष्मीनारायण मिश्र जी का यह काव्य अपूर्ण है। इसमें उन्होंने 'महाभारत' से कर्ण जीवन सम्बन्धी प्रासंगिक कथा का ग्रहण किया है। इस प्रबन्ध काव्य की विशेषता यह है कि इसमें कथा का विकास पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व में होता है। प्रत्येक पात्र किसी विशेष स्थिति पर विचार करते हुए उससे सम्बन्धित स्वयं की मानसिक स्थिति पर सोचने लगता है। इसी विचार शृंखला में कथा का विकास होता चलता है। महाभारत में जिस प्रकार संवादों के स्थलों पर कथा की गति मन्थर रहती है, उसमें कुछ विकास नहीं होता, उसी तरह इस काव्य में अन्तर्द्वन्द्व के समय कथा अत्यन्त मन्दगति से चलती है। कथा के क्रम विन्यास में कवि ने मौलिक प्रबन्ध कौशल का परिचय दिया है।

वस्तु संकलन

प्रस्तुत काव्य में महाभारत के आदिपर्व अध्याय १८१ से १८८ तक की हिडिम्ब वध की कथा का संक्षेप चित्रण सर्ग में किया है। सभापर्व में इन दोनों का प्रसंग लेकर द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व को स्वतन्त्रता से विकसित किया है और जरासंध-वध की सांकेतिक सूचना देकर उद्योग पर्व के आधार पर भीष्म और कुन्ती का वार्तालाप, स्वनिर्मित स्वरूपों में प्रस्तुत किया है। कृष्ण के संधि अभियान का प्रसंग भी इसी पर्व

म गृहीत है। भीष्म पर्व से भीष्म एवं कर्ण का वार्तालाप दुर्योधन द्वारा भीष्म के पराक्रम की प्रशंसा युद्ध-नीति और कामदेव के प्रसंग में भीष्म की स्तुति की कथा ग्रहण की है। द्रोणपर्व से मन्त्रणा सर्ग की कथा का विकास करके द्रोण वध के उपरान्त सबका शोक मग्न होना और आगामी कार्यक्रम की चिन्ता का प्रसंग विन्यस्त किया गया है।

कर्ण पर्व का सम्पूर्ण आख्यान कवि नहीं ले पाया है। कर्ण पर्व के आधार पर कवि ने कर्ण के सेनापति पद पर अभिषेक अश्वत्थामा की प्रतिज्ञा और उधर पाण्डवों की चिन्ता का चित्रण किया है। घटोत्कच के उपाख्यान का अन्तिम भाग भी इसी के आधार पर विन्यस्त है। इस रूप में सेनापति कर्ण में कथा की दृष्टि से आदिपर्व, सभापर्व उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व और कर्णपर्व से ही कथा सूत्रों का चयन किया गया है। इन कथा सूत्रों में भी कवि ने कथा विपर्यय और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण अधिक किया है।

परिवर्तन-परिवर्धन मन्त्रणा मन्त्रणा सर्ग में कवि प्राचीन महाकवियों के प्रति *श्रद्धांजलि अर्पित करता है और कुरुक्षेत्र के युद्ध का स्मरण करते हुए उन वीरों के ओज* और पौरुष का चित्रण करता है जिन्होंने निष्काम कर्म की भावना से युद्ध किया।

कथा का प्रारम्भ कौरवों के शिविर से होता है। द्रोण का वध हो चुका है, और शिविर में कुरुराज, शल्य, कृतवर्मा आदि चिन्ताग्रस्त हैं। दुर्योधन रोता हुआ द्रोण के वध को असम्भव मानता हुआ, पूछता है कि गुरु किस प्रकार युद्ध में मारे गये? द्रोण के वध के साथ धर्मराज के चरित्र की आलोचना करते हुए कवि प्रसंग से पाण्डवों के जन्म की गाथा को लोकधर्म के विपरीत बताता है। यह प्रश्न भी विचारणीय है कि पाण्डव औरस सन्तान नहीं थे, तो क्या वास्तव में वे उत्तराधिकारी थे या नहीं? कवि की दृष्टि में कौरवों का पाण्डवों से विरोध का मूल प्रश्न यही था। कवि की सहानुभूति पाण्डवों के प्रति नहीं है अतः वह व्यंग्य से उनकी उत्पत्ति पर प्रकाश डालता है

- पाण्डवों के जन्म की कहानी जानते हो आ
विश्व जानता है यह ग्लानि कुरुवंश की।[1]

ऐसा ज्ञात होता है कि कौरवों का समस्त विरोध केवल इसी बात पर आधारित है। महाभारतकार ने स्वयं अनेक स्थानों पर पाण्डवों के जन्म के औचित्य पर प्रकाश डाला है। अन्ततः पाण्डवों का जन्म धर्मसम्मत घोषित किया गया। किन्तु मिश्र जी को इस निर्णय में सन्तोष नहीं। द्रोण वध के उपरान्त नीति की व्यावहारिकता से प्रेरित दुर्योधन एक बार समस्त स्थिति का आलोकन करता है। वह नई पुरानी सभी बातों पर विचार करता है। वह सोचता है कि युद्ध का परिणाम क्या हो सकता है? उसे पराजय दिखाई देती है। फिर भी उसे अपने वंश पर स्वाभिमान है वह अपनी हार में केवल भाग्य की वामता मानता है।

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० ७

अर्जुन और द्रौपदी के वार्तालाप में इस अन्तर्द्वन्द्व को उभारना अधिक समीचीन नहीं, क्योंकि इस समय मस्तिष्क की समस्त शक्ति भावी संकट को टालने की युक्ति का अनुसंधान कर रही है। ऐसे में उन बातों को उठाने से कोई लाभ नहीं जिनका कोई समाधान नहीं है। कवि स्वयं अपने ऊपर सत्यान्वेषण का उत्तरदायित्व लेकर सत्य का प्रकाशन करता है कि द्रौपदी को पंच पतियों की पत्नि होने का क्षोभ है।

पांच पति मेरे बलि मेरी जो हुई थी हा
राजनीति देवी या कि दानवी की तुष्टि को
जानती हूं मैं तो नहीं जानेगा भविष्य क्या।[1]

'महाभारत' में किसी भी स्थान पर द्रौपदी के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इस कारण नहीं है कि वह पांचों पाण्डवों की पत्नि है। यह सम्भावना कवि की अपनी है और इससे वह सिद्ध करना चाहता है कि पाण्डवों का एक द्रौपदी से विवाह भी कूटनीति का ही परिणाम था। व्यासजी ने धर्म के सूक्ष्म विवेचन से व्यावहारिक आदर्श के अनुरूप द्रौपदी के पंचपतित्व का समर्थन किया। व्यासजी ने इसके समर्थन में प्राचीन कथा एवं पूर्वजन्म की कथा को भी सम्बद्ध कर लिया, फिर भी यह घटना अपने आप में एक ही रही। इसका सामाजिक सैद्धांतिक व्यवहार नहीं बन पाया। अतः इस विवाह को मिश्र जी ने तत्कालीन नीति का फल कहा है यह उचित भी हो सकता है।

दूसरे क्षोभ का कारण है सन्तान हीनता। कवि कहते हैं

जन्म की कहानी उन पाण्डवों के पुत्र की
जानता नहीं है लोक पैदा वे कहां हुए
इन्द्रप्रस्थ नगरी में वारणावत वन में।[2]

यह बात द्रोण का कलंक धोने के लिए कही गई है।

पाण्डवों की चिन्ता करते कवि का ध्यान घटोत्कच की माता हिडिम्बा की ओर जाता है। इस कथन में भी कवि सम्भावनाओं की बात करता है। महाभारत में घटोत्कच द्रोणपर्व में युद्ध से योद्धा के रूप में लड़ा और उसका आना उतना नाटकीय नहीं है। कवि इस कथानक में परिवर्तन करता है।

पहला महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि भीम और हिडिम्ब के युद्ध का कारण अनायास ही वन में मिलना न मानकर कवि ने इस युद्ध का सम्बन्ध भीम एवं जरासन्ध युद्ध से जोड़ा है। हिडिम्ब जरासन्ध के वध का बदला लेना चाहता है और हिडिम्बा पहले से ही भीम पर अनुरक्त है।

१ सेनापति कर्ण पृ० ६१
२ सेनापति कर्ण पृ० ६४

भाई जो हिडिम्ब दानवेंद्र वली मरे थे,
सह न सके वे नरश्रेष्ठ की सुकीर्ति को,
× × ×
मार जरासंध को यशस्वी भीमसेन है
आज बना किंतु उसे मार के समर में,
लेना प्रतिशोध मुझको है मित्र वध का।[1]

यह प्रसंग 'महाभारत' में नहीं है किंतु राक्षसों के विशाल परिवार की कल्पना करके ऐसी सम्भावना अनुचित नहीं है कि हिडिम्ब के मन में जरासंध के प्रतिकार की भावना हो।

दूसरा परिवर्तन है कि भीमसेन हिडिम्बा को निम्नवंश का जानकर त्याग कर चले। हिडिम्बा भीम के साथ नहीं रही यह 'महाभारत' का सत्य है पर उसका कारण कवि ने अपनी मौलिक उदभावना से लिया है।

हिडिम्बा के कथानक को कवि ने जिस रूप में प्रस्तुत किया है उसमें उसके कुछ उद्देश्य निहित हैं, जिनकी चर्चा समीक्षा के अन्तर्गत की जायगी।

सप्तिदम सप्तिदम सर्ग में कवि कथानक को स्वर्ग में ले जाता है। प्राचीन प्रेम कथाओं की स्मृति करता हुआ भीष्म के ब्रह्मचर्य व्रत की प्रशंसा करता है। कामदेव देवराज इन्द्र से मानसिक व्यथा कहता है कि उसके बाण भीष्म को न बींध सके और वही व्रती भीष्म अब बाणविद्ध होकर इस रूप में पड़ा है।

इसमें कवि 'महाभारत' के कथानक के तात्त्विक अंश की रक्षा करते हुए कथाक्रम को अपने अनुसार उपस्थित करता है और उसमें कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करता है। कर्ण भीष्म के पास वार्तालाप के उपरांत लौटते हैं। कवि ने 'महाभारत' के इस कथांश को अधिक भावमय बनाने के कारण ये परिवर्तन किये हैं

कुंती भीष्म के पास जाकर कर्ण जन्म की दुखद गाथा सुनाकर अपने द्वन्द्व को प्रकट करती है

हायदेव कैसे मैं कहूंगी किंतु अब तो,
चाहती क्षमा हूँ कुरु केतु पुत्र मेरा है,
बाल पृष्ठ धारी कर्ण।
× × — —देव चाहें जो
आप यदि कर्ण और अर्जुन का रण तो
रुक सकता है क्योंकि जन्म एक माता से
दोनों ने लिया है।[2]

---

१ सेनापति कर्ण पृ० ८६
२ सेनापति कर्ण, पृ० ११६ २०

माता का ममत्व इतने दिनो तक सामाजिक आवरण म पीडित होता रहा पर जब वह अपने ही दोनो स्नेहाधारो को युद्ध में लडने की सूचना सुनती है तो प्रकम्पित हो उठती है और मानसिक द्वन्द्व भीष्म के समक्ष अभिव्यक्त हो उठता है।

इस स्थल पर कवि ने कर्ण की उपस्थिति को अत्यन्त नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया है। यद्यपि कर्ण स्वय कुन्ती के मुख से अपनी जन्म गाथा सुन चुका है। पर इस अप्रत्यक्ष श्रवण के द्वारा उसके विश्वास को दृढ किया गया है। कर्ण पितामह की उपस्थिति म स्वीकृत कुन्ती के इस सत्य को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार कर लेता है। कथा के द्वन्द्वात्मक स्थानो म इस प्रकार के अप्रत्यक्ष वार्तालाप अत्यन्त सहायक होते हैं। लौटते हुए कर्ण मिलता है और अपने वचन को दुहराता है। यहा माता के ममत्व के साथ कर्ण के पौरुष की अभिव्यक्ति भी होती है। इस स्थल पर कवि कुल-धर्म के विधान की विवेचना करता है। मिश्र जी महाभारत के तात्त्विक विधान की रक्षा करते हुए स्थिति का भावमय चित्रण करने म सफल है।

> वध्यान् विषह्यान् सग्राम न हनिष्यामि ते सुतान्
> युधिष्ठिर च भीम च यमौ चवार्जुनादृत।[1]
>
> × × ×
>
> मैंने था भरोसा दिया अर्जुन को छोड के।
> मारूगा कभी न और किसी भाई को।[2]

महाभारत म कर्ण इन्द्र की अमोघ शक्ति के कारण अपने को अजेय समझता था। जिस रूप म भीष्म ने अपने मरने की युक्ति पाण्डवो को बताई थी उसी रूप म कर्ण भी कुन्ती से कहता है

> फिर भी अमोघ शक्ति वासव की कल जो
> अर्जुन न आय रोक ना मुझे सब तो
> निश्चय यही जानो है निरापद समर म।[3]

इस रूप मे मिश्र जी ने महाभारत के अश की मूल भावना के विपरीत भी मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व की स्थापना की है।

विषाद इस सर्ग का कथानक कवि की कल्पना का विस्तार है। महाभारत म दु शासन का कार्य-व्यापार दुर्योधन के षड्यन्त्रो म सहायक रूप म रहा। वह अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो सका। प्राचीन महाकाव्यो म सामान्य रूप म किसी बडे व्यक्ति की मृत्यु के पूर्व होने वाले अमगल सूचनाओ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। अभिमन्यु से पूर्व उत्तरा को अमगल सूचनायें इसी रूप म वर्णित है। मिश्र जी ने उन्हा सम्भाव

---

१ म० उद्योग० १४६। २०
२ सेनापति कर्ण पृ० १२७
३ सेनापति कर्ण पृ० १३१

नाम्रा के आधार पर विषाद सग की कथा का निर्माण किया है। शिविर म दुशासन की पत्नि उन्ह दूसरे दिन युद्ध म जाने से रोकती है। दुर्योधन की पत्नि उन्ह दूसरे दिन युद्ध म जान से रोकती है और इसका समथन करती है। इसी बीच म मानव जन्म की वास्तविकता और युद्ध के औचित्य पर विचार होता है।

पाण्डव पक्ष मे भी विषाद की रेखा विद्यमान है। द्रौपदी सभी पाण्डवा को भयग्रस्त देख कर नाधित होकर अत्यन्त स्वाभाविक रूप म अपनी पुरानी कष्ट कथाओ का स्मरण करती है। कवि ने पाण्डवा के मम का स्पश करने के लिए द्रौपदी के मुख से यह भी कहलवा दिया कि यदि ऐसा ही था तो स्वयवर म मैंने कण का वरण न करके भूल की थी—

काल पृष्ठ धारी है अकेला सुतराधा का
तब तो स्वयवर मे वरती उसी को मैं।[1]

यह सुनकर अजुन का दप खौल उठता है। वह कण वध की प्रतिज्ञा करता है। इस स्थल पर अजुन का नाय अभिव्यक्त हुआ है। इस मानसिक व्यथा के अन्धकार म प्रकाश की रेखा लेकर घटोत्कच आता है। भीमादि सभी वात्सल्य मे डूब जाते ह पर कृष्ण उनको मोह निद्रा से जगाकर सचेत करत हैं।

विषाद म कवि ने कथा का विकास अल्पमात्रा मे किया है और उसके अतगत मानसिक व्यथाओ का अनावृत्त किया गया है। इससे प्रत्यक पात्र मानव धरातल पर उतर युद्ध की विभीषिका के परिणामो पर विचार करता है।

अध्यदान इस सग मे कवि कण द्वारा सूय की पूजा का चित्रण करता ह। कण कमनिष्ठ है। अत फल की याचना नही करता और पराजय के भय से विमुक्त होने का वर लेता है। दुर्योधन सेनापति पद पर कण का अभिषेक करते हैं। आगे द्रौपदी की सूचना देते हैं। यह कथा परिवधन ह कि द्रौपदी स्वय रण म जाने का उत्सुक होती है। इस प्रसग म कवि हास्य की यत्किचित योजना करता है। कण अभिषेक के समय पुन हीन जन्म और परम्परा की विवेचना करता है। इस दृश्य मे सभी कण के पौरुष की प्रशसा करते, और कम को जन्म स महान मानते ह।

पाण्डव शिविर म घटोत्कच सबको अभय देता हुआ वसुमन के वध का प्रतिज्ञा करता है। वह द्रौपदी के वात्सल्य का आदर करता हुआ भी उसे उपेक्षित करता है। कृष्ण इस स्थल पर बाहु बल का प्रतिष्ठा करके शक्ति की व्यावहारिक उपयोगिता की स्थापना करत ह। यहा कृष्ण आत्मबल की उच्चता का प्रतिपादन करत हैं। और काव्य घटोत्कच क उदघोष क साथ समाप्त हो जाता है।

---

१ सेनापति कण पृ० १ २

कथा समीक्षा

सेनापतित्व[1] के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि मिश्र जी का दृष्टिकोण महाभारत की कथा को नवीन सम्भावनाओं के आधार पर प्रस्तुत करना है। मिश्र जी के परिवर्तन यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण नहीं है तथापि उस काल की राजनैतिक स्थिति की विवेचना के लिए एक नई दृष्टि अवश्य देते हैं। मिश्र जी के मत में दुर्योधन की शत्रुता का मुख्य कारण पाण्डवों का गर्वोन्मत्त होना था। उन्होंने पाण्डवों के जन्म की कुत्सा की ग्लानि नहीं है। इस दृष्टि से यह स्पष्ट है कि कवि मूलतः भारतीय आस्था के विपरीत अपने लक्ष्य को सजाकर तत्कालीन धर्म और सामाजिक व्यवस्था की नई व्याख्या करता है। महाभारत में पाण्डु-पुत्रों की उत्पत्ति एक ओर अलौकिक है दूसरे उस समय की सामाजिक व्यवस्था को एक प्रभाव देती है। सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ पाण्डु कुन्ती को अन्य पुरुष से सन्तान प्राप्ति का आदेश देते हैं।[1] कुन्ती पतिव्रत धर्म की विवेचना करती है[2] तथापि पति की आज्ञा से वंश परम्परा की रक्षार्थ देवताओं का आवाहन करके पुत्र प्राप्त करती है।[3] महाभारतकार इस व्यवस्था को धर्म-संगत मानता है। यदि यह व्यवस्था अधार्मिक होती तो इसकी भर्त्सना की जा सकती थी अथवा इसके विपरीत विचारों की अभिव्यक्ति होती। मिश्र जी का दुर्योधन अपने वंश पर गौरवान्वित और पाण्डवों का उपहास करता है किन्तु धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों की उत्पत्ति महाभारत में जिस प्रकार वर्णित है, उसके अलौकिकत्व का कोई भी बुद्धि सम्मत समाधान मिश्र जी प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। वस्तुतः इन वंश परम्पराओं के जन्म की जितनी अलौकिक घटनाएं हैं उनके विषय में आज का कवि या तो आस्था से स्वीकृति दे या उनका अस्वीकार करे। किन्तु यह उचित नहीं है कि दो समानान्तर घटनाओं में से एक को मान लिया जाय और दूसरी को अनुचित सिद्ध किया जाय।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन है कृतवर्मा का आरोप। इस वक्तव्य से पाण्डवों के पक्ष की महाभारतीय जनप्रियता का मूल आधार ही समाप्त हो जाता है। कृष्ण ने अपनी सेना दुर्योधन को दी और स्वयं पाण्डव पक्ष में रहे। महाभारत के इस तथ्य को मिश्र जी ने नवीन दृष्टि दी है। उनके अनुसार जनमत दुर्योधन के पक्ष में था अतः विराट की सभा में ही यह निश्चय हो गया था कि सेना दुर्योधन के पक्ष में रहेगी। यह सम्भावना कवि कल्पना की ऊंची उड़ान भले ही हो किन्तु इसको नितान्त अनुचित नहीं कहा जा सकता इसका कारण है कि उच्चासन सम्पन्न व्यक्तियों को दुर्योधन अपने पक्ष में न कर सका था किन्तु इतनी क्षमता तो उसकी मानी ही जा सकती है कि सामन्तों सीमा में उसने पाण्डवों के वनवास का लाभ उठाकर अधिक राजनैतिक सम्बन्ध जोड़ लिए हों।

---

१ म० आदि० १२१।४८
२ म० आदि० अध्याय ११६
३ म० आदि० अध्याय १२१
४ म० आदि० अध्याय ११४

कृष्ण की नीतिमत्ता को पाण्डवों की विजय का मुख्य आधार मानकर मिश्र जी ने राजनीतिक कूटनीति को स्वीकार किया है जो प्रत्येक युग की नीति का एक अंग है। कर्ण की एकघ्नी शक्ति को लेकर पाण्डवों के आंतरिक क्षोभ के चित्रण में कवि उन सबको मानवीय धरातल पर अवतरित करता है। 'महाभारत' का दिव्य वातावरण आज के युग की आवश्यकता के अनुरूप नितान्त स्वाभाविक जान पड़ता है महाभारतकार के समक्ष पात्रों की मानसिक दशा के चित्रण का अधिक अवकाश नहीं था अतः इस स्थल पर कवि की प्रतिभा का चरम उत्कर्ष व्यंजित होता है।

✓द्रौपदी का विवाह राजनैतिक दृष्टि से निश्चय ही तत्कालीन सामन्तीय प्रथा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। यदि द्रौपदी विवाह के धार्मिक पक्ष की उपेक्षा करके उसे राजनैतिक संदर्भ में देखा जाय तो भी विशेष हानि नहीं क्योंकि जिस समाज व्यवस्था में नीति के कारण एक पुरुष के अनेक विवाह हो सकते हैं, उसमें उसी नीति के आग्रह से एक स्त्री के पाँच पति भी विशेष परिस्थिति में स्वीकार्य हैं। तत्कालीन स्वयंवरों में शक्ति परीक्षण की शर्त इसी राजनैतिक संदर्भ में होती है।

सेनापति कर्ण का महत्वपूर्ण परिवर्तन हिडिम्बा प्रसंग में है। इस कथा में भीम और हिडिम्ब के युद्ध को जरासन्ध-वध से जोड़ना उस समय के एक व्यापक असुर राज्य की कल्पना के रूप में औचित्य पूर्ण है। इस परिवर्तन से भीम के चरित्र की रक्षा हुई है। हिडिम्ब मित्र वध के प्रतिकार के हेतु भीम से लड़कर परास्त होता है। हिडिम्बा और भीम के विवाह से महाभारतकालीन असुर वर्गीय स्त्रियों की स्वच्छन्द प्रियता की अभिव्यक्ति हुई है। मिश्र जी हिडिम्बा को आर्य स्त्री के गुणों से सम्पन्न और पतिव्रत धर्म का प्रतीक श्रेष्ठ नारी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। हिडिम्बा का समर्पण महान है वह अपने पतिव्रत की रक्षा के लिए अपने पुत्र की आहुति देने को तत्पर है—वह सब कुछ देकर कुछ लेना नहीं चाहती। 'महाभारत' में जिस वातावरण में राजसूय हुआ था उसका प्रभाव कुछ राजाओं पर विपरीत रूप में पड़ा। नीति की व्यावहारिकता के कारण कुछ असुरों को हटकर समाप्त किया कुछ को इस सम्बन्ध में पाण्डवों ने अपने पक्ष में किया। यह निश्चित है कि घटोत्कच के सभी सम्बन्धी पाण्डव पक्ष में मिलेंगे। हुआ भी यही इसमें कौरव पक्षीय असुरों के साथ युद्ध करने के लिए पाण्डवों की ओर भी असुर सेना की एक टुकड़ी हो गई। अतः इन सभी परिवर्तनों का उद्देश्य राजनैतिक है।

भीष्म और कुन्ती के वार्तालाप में कुन्ती के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति नारी के ममत्व का उद्घाटन करती है। इस प्रसंग में कवि लोक मानवता के विराट आदर्श की स्थापना करता है कि कुरुकुल लक्ष्मी को एक पुत्र की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। इस युद्ध में जितने भी युवक वीरगति प्राप्त हुए हैं वे राजमाता के पुत्र ही हैं। इस दृष्टि से कवि राजधर्म को वैयक्तिक सीमा से उठाकर विशाल भूमि पर उपस्थित करता है। कुन्ती और कर्ण के वार्तालाप में कर्ण के चरित्र की महानता व्यक्त

होती है, वह दान की उच्चतम भूमि पर अपने प्राणदान करता है और कुन्ती को वासव की शक्ति से सजग कर देता है। कर्ण जैसे महादानी के विषय में यह कल्पना अनुचित नहीं है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि इस काव्य में मानसिक द्वन्द्वों के मध्य जीवन की प्रवृत्ति मूलक दृष्टि का समर्थन करते हुए कवि ने पौरुष की दीप्ति को महनीय जीवन का आधार माना है। वह काल और नियति के आवरण की सघनता का स्वीकार करता हुआ भी कर्म निष्ठता का प्रतिपादन करता है। यह काव्य की महान उपलब्धि है।

अंगराज

महाभारत की सम्पूर्ण कथा का संक्षेप करते हुए कवि ने इस काव्य में कर्ण की प्रधानता रक्खी है। कवि की दृष्टि कर्ण के वीरतापूर्ण व्यक्तित्व पर रही है। 'महाभारत' में प्राप्त कर्ण की कथा तथा अन्य सम्बन्धित कथा रूपों से यह कथा विन्यस्त की गई है। इस काव्य में कर्ण का औदार्य पूर्ण जीवन ही सर्वथा सचेष्ट रहा है। प्रस्तुत काव्य की रचना के समय कवि का मन परम्परा में आदर प्राप्त पाण्डवों के प्रति क्षुब्ध और कौरवों के प्रति सहानुभूति पूर्ण है। भूमिका में कवि ने अपनी दृष्टि से पाण्डवों के छलकपट अन्याय असंयम असभ्यता पर यथेष्ट लिखा है।[1] पाण्डवों के पक्ष को इस तरह असत्य प्रदर्शित कर कवि ने कौरवों की उच्चता सिद्ध की है।

भारती नायक कर्ण के सद्गुणों का वर्णन करता हुआ कवि उसकी वीरता पर मुग्ध है। उसके चरित्र में मानवीय गुणों का अपार भण्डार है। प्रबन्ध के विस्तार व्यापकता और कथा संगठन के रूप में 'अंगराज' निश्चित ही सुन्दर प्रबन्ध काव्य सिद्ध होता है। प्रस्तुत काव्य में कर्ण उदात्त है जो भारतीय परम्परा के अनुसार सभी सद्गुणों से युक्त है।[2] कर्ण के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले प्रासंगिक कथा का नियोजन कुशलता से किया गया है। जातीय गौरव की स्थापना कवि का मुख्य उद्देश्य है।

व्यक्ति के जीवन में आत्मनिर्भरता वीरत्व कर्म की शक्ति पर अदम्य विश्वास प्रकट करने के लिए कथा का नियोजन किया है। वह कर्ण को मानवता का प्रतीक बनाना चाहता है। वह स्पष्ट रूप से संकेत करता है कि मानवीय गुणों की पराजय देवत्व के समक्ष भी असह्य है। अतः यदि मानव कहा जाता है तो उसके अनुरूप कार्य कलाप हों। अपने कर्म में अडिग विश्वास रखना मनुष्यता का चरम गुण होना चाहिए।

---

१ अंगराज, भूमिका, पृ० २१

२ अंगराज, भूमिका, पृ० ४०

वस्तु सकलन

अगराज की कथावस्तु का सकलन सम्पूर्ण महाभारत' से हुआ है अत अठारह पर्वो का कथानक सक्षेप म इस काव्य मे आ गया है।

आदिपव 'अगराज के प्रथम सग म ६२ वें छन्द तक कवि ने महाभारत कालीन भारत देश का चित्रण किया है। तदुपरात आदिपव के एक सौ एक वें अध्याय के आधार पर कुरुकुल का सक्षिप्त परिचय देकर, द्वितीय सग म आदिपव के अध्याय ११०, १३५ १३६ को सक्षिप्त करके कण जन्म, अधिरथ का मजूषा की प्राप्ति रगभूमि म शस्त्रप्रदशन का चित्रित किया है। अध्याय १३७ से १४० तक की कथा को छोड दिया गया है। जतुगृहपव के १४१ से १४७ तक के अध्यायो के सक्षिप्त रूप से लाक्षागृहदाह प्रसग का निर्माण करके, हिडिम्ब वकपव को छोड कर स्वयवर पव के आधार पर द्रौपदी विवाह का प्रसग लिया है। अध्याय २०५ से २०६ तक की कथा के आधार पर राज्य प्राप्ति का वणन है।

सभापव सभापव की कथा का सक्षेप जरासन्ध वध राजसूय यज्ञ दुर्योधन का अपमान, प्रथम द्वितीय द्यूत और पाण्डव वनवास—शीर्षको म किया गया है। प्रमुख रूप स जरासध व धपव, राजसूय पव, द्यूत पव और अनुद्युत पव की कथाओ को छठे सग के उत्तराध मे चित्रित किया है।

वनपव वनपव के अध्याय २५३ से २५७ तक की कथा सक्षिप्त रूप से सप्तम सग म वर्णित है इसी पव के ३०० से ३१० अध्याय तक की कथा का सक्षिप्त नवम सग म किया है। इस कथा के कण-जन्म प्रसग का कवि ने दूसरे सग म चित्रित किया है।

विराटपव विराटपव की कथा का कवि ने विस्तार स वणन नही किया केवल अंतिम घटनाओ का पाण्डवो के प्रकट होने के रूप से वर्णित किया है।

उद्योगपव उद्योगपव के आधार पर कवि ने दसवें सग स पन्द्रवे सग तक की कथा का सयोजन किया है। उद्योगपव के प्रारम्भिक विवादो का कवि ने छोड दिया है और भगवद्यान पव के ७२ वे अध्याय स ८५ वें अध्याय तक की कथाओ का दसवें और ग्यारहवें सग म वर्णित किया है। मध्य के अनेक प्रासगिक स्वतन्त्र वृत्तो का छोडता हुआ कवि १४० स १४५ अध्याय तक की कथा के आधार पर कृष्ण कण सवाद की सयोजना करता है। अध्याय १४४ स १४६ तक की कथा स कण कुन्ती सवाद का अवतरण होता है।

भीष्मपव भीष्मपव की कथा का सक्षेप १६, १७, १८ सर्गों म हुआ है। अध्याय १८, २५ के आधार पर कवि ने उभय पक्षो के बल का निरूपण किया है। प्रसग रूप म अर्जुन के मोह का वणन करके युद्ध की प्रमुख घटनाओ का रचना बद्ध किया है।

द्रोणपर्व द्रोणपर्व के आधार पर कवि ने मुख्य रूप से संकुल युद्ध और अभिमन्यु, जयद्रथ तथा घटोत्कच-वध लिया है। कर्ण के युद्ध का प्रारम्भ यहीं से होता है। कवि ने अभिमन्यु वध के पर्व को दो छन्दों में संक्षिप्त कर दिया है। इसी प्रकार जयद्रथ वध को तीन छन्दों में संक्षिप्त कर दिया है। इसी स्थल पर कवि ने कर्ण द्वारा सभी पाण्डवों को छोड़ने की कथा का वर्णन किया है और घटोत्कच-वध के साथ सर्ग समाप्त किया है।

कर्णपर्व कर्णपर्व का संक्षेप बीसवें और इक्कीसवें सर्ग में किया गया है। कर्ण पर्व के अध्याय ३२, ३५, ३६ के आधार पर कर्ण शल्य संवाद की संयोजना की गई है। अध्याय ७८ के आधार पर कर्ण के घोर युद्ध और पाण्डव सेना के पलायन का चित्र लिया है। अध्याय ८७ से ९१ तक कर्णार्जुन युद्ध को संक्षिप्त रूप से ग्रहण कर, युधिष्ठिर का युद्ध दर्शन ६६ वें अध्याय पर रचित है।

शल्यपर्व शल्यपर्व का संक्षेप तेईसवें सर्ग में किया गया है। इसमें गदायुद्ध का प्रसंग भी वर्णित है।

सौप्तिकपर्व इस पर्व का संक्षेप अश्वत्थामा द्वारा रात्रि में सम्पूर्ण सेना के संहार के रूप में किया गया है। इसके उपरान्त दुर्योधन की मृत्यु होती है। सौप्तिक पर्व के १० वें अध्याय से १७ वें अध्याय तक की कथा से चौबीसवें सर्ग का निर्माण किया है।

स्त्रीपर्व स्त्रीपर्व के आधार पर विशेष रूप से २१ वें अध्याय के आधार पर कवि ने रणभूमि में कर्ण पत्नि के विलाप का आयोजन किया है।

शान्तिपर्व शान्तिपर्व में प्रथम अध्याय से पंचम अध्याय तक कर्ण की कथा का वर्णन है। नारद जी कर्ण की परशुराम से शस्त्र ज्ञान प्राप्ति और जरासन्ध से युद्ध आदि का वर्णन करते हैं। कर्ण की सहायता से दुर्योधन कलिंगराज की कन्या का अपहरण करते हैं। कवि ने कथाक्रम के निर्वाह के कारण द्रौपदी का चौथे और पांचवें सर्ग में अनुवाद किया है।

स्वर्गारोहण पर्व इस पर्व के आधार पर पाण्डवों के देह विसर्जन की स्थिति की योजना की है।

सामान्यतः कवि ने उन्हीं प्रसंगों का आख्यान बद्ध किया है जिनका प्रत्यक्षतः अथवा परोक्ष रूप में कर्ण के जीवन पर प्रभाव डाला जा सकता है। इस प्रयास में महाभारत की पूरी कथा का संक्षेप हो गया है। अन्यथा कर्ण-वध के साथ इस काव्य की समाप्ति हो सकती थी।

महाकाव्य होने के कारण प्रारम्भ से अन्त तक कथा प्रवाह और वस्तु की धारा कान्विता गुम्फित रही है। वस्तु के प्रबन्ध निर्वाह की दृष्टि से कवि ने 'महाभारत' में आये में प्रायः सभी कथा को महाकाव्य के कथा प्रवाह में यथास्थान सम्बद्ध किया है।

परिवतन-परिवधन अगराज म कवि न कथा का प्रारम्भ पौराणिक शली म किया है। कवि सव प्रथम सूय का सक्षिप्त विवरण दता है। सूय स्वय सूय लाक का परिचय दत हैं ग्रोर ससार की अनक्ता को ब्रह्म म प्रतिष्ठित करत हैं—

लाक दष्टि म यहा भान होती अनक्ता
किन्तु प्रकट है ममस्वरूप म पूण एक्ता
एकमात्र हम प्रकृति चेननाधार दष्ट है,
लाक लाक म प्राण प्राण म हम प्रविष्ट हैं[1]

कथा के इस स्वरूप पर महाभारतीय जावन दृष्टि का पूण प्रभाव है। कवि प्राचीन ग्रास्था के अनुसार सूय की स्थिति ग्रौर सूय स कण की उत्पत्ति की बात को मानकर कथा के दिव्य रूप का यथावत स्वीकार करता है। इस सग म महाभारत कालीन भारत के सक्षिप्त वणन क उपरान्त पाण्डव कौरव कुल का सक्षिप्त परिचय है। यहीं से मूलकथा प्रारम्भ हाती है। कवि शान्तनु से लेकर पाण्डवा के जन्म तक की कथा का ६२ वें छन्द स ६७ वें छन्द तक वर्णित करता है। इस सग म आदिपव के ६८ वें अध्याय से १०५ वें अध्याय तक पाण्डवा क जन्म स पूव अनक व्यक्तिया क जन्म की विस्तत कथा का सक्षप किया गया है। पाण्डवा के जन्म के विषय म आदि-पव क ११६ स १२१ अध्याय तक के पाण्डु कुन्ती सवाद का छाड दिया गया है। नियाग प्रथा स उत्पन्न सतान क सामाजिक स्वरूप पर विचार नहीं किया ग्रौर अत्यन्त सक्षप मे केवल प्रक्रिया रूप जन्म की कथाग्रा का सक्षेप कर दिया है।

कणजन्म ग्रौर रगभूमि प्रसग कुन्ती के द्वारा कण की उत्पत्ति ग्रौर जल म प्रवाहित करन की कथा को सक्षिप्त रूप म लेकर रगभूमि प्रसग का विस्तार किया है। मूल ग्रन्थ म कुन्ती की मनाव्यथा ग्रौर अन्तदशा का चित्रण मनावज्ञानिक रूप म हा पाया है। अगराज म वनपव म कुन्ती क विलाप का ग्रहण किया है—

जानती चाप्य कतव्य कन्याया गभधारणम्
पुनस्नहन सा राजन् करुण पयन्वयद[2]
× × ×
रुदती पुत्रशाकार्ता निशीथे कमलेक्षणा
धात्र्या सह पृथा राजन् पुत्र दशनलालसा।[3]

ग्रात्मजात पुत्र का इस निठुरता म बहा दना सरल काय नहीं है—इस घटना का इसी रूप म स्वीकार किया है। कहीं-कहीं 'महाभारत' के श्लाका का छायानुवाद प्रस्तुत कर दिया गया है। एक श्लाक द्रष्टव्य है

१ अगराज, पृ० ७
२ म० वन० ३०८।८
३ म० वन० ३०८।२३

पातुत्वा वरणो राजा सलिले सलिलेश्वर ।
अन्तरिक्षेन्तरिक्षस्थ पवन सवगस्तथा ।[1]

× × ×

जल म रक्षा करें वरुण इस दीपहीन की ।
नभ म रक्षा करें मित्र इस महादीन की ।[2]

कवि न कथा का विस्तृत भाग काव्य विषय के रूप म ग्रहण किया अत कुन्ती के विलाप के साथ न्याय नहीं हो पाया। यदि कर्ण के चरित्र का मानवीय धरातल पर मार्मिक रूप म ही महत्ता देनी थी तो भी माता के इस कर्म के औचित्य और अनौचित्य पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता थी। कर्ण की पिटारी बहकर जब चम्पापुरी म आ जाती है तो अधिरथ उसे पुत्र के रूप म स्वीकार करता है। इसके बाद कवि रंगभूमि की घटना का विस्तार से चित्रण करता है। कर्ण के आने के उपरान्त सभी पाण्डव फीके पड़ गये और कर्ण ने भी वही कुछ कर दिखाया जो अर्जुन ने किया था। प्रतिस्पर्धा युद्ध तक पहुँच जाता कि कृपाचार्य ने कुल और वंश का आड ली। इस पर कर्ण कुछ समय के लिए चुप हो गया और दुर्योधन ने कृपाचार्य के प्रश्न का सम्यक उत्तर दिया।

आचार्य त्रिविधा योनी राज्ञा शास्त्रविनिश्चय ।
सत्कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेना प्रकर्षति ।[3]

× × ×

जाति कथन नहीं पुरुष पौरुष विचार्य है
पचगुणो म जो गुणाढ्य है वही आर्य है ॥[4]

तदुपरान्त कवि ने अत्यन्त नाटकीय ढंग से अधिरथ के रंगभूमि म आने और कर्ण द्वारा उसके सम्मान के प्रसंग का चित्रण किया है। इस प्रसंग म कवि 'महाभारत' के अधिरथ की रक्षा नहीं कर पाया है। ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे अधिरथ का आना और कर्ण द्वारा सत्कार एक दार्शनिक क्रिया हो।

परशुराम से शिक्षा शान्ति पर्व म नारद द्वारा सुनाये गये आख्यान से कर्ण के प्रसंग की कथा का नियोजन किया गया है। कवि अत्यन्त सुन्दर रूप म परशुराम के महेन्द्र पर्वत स्थित आश्रम का सौन्दर्य-वर्णन करता हुआ परशुराम के व्यक्तित्व का चित्रण करता है।

---

१ म० वन० ३०८।१२
२ अगराज पृ० २०
३ म० आदि० १३५।३५
४ अगराज पृ० २६

प्रबन्ध वेगानिल सा बलाढ्य जो, रणांगणों में अविराम दौड़ता ।
द्विजाति चूडामणि शूर सा यही, रणाग्रणी श्री गणनाथ शिष्य है ॥[1]

कर्ण परशुराम के पास जाता है। मूलग्रन्थ में कर्ण अपने को भृगुवंशी ब्राह्मण कहता है।

ब्राह्मणो भार्गवोऽस्मीति गौरवेणाभ्यगच्छत ॥[2]

'अंगराज' में इस प्रसंग को परिवर्तित रूप में दिखाया गया है। कर्ण अपने आपको 'सूत नन्दन' व्यक्त करता है और उसके कवच कुण्डल देखकर परशुराम आगे कुछ नहीं पूछते। यह परिवर्तन नायक के चरित्र-गठन की दृष्टि से किया गया है। अन्त में द्विज धेनु वध से मिले शाप की कथा को कवि ने यथावत् स्वीकार किया है। यहाँ द्विज से अपने द्विज न होने और परशुराम के शिष्यत्व की बात कहता है, पर ब्राह्मण शाप दे ही देता है। शाप की स्थिति से व्याकुल कर्ण आश्रम लौट आता है—

प्रत्युवाच ब्राह्मणस्तं कर्णं क्रोधान्धमूर्छितः ।
राममभ्यगमद् भीतस्तमेव मनसा स्मरन् ॥[3]

× × ×

अरिष्ट आपत्ति वियोग चित्त में
लिये आया वह आश्रम में ।[4]

आश्रम में लौटकर परशुराम के साथ एक अन्य असाधारण घटना घटित होती है। मूल ग्रन्थ में कीड़े को अलर्क नामक राक्षस बताया है। कवि ने इस अतिप्राकृत रूप को ग्रहण नहीं किया। परशुराम कर्ण को शाप देते हैं कि तुम ब्रह्मास्त्र को चलाना भूल जाओगे। यहाँ कवि इस सिद्धान्त पर प्रकाश डालता है कि छलछद्म से प्राप्त विद्या व्यक्ति के जीवन को किस रूप में असफल बना देती है। कवि छल को पाप के जनक रूप में मानकर शाप के औचित्य का समर्थन करता है।

कलिंग प्रसंग — परशुराम के आश्रम से लौटकर कर्ण हस्तिनापुर आया और कलिंग प्रदेश की राजकुमारी के स्वयंवर की सूचना पाकर दुर्योधन सहित कलिंग गया। कर्ण की शक्ति प्रदर्शन के हेतु यह अत्युत्तम अवसर था। हुआ भी ऐसा ही। कलिंग कुमारी दुर्योधन का मन से वरण कर चुकी थी किन्तु अन्य समागत राजाओं के बल के कारण जब ही उनके पास से आगे बढ़ी कि दुर्योधन ने रोक लिया और बलपूर्वक हरण कर लिया। कर्ण का अनेक राजाओं से युद्ध हुआ और जरासन्ध का

---

१ अंगराज, पृ० ४०
२ म० शान्ति० २।१५
३ म० शान्ति० २।२६
४ अंगराज पृ० ४८

पराजित कर कर्ण ने मालिनी नगर कर के रूप में प्राप्त किया। मूल ग्रन्थ की कथा को कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त रूप में चित्रित किया है और इसमें सामान्य परिवर्तन किया—

> दुर्योधनस्तु कौरव्या नामपयत नघनम ।
> प्रत्यपघच्च ता कन्याममलकृत्य नराधिपान ।[1]
>
> × × ×
>
> मत त्याग उसका भी ज्या हो वही कुमारी
> उठा सुयोधन दल विवशता उसकी सारी
> बोला वह रख जा मुझे तभान यहीं पर
> जिस हृदय दे दिया उसी को पति स्वीकृत कर ।।[2]

अंगराज में कलिंगकुमारी दुर्योधन के प्रति पूर्वरागिनी है जबकि महाभारत में ऐसा कोई संकेत नहीं है। कवि ने इस स्थान पर कर्ण के पराक्रम का ओजस्वी वर्णन किया है। कर्ण की वीरता से त्रस्त जरासन्ध मालिनी नगर कर के रूप में दान कर देता है।

वारणावत और स्वयंवर प्रसंग इस घटना के उपरान्त वारणावत और यात्रा प्रसंग लिया गया है। मूल ग्रन्थ में वारणावत यात्रा दुर्योधन का कुचक्र था किन्तु प्रस्तुत काव्य में वह पाण्डवों के कुचक्र का परिणाम है।

> पाण्डु कुमारों का असह्य था दुर्योधन उत्थान
> रह कूट योजना बनाते नित वे पूर्व समान
> वारानगर में निज इच्छा से पाण्डव गण साभाग
> देशाटन को गये वहाँ से निज जननि के संग ।[3]

पाण्डव वारणावत जाकर दुर्योधन के विरुद्ध प्रचार करने लगे। कवि ने युधिष्ठिर के ऊपर यह आरोप लगाया कि उन्होंने राज्य विरुद्ध प्रचार किये।[1] इस प्रसंग में महाभारत का विरोध है। अस्वीकार प्रबुद्ध पाठक का इस स्थिति में साधारणीकरण नहीं होता यह केवल यह समझता है कि कवि की सहानुभूति कौरवों के पक्ष में है। यदि कवि को ऐसी स्थिति का चित्रण करना ही था तो प्रमाण के लिए कुछ अधिक सामग्री की अपेक्षा थी उसके अभाव में ये चित्र निर्जीव और हठधर्मी युक्त लगते हैं।

---

१ म० शान्ति० ४।१२
२ अंगराज पृ० ५६
३ अंगराज पृ० ६३

वन म हिडिम्बा के प्रसग का कवि एक ही पद म कहकर द्रौपदी-स्वयवर का विस्तार करता है। इन प्रसग मे हम कवि क विचारा म विराम है। कवि के हृदय मे द्रौपदी क लिए आदर क स्थान पर घोर घृणाविद्यमान है। वह भूमिका म विकृत बौद्ध जातको की कथा क आधार पर द्रौपदी का कामुक स्त्री क रूप म चित्रित करता है।[1] 'मत्स्यभेदन' क प्रसग भास्त्र का तिरस्कार कर वह मनमाना अर्थ निकालता है। द्रौपदी स्वयवर म कर्ण का मना करती है फिर विप्रवपधारी अर्जुन यह कार्य सम्पन्न करत ह। यहा युद्ध होता है। मूल ग्रन्थ म अर्जुन सबका पराभव करत हैं।

पतित भीमसेनन शल्य कर्ण च गर्विते।
गतिता सवगाता परिवव्रुर्वृकान्तम्।[2]

अगराज म कर्ण अर्जुन का ब्राह्मण समझ कर छोड़ता है। स्वयवर प्रसग के कुछ परिवतन उल्लेखनीय है

मूलग्रन्थ म पाण्डव माता की आज्ञा का प्रमाण मान कर द्रौपदी का वरण करत हैं[3] किन्तु अगराज म युधिष्ठिर इस बात का नक्तिशाली प्रस्ताव रखत हैं कि अग्रज का विवाह पहल होना आवश्यक है।

महाभारत म द्रौपदी चुप रहती है और कुती तथा पाण्डवो की आज्ञा के अनुसार पाचो को पति स्वीकार करती है अगराज' म द्रौपदी स्वय पाच व्यक्तियों को पति बनना स्वीकार करती है।

उचित नहीं हो अनुज विवाहित अग्रज हो अवधूत।
सम्भव करेंगे मानहानि हम कम होकर मूढ़।

इस पर कुन्ती कहती है

अग्वाक्य सा मान्य सत्य है धमराज की उक्ति।

द्रौपदी का भी कवि न धमराज की बात का समथन करत चित्रित किया ह।

किन्तु द्रौपदी का प्रियवर थी धमराज की नीति।[4]

कथा परिवतन का उद्देश्य केवल युधिष्ठिर का चरित्र भ्रष्ट रूप मे दिखाना दिखाई दता ह। कवि अपना व्यक्तिगत मान्यता की स्थापना करता है कि द्रौपदी का पच पतित्व पाण्डवों की वासनाजन्य दुष्प्रवत्तियो का परिणाम था। यद्यपि द्रौपदी के पचपतित्व क समथन म पौराणिक विद्वान क अतिरिक्त अन्य प्रमाण नहीं मिल सकत किन्तु इस रूप म चरित्र भ्रष्टता की कल्पना भी कल्याणकारी नहीं है।

---

१ अगराज, भूमिका प० ७०
२ म० आदि० १८९।३०
३ म० आदि० १९४।३०
४ म० आदि० अध्याय १८९
५. अगराज पृ० ९८

कवि ने द्रुपद की मानसिक ग्रंथि को 'महाभारत' के आधार पर ही ग्रहण किया है। द्रुपद कृष्ण के सम्मान से मान जाते हैं। यहां अतिप्राकृत घटनाओं की उपेक्षा श्लाघ्य है।

द्रौपदी और पाण्डवों के जीवन-सम्बन्धी विषय को लेकर आनन्दकुमार ने धर्मराज के चरित्र का पतन कराने के हेतु एक परिवर्तन यह किया कि अर्जुन की ओर से शंकित होकर धर्मराज ने उस पर कल्पित दोषारोपण कर वनवास को भेज दिया। कथा का यह रूप कवि-कल्पित है 'महाभारत' में ऐसा कोई संकेत नहीं है।

पाडवाग्र श्यामा प्रति होकर अधिकाधिक आसक्त
अर्जुन प्रति हो गया शीघ्र ही अतिशय ईर्ष्याग्रस्त ॥
समुन्नद्ध नृप ने कर कल्पित दोषारोप प्रचण्ड
दिया अनुज को एक वर्ष का राज प्रवासन दण्ड ॥[1]

महाभारत में अर्जुन धर्मराज के कमरे में प्रविष्ट होने के पूर्व विचार करते हैं और इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि राजा के तिरस्कार के अतिरिक्त अन्य पाप यहां नहीं है। यदि ब्राह्मण की गौओं की रक्षा नहीं हुई तो यह अधर्म होगा।[2] ऐसा विचार कर अर्जुन प्रतिज्ञा भंग करके वनवास के लिए चल देते हैं।

वनवास की अवधि में सुभद्रा परिणय खाण्डव-दाह प्रसंग का दो दो छन्दों में वर्णन करके राजसूय-यज्ञ का यत्किंचित विस्तार दिया है। जरासन्ध वध के उपरान्त राजसूय सम्पन्न हुआ। दुर्योधन सभा भवन देखने गया तो कवि के अनुसार द्रौपदी ने अकारण कुरुपति का अपमान किया। उसे अन्ध-पुत्र कहकर सम्बोधित किया। अन्ध पिता का आत्मजात भी होता चक्षु विहीन।[3]

द्यूत आनन्दकुमार ने द्यूत के प्रसंग में भी पहल युधिष्ठिर से कराई है। यह तथ्य महाभारत के विपरीत है। महाभारत में दुर्योधन की सतत चिंता का दर्शन कर शकुनी की मन्त्रणा से द्यूत का आयोजन हुआ पर अगराज में द्रौपदी के अपमान को सभा में दुर्योधन के अपमान से सम्बद्ध किया। दुर्योधन के मन का विकार पाण्डवों को द्यूत में पराजित देखकर उभर गया और पूर्वापमान के प्रतिकार हेतु उसने द्रौपदी को बुला भेजा। कर्ण-दुर्योधन ने मिलकर द्रौपदी और पाण्डवों का मनमाने रूप में अपमानित किया। इस स्थल पर कवि महाभारत में भीष्म विदुर द्रोण, आदि व्यक्तियों की उक्ति का वर्णन नहीं करता है। अनुद्यूत प्रसंग का भी कवि द्रौपदी की प्रेरणा मानता है। द्रौपदी से प्रेरित युधिष्ठिर स्वयं पुनः द्यूत के लिए जाते हैं और १२ वर्षों के वनवास तथा एक वर्ष के अज्ञात वास का दांव लगा कर खेलते हैं, और पराजित होते हैं।

---

1. अगराज पृ० ७०
2. म० आदि० २२१।१६-२०-२१
3. अगराज पृ० ७२

पाण्डवा के वनगमन के उपरान्त कवि द्रोण और भीष्म की समस्त सहानुभूति और धम परायणता की चचा को दो छदो मे वर्णित करता है। पाण्डवा के पक्ष मे कही गई अनेक उक्तियो को अत्यन्त सक्षिप्त रूप मे वर्णित किया है किन्तु कण के प्रबल विरोध के कारण उनका मत दुर्योधन का स्वीकार नहीं हो पाया।

✓ कण दिग्विजय प्रसग कण दिग्विजय प्रसग की उदभावना कण की भीष्म के प्रति ईर्ष्या का लेकर हुई। वन मे दुर्योधन को पाण्डवो से पराजित होना पडा, तब भीष्म न उनके एसे कृत्य को अनुचित बताकर, कण को इसका उत्तदायी ठहराया। कण के लिए यह आरोप असह्य था अत कण न दुर्योधन को दिग्विजय हतु प्रोत्साहित किया। इस विजय स कण अपनी वीरता का चमत्कार प्रदर्शित करना चाहता था और भीष्म से श्रेष्ठ होना चाहता था—

भीष्म का आरोप था

कणस्यच महाबाहो सूतपुत्रस्य दुमते
न चापि पादभाक् कण पाण्डवाना नृपोत्तम।
धनुर्वेद च शौर्ये च धर्मे वा धमवत्सल॥[1]

भीष्म धनुर्वेद तथा धमाचरण म कण को पाण्डवो के समान नही मानत। इधर कण भी भीष्म का एस ही वचन कहता है। कण दुर्योधन से कहता है

तामह् ते विजेष्यामि एक एव न सशय।
सम्पश्यतु सुदुर्बुद्धिर्भीष्म कुरुकुलाधम।[2]

कण की मनोवज्ञानिक स्थिति है कि वह कुरुकुलाधम भीष्म को अपन पराक्रम म त्रस्त करना चाहता है। कवि न अगराज' म इस स्थिति को इस रूप म व्यक्त किया कि कण का औदाय प्रकट हो जाता है।

एक एक क्या कोटि कोटि हो द्रुपद कृष्ण कौन्तय।
भीत न होगा कुरुपति जब तक जीवित है राधेय।[3]

कण स्वाभिमान की प्रचण्ड ज्योति से दीप्तिमान होकर दिग्विजय के हतु निकलता है। द्रुपदराज क प्रति विशेष आक्रोश के कारण वह पहले उन्ही पर आक्रमण करता है। भयकर युद्ध के उपरान्त कण जीतता है और फिर उत्तर-दक्षिण आदि सभी दिशाओ क राजाओ को परास्त करता है। महाभारत म इस प्रसग म लिखा है कि कण न सामनीति से वृष्णि वश की सहायता स अन्य स्थाना पर विजय की। इसक विपरीत अगराज म कृष्ण की स्थिति वरदाता के रूप मे चित्रित की है। एक ओर

---

१ म० वन० २५३।८ ६

२ म० वन० २५३।२१

३ अगराज पृ० ८२

तो कवि कृष्ण म दिव्य शक्ति मानता है दूसरी ओर कण की महत्ता का इस रूप म प्रदशन करता है। यह विरोधाभास कण-चरित्र के उत्थान के लिए किया गया है।

दुर्योधन का वष्णव यज्ञ प्रारम्भ होता है। इस यज्ञ का मार्मिक प्रसग पाण्डवो को निमन्त्रण है। मूल ग्रन्थ म निमन्त्रण दुशासन देता है और पाण्डवो को पापात्मा रूप म सम्बोधित करता है।

गच्छ दूतवन शीघ्र पाण्डवान पापपूरुषान्।[1]

दूत से वैशम्पायन की सूचना सुनकर युधिष्ठिर को प्रसन्नता होती है। युधिष्ठिर कहते हैं सौभाग्य की बात है कि पूवजो की कीर्ति बढाने वाले राजा दुर्योधन श्रेष्ठ यज्ञ के द्वारा भगवान् का भजन कर रहे हैं—युधिष्ठिर इस यज्ञ म इसलिए नहीं जाते कि वे वनवासी हैं और नगर प्रवेश निषिद्ध है।

वयमप्युपयास्यामो न त्विदानीं कथचन।
समय परिपाल्यो नो यावद्वष त्रयोदशम्॥[2]

भीम अवश्य ही कुछ कटुतापूर्ण वचन कहते हैं। इस प्रसग को कवि ने इस निमित्त प्रस्तुत किया है कि पाण्डवो का अपकष और कौरवो का उत्कर्ष सिद्ध हो।

सब प्रथम पाण्डव अपकृति का करके विस्मृत
राजरूप म उसने उनको किया निमन्त्रित।[3]

इसका उत्तर इस प्रकार आया

सहयोगी हम कभी न होंगे शान्ति यज्ञ म

× × ×

युद्ध कुण्ड म भूप मुण्ड की आहुति देंगे।[4]

इस यज्ञ के उपरान्त कण अर्जुन-वध का प्रण करता है और दानव्रत का ग्रहण करता है। 'अगराज' म दानवीर की परीक्षा हेतु एक स्वतन्त्र सग की अवतारणा है कि कृष्ण विप्र वेश धारण कर कण की परीक्षा लेते हैं पर यह प्रसग महाभारत म नहीं है।

कुण्डल हरण पव के सक्षिप्त रूप को कवि ने नवम सग म चित्रित किया है। इस प्रसग म केवल एक बात यहाँ उल्लेखनीय है कि कवि ने कण की एकघ्नी का दान इन्द्र की मनोग्लानि की परिचया हेतु कराया है। महाभारत का यह रूप कवि को अभीष्ट

१ म० वन० २५६।८
२ म० वन० २५६।१४
३ अगराज प० ६४
४ अगराज, प० ६४

नहीं लगा जिसमे कर्ण व्यावहारिक रूप से एकघ्नी की याचना करता है। यहा पर कवि ने कर्ण के द्वारा मानव की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

कवि उत्तरा के विवाह का सांकेतिक चित्रण करता है। दूत शांति-स्थापना मे असफल होता है और दोनो ओर से रणनिमन्त्रण भेजे जाते हैं। शल्य के प्रसंग का संक्षिप्त चित्रण किया गया है।

दुर्योधन ने मार्ग मध्य ही उनका किया मान पर्याप्त।[1]

शल्य प्रतिज्ञा के अनुसार विपक्ष मे रहते हैं किन्तु युधिष्ठिर सहयोग की युक्ति बताकर सहायता का वचन भी ले लेते हैं। कवि का ध्यान कर्ण की कथा पर है अत वह अत्यन्त संक्षेप मे इन सामान्य प्रसंगो का चित्रण करता है। इन स्थलो पर कवि यथाशक्ति दुर्योधन के पक्ष का उज्ज्वल रूप मे चित्रित करने की चेष्टा करता है।

ग्यारहवें सर्ग मे कवि प्रारम्भ मे हस्तिनापुर के सौन्दर्य का चित्रण करता है। महाशांति मे प्रेरित कृष्ण दूत बनकर इस महानगरी मे पधारते हैं। नगरी अत्यन्त सुन्दर और अलंकृत लग रही थी

अनूप अट्टावलि युक्त भ्राजिता महापथा मे बहुधा विभाजिता।
दिगन्त चुम्बी वह थी विराजिता, ग्रहावली को करती पराजिता।[2]

कवि ने अत्यन्त सुन्दर शब्दो मे कृष्ण के आगमन और पुरवासियो की अधीरता, स्वागत-सत्कार का वर्णन किया है। सभा मे आने के उपरान्त दुर्योधन सभासदो का परिचय देता है। कृष्ण उठकर पाण्डवों के अधिकार प्रश्न को सामने रखते हैं, और कहते हैं कि 'उदारतापूर्वक आत्म-त्याग से विवाद का अंत तुरन्त कीजिए'—कृष्ण इस बात की स्थापना करते हैं कि पाण्डव सन्त हैं किन्तु वे अधिक देर तक अपमान को नही सहन कर सकते। कृष्ण पाण्डवो की शक्ति का परिचय भी देते हैं —दुर्योधन कौरव-पक्षी वीरो के बल का परिचय देता है। कर्ण पाण्डवो पर दोषारोपण करता है। वह कहता है कि कर्म-हीन का राज्य प्रभुत्व दुर्लभ है। इस प्रसंग मे कर्ण का सीधा सम्बन्ध नहीं था, अत कवि कृष्ण के प्रभावशाली भाषण और हिंसा-अहिंसा की विवेचना, युद्ध की भयंकरता का प्रकाशन आदि पर शान्त रह कर इस प्रसंग को समाप्त करता है।

तेरहवें सर्ग का प्रारम्भ कर्ण एवं कृष्ण के वार्तालाप से होता है। कृष्ण कर्ण के जन्म कर्म और नीति के औचित्य के कारण पाण्डव-पक्ष मे आने के लिए कहते हैं— 'महाभारत' की कथा शैली के आधार पर कवि इस सर्ग में कर्ण जन्म का वृत्तान्त कृष्ण के द्वारा अभिव्यक्त करता है। कर्ण अपने पूर्व वचन-पालन प्रण पर दृढ रहता है और कृष्ण का प्रस्ताव अस्वीकार कर देता है। भगवद्यान पर्व मे आई अनेक पूरक एवं उपकथाओ का कवि त्याग देता है। 'महाभारत' की कथा के आधार पर कवि ने कर्ण-कृष्ण संवाद

१ अंगराज पृ० ११५
२ अंगराज, पृ० ११५

का स्वतन्त्र विकास किया है। मूल ग्रन्थ म कण यह मानता है कि धम पाण्डवो के पक्ष मे है और उसे उनकी विजय का निश्चय भी हो जाता है। पर कवि इस स्थिति के विपरीत कण की जय के विश्वास से युक्त भावना का चित्रण करता है। कण, इस वृत्तान्त को गुप्त रखने की प्राथना करता है।

यदि जानाति मा राजा धमात्मा सयतेन्द्रिय ।
कुन्त्या प्रथमज पुत्र न स राज्य ग्रहीष्यति ।
प्राप्य चापि महद राज्य तदह मधुसूदन ।
स्फीत दुर्योधनायव सम्प्रदद्यामरिदम ।[1]

× × ×

दुबल युधिष्ठिर स न मम कुल भेद आप कहें कभी ।
सुनकर उस अधिकार अपना त्याग वह देगा सभी ।
लेंगे स्वय उसको न हम देंगे अपितु कुरराज को ।।[2]

कवि ने 'महाभारत' के स्वर के विपरीत कण के मुख से युधिष्ठिर के चरित्र की दुबलता की घोषणा की है।

कण और कुन्ती पन्द्रहवें सग म कुन्ती और कण का वार्तालाप है। सब ओर से विनाश को अवश्यम्भावी मान कर कुन्ती कण के पास कण को छलने जाती है। कवि ने कुन्ती की मानसिक अवस्था का हृदयग्राही चित्रण किया है — यद्यपि था उपलब्ध वहा पर, शान्ति प्रदायक साधन सारा'—किन्तु— खोज रही थी वह अपना अभिराम मनोरथ सिन्धु किनारा।[3]

कुन्ती पर्याप्त समय तक कण को देखती है। चलते समय कण की दृष्टि कुन्ती पर पडती है। कुन्ती के मुख से पहले यह निकलता है कि अपने को सूतकुमार कहना उचित नही है। इस प्रसग म अत्यन्त मार्मिकता स माता-पुत्र के स्नेह का चित्रण हुआ है। चार भाइयो को प्राण दान देकर यहा भी कण अपने औदाय का प्रकट करता है। दुर्योधन १६ १७ वें सर्गों की कथा का विकास कवि न स्वतन्त्र दृष्टिकोण स किया है। दुर्योधन यथाविद्ध भीष्म को सेनापति पद पर विभूषित करता है और कण भीष्म के सेनापतित्व काल पयन्त युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करता है। दोनो ओर के वीरो का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है। सेना युद्ध भूमि के लिए प्रयाण करती है। इस प्रसग म कवि ने माताओं के सन्देश म राष्ट्रभक्ति की उत्कट भावनाओ का प्रकर्ष अभिव्यंजित किया है। राष्ट्र पर बलि जाने वाले लाल अमर हो जाते हैं। सेना के प्रयाण म कवि न महाभारत' म आई हुई पूव भारतीय प्रयाण-वणन का यथाशक्ति ग्रहण किया है।

---

१ म० उद्योग १४१।२१ २२
२ अगराज पृ० १४०
२ अगराज, पृ० १५७

कथाओं का उल्लेख कवि अत्यन्त सांकेतिक रूप में करता है। इसमें अतीत के गौरव के प्रति आस्था का प्रकाशन और सांस्कृतिक चेतना का उन्नयन होता है।

कृष्ण गीता का ज्ञान देते हैं

> हरि ने देखा मनुज को मोह व्याधि से ग्रस्त।
> गीता ज्ञान समान दी संजीवनी प्रशस्त ॥[1]

सम्पूर्ण सर्ग में इसी सूचना प्रधान शैली में दस दिन के युद्ध का चित्रण है। कृष्ण निरस्त्र कर्ण को देखकर पाण्डव पक्ष में आने का निमंत्रण देते हैं पर वह निषेधात्मक उत्तर देता है

> न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव।
> त्यक्त्वा प्राणान् हि मां विद्धि दुर्योधन हितैषिणम् ॥[2]

और कवि इस रूप में तथ्य को प्रस्तुत करता है।

> होकर भी हम भीष्म विपक्षी
> हैं कुरुपति शत्रु-दल भक्षी
> त्यागेंगे न कदापि हम दुर्योधन का पक्ष
> आयेंगे संग्राम में सायुध शीघ्र समक्ष।[3]

द्रोण का सेनापतित्व १९ वें सर्ग में द्रोण के नायकत्व में युद्ध एवं घटोत्कच-वध का चित्रण है। युद्ध की स्वाभाविक रूपरेखा के साथ कवि इन तीनों प्रमुख घटनाओं का संक्षेप में चित्रण करता है। अंगराज ने द्रोण के सेनापतित्व का प्रस्तावित किया। द्रोण के नायकत्व में प्रथम दिन का युद्ध अनिर्णायक रहा, दूसरे दिन छल से अभिमन्यु का वध किया गया। कवि ने अभिमन्यु-वध का सांकेतिक रूप में चित्रित किया है। कौरवों द्वारा किये गये छलों की चर्चा नहीं की गई—कर्ण के प्रयास से ही अभिमन्यु का वध हो पाता है। जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करके अर्जुन पुनः युद्ध प्रारम्भ करता है। इस स्थल पर कवि मूल ग्रन्थ की भावना के विपरीत द्रोण को अर्जुन का रक्षक बनाता है। इस पक्ष के युद्ध चित्रण में भी कवि कर्ण की वीरता का चित्रण प्रमुख रूप से करता है।[4] पार्थ के द्वारा चिता निर्माण का दृश्य और दिन शेष रहने के कारण जयद्रथ के वध की घटना को कवि संक्षेप में चित्रित करता है। रात्रि के युद्ध का अत्यन्त सजीव चित्रण कवि ने किया है

---

१ अंगराज पृ० १८८
२ म० भीष्म० ४३।९२
३ अंगराज, पृ० १८८ १९०
४ म० द्रोण० २०४।२६

युग्म दलों में जले दीपिका दीप असंख्यक
हुआ लगा निशीथ युद्ध तब महाभयानक
महारथी प्रतिरथी भिड़ गये सभी परस्पर
वाहक वाहक भिड़े तथा कुंजर प्रतिकुंजर ॥[1]

महाभारतकार के युद्ध चित्र का कहीं कहीं पर अत्यंत प्राणान्वित के साथ प्रस्तुत किया गया है। भीम के द्वारा कर्ण की निरंतर पराजय का वर्णन कवि ने नायक के चरित्र के अपकर्ष के भय से छोड़ दिया है। किन्तु कर्ण के उत्कर्ष के स्थलों का बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया गया है।

पुनः पुनस्तूवरक मूढ़ औदरिकेति च।
अकृतास्त्र मा योत्सीर्बाल संग्रामकातर ॥[2]

× × ×

रे स्त्री दबक्त बीरपोत, आत्मिता शिकर।
मम समान बीरों से करना पुनः न समर ॥[3]

सामान्यतः कवि ने युद्ध के उन्हीं स्थलों का चित्रण किया है जिनसे कर्ण के पौरुष की अभिव्यक्ति होती हो। विपरीत स्थितियों की ओर कवि ने दृष्टि नहीं डाली। घटोत्कच में पतन में कवि ने घटोत्कच के माया-युद्ध और कर्ण के पौरुष का चित्रण मुख्य रूप से किया है। यहां पर महाभारत में वर्णित तथ्य का त्यागकर कवि ने अंगराज के उत्कर्ष प्रदान की ओर अधिक ध्यान दिया है।

कवि द्रोण-वध की मार्मिक सूचना देता है फलस्वरूप अश्वत्थामा नारायणास्त्र का संधान करता है किन्तु कृष्ण की कृपा से सभी पाण्डव और सेना उस प्रसंग से सुरक्षित हो जाते हैं।

बीसवें सर्ग में कवि ने कर्ण के सेनापतित्व में युद्ध का सविस्तर चित्रण किया है। वीरता की मूर्ति के रूप में कर्ण युद्ध करता है और शत्रु पक्ष का सारा व्याकुल होती है। इस सर्ग में कर्ण से नकुल की पराजय का उल्लेख है। कर्ण दूसरे दिन के लिए शल्य को वचन स्वतंत्रता का वचन देकर सारथी पद के लिए तैयार कर लेता है। यह सर्ग इक्कीसवें सर्ग के युद्ध की पृष्ठभूमि के रूप में माना जा सकता है।

इक्कीसवें सर्ग में कर्णार्जुन युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। मूलग्रंथ में कर्ण के पौरुष का उत्कर्ष यत्र तत्र है और अर्जुन अधिक समय तक कर्ण पर हावी

---

१ अंगराज, पृ० २०६
२ म० द्रोण० १३६।६५
३ अंगराज पृ० २०७
४ अंगराज, पृ० २१४

रहता है किन्तु 'अंगराज' में कर्ण के पौरुष की प्रधानता दिखाई गई है। 'महाभारत' के शल्य और कर्ण के वार्तालाप को कवि ने अत्यन्त संक्षिप्त रूप में प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है।

बोला मद्रराज सप्रहास अंगराज से
सुन-सुन सावधान होकर प्रलाप करो
बार बार ध्यान करो पार्थ के प्रताप को।[1]

पर इसके उत्तर में कर्ण का अदम्य पौरुष बोलता है—

स्पन्दन बढ़ाओ हम हारेंगे न हारे कभी
क्रूर भवितव्यता से, हीन दैव गति से।[2]

महाभारतीय सम्पूर्ण युद्ध के चित्राङ्कन में कवि ने कुशलता का परिचय दिया है और युद्ध के मूल स्वर को सुरक्षित रख सका है।[3] कर्ण एवं धर्मराज के युद्ध प्रसंग में यद्यपि धर्मराज की पराजय महाभारतीय तथ्य है किन्तु 'अंगराज' के कवि ने इस प्रसंग को कुछ विस्तार करके चित्रित किया है और धर्मराज की हीनता, शक्ति-दुर्बलता, कायरता का प्रदर्शन किया है। कवि की सहानुभूति धर्मराज के विपक्षी कर्ण के प्रति है और इस अवसर पर उसने तथ्य एवं परम्परा विरोधी स्वर को प्रमुखता दी है। परास्त होकर जाते हुए धर्मराज के प्रलाप का चित्रण कवि की मौलिक सूझ है जो धर्मराज के चारित्रिक दोषों के दिखाने के लिये की गई है। अश्वसेन सर्प के प्रसंग को कवि ने यथावत ग्रहण किया है।

इस सर्ग में युद्ध के व्यापक चित्रण में कवि ने सायास और साभिप्राय कर्ण के चरित्र का उत्कर्ष, और अर्जुन की दुर्बलताओं को दिखाने का प्रयास किया है। दोनों वीरों की चोटें कितनी समान और पौरुष सम्पन्न थीं यह एक चित्र में देखा जा सकता है।[4] कवि युद्ध के समय आचार विस्मृति की सैद्धान्तिक स्थिति का संकेत करता है। वस्तुतः इस स्थल पर जिस रूप में 'महाभारत' में धर्म एवं युद्ध धर्म की व्याख्या की गई है कवि ने उसकी चर्चा नहीं की। वह केवल कथा के विकास सूत्रों का चित्रण करता रहा। वैचारिक रूप से युद्ध के मानवीय मूल्यों के स्थान को लेकर यदि विवेचना की जाती तो कथा के साथ विचार प्रतिपादन का गौरव सन्निविष्ट हो सकता था, पर कवि ने इस पक्ष की समस्त ग्रन्थ में उपेक्षा की है। कर्णार्जुन युद्ध के प्रसंग में कवि ने इस बात पर अधिक बल दिया कि अर्जुन युक्ति से, दैवी शक्ति से जीता और कर्ण के साथ छल-पूर्ण व्यवहार किया गया। किन्तु इस बात पर दृष्टि

---

१ अंगराज पृ० २२०
२ अंगराज पृ० २२१
३ अंगराज, पृ० २२६
४ अंगराज पृ० २५१

नहीं डाली कि इसके पूर्व जो छल-पूर्ण व्यवहार कौरवों के पक्ष से हुए उनका औचित्य क्या था ?

पाण्डवों के पक्ष की सफलता का कारण यह है कि उनका पक्ष अधिकतम धर्म सम्मत रहा और कौरव अधर्म की ओर झुके रहे। अठारह दिन के युद्ध में दोनों ओर से अनियमितायें हुई यह एक अन्य बात है। युद्ध की अनियमितताओं को लेकर पाण्डवों के पक्ष की कटु व्याख्या की जाय यह भी धर्मसम्मत नहीं है।

बारहवें सर्ग में कवि ने स्त्री पर्व के २१ वें अध्याय के आधार पर कर्ण की पत्नि के विलाप का संक्षिप्त चित्रण किया है। इस सर्ग में कवि ने करुण विप्रलम्भ रसान्तर्गत कथा की परिणति की है और प्रसंग वश नियति तथा काल की गति की अनिवार्यता पर विश्वास प्रकट किया है।

कवि इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि कर्ण के जीवन में ओज की प्रधानता थी और उसने कर्म युद्ध में ही जीवन की उपादेयता की स्थापना की। यह विश्वास होते भी कि वह अर्जुन से हार जायेगा कर्ण वीरता से लड़ा उसकी दृष्टि धर्म-सौन्दर्य के चमत्कृत विधान पर रही फल पर नहीं। अतः कर्ण का जीवन महान है।

तेरहवें सर्ग में कवि ने वर्णनात्मक शैली में शल्य के सेनापति बनने और युधिष्ठिर के द्वारा मारे जाने का वर्णन किया है। महाभारत' में इस प्रसंग में युधिष्ठिर का पौरुष जागा पर 'अंगराज' में शल्य युधिष्ठिर-युद्ध का चित्रण निर्जीव रूप में हो पाया है। कवि की भक्ति माना कर्ण की मृत्यु के उपरान्त कथा का नियमन नहीं करना चाहती पर बलात उस पर यह कार्य सौंपा जा रहा है। इस स्थल पर शल्यपर्व की कथा का संक्षेप किया गया और प्रयास संयुक्त दुर्योधन के चरित्र का उत्कर्ष दिखाया गया। इसी क्रम में संक्षेप में कवि ने अश्वत्थामा के द्वारा समस्त पाण्डव-सेना संहार का वर्णन किया है। इस स्थल पर कवि ने इस युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार नहीं किया।

२४ एवं २५ वें सर्ग उपसंहार के हैं। इनमें कवि ने मुख्य घटनाओं में शेष कथा का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया है। इसमें अश्वत्थामा की मणि का छिनना एवं दाह क्रिया का संक्षिप्त चित्रण करके कवि ने रवि के द्वारा यह सूचना दी है कि महाभारतकार व्यास महाभारत का लेखन कार्य करते हैं किन्तु पाण्डवों की महत्ता का प्रतिपादन विधाता से कर रहे हैं।

समीक्षा

यह तो हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि अंगराज के कवि का दृष्टिकोण पाण्डव विरोधी है। सम्पूर्ण काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट भान होता है कि कवि ने कतिपय महाभारत के प्रसंग साम्य का अपनी विचारधारा के उपलक्ष्य में प्रस्तुत

म समेटन के लाभ के कारण आगराज का जीवन-दर्शन अधिक परिपुष्ट होकर हमारे समक्ष नहीं आया। कथा की प्रधानता के कारण वर्णनात्मकता का इतना आधिक्य रहा कि अनेक विचारोत्तेजक स्थलों पर भी कवि अपने को विचारक के रूप में प्रस्तुत करने में असमर्थ रहा, और वर्णन गुणों की उदात्तता के साथ, जीवन-दर्शन की स्थापना में, मूल विषय की गरिमा के अभाव में कवि प्रतिभा का उपयोग नहीं हो पाया। इस पर भी यह काव्य उच्च प्रबन्ध काव्यों में गणनीय है।

एकलव्य प्रसंग

महाभारत' के एकलव्य प्रसंग पर आधारित दो प्रकार की रचनाएं उपलब्ध हैं। स्वतन्त्र काव्य और खण्डकाव्य। खण्डकाव्यों में विशेष नवीन उद्भावनाओं का अभाव है। डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' और विनोद चन्द्र शर्मा के 'गुरुदक्षिणा' प्रबन्ध काव्य में यह प्रसंग आधुनिक सामाजिकता के आलोक में विन्यस्त है। इस कथा में दलित वर्ग की उन्नति का समर्थन, अछूतोद्धार, जातिवाद का विरोध हुआ है और सामाजिक समानता का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक युग की सामाजिक व्यवस्था में जनिजात एवं जनमिजात का संघर्ष क्रान्तिकारी मोड़ पर है, समता का आधार केवल धन नहीं है अपितु मानव की उच्च अवस्थाएं भी उतनी ही ज्वलन्त हैं, अतः आज का सुधारवादी कवि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन का स्वरघोष करता है।

महाभारतीय एकलव्य की कथा के प्रसंग से आज का कवि अनेक परिस्थितियों में असमानता पर आघात करते हुए तत्कालीन समाज के सदन से आधुनिक जातिवाद, वादवाद भेदवाद का आमूल खण्डन करता है। एकलव्य के चरित्र पर काव्य रचना की प्रेरणा एकलव्य की सरलता, दृढ़ता, निश्छल गुरु भक्ति अनवरत साधना और त्याग की सर्वोच्च भावना आदि गुण हैं।

एकलव्य

डा० वर्मा ने आमुख में कहा है "इन आख्यानों और उपाख्यानों में मानव-जीवन अत्यन्त यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर अंकित किया गया है — ऐसा यथार्थवादी दृष्टिकोण जिसमें जीवन की स्वाभाविक दुर्बलताएं प्रबलतम्भावित में उलझे हुए पशुओं की तरह संकुचित हो रही हैं।"[1] 'एकलव्य' में कवि मानवीय दुर्बलताओं की सहानुभूति देता है।

वस्तु संग्रहण 'एकलव्य' और 'गुरुदक्षिणा' में 'महाभारत' के अध्याय १२६ से १३ तक की कथा ग्रहण की गई है। एकलव्य ने महाभारत' के १२६ में कृपाचार्य द्रोण अश्वत्थामा आदि महारथियों की जन्म प्रसंग गृहीत है। ३७ वें श्लोक से ६७ वें श्लोक तक की कथा के आधार पर परिचय सर्ग अध्याय १३० में दर्शन और १३० तथा १३३ अध्याय से प्रदर्शन, अध्याय १३१ के ३१ से ३८ वें श्लोक से आत्मनिवेदन

---

1 एकलव्य, आमुख पृ० २

अगराज' में जिस प्रकार द्रौपदी की कामुकता और पाण्डवों की आचरण-भ्रष्टता का चित्रण किया है वह अमास्कृनिक और हीन दृष्टि का परिचायक है। या तो कवि आचरण भ्रष्टता का सतक प्रमाण प्रस्तुत करता, अन्यथा इस स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति से जमी हुई आस्था का सराच लगती है, और किसी लाभ की आशा नहीं की जा सकती। युधिष्ठिर के सम्पूर्ण जीवन के त्याग सहनशीलता औदार्य, धार्मिकता आदि सद्गुणों के कारण इस प्रकार की दुष्ट कल्पना असगत है।

दूसरा प्रसग है अर्जुन वनवास। महाभारत' में नारद जी ने द्रौपदी के विषय में पाचों भाइयों के समय का निर्धारण करके नियम का भग करने वाले के लिए वनवास के दण्ड का[1] विधान दिया। एक दिन ब्राह्मण की गौओं की रक्षा के लिए अर्जुन को नियम भग करना पड़ा[2] इस अपराध के लिए युधिष्ठिर के मना करने पर भी अर्जुन ने वनवास का दण्ड स्वीकार किया।[3] अगराज के कवि की दृष्टि ने इस कठोर स्थिति में भी युधिष्ठिर के चारित्रिक अपकर्ष का सकेत खोज लिया। कवि को कल्पना करने का अधिकार है चाहे वह कल्पना दुष्ट हो अथवा कल्याणकारी। यहाँ कवि की कल्पना है कि पाण्डवों ने अर्जुन के प्रतिगर्वित होकर उस पर दोष लगाकर वन में भेज दिया।[4] 'महाभारत की धर्ममूलक स्थापना के विपरीत कवि किस अर्थ में अर्जुन के वनवास को स्वीकार करता है? महाभारत का अर्जुन गृह प्रवेश में पूर्व सोचता है यदि मैंने राजद्वार पर रोके इस ब्राह्मण की गौओं की रक्षा नहीं की तो युधिष्ठिर को अधर्म का भागी होना पड़ेगा।[5] कहाँ तो पाण्डवों की यह धर्मपरायणता और कहाँ श्री आनन्दकुमार की अनोखी कल्पना। वस्तुत कवि एक विशेष मनोग्रन्थि से ग्रस्त है और उसी की प्रेरणा से वह प्रत्येक दिशा में पाण्डव विरोधी अभियान में व्यस्त है।

द्यूत के प्रसग में युधिष्ठिर से प्रारम्भ कराना, द्रौपदी की प्रेरणा से अनुद्यूत के लिए तैयार होना और युद्ध में पाण्डवों की ओर से अन्याय होने का कथा परिवर्तन भी कवि ने अपने मूल उद्देश्य की पूर्ति के हेतु किया है। सक्षेप में निष्कर्ष यह है कि अगराज' की रचना कर्ण के दिव्य औदात्य मण्डित जीवन के आधार पर हुई है। इसमें कवि ने वीरकाव्य की सामयिक आवश्यकता के कारण वीररस प्रधान काव्य की रचना की। कर्ण के चरित्र के प्रति अतिरिक्त आस्था और पक्षपात होने के कारण समस्त काव्य कर्ण का प्रशस्ति काव्य बन गया है। सम्पूर्ण महाभारत' की कथा को एक काव्य के कलेवर

१ म० आदि० २११।२६
२ म० आदि० २१६।२१ २२
३ म० आदि० २१२।३५
४ अगराज पृ० ७०
५ उपप्रेक्षणजो धर्म सुमहान् स्यान् महीपते।
यद्यस्य रुदतो द्वारि न करोम्यद्य रक्षणम्। म० आदि० २१२।१६

म समेटने के लोभ के कारण 'अगराज' का जीवन-दर्शन अधिक परिपुष्ट होकर हमारे समक्ष नही आया। कथा की प्रधानता के कारण वर्णनात्मकता का इतना आधिक्य रहा कि अनेक विचारात्मक स्थलों पर भी कवि अपने को विचारक के रूप म प्रस्तुत करने म असमर्थ रहा, और वर्णन शैली की उदात्तता के साथ, जीवन-दर्शन की स्थापना म, मूल विषय की गरिमा के अभाव म कवि प्रतिभा का उपयोग नहीं हो पाया। इस पर भी यह काव्य अच्छे प्रबन्ध काव्यो म गणनीय है।

एकलव्य प्रसग

महाभारत' म एकलव्य प्रसग पर आधारित दो प्रकार की रचनाए उपलब्ध ह। स्वतत्र काव्य और काव्याश। काव्याशो म विशेष नवीन उदभावनाओ का अभाव है। डा० रामकुमार वर्मा के 'एकलव्य' और विनोद चन्द्र शर्मा के 'गुरुदक्षिणा प्रबन्ध काव्य' म यह प्रसग आधुनिक सामाजिकता के आलोक म विन्यस्त है। इस कथा से दलित वर्ग की उन्नति का समर्थन अछूतोद्धार जातिवाद का विरोध हुआ है और सामाजिक समानता का प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक युग की सामाजिक व्यवस्था म अभिजात एव अनभिजात का सघर्ष क्रान्तिकारी मोड पर है समत्व का आधार केवल अर्थ नही है अपितु मानव की अन्य अवस्थाए भी उतना ही ज्वलन्त है अत आज का सुधारवादी कवि सामाजिक व्यवस्था म परिवर्तन का स्वरघोष करता है।

महाभारतीय एकलव्य की कथा के प्रसग से आज का कवि अनेक परिस्थितियो म असमानता पर आघात करते हुए तत्कालीन समाज के सदर्भ से आधुनिक जातिवाद वर्गवाद, भेदवाद का आमूल खण्डन करता है। एकलव्य के चरित्र पर काव्य रचना की प्रेरणा एकलव्य की सत्यता, दृढता, निश्छल गुरु भक्ति अनवरतसाधना और त्याग की सर्वोच्च भावना आदि गुण हैं।

एकलव्य

डा० वर्मा ने आमुख म कहा है इन आख्यानो और उपाख्यानो म मानव जीवन अत्यन्त यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर सामने आया है — ऐसा यथार्थवादी दृष्टिकोण जिसमे जीवन की स्वाभाविक दुर्बलताए प्रबल आँधियो म उखडे हुए पेडो की तरह भूलुण्ठित हो रही है।[1] एकलव्य म कवि मानवीय दुर्बलताओ का महानुभूति देता है।

वस्तु सग्रहण 'एकलव्य और गुरुदक्षिणा' म महाभारत' के अध्याय १२६ से १३ तक की कथा ग्रहण की गई है। एकलव्य म महाभारत' के १२६ से कृपाचार्य द्रोण अश्वत्थामा आदि महारथियो का जन्म प्रसग गृहीत है। ३७ वें श्लोक से ६७ वें श्लोक तक की कथा के आधार पर परिचय सर्ग, अध्याय १३० म दर्शन और १३० तथा १३३ अध्याय से प्रदर्शन अध्याय १०१ के ३१ से ३४ वें श्लोक से आत्मनिवेदन

१ एकलव्य, आमुख पृ० २

धारणा सकल्प साधना सर्गों का विकास हुआ है। स्वप्न लाघव और द्वन्द्व सग की अवतारणा ३८ से ४३ वें श्लोक के आधार पर है। ५५ से ५६ वें श्लोक से दक्षिणा सग निर्मित हुआ है।

परिवतन-परिवर्धन

दशन प्रसग यह प्रसग महाभारत' के १३० वें अध्याय के आधार पर रचित है। मूल ग्र थ म एकलव्य की उपस्थिति का अभाव है किन्तु एकलव्य' म इसस द्रोण के परिचय और दशन की कलात्मक अभिव्यजना हुई है। एकलव्य अपने मित्र नागदत्त स द्रोण द्वारा वीटा निकालने की कथा कहकर अपनी भक्ति भावना की प्रतिष्ठा करता है। इस प्रसग स कवि न एकलव्य की अटूट एव निश्छल गुरुभक्ति का परिचय दिया है। महाभारत' म एकलव्य की भावनाओं की उपेक्षा है कवि न एकलव्य के चारित्रिक उत्कष के कारण इस प्रसग की नूतन उदभावना की है। गुरु का लोकव्यापी प्रशसा सुनकर शिष्यत्व की कामना म साक्षात नविन चमत्कार देखकर नतमस्तक होना, अधिक स्पृहणीय है। महाभारत म वर्णित राजकुमारो की लज्जा का प्रसग वसा मनोवज्ञानिक नहीं है जसा एकल य के कवि न प्रस्तुत किया है।

राजकुमारो का बीटा गिरा हुआ है वे उसे निकालने म समथ नहीं है अत लज्जित हैं

> तता""यायमवक्षत व्रीडयावनताननाः ।
> तस्या यागमविन्दन्ता भग्न चोत्कण्ठिताभवन ॥[1]

एकलव्य म इस सूचनात्मक प्रसग का कितना आकुल विवशता स चित्रित किया गया है—

> कौतुक स देखा क्या य राज पुत्र सामने
> सजन वे वग म है काष्ठ यष्टि हाथ म
> किन्तु मजत नहीं हैं मौन हैं निराश हैं
> चित्र म लिख स सब लज्जित अवाक हैं।[2]

द्रोण ईषीकर उनका वीटा निकालत हैं और तजस्वो राजकुमारो के बन का धिक्कारत हैं, मूलग्र थ म द्रोण स्वय अगूठी डालकर निकालत है किन्तु एकलव्य म अगूठी को निकालन का प्रस्ताव दुर्योधन करता है, क्योंकि उस द्रोण का काय द्र जाल ज्ञात होता है।

---

१ म० आदि० १३०।१९
२ एकलव्य० पृ० १२

वीटा च मुद्रिकाचैव ह्यहमेतदपि द्वयम् ।
उद्धरयमिषीकाभिर्भोजनं मे प्रदीयताम् ।[1]

× × ×

वीटिका तो वेध्य है परन्तु वह वस्तु जो
मध्य भाग से है हीन जिस

यह मुद्रिका ।[2]

शीघ्र ही प्रत्यंचा खिंचा वत्स कर्ण व्याय में
चलाचल लक्ष्य से उन्होंने साथ बाण को
मुद्रिका के मध्य भाग में प्रवेश करके

× × ×

और मुद्रिका को गुप्त कूप से निकाल के
फेंक दिया आय ने युवाजन के सामने ।[3]

डा० वर्मा ने इस प्रसंग को दुर्योधन की उद्दण्डता और पाण्डु पुत्रों की निश्छलता के प्रकाशन के लिए, इस रूप में चित्रित किया है। इन कर्म से प्रभावित राजकुमार आचार्य का परिचय प्राप्त करते हैं। एकलव्य दूर से देखकर द्रोण के प्रति भक्ति-निष्ठ हो उठता है।[4]

द्रोण परिचय 'महाभारत' में द्रोण-परिचय और द्रुपद प्रसंग विस्तार से वर्णित है उसी आधार पर 'एकलव्य' में हस्तिनापुरी-सौन्दर्य राजकीय स्थिति दरबारी वातावरण और द्रोण-जन्म आदि का विस्तार किया है। 'महाभारत' में अश्वत्थामा के जन्म की कथा परशुराम से अस्त्र प्राप्ति और द्रुपद के विश्वासघात के प्रसंग में, द्रोण के गुप्तरूप से हस्तिनापुर में रहने की कथा है। एकलव्य में गुप्तवास प्रसंग का प्रभाव है। कवि अपनी स्वतंत्र दृष्टि से कथा विकास करता है और अत्यन्त नाटकीयता से द्रोण का आगमन चित्रित करके उन्हें आचार्य की प्रतिष्ठा दिलाता है।

'एकलव्य' में इस परिचय की सम्पूर्णता का विस्तार काव्य की विषय वस्तु के विस्तार और द्रोण की मनस्थिति के प्रकाशन के हेतु किया गया है। आचार्य द्रोण की प्रतिकार भावना का अत्यन्त सशक्त एवं मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रण किया है। धनाभाव के कारण दूध न मिलने से पुत्र की अवस्था पर द्रोण का मानसिक सन्ताप ही हस्तिनापुर आने की पृष्ठभूमि है।

---

१ म० आदि० १३०।२८
२ एकलव्य पृ० १७
३ एकलव्य, पृ० १८
४ एकलव्य, पृ० २४

गोभीर पिवतो द्रष्ट्वा धनिनस्तत्र पुत्रकान् ।
अश्वत्थामारुदद् बालस्तन्मे सन्देहयदादिश ।[1]

चारो ओर अधकार व अज्ञान और शिक्षा ज्ञान विलुप्त होने से द्रोण की विवशता जन्य स्थिति का कारुणिक प्रकाशन हुआ है। पुत्र को सम्मान के लिए चावल घोलकर पिलाया गया पर सभी बालकों ने उसका उपहास किया।[2] एकलव्य मे कवि ने इसे और अधिक करुणा से अभिव्यजित किया है।

गाय का दूद पिया। दूद पिया गाय का।
और सब बालक थे दूरस्थ हसते।[3]

इस पर द्रोण को अत्यन्त आत्मग्लानि हुई और वे भार्गव परशुराम के पास धन याचनार्थ गये। परशुराम से उन्हे धन के स्थान पर धनुर्वेद की उच्चतम शिक्षा प्राप्त हुई। द्रोण की समस्या का समाधान नही हो सका। इस भौतिक जगत मे धन की व्यावहारिक उच्चता है इसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता अत द्रोण अन्य मित्र द्रुपद के पास गये किन्तु अपमानित होकर लौटे।

कवि की सूक्ष्मदर्शी प्रतिभा उस समय का कितना सटीक चित्र उपस्थित करती है—

पत्नी के दृगो मे अश्रुबिन्दु कुछ छलके
फिर बिखर गये मच के पत्थर पर
क्षोभ और ग्लानि मे हृदय अगार जैसा
धक धक जलता था।[4]

इस प्रसग मे कवि के द्वारा भौतिक जगत मे धन की आवश्यकता और जीवन मे उसका महत्व व्यजित हुआ है। द्रुपद के प्रसग मे कवि समान स्तरीय मत्री की प्रतिष्ठा का युग की भावना के रूप मे देखता है। द्रुपद की कथा कहते हुए द्रोण का उराजना शिखर पर विकीर्ण हो समस्त दरबार को स्तब्ध कर देती है—यहा पर कवि महाभारतकार से अधिक द्रोण की मानसिक स्थिति की व्याख्या कर पाया है।

राजकुमारो की शिक्षा के प्रसग मे अस्त्र शस्त्रो की शिक्षा तथा अभ्यास का वर्णन है। महाभारतीय शस्त्र शिक्षा के आधार पर ही स्वतत्र रूप से शिक्षा के स्वरूप और महत्ता का प्रतिपादन करता है।

लक्ष्य का रहस्य है—

---

1. म० आदि० १३०।४१
2. म० आदि० १३०।४४ ४६
3. एकलव्य पृ० ३८
4. एकलव्य पृ० ४०

दृष्टि और लक्ष्य म परस्पर हो कपण ।
वीरा लक्ष्यभेद म एकाग्र दृष्टि चाहिए[1]

यहा कवि विद्यार्थी के लिए अहकार स्वाथ द्वेष भावना क त्याग का वणन करते हुए स्पष्टत द्वेष और अहकार का नान का विनाशक बताता है ।

नानगिरि चढना सहज है किन्तु वीर ।
अहकार द्वेष जीतना महाकठिन है ।[2]

इस कथन म पाठ्य शिक्षा के साथ नतिक शिक्षा की अनिवायता पर बल दिया और पाथ की अद्वितीयता के प्रसग म वक्तव्य निष्ठा, सौजन्य और आस्था की दृढता चित्रित की है । जितेन्द्रिय, वीर, निश्छल जिज्ञासु निष्ठावान और कमठ का सम्पूण उपलब्धिया सहज प्राप्त है ।

भुञ्जत एव तु कौन्तयो नास्यादयन्त वतते ।
हस्तस्तजस्विनस्तस्य अनुग्रहण कारणात् ।।
तदभ्यासकृत मत्वा रात्रावपि स पाण्डव
योग्या चक्रे महाबाहुधनुषा पाण्डुनन्दन ।।[3]

कवि न इस प्रसग को द्रोणाजुन वातालाप क रूप मे कलात्मकता स चित्रित किया है । अजुन अनुग्रहण स अधेरे म शस्त्र सीखन का प्रयास करन लग और इसी तरह शब्दभेद नान भी सीख गय ।

प्रेरणा एकलव्य की प्रेरणा के आख्यान को पारिवारिक सम्भावनाओ के साथ ग्रथित किया है । माता एकलव्य म भोजन क लिए आग्रह करती है, पर वह मित्र को गुरु की उच्चता और अपनी भक्ति के प्रकाशन म व्यस्त है । पिता का प्रवश होता है, और एकलव्य का प्रस्ताव निषादराज के समक्ष प्रस्तुत होता है, व आय एव अनाय सस्कृतियो के सघष की रुपरखा के आधार पर एकलव्य की सफलता म सन्देह करत हैं । कवि इस सघष का नये रूप म प्रस्तुत करता है—वग भेद वण भेद क कारण धनुर्वेद की शिक्षा एकलव्य का न मिल सकी । भीष्म की राजनीति के बन्धन म द्रोण की असमथता क लिय पृष्ठभूमि तयार हुइ जिसका विकास आत्मनिवदन म होता है । यद्यपि वनपव क एक सौ अस्सी वें अध्याय म युधिष्ठिर शील की प्रधानता की स्थापना करत है तथापि एकलव्य क प्रसग म यह बात आचरित सत्य का रूप धारण नही कर पाती । 'एकलव्य' म इस सघष से तत्कालीन वणभेद की भावना का प्रकाशन होता है । कवि की सुधारवादी भावना क कारण निषाद जाति के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति अभिव्यक्त हुई है जिसे काव्य का सन्देश माना जा सकता है ।

---

१ एकलव्य, प० ५७
२ एकलव्य प० ६१
३ म० आदि० १३१।२४ २५

शस्त्र प्रदर्शन इस प्रसंग में युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन की शक्ति का प्रदर्शन हुआ है। इस सर्ग में इन तीन वीरों के चरित्र के उन्नयन की ओर कवि की दृष्टि अधिक रही है। रंगभूमि में कर्ण का प्रसंग उपेक्षित है क्योंकि उसका काव्यविषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है अर्जुन के प्रवेश और प्रदर्शन को कवि ने नाटकीय रूप से चित्रित किया है।

आग्नेयेना सृजद् वह्निं वारुणेना सृजत् पयः
वायव्येना सृजद् वायु पार्जन्येना सृजद् घनान् ॥[1]

× × ×

प्रखर आग्नेय से लगादी आग व्योम में—

× × ×

अग्निवर्ण व्याप्त हुए व्योम रोम रोम में।
शीघ्र ही उन्होंने वारुणास्त्र संधान किया
जल की फुहार उठी अग्नि अन्तराल में।

× × ×

अस्त्रवायव्य से प्रभंजन किया प्रेरित
जिससे पवन उनचास बहन लगे।[2]

आत्म निवेदन आत्मनिवेदन महाभारत में दो श्लोकों में वर्णित है। कवि ने आचार्य द्रोण की विवशता तथा एकलव्य की भक्ति की एकनिष्ठता सिद्ध करने के लिए आत्मनिवेदन का विस्तृत किया है। कथा के महाकाव्योचित विकास के हेतु द्रोण एवं एकलव्य का यह अन्त समय अत्यन्त अनिवार्य था। द्रोण एकलव्य में योग्यशिष्य के पर्याप्त गुण पाते हैं तथापि तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था की नीति में आबद्ध होने के कारण उसे शिक्षा नहीं दे सकते। वत्स ! शिष्य बनने की योग्यता है तुममें—कहकर द्रोण 'धनुर्वेद ब्राह्मणों को क्षत्रियों का चाहिए' की घोषणा करते हैं। इस कथन में जहां एक ओर तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था का आग्रह है वहां अर्जुन की अद्वितीयता को लेकर मानसिक संघर्ष भी है। कवि ने इसकी अभिव्यक्ति विवशता के रूप में की है और आचार्य द्रोण को राजनीति का एक यन्त्र बनाकर प्रस्तुत किया है।

पार्थ ! मेरा स्वार्थ है कि मेरे अपमान का
नाश प्रतिशोध तुम शीघ्र हो द्रुपद से।
तुमको बनाना चाहता हूं अतएव सुदृढ़
अस्त्र शस्त्र कौशल में अजय पराक्रमी।[3]

---

1 म० आदि० १३४।१६
2 एकलव्य पृ० १११
3 एकलव्य, पृ० १२५

इस प्रसग म कवि ने अभिजात वग की अनभिजात वग के शोषण की प्रवृत्ति का प्रकाशन किया है। यह प्रवृत्ति शाश्वत है, किन्तु निंदनीय भी, क्योंकि इसस मानव क प्राकृतिक अधिकारो का हनन होता है।

धारणा और ममता सग का कथानक कवि न स्वतत्र रूप म विकसित किया है। धारणा म एकलव्य की गुरु निष्ठा अभिव्यक्त हुई है। वह अपने मित्र को गुरु की विवशता का आभास कराता है। इस प्रसग मे साधना की निष्ठा और आन्तरिक विश्वास की प्रतिष्ठा होती है।

पूछो मत नागदत्त साधना का बीज जो
आम्रपल्लव अक की कठोर सधि बीच है।[1]

कवि का विश्वास है कि व्यक्ति निष्ठा से बाधाओ पर विजय पाने म समथ है। व्रती यदि व्रतपूर्णता क हेतु कटिबद्ध हो, तो जीवन की अधियारी रात्रि म उसे नक्षत्र भी प्रकाश देत है।

एकलव्य धनुर्वेद सीखने माता पिता की आज्ञा के बिना चला जाता है। पुत्र क वियोग म मा की ममता का विस्तृत चित्रण हुआ है। इस सग म वात्सल्य रस की पूर्ण परिणति है।

सकल्प और साधना सकल्प की पृष्ठभूमि के लिए महाभारत' म कोई कथानक नही है। कवि ने इस आधार पर कि एकलव्य न पूज्य गुरु की प्रतिमा बनाकर उसक समक्ष धनुर्वेद की शिक्षा और दक्षता प्राप्त की—इस सग की अवतारणा की है। रात्रि के समय नीरव दिशाओ और शान्त प्रकृति की गोद म बठा एकलव्य गुरु द्रोण की मिट्टी की प्रतिमा बनान का विचार करता है और उस प्रतिमा के मूक सकेत से धनुर्वेद सीखन का सकल्प करता है। इस प्रसग की उदभावना भूमिपति एव भूमिपुत्रा के भेद भाव की भर्त्सना क हेतु होती है। इसस कवि का सामाजिक उद्देश्य स्पष्ट होता है।

भूमिपति म तो मुक्तमानव विकृत है।
मूल्य नही जानत वे जीवन की गति का।[2]

इस विचार शृखला क साथ विशेषता यह है कि एकलव्य द्रोण क मम का वास्तविक रूप म जानने का प्रयास करता है। वह द्रोण का दोषी न कहकर तत्कालीन नीति का दोषी ठहराता है।

साधना म कवि सकल्प क प्रयोग का चित्रण करता है। महाभारत के युद्ध की घोषणा हो चुकी है इधर एकलव्य अपनी साधना म लीन है। वह अत्यन्त प्रयास स गुरु की प्रतिष्ठा करता है। यह स्थल सुरम्य तपोवन बन जाता है। अनक लतागुल्म यूह क समान हो जात हैं। उनक सकेत स एकलव्य नित्य प्रति धनुर्वेद सीखता है।

---

१ एकलव्य, पृ० १३७
एकलव्य, पृ० १७७

मूर्ति गुरु द्रोण की है, शिष्य एकलव्य ने,
स्निग्धचन्द्र ज्योत्सना और तीव्र रवि रश्मि ले,
सीप कण मिश्रित मृदुल रज कण में
भरकर तुषार पूर्ण नद जल डाल के
श्रमक करों से तथा अनिमेष दृष्टि से
पूर्ण मनोयोग में सुयोग में बनाई है।[1]

भीष्म की राजनीति महाभारत के वातावरण के संकेत की सम्भावना से कवि स्वतंत्र रूप से विचार करता है कि द्रोण की अस्वीकृति भीष्म की राजनीति का ही फल थी। यह अस्वीकृति द्रोण के मुख से अवश्य उच्चरित हुई, किन्तु इसके पीछे भीष्म की राजनीति का स्वर था। निषादों के शक्ति संचय में आर्यों के विरोध की कल्पना कवि की उच्चतम कल्पना है।

जानता हूँ भेदभाव आप नहीं मानते
किन्तु नीति आपसे ही यह मनवाती है।[2]

यहाँ कवि भेदभाव को व्यक्ति-कृत न मान कर समाज कृत मानता है। और इसी प्रकाश में इस प्रसंग का विकास करता है। कवि अत्यन्त विस्तार से एकलव्य की शिक्षा का चित्रण करता है। 'महाभारत' के एक श्लोक में व्यंजित एकलव्य की शिक्षा का कवि ने विस्तार से वर्णन किया है।

परया श्रद्धयोपेतो योगेन परमेण च।
विमोक्षादान सन्धाने लघुत्व परमाप सः।[3]

इस श्लोक का भाव विस्तार सम्पूर्ण सर्ग के उत्तरार्ध में हुआ है।[4]

भीष्म की राजनीति का कथन कवि की दृष्टि में अधिक उग्ररूप लेकर उपस्थित हुआ है। इस कारण कवि द्रोण के स्वप्न की कथा की स्वतंत्र प्रतिष्ठा करके द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व को वाणी देता है। एकलव्य की साधना निरन्तर उत्कर्ष पर है इधर द्रोण को स्वप्न आता है। द्रोण का स्वप्न सम्भवतः इस बात का प्रतीक है कि द्रोण निरन्तर निषादकुमार के विषय में विचार करते रहे होंगे। कुछ पथिकों द्वारा एक श्यामकुमार के धनुर्वेद की चर्चा भी सुनी होगी। द्रोण के अन्तर्मन ने राजनीतिक विवशता के कारण एकलव्य को शिक्षा देने से रोक दिया, किन्तु अवचेतन मन में उस बालक के प्रति क्षोभ अवश्य होगा जिसका उन्मुक्त प्रकाशन स्वप्न में हुआ। इसी मानसिक पृष्ठभूमि में कवि स्वप्न का आयोजन करता है। वे स्वप्न में अपनी प्रतिमा के समक्ष श्यामकुमार एकलव्य की धनुर्वेद साधना को देखते हैं।

---

१ एकलव्य पृ० १६३
२ एकलव्य पृ० १६६
३ म० आदि० १३१।३५
४ एकलव्य पृ० २०७-२०६

इगित निरन्तर मैं करता ही जाता हू
और कहता हू वत्स बधो इस लक्ष्य का।

× × ×

वत्स कौन। किसको मैं वत्स कह पाता हू[1]

स्वप्न म द्राण एकलव्य की श्रद्धा भक्ति का दशन करते हैं और वग-समानता को प्रतिष्ठा करते हैं। कवि द्रोण के आहत हृदय का प्रकाशन इन शब्दा म करता है।

हाय रे, अभाग द्रोण पिता भरद्वाज क
उज्ज्वल आदश तुझे आगे न बढा सके।
किसी गुरुकुल की स्थापना न कर सका।[2]

द्राण के मानसिक परिताप एव द्वन्द्व का चित्रण कवि की मौलिक सूझ है और इसस तत्कालीन नीति और सामन्तकालीन आर्थिक कसाव का चित्रण हाता है। गुरु कुल की उन्मुक्तता राजकुल के बन्दीगृह म व्याकुल दीखती है।

पाण्डव गुरु की आज्ञा पाकर आखेट क लिए जात हैं। व्याघ्र भालू, गज का सहार करन क उपरान्त भी उन्ह एकलव्य नही मिलता। महाभारत म सयोगवश पाण्डव और उनका कुत्ता एकलव्य क पास पहुँच जाते हैं किन्तु 'एकलव्य' म स्वप्न की पृष्ठभूमि के आधार पर पाण्डव जानबूझ कर एकलव्य की खोज के लिए निकलते है।

अथ द्रोणाभ्यनुज्ञाता कदाचित कुरुपाण्डवा।
रथैर्विनिययु सर्वे मृगयामरिमदन।[3]

'एकलव्य' म भी पाण्डव गुरु की आज्ञा से एकलव्य को देखने जाते हैं। मृगया क लिए गय कुमारा का लौटने म विलम्ब हो जाता है। आचाय द्राण भोजन की व्यवस्था करके, भत्य क साथ श्वान भेजत हैं। यह श्वान पाण्डवा को ढूढता हुआ एकलव्य के तपोवन म पहुचता है, भौंकन पर सात वाणो से बिद्ध होकर पाण्डवा के पास आता है। यह कथा का परिवर्धित रूप है। पाण्डव स्वय जाकर एकलव्य के आश्रम को देखते है। यहा कवि पुन एकलव्य की गुरु-भक्ति और निष्ठा का प्रकाशन करता है।

दक्षिणा अजु न के मानसिक द्वन्द्व की प्रेरणा केवल वैयक्तिक अद्वितीयता ही नही अपितु अनार्य जाति के उत्थान की आशका, उसस भी प्रबल होकर उस स्फुरित करता है। अजु न सम्पूर्ण सूचना गुरुदेव को देता है, तदुपरान्त अपने आप स्थिति पर विचार करता है। नीति की आवश्यकता कठोर व्यावहारिकता, क्षत्रिय जाति का

१ एकलव्य, पृ० २१७
२ एकलव्य, पृ० २२३
३ म० आदि० १३१।३६

सगठन, मानो सबको एकलव्य ने हिला दिया, अत अर्जुन के द्वन्द्व म प्रकारान्तर म एकलव्य के व्यक्तित्व का उन्नयन ही हुआ है और वह छल से उसकी हानि का सकल्प करता है। तभी उसका अदम्य निश्छल वीरत्व उसकी आत्मा के तेज स प्रकाशित होता है

दक्षिण भुजा ही काट डालू नही यद्यपि यह ता
राजनीति की भले हो मान्यता, परन्तु मैं
वीर राज पुत्र होके गर्हित जघन्यता
कर न सकूगा अन्य जाति चाहे नष्ट हो।[1]

इस द्वन्द्व और द्वन्द्व के परिहार म कवि ने व्यक्तिगत नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा की है।

दक्षिणा सर्ग म गुरुद्रोण और अर्जुन का एकलव्य के आश्रम म पहुचना दक्षिणा लेने और एकलव्य का माता तथा पिता के आने का चित्रण है। कथा के अन्तिम किन्तु सर्वाधिक मार्मिक प्रसग को कवि ने अत्यन्त नाटकीय कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। मूलग्रन्थ म गुरु द्रोण स्वय एकलव्य के दाहिने हाथ का अगूठा मागते हैं।[2] इससे आचार्य का चरित्र अत्यन्त सामान्य स्थिति म आ जाता है। कवि द्रोण के चरित्र के इसी कलक को धोना चाहता है, इस कारण वह अत्यन्त कलात्मकता स स्थिति का चित्रण करता है। द्रोण एकलव्य के पास आकर उसकी भक्ति और ज्ञान की प्रशसा करते है किन्तु अर्जुन आचार्य के प्रण की रक्षा का प्रसग उठाते हैं। यह प्रण आचार्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न बनता है। एकलव्य अपने गुरु को किसी भी रूप म चिन्तित नहीं देखना चाहता।

एकलव्य ने कहा—प्रकाति गुरुत्व की
हानी नही जब तक जीवित हू जग म
पार्थ ही सदा के लिए अद्वितीय धन्वी हैं।[3]

साथ ही गुरु दक्षिणा का प्रश्न उपस्थित होता है। एकलव्य द्रोण के मानसिक सघर्ष को समझ लेता है और अपने दाहिने हाथ का अगूठा स्वय ही काट देता है।

क्षण म ही अर्ध चन्द्र मुख वाण वेग से
तूण से निकाल कर लिया वाम कर म
गुरु मूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना,
एक ही आघात म अगुष्ठ काटा मूल से।[4]

---

१ एकलव्य पृ० २६७
२ म० आदि० १३१।५६
३ एकलव्य, पृ० २६०
४ एकलव्य, पृ० २६६

इस प्रकार एकलव्य ने अपनी भक्ति का अंतिम मूल्य चुका दिया। इस सर्ग में कवि ने कथा के विकास के मध्य गुरु भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। कवि के मत में अर्जुन का अहंकार उसके पूर्ण ज्ञान के मार्ग में बाधा था। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना से अंतर आलोकित होता है। कवि मन की सूक्ष्मता के स्तरों पर विश्वास की गहराई से आत्मसमर्पण को ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन स्वीकार करता है। कवि ने इस स्थल पर अधिक भावुकता के प्रसार के लिए माता पिता की उपस्थिति से कथा का चरम अन्विति करुणा में की है।

समीक्षा

महाभारत में एकलव्य की कथा स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत की गई है उसमें तत्कालीन वर्णभेदत्व का परिचय मिलता है। एकलव्य को उसके अनभिजात वर्ग के कारण द्रोण का शिष्यत्व न मिल सका। अतः उसको इस असफलता से कितनी मानसिक ग्लानि और संताप हुआ होगा, यह महाभारतकार की विवेचना का विषय न बन सका। ठीक भी है, ब्राह्मणत्व के सर्वोच्च आदर्श के उपासक व्यास भीलकुमार के मानसिक द्वन्द्व का कैसे वाणी दे सकते थे? आधुनिक युग के कवि ने उस संताप का अनुभव किया और उसको वाणी देना युग-सुधार के कारण आवश्यक समझा। एकलव्य का सन्ताप है कि 'सभी मानवों में एक आत्मा शक्ति का निवास है तब केवल जन्म भेद के कारण मुझे शिक्षा नहीं दी गई'। क्या यह उचित है?[1]

'महाभारत' के इस पात्र के मानसिक द्वन्द्व में कवि ने सामाजिक विषमता के प्रति विचार अभिव्यक्त किए हैं। आज के युग का सामाजिक वैषम्य परम्परागत है। किन्तु उसका उच्छेदन भी आवश्यक है। आज के नेताओं ने इस वैषम्य के निवारण-हेतु अनेक प्रयास किए हैं। इन्हीं के प्रकाश में कवि की विचारधारा का विकास होता है।

मूलकथा के प्रमुख परिवर्तन का उद्देश्य है एकलव्य की वीरता का प्रदर्शन। एकलव्य की वीरता यद्यपि उद्घाटित रूप से अर्जुन के समक्ष नहीं थी किन्तु कथा के अंत में कुत्ते के मुख को स्वनहीन घाव के रूप में वाणी से भर देने के उपरान्त पाण्डवों को चिन्ता हुई। फलस्वरूप एकलव्य का अंगूठा कटवाया गया। 'गुरुदक्षिणा' में कवि ने एक और कदम आगे चल कर परीक्षा के समय ही एकलव्य की वीरता और लक्ष्य वेध की अद्वितीयता सिद्ध की।[2] यह परिवर्तन इस बात का द्योतक है कि एकलव्य को केवल इसी कारण ही शिष्यत्व न मिल सका कि वह अनभिजात वर्ग का था, किन्तु इससे यह ध्वनि भी आती है कि अर्जुन के समक्ष लक्ष्य वेधन की शक्ति रखने वाले व्यक्ति को द्रोण अपना शिष्य कैसे बनाते? अतः अर्जुन की अद्वितीयता की अक्षुण्णता की रक्षा के कारण भी एकलव्य को अस्वीकृत किया गया। यह तत्कालीन राजनीति का दोष था।

१ गुरुदक्षिणा पृ० ३० एकलव्य पृ० १४०
२ गुरुदक्षिणा, पृ० २५

गुरु द्रोण से अस्वीकृत एकलव्य के चिन्तन में कवि हिंदू धर्म की संकीर्णता का विरोध करता है। वस्तुतः जाति प्रथा, वर्णाश्रम व्यवस्था की अवस्था कर्म प्रधानता के साथ थी। जैसे ही जन्म को वर्ण व्यवस्था के भेदत्व का आधार स्वीकार किया गया, वैसे ही हिंदू धर्म अपने गुरुत्व को खोता गया।

आज के युग में पुरुषार्थ की बलवत्ता स्वीकृत है। कवि पुरुषार्थ का आख्यान करता है। कवि ने एकलव्य को मानवता का मूक प्रतीक माना है।[1] इसका कारण यह है कि मानवता के सर्वस्वीकृत सिद्धान्त समानता का अधिकारी एकलव्य न हो पाया। निश्चय ही एकलव्य उपेक्षित दलित वर्ग का प्रतिनिधि है। किन्तु वह अवसर की प्रतिकूलता, विपत्तियों और बाधाओं का दमन कर, पुरुषार्थ के आदर्श की स्थापना कर सका है। इसीलिए आज के युग में उसके चरित्र के आख्यान का महत्त्व है।

डा० वर्मा का जीवन दृष्टिकोण सामाजिक है, उनका सार यह है कि—अपने समग्र रूप में व्यक्ति समाज का अंग है। भेदभाव की भित्तियों को समाज के उच्चवर्ग ने खड़ा किया है, वे समाज की क्रूरता की प्रतीक हैं। मनमिजालवर्गीय कर्मठ व्यक्ति इन भित्तियों को गिराना चाहता है, पर असमर्थ रहता है, तथापि आज का युग उसके अनुकूल है और अनेक ऐसी मान्यताएं भूलुण्ठित हो रही हैं। उसके लिए भविष्य की अरुणिम किरण का प्रस्फुटन अनिवार्य है। महाभारत की राजनैतिक स्थिति के आधार पर आज का कवि अनेक समान समस्याओं की व्याख्या करता है। उसका उद्देश्य है कि जो अपमान एकलव्य को मिला वह समाज का कलंक है, अतः त्याज्य है। वह व्यवस्था भी परिवर्तनीय है, जिसमें ऐसा कलंक पनपता है।

'एकलव्य' के अन्तर्द्वन्द्व प्रधान स्थलों में द्रोण का चरित्र गुरु की आदर्श प्रतिष्ठा से आलोकित हुआ है। इतने आस्थावान शिष्य के गुरु का भी तो हृदय से महान होना चाहिए—उसकी शिक्षा वध सकती है, किन्तु हृदय का विशाल साम्राज्य सहस्रांश हो के सहस्र आंसुओं से शिष्य की कल्याण कामना करता है।

महाभारत का नलोपाख्यान

यह प्रसंग महाभारत परवर्ती कवियों को अधिक प्रिय रहा है। संस्कृत में इस प्रसंग पर 'नैषध' महाकाव्य की रचना हो चुकी थी। उसके उपरान्त व्रजभाषा के रूप में सूरदास तथा अन्य कवियों ने इस उपाख्यान के आधार पर रचना की। आधुनिक हिन्दी काव्य से पूर्व महाभारत का प्रभाव परम्परा' में हमने अनेक काव्यों का उल्लेख किया है। आधुनिक काल की सीमा में विवेच्य काव्य नलोपाख्यान पर रचे तीन काव्य उपलब्ध हैं—'नलनरेश', 'नैषधकाव्य' और 'दमयन्ती'। इनमें 'नलनरेश' और 'दमयन्ती' ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। 'नलनरेश' में कथा परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य चरित्रों का सर्जन है और 'दमयन्ती' में चारित्रिक गुण स्पष्ट के साथ सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में स्त्री के अधिकारों की विवेचना पर अधिक ध्यान दिया गया है।

1 गुरुदक्षिणा, भूमिका पृ० १

राजा नल का विचित्र दृश्य देखना,[1] भैमी के रूप एवं गुण का वर्णन,[2] राजा नल के बाग का वर्णन,[3] जन्म भूमि के प्रति हंस के विचार।[4]

ये सभी प्रसंग कवि द्वारा 'नलनरेश' के महाकाव्यत्व के कारण जोड़े गये हैं। प्रस्तुत काव्य में नल का उपाख्यान प्रमुख है जबकि मूल ग्रन्थ में यह मध्यवर्ती स्वतन्त्र उपाख्यान है। उक्त प्रसंगों पर महाभारतीय शैली का प्रभाव सम्पूर्ण दृष्टि से दिखाई देता है। मंगलाचरण, ग्रन्थ की महिमा और देशकाल के चित्रण की परम्परा कवि ने 'महाभारत' से ही ग्रहण की है।

परिवर्तन—कथा को 'महाभारत' के अनुरूप स्वीकार करते हुए भी कवि ने घटनाओं के हेतु में मौलिक परिवर्तन किए हैं। इन परिवर्तनों का औचित्य यह है कि 'महाभारत' का अलौकिक वातावरण जीवन के स्वाभाविक विकास में दिखाई दे। 'महाभारत' में कलि के प्रवेश के उपरान्त पुष्कर नल विरुद्ध होता है। 'नल नरेश' में पुष्कर प्रारम्भ से ही नल के वैभव के प्रति ईर्ष्यालु है और उसको बार बार द्यूत की ओर उत्तेजित करता है—

पुष्कर अपना हाथ कुपित होकर मलता था।
नल वैभव का दर्प बहुत मन में जलता था।[5]

इस ईर्ष्या के कारण पुष्कर द्यूत का गुण गान करता था

सब दुःखों को द्यूत शीघ्र ही हर लेता है
श्रान्त चित्त को और प्रफुल्लित कर देता है।[6]

प्रस्तुत कथा परिवर्तन से कवि ने 'महाभारत' के दिव्यांश का बुद्धिगत समर्थन किया है। बड़े भाई के वैभव पर ईर्ष्या तत्कालीन सामन्तीय प्रथा में बड़े भाई के उत्तराधिकार नियमानुसार नितान्त स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक हो सकता है। पुष्कर प्रारम्भ से ही द्यूत का प्रयास करता है। यह आगे होने वाली घटना की स्वाभाविक पृष्ठ भूमि है। इसी प्रसंग में कवि 'महाभारत' में वर्णित आदर्श राजा के गुणों का उद्घाटन करता है। 'महाभारत' में दमन ऋषि भीम के धाम आकर सेवा से तुष्ट होकर पुत्र उत्पत्ति विषयक वरदान देते हैं। 'नलनरेश' में दमन युवराज बना है ? यह पुष्ट कर

1 नलनरेश पृ० ३६
2 नलनरेश पृ० ४०
3 नलनरेश, पृ० ५५
4 नलनरेश पृ० ६६
5 नलनरेश, पृ० ३२
6 नलनरेश, पृ० ३३
7 नलनरेश पृ० ३४
: म० वन० ५२।७ ८

और भीम की दुःखानुभूति को जानकर फिर वरदान देते हैं।[1] प्रेम के प्रादुर्भाव का प्रसंग गुण श्रवण में दोनों और कराया गया है। हंस का नल का मिलन और दूतत्व दोनों ग्रन्थों में समान है। हंस द्वारा दमयन्ती के समक्ष नल का विरह-वर्णन अत्यन्त भावुकता से किया गया है। महाभारत में भावनाओं के प्रकाशन का अधिक अवसर न मिल सका, आधुनिक काव्य में भावनाओं का व्यापक चित्रण हुआ है।

स्वयंवर से विवाह तक महाभारत में स्वयंवर से विवाह तक की कथा का वर्णन दो अध्यायों में किया है। नलनरेश में इस प्रसंग को तीन सर्ग का विस्तार दिया है। समस्त कथा का विकास 'महाभारत' के अनुरूप हुआ है, अन्तर केवल संक्षेप एवं विस्तार का है। मूल ग्रन्थ में विषय का संक्षिप्त चित्रण है और 'नलनरेश' में वर्णनों के द्वारा विषय का विस्तार किया गया है। कवि ने देवताओं द्वारा नल के सौंदर्य का वर्णन अत्यन्त सुन्दरता से किया है—नल को देखकर सभी देवता विविध अनुमान करने लगे।[2] इन्द्र की अनुमति से नल को दूत बनाने की योजना बनाई गई। नल देवताओं का कार्य करने को उद्यत हो जाते हैं पर कार्य जानकर उनमें अन्तर्द्वन्द्व होता है[3] तथापि अपने प्रण का ध्यान करके वे तैयार होते हैं। जब अन्तःपुर में प्रवेश की समस्या आती है तो देवता उनको अदृश्य विद्या सिखाते हैं—इस तरह नल दूत-कार्य करने चल देते हैं। नल और दमयन्ती के वार्तालाप में स्त्री के सतीत्व की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। सामाजिक दृष्टि से स्त्री की प्रेम-पवित्रता और दृढ़ता की विवशता जिस रूप में हुई है उससे कवि असंयमित प्रेम का विरोध करता है।

स्वयंवर-सभा में नख शिख-वर्णन परम्परागत दृष्टि के कारण हुआ है। नलनरेश मूलतः शृंगार प्रधान काव्य है अतः नायिका का सौंदर्य चित्रण आवश्यक है। इस प्रसंग का महाभारत में संकेत है किन्तु काव्य में उसका विस्तार किया गया है। महाभारत में दमयन्ती पांच नल देखकर सतीत्व के तेज से देवों को भयभीत करके प्रार्थना के बल पर उनको प्रभावित करती है। 'नलनरेश' में वह केवल प्रार्थना करती है। 'महाभारत' में देवता अपने गौरव के अनुकूल दमयन्ती पर प्रसन्न होते हैं, नलनरेश में उनके हृदय में अपने कार्य के प्रति ग्लानि का अनुभव होता है।[5]

---

१ नलनरेश, पृ० ५० ५१
२ नलनरेश, पृ० ६० ६१
३ इधर चलूं तो प्रण रोकेगा उधर चलूं तो रूप बड़ा है।
इधर गिरूं तो गहरी खाई, उधर गिरूं तो कूप बड़ा है। नलनरेश पृ० ६६
४ म० वन० ५७। २० २३ नलनरेश, पृ० १३४ १३६
५ म० वन० ५७।२५

ठीक नहीं अब अधिक सताना इस कन्या को
देना कुछ वरदान चाहिए इस कन्या को।
होकर हम दिक्पाल सती का धर्म मिटाते,
सचमुच बढ़कर मर्त्य लोक में पाप कमाते।[1]

'नलनरेश' में दमयन्ती के आत्मिक शौर्य एवं दृढ़ विश्वास की व्यंजना नहीं हो पाई उसमें नारीगत दौर्बल्य है। ताराचन्द हारीत ने 'दमयन्ती' काव्य में दमयन्ती का अधिक आत्मविश्वासी सतीत्व विश्वासी रूप में चित्रित किया है यहाँ दमयन्ती स्वयं देवों की कुटिल कामना पर उन्हें ललकारती है उनके पाप का इतिहास खोलकर उन्हें चेतावनी देती है। दमयन्ती का यह व्यक्तित्व अधिक आकर्षक और श्लाघ्य है। स्त्री जीवन केवल शोषण के लिए नहीं है वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए केवल प्रार्थना पर जीवित नहीं रह सकता अपितु सशक्त विरोध भी कर सकता है।[2]

इस प्रसंग में देवताओं द्वारा दिए गये वरदानों का कवि ने यथावत् उल्लेख किया है[3]

प्रत्यक्ष दर्शनं यज्ञे गतिं चाऽनुत्तमां शुभाम्
नैषधाय ददौ शक्र प्रीयमाणः शचीपतिः।[4]
मेरे दर्शन स्पष्ट यज्ञ में तुम पाओगे
होकर जीवन मुक्त स्वर्ग सीधे जाओगे॥[5]

यहाँ पर कवि ने महाभारतीय घटनाओं का यथास्थान विस्तार और संक्षेप किया है। और कोई मौलिक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता।

नगर प्रवेश से वनवास तक 'नलनरेश' में वर्णित निम्न प्रसंग स्वतन्त्र रूप में चित्रित हैं। महाभारत में उनका उल्लेखमात्र है।

निषध की जनता द्वारा नल का स्वागत[6] दानों के रहन सहन का वर्णन।[7] नल का विलाप-वर्णन[8] दमयन्ती की स्वप्नावस्था का वर्णन[9] दमयन्ती की स्त्री सम्बन्धी

---

१ नलनरेश पृ० १३७
२ दमयन्ती पृ० १३७
३ महाभारत के अनुसार आठ वरदान दिये गए हैं नलनरेश पृ० १४१
४ म० वन० ५७।३५
५ नलनरेश पृ० १४३
६ नलनरेश, पृ० १४७
७ नलनरेश पृ० १५२
८ वन के तिहो नींद छाड़कर भाग्यो भाग्यो
इस पापी को दुःखी देह को त्याग्यो त्याग्यो। नलनरेश, पृ० १६२
९ नलनरेश पृ० २०२

विचारणा ।[1] इन सभी प्रसंगों के द्वारा कवि ने 'महाभारत' की कथा के साथ नवीन संदर्भ में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की है। जनता के उल्लास में आदर्श राजा के प्रभाव का वर्णन आकर्षक है। दमयंती के स्त्री सम्बन्धी विचारों में आधुनिक युग के स्त्री सम्बन्धी विचारों को वाणी दी गई है। स्त्री अबला नहीं है वह स्वयं शक्तिवती है किन्तु पुरुष उसके मोह के कारण उस पर अत्याचार करने में समर्थ हो जाता है।

वनवास तक की कथा का विकास 'महाभारत' के अनुसार हुआ है। नल रानी सहित नगर में प्रवेश करते हैं और विधिवत राज्य संचालन करते हैं। 'महाभारत' में दमयन्ती का वधू रूप अनभिव्यक्त है। वह रानी है अतः उसका यह रूप अव्यवहारिक माना जा सकता है। 'नलनरेश' में वह पूर्ण गृहणी है, व्यंजनों का निर्माण और प्रासादों की स्वच्छता का काम करती है।[2] इस स्थल पर वह रानी के पद से नारी के पद पर आ जाती है।

नल में कलि प्रवेश का प्रसंग दोनों ग्रन्थों में समान है। पुरोहित जी ने 'महाभारत' का प्रसंग यथावत ग्रहण किया है।

> कृत्वा मूत्रं उपस्पृश्य सन्ध्यामन्वास्त नैषधः ।
> अकृत्वा पादयोः शौचं तत्रैनं कलिराविशत् ॥[3]
>
> × × ×
>
> हो अपवित्र एक दिन नल ने डाले बिना पदों पर अम्बु—
> ले केवल आचमन कर दिया सन्ध्योपासन का आरम्भ ॥

द्यूत प्रसंग में कवि ने एक परिवर्तन किया है। 'महाभारत' में मन्त्रीगणों के कहने पर दमयन्ती महल से आकर नल को समझाती है। 'नलनरेश' में मन्त्री का प्रसंग हटाया गया है और दमयन्ती स्वयं ही नल को मना करती है।[5] बच्चों को कुण्डिनपुर भेजना, द्यूत के उपरान्त नल का पश्चाताप और निष्कासन आदि प्रसंग मूल ग्रन्थ के अनुसार चित्रित हैं। कवि ने इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया।

---

१ पुरुषों स्त्री को आप भला अबला कहते हैं
जिसके पीछे आप बली बनकर रहते हैं। नलनरेश पृ० २२८

२ नलनरेश पृ० १५०

३ म० वन० ५६।३

४ नलनरेश पृ० १६३

५ म० वन० ५६।१२ नलनरेश पृ० १६५

वनवास की स्थिति में दमयन्ती के वन्दन में स्त्री धर्म की अभिव्यंजना हुई है। पति-पत्नि के श्रेयपूर्ण प्रेम में लोक-जीवन के व्यावहारिक आदर्श की स्थापना की गई है। इस प्रसंग में कवि मानवीय दुर्बलताओं की प्रबलता का उदघाटन करके काल गति की अनिवार्य परिवर्तनशीलता का प्रतिपादन करता है।

राजा नल दमयन्ती को वन में छोड़कर जाना चाहते हैं तो देवों को रक्षा का भार सौंपते हैं। आत्मवंचना को जानते हुए भी उत्पथ से विमुख नहीं होते। अपनी रानी को छोड़ कर चल देते हैं। 'महाभारत' में कथा विकास पहले दमयन्ती के साथ और बाद में नल के साथ होता है। 'नल नरेश' में क्रम विपर्यय किया गया है। नल का नाग को बचाना, स्वरूप परिवर्तन आदि प्रसंग यथावत लिए गए हैं। ऋतुपर्ण मिलन प्रसंग को अत्यन्त नाटकीय ढंग से परिवर्तित किया है।

'महाभारत' में नल बाहुक रूपधारण कर राजधानी में जाते हैं और राज्याश्रय पाते हैं— 'नल नरेश' में जंगल में रथ के रागी घोड़े का उपचार करके राजा से परिचय प्राप्त करते हैं।[1] इस प्रकार सहायक के रूप में राजा से परिचय मित्रता के लिए आवश्यक जानकर यह परिवर्तन किया है। बाहुक अपना विशेष परिचय से ऋतु पर्ण के समक्ष निज की उपयोगिता सिद्ध करके जीविका प्राप्त करते हैं।

इसके उपरान्त प्रसंग दमयन्ती के साथ होता है। दमयन्ती स्वप्न देखती है और जागकर क्षण भर के लिए उस पर विश्वास नहीं करती। दमयन्ती का कारुणिक विलाप मूर्छा की अवस्था पर जाकर रुकता है। इस प्रसंग में अजगर व्याध के प्रसंग को महाभारत के अनुसार ही ग्रहण किया गया है।[2] दमयन्ती अपनी दशा भूलकर नल की अवस्था पर शोक करती है कि उनके दुःख में कौन सहायक होगा।[3]

महाभारत में दमयन्ती का तपस्वियों से मिलन और वार्तालाप विस्तार से चित्रित है। कवि ने इस प्रसंग का वर्णन नहीं किया केवल एक तपोवन में भेंट करा

---

१ तस्मिन्नन्तर्हिते नाग प्रययौ नैषधो नल।
ऋतुपर्णस्य नगरं प्राविशद्दशमेऽहनि ॥ म० वन० ६७।१

× × ×

उसी समय हय शब्द अचानक नल ने सुनकर—
कहा देखकर खड़ा सामने स्यंदन सुन्दर—

× × ×

क्या है तू साकेत दूत या अतिथि सहायक।
मैं ही हूँ ऋतुपर्ण अयोध्या नगरी नायक। —नलनरेश पृ० १६७

२. नलनरेश पृ० २१७

३ नलनरेश, पृ० २१६

प्रसग सक्षिप्त कर दिया है।[1] महाभारत' म दमयन्ती के द्वारा मृतका को पुनर्जीवन दने का प्रसग नही है नलनरेश म दमयन्ती के द्वारा यह चमत्कार दिखाया गया है।[2] कवि ने इस अलौकिक प्रसग की सष्टि दमयन्ती के सतीत्व के प्रकाशन के हेतु की है। इसस सती के तेज का चरम प्रभाव परिलक्षित हाता है। किन्तु यह बुद्धि सम्मत तथ्य नही है।

चेदि नगर से मिलन तक यह प्रसग नलोपाख्यान का उत्तरार्द्ध है। इसमे सघप निरन्तर कम हात हैं और कथा मिलन-स्थल की ओर अग्रसर होती है। राजा भीम नल क खोज की घोषणा कर देते है पर्णाद विप्र इस काय के लिए प्रणबद्ध होकर चल देते है। वाहुक के पास स्वयवर का निमत्रण जाता है। वाहुक को दुखी देखकर उन्हे सन्देह हाता है। सन्देह की पुष्टि क उपरान्त नल के पास स्वयवर का निमन्त्रण जाता है। माग म नल अश्वविद्या सिखाते हैं और द्यूत विद्या सीखत हैं।

इस प्रसग म केवल एक परिवतन उल्लेखनीय है। 'महाभारत' म दमयन्ती, पिता से छिपा कर माता की आज्ञा से स्वयवर का निमन्त्रण भेजती है, 'नलनरेश' म यह बात माता स भी छिपाई जाती है।[3]

दमयन्ती के मिलन प्रसग का कवि ने स्वतन्त्र रूप से चित्रित किया है। महाभारत' में प्रसग म दमयन्ती की प्राथना अधिक है, दमयन्ती अपनी पवित्रता का विश्वास दिलाती है और वायु उसका समथन करता है।[4] कवि ने दमयन्ती जस महान चरित्र क लिए एमी प्राथना का अनावश्यक समझा और पारिवारिक वातावरण म नल-दमयन्ती का मिलन कराया। इन्द्रसेन इन्द्रसेना पात्रा का महाभारत और इस उपाख्यान पर आधारित अन्य कायो म स्थान नही मिल पाया है। पुरोहित जी न इस कमी का भी पूरा किया है। सबके मिलन का कितना मनोहारी चित्र अंकित किया गया है।

माता नौका कहा । हम उसम बठाओ
इन्द्रसन ने कहा—पिताजी तुम भी आओ
नल का आत देख छिपी फिर सखिया सारी
उठ न सकी थी सुता अक म भीम कुमारी ॥[5]

---

१ नलनरेश प० २३२
२ नलनरेश प० २२७
३ म० वन० ७०।२५ २६
ख यहां किसी से भी मत कहना वहा भूप को बतलाना।
दमयन्ती का और स्वयवर कल होगा यह जतलाना॥
—नलनरेश प० २५०
४ म० वन० ७६।३७
५ नलनरेश, प० २७१

नल के आगमन एवं क्षमा याचना से वातावरण स्निग्ध और मनोहारी हो जाता है। 'महाभारत' की दमयन्ती और काव्य की दमयन्ती में परिवर्तन है। यह परिवर्तन सोद्देश्य किया गया है। अपराध नल का था चाहे उसके मूल में कोई भी कारण रहा हो—अतः नल द्वारा क्षमा याचना मनोवैज्ञानिकता और स्नेहाधिक्य का द्योतक है। नल के आदेश से दमयन्ती का सोलह शृंगार करना कवि की मौलिक सूझ है जिससे वर्षों से संतप्त स्नेह की आकुलता व्यक्त हुई है।

मिलन के अनन्तर कवि ने कथा का चार सर्गों में विकसित किया है। यह विकास उसकी स्वतन्त्र विचारधारा पर आधृत है। नलपत्तन का राग में टहलना[1], अन्य प्राकृतिक वर्णन मृगयाशाला का वर्णन[2] मद्यपान[3] आदि का चित्रण कथा का परिवर्धन है। 'महाभारत' में एस प्रसंगों का अभाव है। कवि ने राजकीय जीवन की कल्पना के आधार पर इन प्रसंगों की उद्भावना की है।

निम्नस्थ प्रसंग कवि की मौलिक उद्भावना कथा परिवर्धन के रूप में चित्रित हुए हैं। वसन्त वर्णन[4] नल के भेजे दूत के साथ अनेक व्यापारियों का मिलन[5] तथा व्यापारियों का समुद्र-यात्रा के विषय में विचार।[6] नल के द्वारा दूत के हाथों पुष्कर को पत्र भेजना।[7] पुष्कर के समय राज्य की दुर्दशा का चित्रण।[8] दूत का मना करके लौटना।[9] महाभारत में नल एक मास श्वसुर के यहाँ रह कर कुछ सैनिक लेकर पुष्कर के पास आते हैं।[10] नलनरेश में कथा परिवर्तन किया गया है। नल पहले दूत के हाथ पत्र भेजते हैं और दूत प्रजा का अध्ययन करके, लौटकर सारे समाचार देता है।[11]

---

१ नलनरेश, पृ० ३०६
२ नलनरेश पृ० ३१४
३ नलनरेश, पृ० ३१६
४ नलनरेश पृ० ३२३
५ नलनरेश पृ० ३२४
६ नलनरेश, पृ० ३३१
७ म० वन० ७८।१३
८ नलनरेश पृ० ३३१
६ नलनरेश पृ० २८८
१० नलनरेश, पृ० २६६
११ नलनरेश, पृ० ३०२

'महाभारत' में पुष्कर का हृदय पूर्ववत कलुषित है, वह द्यूत में नल को परास्त करके दमयन्ती को प्राप्त करने की भावना की अभिव्यक्ति करता है। 'नलनरेश' में जिस प्रकार पुष्कर की ईर्ष्या का मनोवैज्ञानिक रूप चित्रित किया था, उसी प्रकार अन्त में पुष्कर का पश्चाताप युक्त जीवन दिखाया है।

जित्वात्वद्य वरारोहा दमयन्तीमनिन्दिताम।
कृतकृत्यो भविष्यामि साहि मेनित्यशो हृदि॥[1]

अर्थात अब मैं सुन्दर मुख वाली अनिन्दिता दमयन्ती को जुए में जीत कर कृत कृत्य हुआ—यह है 'महाभारत' का पुष्कर, किन्तु 'नलनरेश' के पुष्कर का हृदय परिवर्तन द्रष्टव्य है।

सता रहा है मुझे इस समय उनका महा असह्य वियोग,
भोग रहे हैं शोक रोग का जिसके बिना निपध के लोग।[2]

यह परिवर्तन काव्य और व्यक्ति दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पुष्कर एक मनस्थिति के आवेग से भाई के विमुख हुआ था, तदुपरान्त उसका सरल होना आवश्यक है। 'महाभारत' में पात्रों का स्वभाव परिवर्तन नहीं हुआ, जो जैसा है वह अन्त तक वैसा ही रहा, मन भावनाओं के द्वन्द्व में चरित्र का उतार चढ़ाव नहीं हो पाया। आधुनिक काव्य में चरित्र का उतार चढ़ाव कवि की प्रमुख उपलब्धि है।

नल का स्वदेश लौटना और पुष्कर से मिलन प्रसंग को कवि ने स्वतन्त्र रूप से विकसित किया है। नल का समाचार पाकर पुष्कर तपस्या रत हो जाता है और भाभी के चरण पकड़ कर क्षमा याचना करता है। पुष्कर स्वीकार करता है कि वह समस्त प्रभाव कलि का था। पुष्कर नल से सिंहासन सुशोभित करने का प्रस्ताव करता है किन्तु नल, उस ऐहिक वैभव को स्वीकार नहीं करना चाहते।

नल पुष्कर को उपदेश देकर वैराग्य धारण करते हैं। इससे कवि राज्य त्याग के आदर्श की स्थापना करता है। राज्य के लिए होने वाले संघर्षों की तुलना में यह त्याग कितना महान है?

नल के त्याग से अभिभूत देवता उन्हें पुनः दर्शन देते हैं और वरदान देकर सदेह स्वर्ग भेजते हैं। इस प्रसंग से कवि मानव की चरम उन्नति का प्रतिपादन करता है। सामान्यतः नल की कथा में 'महाभारत' के इस प्रसंग को मानव की मार्मिकता के उद्घाटन के लिए उपयुक्त समझ कर, कवि ने प्रबन्ध काव्य की रचना की है। प्रस्तुत काव्य में कथा विकास की कुशलता और विचार प्रतिपादन की गम्भीरता का समावेश है।

---

१ म० वन० ७८।१६
२ नलनरेश, पृ० ३२३

समीक्षा

'नलनरेश' का महत्वपूर्ण परिवर्तन पुष्कर के चरित्र में उपलब्ध है। 'महाभारत' में पुष्कर की स्थिति का वर्णन अलौकिक वातावरण में हुआ है, उसके हृदय में कलि का प्रवेश होता है और वह नल से जुआ खेलता है। पुरोहित जी ने इस अलौकिकत्व को स्वाभाविक मानसिक क्षोभ के रूप में चित्रित किया है। इसमें तत्कालीन राज्यतन्त्रीय व्यवस्था की व्यक्तिपरक मान्यता में अधिकार के प्रश्न की विवेचना हुई है। राज्य केवल राजा का है उस पर प्रजा का कोई अधिकार नहीं। यह उस काल की सार्वभौम मान्यता है। युधिष्ठिर और दुर्योधन ने भी द्यूत से ही राज्य के मुकुट का निर्णय किया था। पुष्कर नल को परास्त कर राजा बनता है और सब देखते रहते हैं। यद्यपि आज के विचारानुसार इस पद्धति की अधिक राजनैतिक समीक्षा सम्भव हो सकती थी किन्तु उस ओर कवि का ध्यान नहीं गया—
कथा के उपसंहार का परिवर्तन सामाजिक जीवन दर्शन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। भौतिक लालसा व्यक्ति हृदय की सरलता को कुण्ठित कर देती है उसका देवत्व दानव से परास्त हो जाता है किन्तु अन्ततः आत्मा का प्रकाश सत्य को आलोकित करता है और कोमल सात्त्विक वृत्तियों का उदय होता है। नल पुनः राज्य सिंहासन पर आसीन न होकर तपस्वी बनते हैं। उनके शब्दों में भौतिक ऐश्वर्य के विरोध का स्वर घोष है कि समस्त मानवीय संघर्ष का मूल यह है। और यह अधिकार प्रसूत है, अतः अहं को नष्ट करने के लिए अधिकार को समाप्त करना होगा। अहंकार का विनाश और अधिकार के प्रति अनासक्ति ही मानव के नरत्व को नारायणत्व में विलीन करा सकती है। इसके लिए आवश्यकता है संसार को क्षण भंगुर समझने की। जब तक व्यक्ति विश्व के भ्रम को सत्य मानेगा तब तक वह संसार से ऊपर उठ कर आध्यात्मिक प्रकाश का साक्षात्कार नहीं कर सकेगा। व्यक्ति का कल्याण लोककल्याण सापेक्ष है, व्यक्ति के निजी धर्म सामाजिक धर्म हैं, उनका उदय व्यक्ति से होता है किन्तु प्रसार समाज में। अतः 'नलनरेश' का सन्देश भौतिक ऐश्वर्य के प्रति अनासक्ति, अहंकार विसर्जन सामाजिक समानता का व्यापक उपस्थापन है।

दमयन्ती

दमयन्ती प्रबन्ध काव्य में नलोपाख्यान मूल ग्रन्थ के अनुरूप है किन्तु कथा का विकास सामाजिक दृष्टिकोण के आधार पर अनेक परिवर्तनों के साथ किया गया है। कथा के उपक्रम में भी मूल ग्रन्थ के प्रभाव को देखा जा सकता है।

अस्ति राजा मया कश्चिदल्प भाग्यतरो भुवि।
भवता दृष्ट पूर्वो वा श्रुतपूर्वोऽपि वा क्वचित् ॥[1]

---

१ म० वन० ५२।५०

'महाभारत' के युधिष्ठिर का प्रश्न 'दमयन्ती' मे उसी विवश आकुलता से व्यक्त हुआ है।

किन्तु दव दुर्दैव ग्रस्त, क्या मुझ सा पापी,
रहा विश्व मे कही प्रमागा—विषम वितापी।[1]

इस प्रकार प्रस्तावना के उपरान्त कथा प्रारम्भ होती है और कवि अनेक परिवनना के साथ अपने सामाजिक उद्देश्य की उपस्थापना करता है।

जन्म से प्रेम पल्लवन तक प्रथम सर्ग से चतुर्थ सर्ग तक जन्म प्रेम सन्देह और पल्लवन आदि प्रसगा का विस्तार किया गया है। रूप-दर्शन के अभाव म प्रेम का अभ्युदय चित्र-दर्शन एव गुण-श्रवण से होता है। 'महाभारत' मे प्रेम पल्लवन तक की कथा सक्षेप मे कही गई है, किन्तु 'दमयन्ती' काव्य म उसे चार सर्गों का विस्तार मिला है, कारण यह है कि काव्य का प्रतिपाद्य नायक नायिका का प्रेम ही है। नायिका की पुन प्राप्ति के साथ काव्य की समाप्ति हो जाती है अत प्रतिपाद्य विषय को विस्तार मिलना स्वाभाविक है।

इस स्थल पर कवि न 'महाभारत' के अधोलिखित प्रसगा को छोड दिया है।

नल क वन का विस्तृत परिचय, सामान्य जनो द्वारा नल दमयन्ती की एक दूसरे के समक्ष प्रशसा, अन्त पुर के उद्यान म राजा नल को हस का मिलना नारद जी का स्वर्ग गमन।

महाभारत' म उक्त प्रसग प्रेम पल्लवन तक जिस रूप मे चित्रित होते है, कवि ने उनको ग्रहण नही किया है। इन प्रसगो से सम्बन्धित दृष्टि कथा के द्रुत विकास की ओर रही है, किन्तु कवि ने महाकाव्योचित गरिमा का सन्निवेश करते हुए मार्मिक प्रसगा की नूतन उदभावना से कथा का लालित्य अक्षुण्ण रक्खा है। इन कथा प्रसगो को छोडने का उद्देश्य यह है कि कवि अतिप्राकृत चित्रण से बचना चाहता है और कथा के सभी उपकेन्द्रो का मूल केन्द्र से निकटतम सम्बन्ध बनाए रखता है। सामाजिक दृष्टिकोण के कारण भी कवि को कुछ प्रसग छोड कर उपक्षित प्रसगा का विस्तार उचित जान पडा।

महाभारत से अतिरिक्त प्रसग काव्य-कथा के स्वतन्त्र विकास की दृष्टि से 'महाभारत' से अतिरिक्त प्रसगा को स्थान दिया है। इनसे 'दमयन्ती' काव्य की स्वतन्त्र सत्ता बनी रहती है वह आधार ग्रन्थ का छायानुवाद बनकर नहीं रह पाती। अतिरिक्त प्रसग इस प्रकार हैं।

वाटिका म दमयन्ती का सौन्दर्य चित्रण सखी द्वारा नल की प्रशसा और दमयन्ती को नल क योग्य बताना, मन के ध्यान-मात्र स सतीत्व की आचार प्रणाली के आधार पर केवल नल का वरण, वाटिका म हस-युग्म का मिलन देखकर प्रसन्न होना, आय कन्याओ का कर्तव्य विवेचन, नगर का विस्तृत वर्णन और नल के सुराज्य

1 दमयन्ती, पृ० ५

का चित्रण। ये सभी प्रसग कवि ने आधार ग्रंथ की कथा के साथ सम्बद्ध कर विस्तार से चित्रित किए हैं। प्रेम के क्षेत्र मे जिन प्रवृत्त भावो को आधार ग्रथ म इसलिए स्थान न मिल सका कि यह प्रासगिक उपाख्यान था, उन्ही स्थितियो का विस्तृत चित्रण 'दमयन्ती' की काव्यगत विशेषता है।

कुछ प्रसगो म कथा का परिवर्तन भी किया है। उनम काव्य की स्वाभाविकता स्थिर रह पाई है और अलौकिक तथ्य भी बुद्धि की कसौटी पर परख कर व्यक्त हुए हैं। 'महाभारत' म हस नल का स देश लेकर दमयन्ती के पास जाते हैं और प्रेम का अकुर सामान्य जनो की चर्चा से उत्पन्न होता है। 'दमयन्ती' म नारद नल के दरबार म जाकर दमयन्ती के गुणों की चर्चा करते हैं, उस नल के उपयुक्त बताते हैं, तब नल के हृदय मे प्रेम का अकुर आविर्भूत होता है। इस उद्भावना को नारद प्रसग का स्थानान्तरण भी माना जा सकता है। नारद का इन्द्रलोक गमन चित्रित न करके कवि ने इस रूप में नारद को कथा का भाग बनाया है।

'महाभारत' मे हस के दूतत्व से आखेट का कोई सम्बन्ध नही किन्तु दमयन्ती में नल आखेट के लिए जाते हैं और हस को पकड कर मारने की इच्छा करते हैं कि उसकी प्रार्थना पर छोड देते हैं। हस स्वय दूतत्व स्वीकार करता है।

'महाभारत' मे राज्य-नीति, मानव-धर्म की चर्चा इस प्रसग म नही है पर कवि ने इनका समावेश कर दिया है।

कुण्डिनपुर की वाटिका म हस को पकडते हुए नल से अपने दृढ़ प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए दमयन्ती की एकान्तता सुन्दर कल्पना है।

इस प्रकार कवि प्रथम सर्ग मे चतुर्थ सर्ग तक 'महाभारत' के एक ही अध्याय का विस्तार करता है। कवि के इन प्रसगो का मूल केन्द्र है अपने चरित्र-नायक और नायिका का एश्वर्यशाली वर्णन और प्रेम पल्लवन। प्रेम के लिए केवल एक दो सन्देश ही पर्याप्त नही माने जा सकते। उसके लिए भावो की विस्तृत पृष्ठभूमि आवश्यक होती है। इस कारण नारद के द्वारा नल के दरबार में आकर दमयन्ती के गुणो की चर्चा नल के मन में अस्थायी अकुरित प्रेम को दृढ करती है। नारद जैसा ऋषि जिस कन्या की प्रशसा करे वह सद्गुणी सुशील सुन्दर अवश्य ही होगी। उधर दमयन्ती के मन म सखियों से सुनी बात का पूर्ण विश्वास हस द्वारा होता है, अत नल प्राप्ति की आकुलता बढ़ती है।

प्रेम प्रकाशन से स्वयवर तक प्रेम के प्रकाशन के उपरान्त कथा प्रणय से परिणय की ओर बढ़ती है। प्रेम को श्रेय का समर्थन लेना आवश्यक है। प्रेम की पूर्ति पवित्र वैवाहिक बन्धन मे है यही सत्य, शिव और सुन्दर का समन्वय होता है जो मूलत व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक कल्याण को रूप देता है। पचम सर्ग से अष्टम सर्ग तक कवि इस कथा का विस्तार करता है

१ दमयन्ती पृ० ७४

नारद द्वारा देवताओं मे स्वयवर की चर्चा को कवि ने नल के दरबार मे दिखाया है अत यहा वह उसकी पुनरावृत्ति नही करना चाहता। सर्ग के प्रारम्भ मे ही वह लोकपालो का आगमन दिखा देता है। इससे वह अलौकिकता से हटकर युग सापेक्ष स्वाभाविकता की धरा पर कथा को ले आया है।

परिवर्धन परिवर्तन 'महाभारत' मे देवता नारद के कहने पर स्वयवर के लिए चलते हैं, किन्तु काव्य में ऐसा सकेत नही है। 'महाभारत' मे सभी देवो की शक्ति का विस्तृत वर्णन नहीं है किन्तु 'दमयन्ती' के कथा विस्तार मे देवो की शक्ति का विस्तृत चित्रण हुआ है। महाभारत' मे देवता धरती की प्रशसा नही करते, पर काव्य मे देवताओ द्वारा धरती की प्रशसा की गई है। महाभारत' मे नल का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित नही किया गया, केवल समान उद्देश्य से क्षोभ दिखाया गया है दमयन्ती' म वचनबद्ध नल का अन्तर्द्वन्द्व विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है। महाभारत' मे नल देवताओ को कटुवचन नही कहते पर काव्य मे कटुवचन कहते हैं और देवता उनकी स्पष्टवादिता की प्रशसा करते हैं। 'महाभारत' मे दमयन्ती की व्याकुलता का चित्रण नही है, पर 'दमयन्ती' मे नल पहले दमयन्ती की व्याकुलता देखते हैं, पुन प्रकट होकर अपना निवेदन करते हैं।

स्वयवर प्रसग स्वयवर प्रसग को कवि ने महाभारतीय तत्व की रक्षा करते हुए सामाजिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसम निम्नस्थ परिवर्तन उल्लेखनीय हैं।

'महाभारत' मे अन्य नरेशो का वर्णन नही है 'दमयन्ती' मे अनेक द्वीपो के नरेशो का परिचय दिया गया है।[1] 'महाभारत मे दमयन्ती पाच नल देखकर देवताओ की स्तुति करती है, और तेज से प्रभावित करती है। [2]'महाभारत' मे देवता भी शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, 'दमयन्ती' मे उनके कृत्यो का उल्लेख है और प्रसग वश प्राचीन सदर्भों की घोषणा है। [3]'महाभारत' मे दमयन्ती के काय म विवशता एव कोमलता है, 'दमयन्ती मे सामर्थ्य और शक्ति का चित्रण है। 'महाभारत' म देवताओ के आगमन का कारण नही दिया गया अपितु आठ वरदानो की चर्चा है, दमयन्ती' म देवता प्रकट होकर अपने विघ्न रूप आगमन, परीक्षा का स्थिति पर प्रकाश डालते हैं[4]। महाभारत' के कलि स्वय को वर रूप म प्रस्तुत करते हैं 'दमयन्ती' मे वे केवल दर्शक है। देवताओ के रोकने पर भी शाप दे देते हैं।[5]

स्वयवर प्रसग के सम्पूर्ण परिवर्तनो की पृष्ठभूमि मे सामाजिक दृष्टिकोण है। महाभारत' मे दमयन्ती की शक्ति उभर कर भी देवत्व से दूसरे स्थान पर रही

---

१ दमयन्ती, पृ० ११६ १३०

२ म० वन० ५६।१८ २०, दमयन्ती, पृ० १३२

३ म० वन० ५६।२२ २३, दमयन्ती, पृ० १३६

४ दमयन्ती पृ० १३८

५ म० वन० ५८।३, दमयन्ती, पृ० १४०

पर काव्य में ऐसी भावना नहीं, वहां देवत्व उससे प्रभावित होता है। देवत्व की प्रतिष्ठा कवि ने भी उसी रूप में की है जैसे 'महाभारत' में है।

नल विवाह 'महाभारत' में नल विवाह और सन्तान की कथा सूचनात्मक है। नल के जीवन के इस पक्ष का विस्तृत विवेचन उपाख्यान के उद्देश्य से सम्बन्धित नहीं था अतः महाभारतकार ने इस प्रसंग को दो चार श्लोकों में चित्रित किया है। 'दमयन्ती' में यह प्रसंग एक सर्ग के विस्तार में वर्णित है। इसमें कवि ने कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन किये हैं।

'महाभारत' में विवाह का विस्तृत वर्णन नहीं है, 'दमयन्ती' में इसका विस्तार एवं नल-दमयन्ती के प्रणय व्यापार का मनोहर चित्रण है। दमयन्ती के चाचा की लड़की कुमुदनी से पुष्कर का विवाह प्रेम के लोक विश्रुत रूप का व्यापक चित्रण किया है। नल विवाह के अवसर पर इन प्रसंगों का महत्व पारिवारिक दृष्टि से अधिक है। पुष्कर की कथा को कवि यहीं से जोड़ देता है। इस कथा से दोनों भाइयों के गहरे प्रेम की अभिव्यंजना होती है। नल-दमयन्ती की प्रेम-वार्ता के मध्य कवि कर्तव्य और प्रेम का ऐसा विवेचन करता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रेम एकान्तिक होते हुए भी लोक कल्याण का समर्थक है।

द्यूत सभा से चेदिराज तक कलि ने प्रतिकार हेतु द्यूत को आधार करके पुष्कर से यह कार्य कराया। इस प्रसंग में 'महाभारत' के तात्विक अंश की पूर्ण रक्षा करते हुए कवि ने अनेक सोद्देश्य परिवर्तन किए। पुष्कर के साथ द्यूत में नल सर्वस्व हारकर वनवासी होते हैं। वन में दमयन्ती उनसे पृथक हो जाती है और अनेक कष्टों का सहन करती हुई चेदिराज के यहां पहुँचती है।

द्यूत सम्बन्धी निम्न प्रसंग 'दमयन्ती' में नहीं है।

कलि द्वारा बारह वर्षों तक नल के छिद्र की खोज में रहना, पैरों को न धोने की स्थिति में आचार भंग होने के कारण[1] कलि का नल में प्रवेश। द्यूत न खेलने के लिए दमयन्ती की प्रार्थना[2] सभासदों का द्यूत क्रीड़ा से निवारण करना। इनमें प्रथम दो प्रसंगों को 'दमयन्ती' में अतिप्राकृत होने के कारण स्थान नहीं मिला। कवि ने इन प्रसंगों की तुलना में अधिक मनोवैज्ञानिक एवं स्थिति-सापेक्ष तत्वों का चित्रण किया है। बाद के दो प्रसंगों को कवि ने परिवर्तित रूप देकर चित्रित किया है। इन प्रसंगों के अतिरिक्त सभी घटनायें 'महाभारत' में घटित घटना के आधार पर अपरिवर्तित रूप में प्रस्तुत की गई हैं।

परिवर्तन परिवर्धन कवि पुष्कर के मित्र गालव द्वारा पुष्कर की मति भ्रष्ट करवाता है। पुष्कर पहले सद्भाव के आधार पर गालव का विरोध करते हैं

---

१ म० वन० ५६।२३

२ [illegible]

किन्तु अन्तिम विजय नलि की हो हाती है।[1]

पुष्कर के अंतद्वन्द्व में राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न और गणतंत्र की विवेचना होती है।[2]

'महाभारत' म सारथी महल मे द्यूत की सूचना देता है। दमयन्ती पुरवासिया क साथ नल का द्यूत न खेलने का परामर्श देती है, किन्तु नल इस परामर्श का आदर नही करते 'दमयन्ती' मे रानी को सूचना तब मिलती है, जब नल सब कुछ हार जाते हैं और वह दरबार मे आकर सभासदा स पूछती है कि यह सब क्यो हुआ ?[3] 'दमयन्ती' म पुष्कर दरबार में आकर अभद्रता से व्यवहार करके द्यूत का प्रस्ताव रखता है और नल उसे स्वीकार कर लेते हैं। 'महाभारत' मे द्यूत के लिए नल पश्चात्ताप नही करते किन्तु दमयन्ती' व अपना अपराध स्वीकार करते हैं कि मुझे यह नही करना चाहिए था।[4]

द्यूत प्रसग का विस्तार कवि ने एक सर्ग में किया है, इसके व्याज से उसने कई प्रश्नों पर विचार किया है। दमयन्ती क कथन म विश्वास भग होने की स्थिति की पीडा मुखरित है। राज्य किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति है या नहीं, इस विषय पर कवि ने आधुनिक दृष्टि स विचार किया और एक अतिरिक्त प्रसग से सौहार्द्र का चित्रण किया है। द्यूत म सब कुछ हारने पर कुमुदनी अपनी बहन से दुःखपूर्ण उद्गार प्रकट करती है। यह वार्तालाप नूतन उद्भावना है।

नल का वनवास द्यूत के अनिवार्य परिणामस्वरूप नल दमयन्ती को लेकर वन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। कवि वनवास की घटनाओं को अत्यन्त मार्मिक रूप म प्रस्तुत करता है।

'महाभारत' के जो प्रसग इसमे लिए गये हैं उनम नल का भूख प्यास से तड़पते निषध की सीमा पार करना नगर निवासियों का पुष्कर की आज्ञा के कारण नल की सहायता न करना, वन म पक्षियों के द्वारा राजा नल का वस्त्र छिन जाना, अत्यधिक दुःखी देखकर दमयन्ती का विदर्भ चले जाने के लिए नल का परामर्श मुख्य हैं।

महाभारत' मे नल के चले जाने के उपरान्त पुष्कर क पश्चाताप की कोई सूचना नही है 'दमयन्ती' म कवि वन मे नल-दमयन्ती को एक निषध व्यक्ति के द्वारा दो दिन बाद ही पुष्कर के अपराध मान और पश्चाताप की सूचना देता है।

पुष्कर नल के मुकुट को सिंहासन पर रखकर विलाप करते रहे तथा अन्य पुरवासी अधिक शोकमग्न रहे। कुमुदिनी सर्वस्व त्याग कर कुण्डिनपुर चली गई।

---

१ दमयन्ती, पृ० १७० १७१
२ दमयन्ती, पृ० १७३
३ म० वन० ५६।१२, दमयन्ती पृ० १६७
४ दमयन्ती, पृ० १६८ १६६

'महाभारत' म पुष्कर द्वारा नल की खोज के प्रयास की कोई सूचना नहीं, 'दमय ती मे पुष्कर नल का खोजन का यत्न करते हैं। चारो दिशाम्रा म चर भेजते हैं किन्तु पता नही चलता। 'महाभारत' म दन की कथा का अधिक सन्तापयुक्त वर्णन है और काव्य म भी इस कथा को पर्याप्त विस्तार देकर कवि न दमय ती की पतिभक्ति को उज्ज्वल रूप म सिद्ध किया है। दमय ती म नल द्वारा त्यागने स पूव का अन्त द्वद्व महाभारत' का छायानुवाद है। नल का अन्तद्व द्व मानव की विवशता प धरा तल पर चित्रित हुआ है।

इन परिवतना में कथा सयाजन की मौलिक प्रतिभा का उद्घाटन हुआ है और कथा को अधिक मनोवैज्ञानिक बना दन की चप्टा की है।

अकेली दमय ती नल अत्यधिक मानसिक सघष के उपरान्त दमयन्ती को अकली छोड कर चल जाते है। इस प्रसग म कुछ परिवतन करक तक सम्मत बनाने की चप्टा की है और 'महाभारत का काइ उल्लेखनीय प्रसग छाडा नही

महाभारत म दमयन्ती क विलाप का मुख्य कारण नल की चिन्ता है दमयन्ती म इसका प्रभाव है। व्याघ का प्रसग समान रूप म चित्रित है किन्तु मह भारत म व्याध की मृत्यु सती क प्रताप स दिखाई गई है दमय ती म वह रान की रज्जु का शिकार बनता है।[१]

महाभारत म दमय ती को विलाप करते हुए एक तपावन दिखाई देता है उसमें ऋषिमुनि दमयन्ती क भविष्य की सुखद रूपरेखा बताकर अ तर्धान हा जात हैं दमयन्ती में इस प्रसग का स्वप्न क रूप में अकित किया गया है।[२] महाभारत में व्यापारियो ने विपत्ति का कारण मणिभद्र की पूजा न करना बताया पर दम यती में यह दाप दमयन्ती क ऊपर थोपा गया।[४] महाभारत में दमयन्ती चेदि राज्य में पहुँच कर अपने को छिपाकर रहने का प्रब ध कर लती है और प्रथम दर्शन में ही नहा पहचानी जाती दमयन्ती में वह प्रथम दशन में ही पहचानी जाती है।[५]

इन प्रसगा में कवि ने सभी अतिप्राकृत तत्वा का परिवर्तित करक बुद्धि-गम्य रूप दन का प्रयास किया है। महाभारत की कथा स अपरिचित व्यक्ति इनमें कहीं भी दिव्य अश की झलक नहीं पा सकता।

अकेले नल नल अपने मन को किसी प्रकार समझा कर दमय ती को छोडकर चल दते हैं तथापि उनको अतीव दुःख रहता है। माग म कर्कोटक नाग क

१ म० वन० ६३।२४ २५, दमय ती पृ० २२९
२ म० वन० ६३।३७ ३९ दमय ती पृ० २३२
३ म० वन० ६४।६४ ६६, दमय ती पृ० २३६
४ म० वन० ६५।२० २५, दमय ती पृ० २३९
५ म० वन० ६५।५५, दमय ती पृ० २४०

द्वारा रूप-परिवर्तन करके, बाहुक रूप धारी नल ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँच जाते हैं। इस कथांश में निम्नांकित उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं।

'महाभारत' में नाग से सम्बन्धित नारद के सांकेतिक अनुवृत्त को कवि ने सूचनात्मक रूप में ग्रहण किया है।[1] 'महाभारत' में नाग राजा नल को रूप-परिवर्तन के लिए काटता है, और रूप की पुनः प्राप्ति के लिए वस्त्र-दान करता है, किन्तु 'दमयन्ती' में नाग एक जड़ी बूटी का पीसकर लगाने से रूप-परिवर्तन और उसी रूप में पुनः प्राप्ति की योजना बनाता है।[2]

नल का ऋतुपर्ण के यहाँ पहुँच कर गौशाला का अध्यक्ष बनना और दमयन्ती का स्थान कर रानी में ... होने की कथा समान है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया। इसी स्थल पर 'दमयन्ती' का कवि सुदेव के प्रसंग की सूचना देता है।

अयोध्या से कुण्डिनपुर तक बाहुक रूपधारी नल का परिचय देने के उपरान्त कथा द्रुतगति से मिलन की ओर बढ़ती है।

कुमुदिनी और दमयन्ती आपस में मिलकर पश्चात्ताप करती दुखी होती हैं। 'महाभारत' में यह प्रसंग नहीं है। यह प्रसंग कवि द्वारा चित्रित पूर्व प्रसंग[3] का पूरक है। दमयन्ती के कोई गौरव प्रदर्शन करते हैं, कि हमको स्मरण क्या नहीं किया? हम शक्ति से राज्य छीन लेते।[4] बाहुक की सूचना समान रूप से दी गई है इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया, 'महाभारत' में पुष्कर का पश्चात्ताप नहीं दिखाया गया है यदि है तो वह द्यूत में हारने के उपरान्त है। कवि ने इस प्रकार कथा का स्थानान्तरण करके नायक के चरित्र की रक्षा की है। राजा नल के प्रति पुष्कर का पश्चात्ताप मूलरूप में उसके स्नेह का सूचक है। इस तरह से दोष प्रक्षालन भी हो जाता है। 'महाभारत' में उपेक्षित पुष्कर के चरित्र को कवि ने अत्यन्त सहानुभूति से काव्य में स्थान दिया और उसके साथ पूर्ण न्याय किया है।

ऋतुपर्ण को स्वयंवर की सूचना और बाहुक द्वारा कुण्डिनपुर तक अश्व सञ्चालन का प्रसंग पूर्ण रूप से 'महाभारत' के समान है। 'महाभारत' में बाहुक यह सूचना सुनकर अपने मन में विचार करते हैं, 'दमयन्ती' में वे उत्सुकता वश राजा से सारा समाचार पूछकर विचार करते हैं।[5] 'महाभारत' में स्त्री-पुरुष के अधिकार को लेकर कोई वार्ता नहीं, 'दमयन्ती' में इस अधिकार की चर्चा है और नारी के

---

१ म० वन० ६६।४ ६ दमयन्ती पृ० २४५
२ म० वन ६६।१२- ३५, दमयन्ती, पृ० २४७
३ दमयन्ती, पृ० २०८ २०९
४ दमयन्ती, पृ० २६०
५ म० वन० ७१।४ ८, दमयन्ती, पृ० २८३

अधिकार का समर्थन किया गया है।[1] 'महाभारत' में ऋतुपर्ण से वनवास की अवधि के विषय में कुछ नहीं कहलाया गया, 'दमयन्ती' में बाहुक के पूछने पर ऋतुपर्ण अवधि पूर्णता की सूचना देते हैं और यह भी बताते हैं, कि पुष्कर उनको लेने के लिए कुण्डिनपुर आया है।[2] 'महाभारत' में वृक्ष के पत्ते गिनना, राजा ऋतुपर्ण के अश्वविद्या सीखने और द्यूत विद्या सिखाने इन तीनों में से कवि ने पहली दो विद्याओं का उल्लेख किया है। 'महाभारत' में पुनः द्यूत क्रीडा है, 'दमयन्ती' में कवि ने उसे उस रूप में स्वीकार न करके पुष्कर के पश्चात्ताप से राज्य की पुनः प्राप्ति का वर्णन किया है। 'महाभारत' के यथालिखित प्रसंग काव्य में नहीं हैं।

कलि का प्रकट होकर अपना अपराध मानना,[3] कलि को शाप देने की नल की इच्छा[4] बहेड़े के वृक्ष में कलि का समा जाना[5] इन स्थलों को कवि ने अति प्राकृत होने के कारण स्वीकार नहीं किया।

नल दमयन्ती मिलन : राजा ऋतुपर्ण के आने का समाचार सुनकर भीम उनके स्वागत के लिए आये। इस प्रसंग की सम्पूर्ण कथा 'महाभारत' के समान है। कुछ समान प्रसंग इस रूप में है।

भीम की प्रधानता में ऋतुपर्ण को निमंत्रण भेजना, कुण्डिनपुर आकर ऋतुपर्ण का आश्चर्य चकित होना और केवल दर्शन के लिए अपने आने का कारण बताना। घोड़ों के स्वर से दमयन्ती का तथा नल के घोड़ों का प्रसन्न होना, बाहुक और केशिनी की वार्ता, पुत्र-पुत्री के द्वारा नल की परीक्षा अन्त में दमयन्ती का स्वयं गमन और मधुर मिलन।

इन प्रसंगों को कवि ने यथावत चित्रित किया है। केवल अन्त में एक परिवर्तन यह है कि लौटकर नल पुनः द्यूत नहीं खेलते, पुष्कर स्वयं राज्य लौटाने की घोषणा करते हैं।

समीक्षा

इस प्रकार नलोपाख्यान पर आधारित 'दमयन्ती' काव्य के कथा-स्वरूप का विचार करते यह स्पष्ट होता है कि कवि का एक निश्चित उद्देश्य है जिससे प्रेरित होकर यह काव्य लिखा गया। कवि ने उन्हीं स्थलों को परिवर्तित रूप में चित्रित किया है जिनमें या तो वह अलौकिकता को बचाना चाहता है अथवा चारित्रिक उत्थान करना चाहता है। परिवर्तन और नूतन उद्भावनाओं के रूप में आये प्रसंग

---

1 दमयन्ती, पृ० २८४
2 दमयन्ती, पृ० २८५ २७८
3 म० वन० ७२।३३
4 म० वन० ७२।३२
5 म० वन० ७२।३७

या तो सामाजिकता के विवेचन के हेतु आये हैं या उनसे पात्र की मानसिक अभिव्यक्ति हुई है।

'दमयन्ती' काव्य की प्रमुख उपलब्धि उसके सामाजिक दृष्टिकोण मे है। मूल-कथा भाग मे जो परिवर्तन किये गये हैं, उनके द्वारा कवि ने अनेक सामाजिक समस्याओ की विवेचना की है। कथा परिवर्तन अधिक न करके कथा विकास के मध्य सिद्धात प्रतिपादन हुआ है। महाभारत' मे नल दमयन्ती प्रेम का आविर्भाव और विकास उतने मानसिक द्वद्व के साथ नहीं है जितना 'दमयन्ती' मे है। 'दमयन्ती' के कवि का मत एक सामाजिक व्यवस्था से अनुप्राणित है। प्रेम-मानव जीवन की नितान्त स्वाभाविक प्रवृत्ति है, किन्तु उसके विकास का रूप सामाजिक बन्धन से युक्त है। उसमे स्वच्छन्दता को स्थान नही है। प्रेम की वास्तविक सिद्धि परिणय म है। परिणय सामाजिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण विधान ह। इस विधान का भङ्ग करने का अधिकार दिव्य शक्तियो को भी नही है। जो प्रेम परिणय की सीमा म सामाजिक बन्धनो का आदर करता है वह क्षेम से परिपूर्ण और लोक जीवन का उन्नायक है।

दूसरी महत्वपूर्ण समस्या है स्त्री के सामाजिक अस्तित्व की। दमयन्ती नल का वरण करती है देवता उनमे विघ्न बनते हैं, तो क्या स्त्री अपने अधिकार को त्याग दे? कवि स्त्री की दुर्बलता को समाप्त कर उसमे सघर्ष की शक्ति भरता है। देवताओ को 'दमयन्ती' मे चेतावनी दी जाती है कि विपथ पर चल कर अन्याय न करें अन्यथा सती का तेज उनके अमरत्व को समाप्त कर सकता है। दमयन्ती की शक्ति मे आधुनिक तेजोदीप्त स्त्री की शक्ति है। 'महाभारत' की दमयन्ती केवल विनम्र प्रार्थना करती है किन्तु आधुनिक युग की नारी केवल प्रार्थना का बल नही रखती अपितु सत्य की फुकार भी रखती है अत उसका शोषण नही हो सकता।

'दमयन्ती' मे एक महत्वपूर्ण स्थिति पुष्कर का हृदय परिवर्तन है। पुष्कर जिस क्षणिक आवेग से अग्रज का विरोधी बनता है, उसी मात्रा से पश्चात्ताप की अग्नि म दग्ध होता है।

यह परिवर्तन इस तथ्य का द्योतक है कि महाभारत क युग से आज के युग तक मानवीय मान्यता मे कितना परिवर्तन हुआ है। आज के चरित्र म मानवीय गुणो का समावेश अधिक मात्रा मे है और इसकी उपलब्धि यह है कि पराजित होकर राज्य लौटाने से हृदय परिवर्तन अधिक श्रेयस्कर और मानवीय है। ऐसा सात्विक हृदय परिवर्तन आज के सघर्षमय स्वार्थयुक्त और शोषण प्रधान विश्व म आलोक की किरण सुरक्षित रखता है। भूमि क छोटे भाग पर विश्व-युद्ध क लिए तत्पर आज के मानव को त्याग क इस आदर्श का सन्देश लोक कल्याण की महती भावना से आपूरित है।

नकुल

कवि सियारामशरण गुप्त का काव्य 'नकुल' 'महाभारत' के वनपर्व के एक लघु प्रासंगिक वस्तु पर आधारित है। वन निवास के अन्तिम दिनों की एक घटना के प्रारम्भ और अंत में नकुल का नाम अत्यन्त नाटकीय रूप से सम्बद्ध है। यद्यपि 'नकुल' काव्य में नकुल के जीवन का समस्त वस्तु नहीं है, तथापि कथा के अन्तिम भाग में नकुल की प्रधानता के कारण इस काव्य का नामकरण 'नकुल' किया गया। 'महाभारत' के कथान्त में नकुल और कथा का चरम उत्कर्ष अनायास ही एक साथ महत्वपूर्ण हो उठते हैं। कवि ने महाभारतीय कथानक को काव्यात्मक कलेवर देकर तथा अन्य काव्योचित सुन्दर प्रसंगों की उद्भावना करके 'नकुल' को नये रूप में प्रस्तुत किया है।

कथा संग्रहण

'नकुल' में अरण्यपर्व के अध्याय ३११ के आधार पर पाण्डवों का मृग के पीछे जाने का वस्तु लिया गया है। जब हिरण ब्राह्मण की अरणि मथनिका लेकर भाग गया तब वह तपस्वी पाण्डवों के पास आया और पाण्डवों ने उसके धर्म की रक्षा के लिए हिरण का पीछा किया। अध्याय ३१२ के आधार पर नकुल का जल के लिए जाना और अन्य पाण्डवों का अचेत होना वर्णित है। अध्याय ३१३ में यक्ष युधिष्ठिर संवाद के आधार पर मणिभद्र की कथा की संयोजना की है। इस प्रकार 'महाभारत' के कथानक को कवि ने अपनी स्वतन्त्र दृष्टि से अनुरूप ग्रहण करके महत्वपूर्ण परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं। 'महाभारत' में वर्णित कथा इस प्रकार है।

पाण्डवों के पास में रहने वाले एक ब्राह्मण की अरणि मथनिका को एक हिरण सींगों में उलझाकर भागा। तपस्वी ब्राह्मण पाण्डवों के पास आया और हिरण को मारने तथा मथनिका छुड़ाने की प्रार्थना की। इसपर सभी पाण्डवों ने हिरण का पीछा किया। हिरण लुप्त हो गया और पाण्डवों ने थककर प्यास का अनुभव किया है। नकुल ने अग्रज की आज्ञा पाकर निकटवर्ती एक तालाब का अनुमान लगाया। उसी को पानी लाने का आदेश हुआ। जब नकुल पानी पीने को तत्पर हुआ तो एक वाणी हुई। ठहरो! प्रथम प्रश्नों का उत्तर दो फिर पानी पीना! नकुल ने अवहेलना की, परिणामस्वरूप मृत्यु का ग्रास बना—इधर एक के बाद दूसरे को आदेश मिला, उधर वही गति। चारों पाण्डव मृत्यु के ग्रास हुए। अन्ततः युधिष्ठिर प्रायः उन्होंने भाइयों को निर्जीव देखकर किसी षड्यन्त्र की कल्पना की। उनसे भी वही प्रश्न हुआ पर उन्होंने सन्तोषजनक उत्तर दिये फलस्वरूप किसी एक भाई को जीवनदान देने की बात कही गई। युधिष्ठिर ने नकुल का जीवन मांगा। यक्ष ने कहा—प्रिय भीम सेन और अर्जुन को छोड़कर सौतेले भाई नकुल को क्यों जिलाना चाहते हो? युधिष्ठिर

ने कहा धर्म की प्रतिष्ठा के कारण मेरी दोनों माताएं पुत्रवती रहें अत नकुल को चाहता हू। इस उत्तर से प्रसन्न होकर यक्ष ने सब को जीवनदान दिया। वह यक्ष स्वयं धर्म था उसने युधिष्ठिर के धर्म की परीक्षा ली थी।

परिवर्तन-परिवर्धन महाभारत' की कथा को गुप्त जी ने अनेक परिवर्तन एव परिवर्धनों म स्वीकार किया है। यह अत्यन्त स्वाभाविक एव काव्य की रसमत्ता के हेतु अनिवार्य था। गुप्त जी का उद्देश्य कथा-वाचक की भांति कथा कहना मात्र नहीं था। उन्होंने मुख्य घटना और घटना-सन्धियों में काव्योचित परिवर्तन किया।

'महाभारत में पाचों पाण्डव कुटिया मे होते हैं।'[1] नकुल में युधिष्ठिर ही कुटी में उपस्थित हैं।[2] शेष चार भाई और द्रौपदी वन विहार हेतु गए हुए हैं।[3]

द्रौपदी प्रात कालीन स्नान करने गई तो वज्रसेन नामक एक व्यक्ति से भेंट हुई। उसने अमृतहृद पर एक दानव की बात कही। पाण्डवों को आश्चर्य हुआ कि यह दानव कौन ? वे सभी उस ओर चल पड़े।[4]

युधिष्ठिर का मार्ग में प्यास लगी और वे एक आश्रम मे पहुँचे। वहा मणि-भद्र यक्ष ने उस अमृतहृद के जल को विषाक्त होने के कारण पीने से मना किया, और इन्द्रपुरी में अर्जुन-दर्शन का वृत्तान्त भी युधिष्ठिर को सुनाया। 'महाभारत में हिरण धर्म ही थे नकुल' म यक्ष ने बताया कि वह मयन्तिका सुरक्षित है।[5]

अमृतहृद का दुर्योधन के गण दुर्वृत्त ने विषाक्त कर दिया। इस सूचना से युधिष्ठिर चिन्तित हुए। वे सरोवर की ओर बढे और दुर्वृत्त और वज्रबाहु को मरा पाया तो विशेष चिन्तित होकर सरोवर तक आये। यक्ष उनके साथ ही सरोवर तक आया और युधिष्ठिर को हतप्रभ देखकर अपनी एक अमृत बूद के द्वारा एक व्यक्ति को जिलाने की बात कही। युधिष्ठिर ने नकुल का जीवन मांगा। यक्ष ने आश्चर्य-चकित होकर युधिष्ठिर को समझाया पर वे न माने। अमृत की बूद से नकुल जीवित हो उठा पर वह बूद अक्षय थी अत उसने सबको जीवन-दान दिया।

गुप्त जी ने महाभारत' के मूल कथानक मे उक्त परिवर्तन सोद्देश्य किये। यदि वे मूल कथा को यथावत काव्य का आवरण देते तो कवित्व अत्यन्त हीन कोटि का होता। काव्य को अनेक सुन्दर वर्णनों से पुष्ट करने के लिए कवि ने द्रौपदी को पुष्पचयन करने के लिए भेजकर विलम्ब कराया। अर्जुन ढूढन निकले। एकान्त म प्रकृति की रम्यस्थली में प्रेम चर्चा हुई और फिर कुटी म आकर अमृतहृद देखने युधिष्ठिर को छोडकर सभी चल पडे।

मूल कथा व परिवर्तित स्थलों के हेतु कवि ने अनेक लघु प्रसगों की उद्भावना की। वन पर्व के इस लघु वृत्त का सार है त्याग। त्याग द्वारा मानवता का प्राप्त

१ म० वन ३१०।११
२ नकुल, पृ० १
३ नकुल, पृ० २
४ नकुल, पृ० ४४
५ नकुल, पृ० २५

प्रतिष्ठित किया गया है। यही इस काव्य का उद्देश्य है। मानवता का रूप 'त्याग' में निखरता है। युधिष्ठिर अपने सगे भाई को जीवित कराने का प्रयत्न नहीं करते, अपितु सौतेले भाई को जीवित देखना चाहते हैं यही त्याग है इसी त्याग में मानव-धर्म सुरक्षित है।

कथा विकास औचित्य :—गुप्त जी ने महाभारतीय कथा की आत्मा की रक्षा करते हुए काव्य की कथा का विकास अनेक कल्पनाओं से किया है। कवि ने नकुल को सबसे छोटा माना। यह परिवर्तन अन्य अनेक परिवर्तनों का कारण बना। कवि अरणि मथनिका के प्रसंग को, पाण्डवों की मूर्छा को, जल की विषाक्तता को अक्षुण्ण रखते हुए ही कथा का विकास सूत्र निर्मित करना चाहता था। इसके लिए कवि ने निम्न प्रसंगों की नूतन उद्भावनाएं की।

हृद की अनिवार्यता के हेतु अमृतहृद की कल्पना।

यक्ष की उपस्थिति तथा उसी यक्ष के द्वारा सभी भाइयों का पुनर्जीवन प्राप्त करने की सम्भावना के हेतु यक्ष के आश्रम की कल्पना, युधिष्ठिर का वहां ठहरना और यक्ष द्वारा इन्द्रलोक में अर्जुन का वृत्तान्त सुनना।

अमृतहृद का दुर्योधन के गण द्वारा विषाक्त करना। इसमें कविने 'महाभारत' के संकेत को मूल आधार माना है।

अन्य पाण्डवों का वन विहार हेतु जाना और युधिष्ठिर का कुटी में ठहरना इस हेतु अनिवार्य हुआ कि धर्म की परीक्षा का न प्रश्न था तो यक्षादि लेना नहीं था किन्तु युधिष्ठिर की रक्षा आवश्यक थी अतः वह परिवर्तन अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया। सभी भाई वन विहार हेतु गये। युधिष्ठिर अधिक थके होने के कारण ठहरे। पीछे ब्राह्मण आया और कर्तव्य रक्षा हेतु युधिष्ठिर को जाना पड़ा। मार्ग में यक्ष मिलन हुआ। यह यक्ष मणिभद्र है धर्म नहीं। मणिभद्र अमृतहृद के विषाक्त होने की सूचना देता है और फिर वही अन्य पाण्डवों को जीवित करता है।

मणिभद्र के प्रश्नों को कवि ने यथार्थ जिज्ञासा के धरातल पर चित्रित किया है। हिरण भी आश्रम का ही है और उसके द्वारा मथनिका की सुरक्षा करा कर कवि ने सभी प्रसंगों की रक्षा की। इससे महाभारत के किसी भी कथानक को छोड़ना नहीं पड़ा और काव्य-कथा का स्वतन्त्र रूप से विकास भी हो गया।

महाभारत में कथा का रूप परिचयात्मक है, और धर्म एवं युधिष्ठिर के प्रश्नोत्तरों में विवेचनात्मक रहा। 'नकुल' की सबसे बड़ी समस्या है परिचय एवं विवेचनात्मकता का समन्वय। वह न तो कथा को परिचयात्मक रख सकता है और न केवल विवेचनात्मक इन दोनों की भिन्नता में काव्य रस की हानि होती है। इस कारण कवि ने कथात्मक सज्जा के साथ कलात्मकता से कथा के स्वरूप का संयोजन किया।

प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर कुटी में ही हैं—शेष पाण्डव गये हैं। [1]युधिष्ठिर के अकेले होने के कारण ही मार्ग में मणिभद्र की भेंट और मुरलीधर के ध्यान तथा यक्ष की जिज्ञासा के समाधान रूप में कथा को विकास प्राप्त होता है। 'महाभारत' में सभी भाई साथ ही हिरण का पीछा करते हैं।[2] यहां पर कवि ने एक प्रसंग की अवतारणा संस्मरण के रूप में कराई है। वह इस स्मरण से कथान्तर्गत शून्य की पूर्ति करता है। युधिष्ठिर वन में जाते समय चारों ओर प्रकृति की सौन्दर्य छटा देखकर कृष्ण का स्मरण करते हैं। हिरण के प्रसंग से उनको गोपियों की मुग्धता स्मरण हो जाती है।

यह प्रसंग 'महाभारत' में नहीं है। कृष्ण की वेणु के सम्मोहन स्वर से जड़ भी चेतन हो गया और फिर अनायास वेणुवादन रुका और चारों ओर शान्ति छा गई।[3] दूसरा स्मरण मणिभद्र द्वारा होता है। इन्द्र के अतिथि रूप में अर्जुन का वर्णन कितना भव्य है।

> वहां जहां जग रही महोत्सव दीपक माला।
> अन्तस की यह ग्लानि संगिनी इस जीवन की।
> निराभरणता—छाप दीनता की इस तन की।
> गई न जाने कहां निमिष में ही भीतर से।[4]
> रिक्तवेश में यहां पार्थ के दर्शन भर से।

मानव के चरणों से जिस दिन स्वर्ग पवित्र हुआ, स्वर्ग की सौन्दर्य राशि मानव के चरणों का शृंगार करने लगी तभी कवि ने मानव की महत्ता को देवत्व से भी ऊँचा पद दिया। तीसरा संस्मरण अर्जुन की कैलाश यात्रा है।[5] इस संस्मरण के द्वारा कवि ने प्रत्यक्ष रूप से मानव की महत्ता का और अप्रत्यक्ष रूप से भाग्य की अनिवार्यता की स्थापना की है।

द्रौपदी को पुष्प चयन हेतु विजन गंगा के तट पर भेजना और वहां वज्रसेन का मिलना कथा विकास का कलात्मक स्थल है। द्रौपदी राजरानी है किन्तु भाग्यवश वनवास मिला। यह स्वाभाविक है कि उसे हस्तिनापुर के राजनिकेतन का वैभव

---

१ सह अनुभूति समेत युधिष्ठिर बोले द्विज से।
बल कौशल में बड़े अनुज हो हैं सब मुझसे।
कृष्णा युत वे विहर रहे हैं वन में अमलिन।
आज हमारे विजन वास का जो अन्तिम दिन। नकुल, पृ० २

२ ब्राह्मणस्यवच श्रुत्वा सन्तप्तोऽथ युधिष्ठिर।
धनुरादाय कौन्तेय प्राद्रवद् भ्रातृभिः सह॥ म० वन० ३११।१५

३ नकुल, पृ० ७

४ नकुल, पृ० २३

५ नकुल, पृ० ५२ ५३

स्मरण हो आए। पाण्डवों के साथ रहकर तो उसका अन्तर्मन इतना अधिक मुखर नहीं हो सकता पर एकान्त में भाग्य की विडम्बना के विषय में विचारना तो मानव की प्रवृत्ति है। नारी होने के कारण कष्ट-कथा अधिक करुण हो गई। द्रौपदी के इस विचार का संकेत 'महाभारत' में नहीं है, तथापि सम्पूर्ण 'महाभारत' में स्थान-स्थान पर द्रौपदी की करुण अभिव्यक्ति 'नकुल' काव्य के इस स्थल का स्रोत है। अनेक स्थलों पर द्रौपदी के अश्रु बहे, अब एकान्त में उसे अपने दुःख, कष्ट और अपमान के सभी स्थल स्मरण हो आये।

कथा विकास में कवि ने यह स्मरण चित्र रखकर अत्यधिक कलात्मक प्रबन्ध कौशल का परिचय दिया है। यह परिवेचन 'महाभारत' की द्रौपदी के व्यक्तित्व की छाया है[1] जिसको अभी तक जीवन में स्थिरता नहीं मिल पाई।[2]

'महाभारत' में प्रसंग को अत्यन्त शीघ्रता से उठाया गया और समाप्त किया है। युधिष्ठिर तथा अन्य पाण्डव अनेक प्रकार के बाणों से हिरण को बिद्ध न कर सके। 'महाभारत' में धर्म हिरण बनकर परीक्षा हेतु आये थे। धर्म का हिरण रूप होना कथा को मानवेतर स्थिति तक पहुँचा देता है। धर्म के दिव्य रूप की स्वीकृति से यह कथा दिव्य बन जाती है। आज का प्रबुद्ध पाठक इस प्रसंग को इस रूप में सम्भवतः स्वीकार न कर सके अतः उक्त प्रसंग को युगानुरूप परिवर्तित करके 'नकुल' के कवि ने इसे लोक एवं विवेक सम्मत रूप दिया है।

युधिष्ठिर के पूछने पर धर्म उनकी शंका का समाधान करते हैं।

अरणी सहितं ह्यस्य ब्राह्मणस्य हृतं मया।
मृग वेषेण कौन्तेय जिज्ञासार्थं तव प्रभो।[3]

इस मानवेतर रूप को गुप्त जी ने अधिक मनोवैज्ञानिक एवं बुद्धि सम्मत बनाकर प्रस्तुत किया है। हिरण धर्म रूप नहीं अपितु मणिभद्र यक्ष के आश्रम का जीव है, वह अरणि मथनिका लेकर वहीं जाता है। इस तरह ब्राह्मण को उसकी वस्तु मिलती है।

क्षमा करें, वह मूढ़ हिरण मेरा था, द्विजवर,
उसने वह जो किया दोष उसका है मुझ पर।
रक्षित है द्रुत वित्त अभी मुझको जाने दें
जिनका परिचय दिया क्षेम उनका पाने दें।[4]

---

१ नकुल, पृ० ३०
२ महाकाल, है महाकाल इस अवनीतल पर
रहने देंगे क्या न कभी सुस्थिर सुख पल भर ॥ नकुल, पृ० ३२
३ म० वन० ३१४।१३
४ नकुल, पृ० ८१

कवि ने 'महाभारत' की कथा के मानवेतर रूप का अत्यंत स्वाभाविक मानवीय रूप दिया है। यही उसकी उपलब्धि है और उसकी युग जागरूकता का प्रमाण।

कथा के विकास में अब एक स्थल पर विचार करना है—वह स्थल है यक्ष-युधिष्ठिर सवाद। यह कथा का स्थिर स्थल है किन्तु है महत्वपूर्ण। महाभारतकार की दृष्टि में इस स्थल की महत्ता सामान्य कथा से अधिक रही होगी, इसी हेतु यक्ष एवं युधिष्ठिर का सवाद अधिक विस्तृत हो गया है। ऐसे समय में जबकि सभी प्रिय भाई मृत्यु को प्राप्त हो गये हों, युधिष्ठिर इतने धैर्य से यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते है, मानो कुछ हुआ ही नहीं। 'महाभारत' में यह स्थल अलौकिक है, किन्तु 'नकुल' में यक्ष से बात करते समय युधिष्ठिर के सभी सिद्धांत वाक्य स्वाभाविक लगते हैं। महाभारत' में यक्ष धर्म के विषय में प्रश्न करता है।

किंस्विदेकपदं[1] धर्म्यं धर्म का मुख्य स्थान क्या है?"

युधिष्ठिर उत्तर देते है।

दाक्ष्यमेकं पदं धर्म्यं[2]—"धर्म का मुख्य स्थान दक्षता है।"

इस सवाद में कथा का करुण स्थल लुप्त हो जाता है और ऐसा लगता है जैसे धर्म कर्त्तव्य के विषय में वार्तालाप हो रहा हो। मनोविज्ञान कि दृष्टि से यह स्थल ऊपर से आरोपित लगता है।

यक्ष का एक अन्य प्रश्न है?

कश्चधर्म परोलोके कश्च धर्म सदा फल ?[3]

'लोक में श्रेष्ठ धर्म क्या है? नित्य फल वाला धर्म क्या है?'

कथा का यह स्थल दार्शनिक गम्भीरता और विवेचनात्मक शुष्कता लिए हुए हैं किन्तु धर्म का जो रूप 'नकुल' के युधिष्ठिर भावना के प्रवाह में देते हैं, उसमें कथा के करुण रूप की रक्षा और युधिष्ठिर की मानसिक स्थिति की वास्तविकता दोनों का ज्ञान हो जाता है।

> चिर निद्रित है अनुज और अग्रज जागृत है
> यह कैसा अभिशाप, न जाने कौन कुकृत है।
>
> × × ×
>
> छोटे के भी लिए बड़े से बड़ा समर्पण,
> किया जाय जब, तभी धर्म धन का संरक्षण।[4]

सभी अनुजों को मृत्यु के मुख में देखकर आहत हृदय सब प्रकार के त्याग के हेतु प्रस्तुत है। वह अपने प्रेम के ही नहीं, अपितु सभी भाइयों के स्नेह के

---

१ म० वन० ३१३।६६
२ म० वन० ३१३।७०
३ म० वन० ३१३।७५
४ नकुल, पृ० ६३

प्रतीक नकुल का जीवित देखने के इच्छुक हैं। युधिष्ठिर दया, समता और अनृशंसता की स्थापना और प्रसार चाहते हैं। महाभारत' में युधिष्ठिर की उक्ति है—

आनृशंस्य परोधर्म परमार्थाच्च मे मतम।
आनृशंस्यचिकीर्षामि नकुलो यज्ञ जीवतु।[1]

नकुल के कवि ने भी इसी दया और समता की भावना की पूर्ण रक्षा की है। 'नकुल' में यक्ष पूछता है—

इस जगती में क्षुद्र महत का भेद नहीं क्या,
गिने जाय सम विषम एक से सभी कहीं क्या।[2]

इसका कितना सटीक उत्तर युधिष्ठिर देते हैं

होगा निश्चय क्षुद्र महत का भेद भुवन में।
सब हैं एक समान परन्तु मरण जीवन में।[3]

युधिष्ठिर एक ओर सामाजिक विषमता की कठोर वास्तविकता को मानते हैं, किन्तु वह आदर्श नहीं है। वे समानता की यथार्थ रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, कि मरण एवं जीवन में सभी समान हैं। मानव जीवन का आदि और अन्त सम है केवल उसके मध्य का व्यापार विषम है। यह भी जीवन की वास्तविकता है।

'महाभारत' में युधिष्ठिर को वर प्राप्ति और सभी भाइयों की जीवन प्राप्ति अलौकिक स्तर पर हुई है। नकुल में इस मानवेतर रूप का विवेक सम्मत समाधान का प्रयास किया गया है। 'नकुल' के कवि को अमृत की बूंद का अस्तित्व तो स्वीकार करना ही पड़ा पर उसकी प्रक्रिया वास्तविक एवं स्वाभाविक रही। इस आधार पर 'महाभारत' में वर्णित इस कथा की आत्मा की रक्षा करते हुए गुप्त जी ने युग-सम्मत रूप प्रस्तुत किया है।

समीक्षा

किसी विशिष्ट कथानक के आधार पर काव्य रचना करने में कवि की विशेष दृष्टि रहती है। यही काव्य चेतना का मुख्य आधार और प्राण होती है। पैतृक सम्पत्ति को युगधर्मानुकूल उपयोग करने की स्वतन्त्रता प्रत्येक सन्तति को होती है। इसी रूप में कथा-सामग्री को कवि युगानुरूप किसी सांचे में ढालता है—कवि अपने युग की समस्याओं का पूर्ववर्ती घटनाओं और पात्रों पर आरोप करता है। प्राचीन समय की घटनाएं और पात्र नये हाथ में पड़कर नये अर्थों की अभिव्यक्ति करने लगते हैं।

गुप्तजी ने काव्य के हेतु इस मार्मिक प्रसंग को धर्मनिष्ठ मानकर यह रचना प्रस्तुत की। नकुल को सबसे छोटा मान्य समझ कर उसे छोटों का प्रतिनिधि माना

---

1 म० भा० ३१३।१२९
2 नकुल, पृ० १०२
3 नकुल, पृ० १०२

इस समस्त घटना के जिस आदर्श ने उन्हें प्रभावित किया, वह आदर्श है छोटों के प्रति अनन्य ममत्व। दूसरे शब्दों में त्याग। युधिष्ठिर ने नकुल के प्रति जिस त्याग भावना का परिचय दिया वह निःसंदेह अनुकरणीय है। कार्य व्यापार में नकुल का अधिक योग न होते हुए भी, अन्त में कथा उसी की महत्ता से समाप्त होती है। युधिष्ठिर के व्यक्तिगत भाव को कवि लोकव्यापी रूप देता हुआ कहता है—

लेना होगा निखिल क्षेम व्रत निर्भय हमको,
देना होगा, बड़ा भाग लघु से लघुतम को।
लघु से लघुतम कौन, नहीं यदि हों हम खोटे
वही हमारे लिए बड़े हमसे जो छोटे।[1]

काव्य की समस्त कथा अनेक वर्णन, इसी मूल भाव पर केन्द्रित कर दिये जाते हैं। अपने से छोटे व्यक्ति के प्रति प्रेम की भावना मानवता के महत्व की स्वीकृति है। आज के युग में अनेक स्वार्थ और संघर्षों के मध्य ऐसी धारणा की घोषणा व्यक्ति के महत्व को बढ़ाकर अनेक भेदों के बीच स्नेह के तन्तुओं को जोड़ती है। महाभारतीय कथा के छोटे से सांकेतिक अंश को लेकर गुप्त जी ने युगानुरूप नकुल के व्यक्तित्व की नई व्याख्या की। एक ओर बड़ों के मन में छोटों के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता तो दूसरी ओर छोटों का विश्वास। दोनों ही गौरव का प्रतीक हैं। नकुल का यह कथन 'पीछे आकर नहीं किसी विधि से मैं वंचित' बड़ों के प्रति अटूट आस्था का परिचायक है। महाभारत काल में आकर यद्यपि आदर्श की नयी व्याख्या के साथ जीवन मूल्यों की नई स्थापना अवश्य हुई किन्तु भ्रातृभाव का उत्कृष्ट रूप अक्षुण्ण रहा। दुर्योधन और युधिष्ठिर में शत्रुता रही पर इसके साथ ही दुःशासन के भातृ-स्नेह और इसके अतिरिक्त अर्जुन, भीम नकुल, सहदेव का अग्रज के प्रति विश्वास भी आदर्श का ही एक रूप है। दुर्योधन ने धर्म की अवहेलना की अतः वह सहानुभूति का पात्र न बन सका। पाण्डवों का पक्ष धर्म सम्मत रहा इस कारण उन्होंने अधिक सुदृढ़ लोक धर्माचार की स्थापना की। कवि ने अशुभ, अनीप्सित को त्याग कर शुभ और अभीष्ट का ग्रहण किया। उसकी मूल दृष्टि घटना के काव्योचित निर्वाह की ओर रही। काव्य को आद्यन्त 'नकुल' रूप देने के लिए कवि ने अनेक कथान्तरालों का निर्माण किया। अर्जुन और द्रौपदी की अनुपस्थिति में भाइयों की चर्चा का विषय नकुल रहा। वात्सल्य का परिपाक हुआ। नकुल ने अनेक उक्तियाँ कहीं। माता का ध्यान किया। कहने का तात्पर्य यह है कि नकुल सम्पूर्ण कथा में प्रमुख बना रहा।

प्रासंगिक वृत्तों पर आधारित प्रबन्ध काव्य

जयद्रथवध

कथा संग्रहण 'जयद्रथ वध' खण्डकाव्य गुप्त जी द्वारा 'महाभारत' के द्रोण

---

१ नकुल, पृ० ६५

पर्यान्तगत अभिमन्यु वध एवं जयद्रथ वध की घटना के आधार पर लिखा गया है। गुप्त जी ने इस काव्य में 'महाभारत' की कथा को यथावत स्वीकार किया है। जयद्रथ-वध की घटना के पूर्व रूप में, अभिमन्यु का वध कौरव पक्षीय नृशंसता का परिचायक था। इसमें अभिमन्यु के शौर्य का उत्कर्ष हुआ। इसके उपरान्त पुत्र वध शोक के प्रतिशोध हेतु अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की, और दैवीय शक्ति की सहायता से यह प्रतिज्ञा पूर्ण की। गुप्त जी ने प्रस्तुत काव्य की कथा का द्रोण पर्व के तीन उपपर्वों से ग्रहण किया है। इन उपपर्वों में आये अनेक चरित्र आख्यान और लघु वृत्तों को छोड़कर कवि मुख्य रूप से युद्ध की घटना पर केंद्रित रहा है। अभिमन्यु के चरित्र का वीरत्व के आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अभिमन्यु-वध पर्व कवि ने प्रथम सर्ग की कथा का संयोजन अभिमन्यु वध पर्व के पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस और उनचासवें अध्याय के आधार पर किया है। यद्यपि युद्ध चित्रण में समस्त पर्व की संक्षिप्त कथा आ गई है किन्तु प्रमुख रूप से उक्त अध्यायों की कथा को लिया गया है। इसमें अभिमन्यु की वीरता, युद्ध और मृत्यु का चित्रण किया गया है।

प्रतिज्ञा पर्व प्रतिज्ञा पर्व के बहत्तर और तिहत्तरवें अध्याय की कथा द्वितीय सर्ग में वर्णित हुई है। इस सर्ग में कथा की विस्तृति कम और शोक की अभिव्यंजना अधिक हुई है। पाण्डव युद्ध से विरत होने लगे, किन्तु कृष्ण ने उन्हें समझाया और पुनः वीरत्व की ओर सचेष्ट किया। कवि ने उत्तरा और सुभद्रा के विलाप द्वारा करुण रस की सृष्टि की है।

प्रतिज्ञा पर्व के अठहत्तरवें अध्याय के आधार पर कवि ने तृतीय सर्ग की कथा का संयोजन किया है। अभिमन्यु का दाह संस्कार कथा की स्वाभाविक परिणति के आधार पर हुआ। विलाप की अभिव्यंजना कथा की गम्भीरता के उपकरण रूप में चित्रित हुई।

प्रतिज्ञा पर्व के उन्हत्तर अस्सी और इक्यासीवें अध्यायों का संक्षेप चौथे सर्ग में वर्णित है। शंकर से पाशुपतास्त्र की प्राप्ति इस अध्याय का प्रतिपाद्य है। यह अतिमानवीय रूप में ही चित्रित हुआ है। इस कथा खण्ड को कवि ने महाभारत की मूल भावना के अनुसार 'दिव्य' ही रहने दिया और बुद्धि-सम्मत परिवर्तन का प्रयत्न नहीं किया। इस सर्ग के कथा भाग की अलौकिकता को कवि अपनी सम्पूर्ण आस्था से स्वीकार करता है जिससे उनकी प्राचीन वस्तु के प्रति परम्परावादी प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है।

जयद्रथ-वध पर्व प्रस्तुत खण्डकाव्य की मूल कथावस्तु का चयन इस पर्व से किया है। समस्त पर्व का संक्षेप पंचम सर्ग के युद्ध चित्रण में किया गया है। 'महाभारत' में वर्णित भीषण युद्ध कवि के अपने शब्दों में इस सर्ग में अवतरित हुआ है। जयद्रथ का अपने को सूर्यास्त तक छिपाना, और वीरों का परस्पर संकुल युद्ध, दुर्योधन द्वारा गुरु की व्याज से निन्दा आदि प्रसंग क्रम विपर्यय से इस पर्व के

तिरानवे, चौरानवे, पिचानवे अध्यायों के आधार पर प्रस्तुत हैं। यहां भी कवि ने कथा की अलौकिकता को यथावत स्वीकार किया है।

अध्याय १४३ १४६ के आधार पर षष्ठ सर्ग की कथा का चयन किया गया है। इस सर्ग में जयद्रथ की घटना प्रमुख है और अर्जुन द्वारा भूरिश्रवा के प्रसंग में शौर्य आख्यान तथा चितारोहण की तयारी, कथा के प्रमुख स्थल है।

अध्याय एक सौ उनचास की कथा का संक्षेप सप्तम सर्ग में हुआ है। इसमें कवि ने कौरव पक्षीय विषाद को चित्रित न करके कथा के नायक और उसके पक्ष के रूप को चित्रित किया है। वैष्णव परम्परा के आधार पर कृष्ण परब्रह्म माने गये हैं।

प्रस्तुत खण्डकाव्य की कथा 'महाभारत' के कथा रूप के साथ सम्बद्ध है। कवि ने सामाजिक और जीवन सम्बन्धी दृष्टि से कथा में कतिपय परिवर्तन किये हैं। ये परिवर्तन मूल कथा के किसी विशिष्ट प्रसंग में न होकर विस्तृत चित्रण के रूप में ही देखे जा सकते हैं।

परिवर्तन-परिवर्धन अभिमन्यु वध प्रस्तुत कथा के निम्न प्रसंग 'जयद्रथ वध' में नहीं है। उनको विस्तार भय से छोड़ दिया गया है।

अभिमन्यु द्वारा अश्मक पुत्र का वध, शल्य का मूर्छित होना, अभिमन्यु द्वारा शल्यपुत्र एवं वृहद्वलक-वध मगधराज के पुत्र अश्वकेतु का वध। अभिमन्यु-वध का वृत्तान्त कवि ने गत्वर शैली से कहा है। निम्न प्रसंगों को परिवर्तित रूप में उपस्थित किया गया है।

'महाभारत' में युधिष्ठिर अभिमन्यु को चक्रव्यूह भेदन का कार्य सौंपते हैं, किन्तु 'जयद्रथ वध' में वह स्वयं व्यूह भेदन की इच्छा प्रकट करता है।[1]

'महाभारत' में उत्तरा से युद्ध-पूर्व मिलन की चर्चा नहीं है, किन्तु कवि ने इस मिलन का और उत्तरा की प्रार्थना का विस्तृत वर्णन किया है।[2]

'अभिमन्यु वध' का शेष वृत्त, युद्ध चित्रण 'महाभारत' के युद्धों का संक्षिप्त रूप है, कवि ने विवरणात्मक शैली में अभिमन्यु के शौर्य की पर्याप्त अभिव्यंजना की है।

पाण्डव विलाप कवि ने इस प्रसंग को 'महाभारत' से यथावत ग्रहण किया है। पाण्डवों के विलाप की व्यंजना करते हुए वह करुणा में निमग्न हो गया है और कथा को कोई अन्य समुचित रूपरेखा नहीं दे पाया।

यथावत स्वीकार किए गए प्रसंग हैं, युधिष्ठिर को व्यास जी की सान्त्वना,[3] युधिष्ठिर विलाप[4] अर्जुन को अपशकुनों का दिखाई देना।[5]

१ म० द्रोण० ३५।१२ १६, जयद्रथ वध, पृ० ६ ७

२ जयद्रथ वध, पृ० ९ १०

३ म० द्रोण० ७१।१३ १६, जयद्रथ वध, पृ० ३

४ म० द्रोण० अध्याय ५१, जयद्रथ वध, पृ० २६ २९

५ म० द्रोण० ७२।५ ६, जयद्रथ वध, पृ० ३१

उक्त प्रसंगों को कवि ने सात्त्विक रूप से चित्रित किया है। युधिष्ठिर के विलाप को विस्तार दिया गया है।

उत्तरा का विस्तृत विलाप और जयद्रथ द्वारा मृत अभिमन्यु के सिर पर पदाघात, इन प्रसंगों से कवि ने कथा की मार्मिकता की रक्षा की है। ये प्रसंग 'महाभारत' के विस्तृत उद्देश्य में न आ सकने के कारण उपेक्षित नहीं समझे गये और सम्भावना के आधार पर इनका विस्तार किया गया।

अभिमन्यु का दाह-संस्कार, जीवन-नीति का संकेत, आदि का स्वतन्त्र आख्यान हुआ है। इसका प्रमुख कारण है कि अभिमन्यु प्रमुख पात्र है और उसके दाह संस्कार के द्वारा से कवि करुणा प्रेरित वीरत्व के उत्कर्ष को अभिव्यञ्जित करना चाहता है अतः 'महाभारत' में न होते हुए भी कवि ने इस प्रसंग को स्थान दिया है।

पार्थ की जयद्रथ वध प्रतिज्ञा[1], पूर्ण न होने पर स्वयं जलने का प्रण[2], कौरवों को अर्जुन की प्रतिज्ञा का चरों द्वारा ज्ञान[3] जयद्रथ का व्याकुल होकर दुर्योधन के पास जाना और दुर्योधन की उसको सान्त्वना[4] आदि प्रसंग 'महाभारत' के अनुसार हैं।

इन प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त संक्षेप में ग्रहण किया है अतः सामूहिक वीरत्व की अभिव्यक्ति और करुणा का प्रसार ही पाया है पर चारित्रिक गौरव की वैयक्तिक अभिव्यक्ति नहीं हो पाई।

पाशुपतास्त्र की प्राप्ति यह प्रसंग अतिप्राकृत घटना के रूप में चित्रित है। 'महाभारत' में इसका इस रूप में होना स्वाभाविक है किन्तु गुप्त जी ने इसका कोई बुद्धि-सम्मत समाधान नहीं किया है। समग्र कथा को मूल रूप में स्वीकार किया गया है और उसकी अलौकिकता की सुरक्षा की गई है यद्यपि उसके स्वरूप में परिवर्तन कर दिया है।

परिवर्तन-परिवर्धन 'महाभारत' के निम्न प्रसंग कवि ने ग्रहण नहीं किए अर्जुन द्वारा शंकर का पूजन[5] कृष्ण और दारुक का वार्तालाप[6] सैनिकों के द्वारा अर्जुन के प्रण की पूर्णता की चिन्ता।[7]

निम्न प्रसंगों में परिवर्तन किया है। इस परिवर्तन से प्रसंग की मूल भावना

---

१ म० द्रोण० ७३।२० ११, जयद्रथ वध, पृ० ३६
२ म० द्रोण० ७३।३६ ४७, जयद्रथ वध, पृ० ३६
३ म० द्रोण० ७४।१, जयद्रथ वध, पृ० ४०
४ म० द्रोण० ७४।१४ १६, जयद्रथ वध, पृ० ४१
५ म० द्रोण० ७६।१ ३
६ म० द्रोण० ७६।२१ ४१
७ म० द्रोण० ७६।११ १२

मे कोई अन्तर नही आ पाया ।

'महाभारत मे कृष्ण अर्जुन के स्वप्न मे आते हैं, 'जयद्रथ वध' मे कृष्ण योग माया का आश्रय लेते हैं।[१] 'महाभारत' म स्वप्न म शकर के चिन्तन के लिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा और बाद मे वे उनको शिव के पास ले गये किन्तु 'जयद्रथ वध' मे अर्जुन कृष्ण के साथ जाते हैं और ध्यानावस्थित हो अभिमन्यु को देखते है।[२] 'महाभारत' म कृष्ण गुरुपुत्र की चर्चा नही करते पर 'जयद्रथ वध' म इसका सकेत मात्र किया गया है।[३]

इन प्रसगो की विवेचना से यह तथ्य सामने आता है कि कवि ने प्रवाह मे आकर अल्प मात्रा म परिवर्तन किया है। 'महाभारत' मे सम्पूर्ण घटना स्वप्न मे होती है और काव्य म भी उसी रूप म चित्रित की गई है। प्रात जागने पर युधिष्ठिर द्वारा कुशल क्षेम पूछने की बात को उसी रूप म स्वीकार किया गया है।

युद्ध चित्रण दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रतिज्ञाबद्ध अर्जुन और रक्षा मे दृढ कौरव पक्ष एक दूसरे से जूझ पडे। कवि ने भीषण सग्राम का चित्रण जयद्रथ-वध पर्व के युद्ध चित्रण के आधार पर किया है। अर्जुन की भयकरता का तद्वत् चित्रण हुआ है।

प्रारम्भ म अर्जुन द्वारा दुमर्षण गज सेना का सहार[४] अर्जुन से त्रस्त होकर दुशासन का पलायन[५] आदि प्रसग छोड दिए हैं।

यथावत स्वीकृत प्रसग अर्जुन का द्रोण को छोडकर आगे बढना[६], श्रुतायुद्ध का अपनी गदा से सहार[७] द्रोण द्वारा दुर्योधन को दिव्य कवच देना[८] युधिष्ठिर की चिन्ता और सात्यकि को भेजना[९], भीम द्वारा द्रोण से युद्ध और कर्ण से परास्त होना।[१०]

कवि द्वारा चित्रित इस प्रसग की विशेषता है युद्ध चित्रण। अत्यन्त ओज मयी भाषा मे कवि ने भयकर युद्ध का वर्णन किया है। भीम का युद्धोन्माद भी

---

१ म० द्रोण० ८०।४ ५, जयद्रथ वध, पृ० ४८
२ म० द्रोण० ८०।२० २१ २३, जयद्रथ वध, प० ४६
३ जयद्रथवध, प० ५४
४ म० द्रोण० अध्याय ८९
५ म० द्रोण० अध्याय ९२
६ म० द्रोण० ९१।३२, जयद्रथ वध पृ० ६२
७ म० द्रोण० ९२।५४, जयद्रथ वध, प० ६५
८ म० द्रोण० ९४।३५, जयद्रथ वध, प० ७०
९ म० द्रोण० १०९, जयद्रथ वध, प० ७१ ७२
१० म० द्रोण० १२८, १३८, जयद्रथ वध, पृ० ७५ ७६

दिखाया है। इस चित्रण में कवि की सहानुभूति पाण्डव पक्ष की ओर ही रही और 'महाभारत' के सत्य की समुचित अभिव्यक्ति की गई।

जयद्रथ वध जयद्रथ के वध के पूर्व सात्यकि और भूरिश्रवा के युद्ध में अर्जुन सात्यकि की रक्षा करता है। इस प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' में प्रस्तुत कथांश को यथावत नहीं लिया है।

'महाभारत' में अर्जुन कृष्ण के कहने से यदुवंशी वीर सात्यकि की प्राण रक्षा करते हैं। कवि ने इस प्रसंग में कृष्ण को नहीं लिया।[1] 'महाभारत' में अर्जुन केवल भूरिश्रवा को उत्तर देते हैं किन्तु 'जयद्रथ वध' में वे सभी को उत्तर देते हुए युद्ध धर्म की स्थिति स्पष्ट करते हैं।[2] 'महाभारत' में कृष्ण इस रूप में सूर्यास्त दिखाते हैं कि वह केवल जयद्रथ को दिखाई दे। जयद्रथ बार बार सूर्य की ओर देखता है। पर 'जयद्रथ वध' में सभी सूर्यास्त देखते हैं।[3] महाभारत में अर्जुन का विलाप नहीं है किन्तु कवि ने अर्जुन का विलाप दिखाया है।[4]

सूर्यास्त की अतिप्राकृत घटना का चित्रण 'महाभारत' में संकेत रूप से है और उससे युद्ध विराम नहीं होता किन्तु कवि ने युद्ध विराम की स्थिति दिखाई है। इस प्रसंग से अर्जुन की प्रण पालन शक्ति की अभिव्यंजना हुई है। 'महाभारत' में इस स्थिति पर कुछ विचार नहीं किया गया कि यदि अर्जुन पूर्व प्रण का पालन नहीं कर सकते तो अपर विषय में क्या हो सकता है? कवि ने इस प्रसंग को अर्जुन की प्रणनिष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए समुचित जाना और भावपूर्ण चित्रण किया। जयद्रथ का सिर कटकर उसके पिता की गोद में गिरा। यह वर्णन अत्यन्त औत्सुक्य पूर्ण और भाव वलित है।

विजयोल्लास जयद्रथ वध के उपरान्त पाण्डव पक्ष का द्विगुणित उल्लास अभिव्यक्त हुआ। एक तो प्रमुख वीर का वध हुआ और पार्थ का प्रण पूर्ण हुआ। कवि ने अन्तिम सर्ग में पाण्डव पक्षीय हर्ष की सुन्दर अभिव्यंजना की है। इस प्रसंग में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

महाभारत' में अर्जुन युद्ध भूमि को देखते समस्त श्रेय कृष्ण को देते हैं। उसी में कवि ने अर्जुन द्वारा केशव की अलौकिकता का चित्रण कराया है। कवि एक भक्त के रूप में कृष्ण की शक्ति का आख्यान करता है और परब्रह्म रूप में कृष्ण को चित्रित करता हुआ आराधना करता है। युधिष्ठिर भी कृष्ण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और समस्त श्रेय अर्जुन की तरह कृष्ण को ही देते हैं।[5] इस प्रसंग में कवि ने परम्परागत मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है।

---

१ म० द्रोण० १४२।७० ७३, जयद्रथ वध, पृ० ७७

२ म० द्रोण० अध्याय १४३, जयद्रथ वध, पृ० ७८

३ म० द्रोण० १४४।६४ ६६

४ जयद्रथ वध, पृ० ८३

'जयद्रथ वध' उस समय लिखा गया था जब महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों में विशेष रूप से बुद्धिवादी परिवर्तन की परम्परा प्रारम्भ नहीं हुई थी। अत इस खण्डकाव्य में 'महाभारत' की कथा का पुनराख्यान है। कृष्ण के ईश्वरत्व के प्रति कवि की वैष्णवी भावना निष्ठा से व्यक्त है। इस काव्य की जीवन-दृष्टि व्यक्ति को कर्त्तव्य निष्ठ, प्रण पालक, ईश्वर विश्वासी होने का सदेश देती है।

नहुष

'महाभारत' में वर्णित स्वतन्त्र उपाख्यानों में नहुष का उपाख्यान उद्योग पर्व के अन्तर्गत है। नहुष के जीवन की महत्वपूर्ण घटना स्वर्ग की अध्यक्षता और वहा से उसका पतन है। इस घटना ने कवि को प्रभावित किया। गुप्त जी ने स्वय भूमिका में उल्लेख किया है व्यास देव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताए बार-बार उसे नीचे ले आती है। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर उठ खड़ा होना होगा। तब तक, जब तक वह पूर्णता प्राप्त न कर लेगा—[1] कवि के इस कथन से स्पष्ट है कि 'नहुष' रचना का आधार व्यक्ति का पुरुषार्थ है। वह इस कथा के माध्यम से व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता का अध्ययन करता है और उन्नति के हेतु अनवरत प्रयास की स्थापना पर बल देता है।

कथा सग्रहण उद्योग पर्व में यह कथानक ६वें अध्याय से १८वें अध्याय तक आया है। कवि ने ९वें और १०वें अध्याय की कथा पूर्वाभास में स्पष्ट करके ग्यारहवें अध्याय की कथा से काव्य की सृष्टि की है।

'नहुष' की कथा का विकास कवि ने नये रूप में किया है। 'महाभारत' में ऋषियों की प्रार्थना के उपरान्त अपनी असमर्थता प्रकट करके भी देवों के अनुरोध से नहुष इन्द्र पद स्वीकार करते हैं। काम भोगों में लिप्त एव निन्दित शची की उपस्थिति की आशा रखते हैं। 'नहुष' में कवि ने शची के मन में अन्तर्निहित आशका का चित्रण करके कथा को सुन्दर मोड़ दिया है।[2]

विस्तार भय से 'नहुष' में त्रिशिरा-वध, वृत्त वध, इन्द्र की ब्रह्म हत्या के भय से जल में छिपने के प्रसगो का उल्लेख नहीं किया गया।

'महाभारत' में नहुष के स्वर्ग विहार का सकेत मात्र है[3] काव्य ग्रन्थ में उर्वशी के साथ विस्तृत विहार[4] के चित्रण के साथ सम्भावना के आधार पर स्वर्ग भोग की योजना की गई है। कथा का यह विकास रसात्मकता की दृष्टि से अपेक्षित

---

१ नहुष, निवेदन, पृ० ४

२ म० उद्योग० ११।६ १८, नहुष, पृ० २०

३ म० उद्योग० ११।११ १४

४ नहुष, पृ० ३७

दिखाया है। इस चित्रण में कवि की सहानुभूति पाण्डव पक्ष की ओर ही रही और 'महाभारत' के सत्य की समुचित अभिव्यक्ति की गई।

जयद्रथ वध—जयद्रथ के वध के पूर्व सात्यकि और भूरिश्रवा के युद्ध में अर्जुन सात्यकि की रक्षा करता है। इस प्रसंग में कवि ने 'महाभारत' में प्रस्तुत कथांश को यथावत नहीं लिया है।

'महाभारत' में अर्जुन कृष्ण के कहने से यदुवंशी वीर सात्यकि की प्राण रक्षा करते हैं। कवि ने इस प्रसंग में कृष्ण को नहीं लिया।[1] 'महाभारत' में अर्जुन केवल भूरिश्रवा को उत्तर देते हैं किन्तु 'जयद्रथ वध' में वे सभी को उत्तर देते हुए युद्ध धर्म की स्थिति स्पष्ट करते हैं।[2] 'महाभारत' में कृष्ण इस रूप में सूर्यास्त दिखाते हैं कि वह केवल जयद्रथ को दिखाई दे। जयद्रथ बार-बार सूर्य की ओर देखता है। पर 'जयद्रथ वध' में सभी सूर्यास्त देखते हैं।[3] 'महाभारत' में अर्जुन का विलाप नहीं है किन्तु कवि ने अर्जुन का विलाप दिखाया है।

सूर्यास्त की अतिप्राकृत घटना का चित्रण 'महाभारत' में संकेत रूप में है और उससे युद्ध विराम नहीं होता, किन्तु कवि ने युद्ध विराम की स्थिति दिखाई है। इस प्रसंग से अर्जुन की प्रण पालन शक्ति की अभिव्यंजना हुई है। 'महाभारत' में इस स्थिति पर कुछ विचार नहीं किया गया कि यदि अर्जुन पूर्व प्रण का पालन नहीं कर सकता तो अपर विषम में क्या हो सकता है? कवि ने इस प्रसंग को अर्जुन की प्रणनिष्ठा की अभिव्यक्ति के लिए समुचित जाना और भावपूर्ण चित्रण किया। जयद्रथ का सिर कटकर उसके पिता की गोद में गिरा। यह वर्णन अत्यन्त ही सुरुचि पूर्ण और भाव वेष्टित है।

विजयोल्लास—जयद्रथ वध के उपरान्त पाण्डव पक्ष का द्विगुणित उल्लास अभिव्यक्त हुआ। एक तो प्रमुख वीर का वध हुआ, और पार्थ का प्रण पूर्ण हुआ। कवि ने अन्तिम सर्ग में पाण्डव पक्षीय हर्ष की सुन्दर अभिव्यंजना की है। इस प्रसंग में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय हैं।

'महाभारत' में अर्जुन युद्ध भूमि को देखते समस्त श्रेय कृष्ण को देते हैं। उसी में कवि ने अर्जुन द्वारा केशव की अलौकिकता का चित्रण कराया है। कवि एक भक्त के रूप में कृष्ण की शक्ति का आख्यान करता है और परब्रह्म रूप में कृष्ण को चित्रित करता हुआ आराधना करता है। युधिष्ठिर भी कृष्ण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और समस्त श्रेय अर्जुन की तरह कृष्ण को ही देते हैं। इस प्रसंग में कवि ने परम्पराप्राप्त मान्यताओं की अभिव्यक्ति की है।

---

१ म० द्रोण० १४२।७० ७३, जयद्रथ वध, पृ० ७७
२ म० द्रोण० अध्याय १४३, जयद्रथ वध, पृ० ७८
३ म० द्रोण० १४६।६४ ६६
४ जयद्रथ वध, पृ० ८३

'जयद्रथ वध' उस समय लिखा गया था जब महाभारतीय प्रबंध काव्यों में विशेष रूप से बुद्धिवादी परिवर्तन की परम्परा प्रारम्भ नहीं हुई थी। अतः इस खण्डकाव्य में 'महाभारत' की कथा का पुनराख्यान है। कृष्ण के ईश्वरत्व के प्रति कवि की वैष्णवी भावना निष्ठा से व्यक्त है। इस काव्य की जीवन-दृष्टि व्यक्ति को कर्तव्य निष्ठ, प्रण पालक, ईश्वर विश्वासी होने का संदेश देती है।

नहुष

'महाभारत' में वर्णित स्वतंत्र उपाख्यानों में नहुष का उपाख्यान उद्योग पर्व के अन्तर्गत है। नहुष के जीवन की महत्वपूर्ण घटना स्वर्ग की अध्यक्षता और वहां से उसका पतन है। इस घटना ने कवि को प्रभावित किया। गुप्त जी ने स्वयं भूमिका में उल्लेख किया है व्यास देव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊंचे ऊंचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएं बार-बार उसे नीचे ले आती है। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी। इसके लिए उसे साहसपूर्वक फिर उठ खड़ा होना होगा। तब तक, जब तक वह पूर्णता प्राप्त न कर लेगा—[1] कवि के इस कथन से स्पष्ट है कि 'नहुष' रचना का आधार व्यक्ति का पुरुषार्थ है। वह इस कथा के माध्यम से व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता का अध्ययन करता है और उन्नति के हेतु अनथक प्रयास की स्थापना पर बल देता है।

कथा संग्रहण उद्योग पर्व में यह कथानक ९वें अध्याय से १८वें अध्याय तक आया है। कवि ने ९वें और १०वें अध्याय की कथा पूर्वाभास में स्पष्ट करके ग्यारहवें अध्याय की कथा से काव्य की सृष्टि की है।

'नहुष' की कथा का विकास कवि ने नये रूप में किया है। 'महाभारत' में ऋषियों की प्रार्थना के उपरान्त अपनी असमर्थता प्रकट करके भी देवों के अनुरोध से नहुष इन्द्र पद स्वीकार करते हैं। काम भोगों में लिप्त एक दिन शची की उपस्थिति की आज्ञा देते हैं। 'नहुष' में कवि ने शची के मन में अप्रगत आशंका का चित्रण करके कथा को सुन्दर मोड़ दिया है।[2]

विस्तार भय से 'नहुष' में त्रिसरा-वध, वृत्त वध, इन्द्र का ब्रह्म हत्या के भय से जल में छिपने के प्रसंगों का उल्लेख नहीं किया गया।

महाभारत में नहुष के स्वर्ग विहार का संकेत मात्र है[3] काव्य ग्रन्थ में उर्वशी के साथ विस्तृत विहार[4] के चित्रण के साथ सम्भावना के आधार पर स्वर्ग भोग की योजना की गई है। कथा का यह विकास रसात्मकता की दृष्टि से अपेक्षित

१ नहुष, निवेदन, पृ० ४

२ म० उद्योग० ११।६-१८, नहुष, प० २०

३ म० उद्योग० ११।११ १४

४ नहुष, पृ० ३७

है। इसमें अनेक मानवीय भावनाओं का चित्रण हो पाया है।

'महाभारत' में शची को बुलाने के हेतु नहुष का स्वर आतातायक है[1] 'नहुष' में प्रार्थना परक। वह शची की उपेक्षा का अपराध मान कर 'नहुष' में उससे प्रणय-निवेदन करता है, किन्तु अस्वीकृति की स्थिति में इस प्रश्न का सम्मान का प्रश्न बनाकर आज्ञा देता है।

महाभारत में इन्द्राणी कुछ समय की अवधि लेकर इन्द्र की आज्ञा से ऋषियों के वाहन पर आने की स्वीकृति देती है। नहुष' में वह देवताओं की सभा में ही यह निर्णय ले लेती है।[2]

दोनों ग्रन्थों में नहुष के पतन की घटना समान रूप से चित्रित है।

इस प्रसंग में कवि की तीन नवीन उद्भावनाएं हैं। इनके द्वारा ही वह इस कथा में अपना मत देना चाहता है।

प्रथम उद्भावना शची के आन्तरिक आशंका की है। इसमें कवि ने स्त्री के स्वाभाविक कोमल और भीरु रूप का चित्रण करके उसकी दृढ़ता का प्रदर्शन किया है। कवि का मत है कि शक्ति से न सही युक्ति से ही स्त्री अपने सतीत्व की रक्षा कर सकती है। शची अपने युक्ति-बल से अपने को आश्वस्त करती रही और अन्त में युक्ति से काम सिद्ध हुई।

द्वितीय उद्भावना नहुष के इन्द्रत्व के समय नारद की उपस्थिति है। इसमें कवि ने नारद-नहुष वार्तालाप में मानव की श्रमशक्ति की महत्ता स्थापित की है। मनुष्य श्रम शक्ति के कारण देवता से भी महान् है। यहीं पर कवि मानव की दुर्बलताओं का चित्रण करता है। उसके विचार में अधिक समृद्धि प्रमाद का कारण बन कर मानव को धर्मच्युत कर देती है। अधिक और अनियन्त्रित कामभावना से मानव अवनति की ओर जाता है अतः नारद मानव के गुणों को स्वीकार करते हुए भी आन्तरिक असुरों से बचने का सन्देश देते हैं। नारद के सन्देश में कवि का मानव जाति को सन्देश है।

तृतीय उद्भावना उर्वशी और नहुष के संवाद रूप में की गई है। नहुष धरती पर अन्न-वृष्टि और स्वर्ण-वृष्टि का आदेश देना चाहता है। उर्वशी यह कहकर रोकती है कि अनायास ही सब कुछ पाकर मानव प्रमादी बन जायगा। अपार प्रसूत धरा की सम्पन्नता से मानव अकर्मण्य हो जायगा।[3] जीवन में संयम और आदर्श मान

---

१ म० उद्योग० ११।१७ १८, नहुष, पृ ४८

२ म० उद्योग० ११।७, नहुष, पृ० ४६

३ पायेंगे प्रयास बिना लोग खान-पीने को,
फिर क्यों बहायेंगे वे श्रम के पसीने को
होंगे अकर्मण्य, उन्हें क्या-क्या नहीं सूझेगा,
कोई कुछ मानेगा, न जानेगा न बूझेगा। नहुष, पृ० ३३

वना के मुख्य गुण अति समृद्धि से नष्ट हो जायेंगे।

सारांश रूप में कहा जा सकता है कि नहुष का स्वर्ग का राजा बनना मानव के दैवीय गुणों के आधार पर उन्नति का प्रतीक है और पतन मानसिक दुर्बलताओं के द्वारा पथभ्रष्ट होने की स्थिति। मानव को अपनी दुर्बलता पर विजय पानी चाहिए, तभी वह अपने श्रम का आनन्द उठा सकेगा।

कौन्तेय कथा

प्रागैतिह वृत्त पर आधारित काव्यों में उदयशंकर भट्ट का 'कौन्तेय कथा' प्रमुख काव्य है। प्रस्तुत काव्य में लेखक ने वनपर्व के अर्जुन और किरातवपधारी शिव के युद्ध का प्रमुख आधार स्वीकार किया है। 'कौन्तेय-कथा' शीर्षक से यह काव्य पात्र प्रधान मालूम पड़ता है किन्तु कौन्तेय-कथा का विकास घटना का लेकर हुआ है।

कथा संग्रहण वनपर्व के अध्याय ३७-३९ के आधार पर इस आख्यान का प्रारम्भिक रूप स्थापित है। हिमालय योपकान्तगत की कथा कवि की मौलिक सूझ है और अध्याय ३६ के अनुरूप कष्ट कथा का आयोजन किया गया है। अध्याय ३७ का मन्थन तप शीर्षक में किया है। दिव्य दृष्टि का आधार भी ३७वाँ अध्याय है।

अध्याय ३८ ३९ ४० का सम्मेल वर प्राप्ति शीर्षक में किया गया है। इस रूप में यह खण्ड काव्य 'महाभारत' के लघु कथा पर आधारित है। मूल ग्रंथ में कथा विकास इस प्रकार है।

द्वैत वन में एक बार व्यास जी पाण्डवों के पास आये और युधिष्ठिर के [illegible] को दूर करने के हेतु उनको प्रतिस्मृति विद्या का ज्ञान कराया तथा यह विद्या अर्जुन को प्रदान करने के लिए कहा। व्यास जी के संकेत से अर्जुन इन्द्रकील पर्वत [illegible] इन्द्र की आराधना करते हैं। इन्द्र के परामर्श से शिव की स्तुति करते हैं। [illegible] परीक्षार्थ किरात के वेष में युद्ध करके अर्जुन को पाशुपतास्त्र दे देते हैं।

परिवर्तन परिवर्धन महाभारतीय कथा विकास की पृष्ठभूमि में कवि हिम[illegible] लय का चित्रण करता है। हिमालय भारतीय सांस्कृतिक संघर्ष के इतिहास का [illegible] स्थल है जहां अनेक संस्कृतियों का संघर्ष एवं समन्वय हुआ। शिव इस समन्वय के महान प्रेरक, और समन्वित संस्कृति का नाम शिव संस्कृति था। शिव संस्कृति [illegible] कारण दानवों देवों एवं मानवों में समानता का प्रसार हुआ। अर्जुन ऐसे शिव [illegible] वर प्राप्ति के लिए आते हैं।

इसके बाद महाभारत की कथा प्रारम्भ होती है। 'महाभारत' में स[illegible] भाई एक साथ बैठकर युद्ध, दया, क्षमा आदि विषयों पर वार्तालाप करते हैं। [illegible]

द्रौपदी पुरुषार्थ के समर्थक हैं तथा युधिष्ठिर क्षमा के महत्व का प्रतिपादन करते हैं, 'कौंतेय कथा' में यह विवेचना धर्मराज की अनुपस्थिति में होती है। वार्तालाप के मध्य धर्मराज व्यास जी का सन्देश लाते हैं।[1] 'महाभारत' में इन्द्र तपस्वी के वेष में मार्ग में अर्जुन को मिलते हैं एवं वरदान देने को कहते हैं पर अर्जुन की इच्छा के अनुसार शिव के ध्यान के लिए आदेश देते हैं। कौन्तेय कथा' में तपस्या के उपरान्त इन्द्र के दर्शन होते हैं।[2] 'महाभारत' में इन्द्र अर्जुन का वार्तालाप संक्षिप्त है कवि ने उसे विस्तार में चित्रित किया है। 'महाभारत में अर्जुन मिट्टी की प्रतिमा की पुष्पमाला किरात के गले में देखकर शिव को पहचानते हैं 'कौन्तेयकथा' में उनकी शक्ति देखकर ही किरात के शिव होने का भ्रम होता है।[3]

समीक्षा हिमालय को शिव संस्कृति तथा अन्य संस्कृतियों के उद्गम स्थल के रूप में मानना कवि की परम्परावादी दृष्टि है। भारतीय साहित्य में हिमालय का महान आदर है। वह निश्चित ही प्रथम सृष्टि स्थल और कल्याण के रूप में मान्य है। यद्यपि यह विचार कवि ने नवीन रूप से प्रस्तुत किया है किन्तु इसका आधार प्राचीन साहित्य ही है।

इस काव्य में भट्ट जी की मुख्य स्थापना शक्ति-संचय की रही है। धर्म, क्षमा, दया सहज मानवीय गुण हैं किन्तु आततायियों का सामना इनसे नहीं होता। उसके हेतु शक्ति-संचय ही आवश्यक है। द्रौपदी, भीम, अर्जुन के मानसिक क्षोभ में दया धर्म की प्रतिकूलता नहीं, अपितु शक्ति की तद्विषयक आवश्यकता पर भी उसे न मानने के विरोध में ग्लानि का चित्रण किया गया है। कवि वीर भोग्या वसुन्धरा के सिद्धान्त में विश्वास रखता है और इस विश्वास की सशक्त अभिव्यक्ति करता है।

वीर ही तो भोगते वसुन्धरा स्वकीय से
अवीर नर कीट सम मरते जनमते।[4]

कवि धर्म पुरुषार्थ शक्ति और क्षमा के सैद्धान्तिक व्यावहारिक विवाद के स्थान पर केवल स्थिति परक मानसिक क्षोभ की व्यंजना करना चाहता है अतः धर्मराज की अनुपस्थिति अनिवार्य समझी गई। धर्मराज के अभाव में सभी भाई अपने अपने क्षोभ की उन्मुक्त अभिव्यक्ति कर सकते हैं।

तप और शिवा दृष्टि से परिवर्तन सोद्देश्य किए गए हैं। 'महाभारत' में मार्ग में इन्द्र के मिलने और अर्जुन से शिव की आराधना के लिए कहने से अलौकिक स्पर्श हो जाता है। जबकि कवि अति प्राकृत तत्व को यथासम्भव बुद्धि सम्मत बनाना चाहता है। इन्द्र शक्ति का प्रतीक है और शिवसिद्धि का, अर्जुन तप में साधना

१ म० वन० अध्याय ३२-३५ कौंतेयकथा, पृ० ३०
२ म० वन० ३७।४६ कौंतेयकथा, पृ० ३५
३ म० वन० ३६।६७ ६८ कौन्तेय कथा, पृ० ७८
४ कौंतेयकथा, पृ० २८

करते हैं, साधना से सिद्धि प्राप्त होती है और काय सफल होता है।

तप के उपरान्त अर्जुन एव इन्द्र की वार्ता म पाण्डवो का दुःख व्यजित हुआ है। महाभारत' म वे सवथा दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्र हैं कवि ने मानवीय दुबलता क्षोभ, आशा निराशा से युक्त उपस्थित करके, उन्हें यथासम्भव मानवीय पात्रो की श्रेणी म रखने का प्रयास किया है। काव्य म दुःख की व्यापक अभिव्यक्ति का यही कारण है। अर्जुन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन 'महाभारत' के आधार पर ही हुआ है। इन्द्र के शब्दो म अर्जुन की शक्ति का विश्वास नायक के दृढ रूप को व्यजित करता है। यहा कवि सत्व, रज, तम, तथा जीवन की अनेक शक्तियो के सन्तुलित आकर पुरुष की महत्ता व्यक्त करता है। केवल धर्मात्मा उपासना का आधार है। केवल शक्तिशाली उद्दड है। केवल सौन्दय भी त्याज्य है—अत शत्रु पर विजय पाने के लिए गुण, कम नीति, धम और शक्ति का यथासम्भव समन्वय आवश्यक है।

कथा का अन्तिम परिवतन आत्म शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करता है। साधना की पूर्ति के साथ व्यक्ति की चेतना म स्वाभाविक आभा आती है। अर्जुन तप की पूर्ति के साथ चारो ओर आलोक देखता है और युद्ध के उपरान्त वर प्राप्ति होती है।

'महाभारत म इस कथाश का उद्देश्य अर्जुन का पाशुपतास्त्र प्राप्त करना है। महादेव ने धम तथा न्याय की रक्षा सृष्टि की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया। अर्जुन ने इस अस्त्र से अन्याय के समर्थको का सहार किया और धम की रक्षा की। कवि आज के जीवन के सदभ म भी शक्ति की महत्ता का प्रतिपादन करता है। प्रस्तुत कथा के आधार पर उसकी जीवन दृष्टि की व्याख्या इस प्रकार हो सकती है।

जीवन का सात्विक रूप है 'धम' और घणित रूप है 'सहार' तथा युद्ध। लोक जीवन मे धम की स्थापना के लिए क्षमा दया, करुणा की रक्षा के लिए दण्ड का प्रयोग भी होता है। अन्याय व धम एव संस्कृति के स्थायी तत्वो की हानि के निवारणाथ शक्ति की आवश्यकता होती है। अत जातीय, राष्ट्रीय और सास्कृतिक उन्नति के लिए शक्ति अपरिहाय तत्व है। उसी हेतु कवि का प्रतिपाद्य है 'शक्ति-सचय"। आज के जीवन मे पाप, अन्याय और धम का नाश करने के लिए तथा सास्कृतिक उत्थान के हेतु बलपूवक आसुरी वृत्तियो का दमन होना चाहिए। आततायी वध्य है। यह वध हत्या की श्रेणी म न आकर पुण्य की श्रेणी म आता है, अत कवि अन्याय के सशक्त विरोध के लिए शक्ति साधना का समथन करता है।

शल्य वध

महाभारत' के स्वतन्त्र उपाख्यानो पर रचित काव्यो म सामान्यत युद्ध-चित्रण नगण्य है। 'दमयन्ती', नलनरेश', 'विदुलोपाख्यान', एकलव्य आदि प्रमुख प्रबन्ध काव्य हैं जिनम ऐसे कथानक को लिया गया है, जिसका सीधा सम्बन्ध महा

भारतीय युद्ध से नहीं है। घटना प्रधान काव्यों में मुख्य घटना अधिकतर युद्ध ही है।

शल्य वध में कर्णार्जुन युद्ध की पृष्ठभूमि के उपरान्त शल्य और युधिष्ठिर का युद्ध चित्रण प्रमुख है। शल्य वध के उपरान्त संकुल युद्ध को भी कवि ने पर्याप्त विस्तार से वर्णित किया है।

'महाभारत' के युद्ध वर्णन का पाँच सर्गों में विस्तार किया है। प्रथम दस दिन का युद्ध भीष्म पर्व में, पाँच दिन का युद्ध द्रोणपर्व में, दो दिन का युद्ध कर्ण पर्व में, अन्तिम आधे दिन का युद्ध शल्य पर्व और रात्रि का युद्ध सौप्तिक पर्व में वर्णित है। अठारह दिन के युद्ध को इतने विस्तार से ग्रहण करना आधुनिक कवि के लिए सम्भव नहीं हो सकता था अतः युद्ध चित्रण के लिए संक्षिप्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया और कवि प्रमुख घटना पर रुकता हुआ सामान्य घटनाओं का संकेत करता चला है।

'जयभारत और अंगराज' में शल्य वध का संक्षिप्त चित्रण किया गया है। 'जयभारत' के कवि ने युद्ध चित्रण के इस प्रसंग में एक परिवर्तन किया है। 'महाभारत' में शल्य वीरतापूर्ण प्रशस्ति सुनकर सेनापति का पद स्वीकार करते हैं। 'जयभारत' में वे दुर्योधन को चेतावनी देते हैं कि वह अन्य सेनापतियों की भाँति उन पर पाण्डवों की पक्षपातता का आरोप न लगाए।[1] दुर्योधन स्वीकार करता है और शल्य सेनापति बनते हैं। 'अंगराज' में अश्वत्थामा के प्रस्ताव का उल्लेख नहीं किया गया किन्तु भीम और शल्य के गदा युद्ध का चित्रण समान रूप से किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर वीरतापूर्वक शल्य का वध करते हैं 'अंगराज' में भयभीत होते हुए शक्ति का आह्वान करते हैं।[2]

उग्र नारायण मिश्र के काव्य में शल्य वध प्रमुख घटना के रूप में विस्तार से चित्रित है। कवि शल्य का परिचय देता है और शल्य दुर्योधन के वार्तालाप में युद्ध की भयंकरता एवं युद्ध के भावी परिणामों पर प्रकाश डालता है। 'महाभारत' में इस प्रसंग का अभाव है।

प्रथम खण्ड में कवि पहले कर्ण-वध का संक्षिप्त चित्रण करता है। कर्ण वध से सम्बन्धित इस प्रसंग में कवि ने कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

मूल ग्रन्थ में कृपाचार्य द्वारा सन्धि प्रस्ताव के समर्थन में नीति सम्बन्धी तथ्यों का आकलन मात्र है, अन्य ग्रन्थ में दुर्योधन का स्वर पश्चात्तापपूर्ण और निराशायुक्त है। कवि ने मानवीय भावनाओं का उत्कृष्ट व्यंजन किया है। दुर्योधन पूर्वकृत कर्मों का स्मरण करके ग्लानि में भर कर सन्धि [illegible] भाव [illegible]

१ म० शल्य० ६।२६, जयभारत पृ० ३६६

२ अंगराज, पृ० २८०

विरुद्ध बताकर अस्वीकार करता है।[1]

अश्वत्थामा के परामर्श पर शल्य का सेनापति बनना, शल्य का अपनी वीरता का वर्णन, कृष्ण का युधिष्ठिर को शल्य वध के लिए तैयार करना आदि प्रसंगों का संकुचित शैली में वर्णित किया है।

युद्ध प्रसंग में इन तीन घटनाओं की प्रमुखता है।

दोनों सेनाओं का युद्ध अभियान और संकुल युद्ध, शल्य युधिष्ठिर संग्राम, शल्य-वध के उपरान्त संकुल युद्ध।

महाभारत के युद्ध प्रसंग में वीरता और तेजस्विता का प्रदर्शन, पात्रों की अलौकिक शक्ति रणविद्या के अनेक रूप नायक एवं प्रतिनायक के अन्य पराक्रम का चित्रण प्रमुख है। कथा विकास युद्ध की घटनाओं के घात प्रतिघात से होता है, और प्रमुख वीर के वध से कथा की समाप्ति हो जाती है।

व्यूह रचना और युद्ध का प्रारम्भिक अभियान दोनों ग्रन्थों में समान रूप से वर्णित है। घटना की प्रमुखता होने के कारण काव्य में कथा विकास के उत्थान पतन के अनेक स्थल नहीं आ पाये। कवि का ध्यान युद्ध के चित्रण की ओर अधिक रहा, अतः इस काव्य ग्रन्थ पर युद्धवर्णन का प्रभाव अधिक है।

नकुल के द्वारा कर्ण पुत्रों के वध का चित्रण कितनी कुशलता से कवि ने किया है यह दर्शनीय है। विरथ होने की स्थिति में नकुल रथ से नीचे उतरे और युद्ध करने लगे।

रथच्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमादाय चर्म च,
रथादवातरद् वीरः शैलाग्रादिव केसरी।[2]

× × ×

झट शूरवीरों की तरह वह कूद कर रथ द्वार से
सम्मुख चला निज शत्रु के उन्मुक्त खर तलवार से॥[3]

कवि युद्ध चित्रण के प्रवाह में पात्र के आन्तरिक शौर्य और ओजस्वी क्रिया का प्रभावशाली वर्णन करता है। शल्य पक्ष के युद्ध की कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना कवि ने नहीं छोड़ी, अश्वत्थामा और अर्जुन के युद्ध में दोनों वीरों के शौर्य की ओजस्वी अभिव्यंजना की गई है। तृतीय खण्ड में शल्य-वध की घटना का चित्रण प्रमुख है, अतः कवि इस खण्ड में धर्मराज और शल्य के युद्ध पर केन्द्रित हो जाता है। महाभारत में युधिष्ठिर की वीरता दिव्य रूप से चित्रित की गई है किन्तु कवि ने दोनों योद्धाओं का समान चित्रण किया है। इस प्रसंग में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो पाया। कवि की दृष्टि महाभारत के भावानुवाद की ओर रही

१ शल्यवध, पृ० २६
२ म० शल्य० १०।१६
३ शल्यवध, पृ० ४२

अन्तर केवल इतना है कि आधार ग्रन्थ में धर्मराज मद्रेश से अधिक त्रस्त नहीं होते और ऐसा लगता है जैसे असमान युद्ध में शल्य की पराजय हुई हो। कवि ने इस चमत्कार को बचाने का प्रयास किया है।

शल्य-वध के उपरान्त युधिष्ठिर की सेना में जयघोष होता है। कौरव पक्ष अस्तव्यस्त हो जाता है। इस समय दुर्योधन घबरा उठता है किन्तु कृपाचार्य के धैर्य बंधाने से युद्ध करता है। अपने को असहाय देखकर सेना के पृष्ठ भाग में चला जाता है। मद्रेश के वध का प्रतिकार लेने के हेतु शाल्व के साथ कौरव वीर भयंकर युद्ध करते हैं। शाल्व पाण्डवों की विशाल सेना को नष्ट करता है। 'महाभारत' में इस युद्ध को मर्यादा शून्य युद्ध बताया है।[1]

समीक्षा: प्रस्तुत काव्य में कवि ने 'महाभारत' के एक पात्र की लक्ष्य-तत्त्व-स्पर्शी प्रमुख घटना को आधार बनाया है। शल्य ने उस समय युद्ध किया जब कौरवों की शक्ति ह्रासोन्मुख थी। ऐसे समय में शल्य की निर्भीकता, तेजस्विता, आत्म विश्वास, राजभक्ति आदि अप्रतिम गुणों का उत्कर्ष हुआ है। कवि ने शल्य को वीरता का प्रतीक मानकर चरित्र सृष्टि की। कथानक की दृष्टि से कवि ने महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किये। उसका उद्देश्य 'महाभारत' के आधार पर युद्ध चित्रण ही रहा। कवि ने जिस जीवन दृष्टि का प्रतिपादन किया है वह इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है। 'युद्ध मानवजाति का विध्वंसक है अतः त्याज्य है। किन्तु अपने बन्धुओं से केवल क्षणिक अधिकार तुष्टि के लिए युद्ध करना तो शास्त्र विरुद्ध और पातक है। अधर्म समुत्थ युद्ध का परिणाम केवल पराजय है। भौतिक शक्ति के बल पर आध्यात्मिक विश्वास पर विजय पाना कठिन है। यह सब कुछ होते हुए भी यदि युद्ध किया जाय तो अपने शौर्य और शक्ति के अनुसार प्राणान्त तक लड़ा जाय। पराजय के भय से भागना क्षत्रिय का कर्तव्य नहीं। युद्ध का भी अपना धर्म है, जिसका अतिक्रमण नहीं होना चाहिए।'

'शल्य वध' में धर्म, शल्य, दुर्योधन इन तीन विरोधी पात्रों की सृष्टि से उक्त विचार धारा की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। पाण्डव पक्ष धर्म और वीरता से सम्पन्न है किन्तु कौरव पक्ष भी नितान्त अधर्मी नहीं था। इस युद्ध में कवि ने कर्तव्य के प्रति निष्ठा, धर्म के प्रति आस्था और किसी भी स्थिति का साहस से सामना करने की प्रवृत्ति की स्थापना की है। अन्य ग्रन्थों में इस प्रसंग के आधार पर किसी विशिष्ट जीवन दृष्टि की स्थापना नहीं की गई, इस ग्रन्थ में मूल विषय होने के कारण उक्त मत का प्रतिपादन किया गया।

हिडिम्बा का वृत्त

'महाभारत' के आदि पर्व में अध्याय एक सौ इक्यावन से एक सौ चौवन

---

१ म० शल्य० २३।८२

तक हिडिम्बा का प्रामाणिक वृत्त वर्णित है। लाक्षागृह से भागने पर मार्ग में एक दिन वन में हिडिम्बा और पाण्डवों की भेंट होती है। हिडिम्बा भीमसेन पर अनुरक्त होती है और विवाह का प्रस्ताव रखती है। भीम हिडिम्बा के राक्षस भाई हिडिम्ब का वध करके माता तथा अग्रज की अनुमति से गान्धर्व विवाह करते हैं, और घटोत्कच की उत्पत्ति के साथ यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। 'महाभारत' में यह कथानक मुख्य रूप से घटोत्कच की उत्पत्ति के लिए आता है।

आधुनिक कवियों में मैथिलीशरणगुप्त जी ने इस आख्यान पर 'हिडिम्बा' खण्डकाव्य की रचना की। 'सेनापति कर्ण' में मिश्र जी ने इस प्रसंग को नितान्त नवीन एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। वस्तुतः हिडिम्बा का महत्व घटोत्कच की माता होने के कारण अधिक है। वह राक्षसी होते हुए भी काव्य तथा महाकाव्य में आर्य परम्परा में आ जाती है।

परिवर्तन-परिवर्धन आधुनिक काव्य में 'महाभारत' की इस कथा को यथेष्ट परिवर्तित रूप में चित्रित किया गया है। इन परिवर्तनों का कारण कवि की दृष्टि है। मैथिलीशरणगुप्त जी ने राक्षसी के चरित्र में आर्यत्व की स्थापना हेतु मूल ग्रन्थ की कथा में परिवर्तन किया। हिडिम्बा प्रसंग संवादात्मक वर्णनात्मकता लिए है अतः इस वर्णनात्मक आख्यान में भावात्मकता के कारण वस्तु विकास का आधिक्य नहीं है। 'महाभारत' के स्पष्ट और यथार्थवादी कथानक में कवि ने अपने आदर्श का समावेश करके कथा को नवीन रूप दिया है।

'सेनापति कर्ण' में हिडिम्बा का वृत्त प्रासंगिक रूप से आया है किन्तु अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। मिश्र जी की दृष्टि मनोवैज्ञानिक है। उन्होंने नितान्त नवीन रूप में इस प्रसंग का आरम्भ किया है। वस्तु निर्माण में भी 'महाभारत' का आधार मात्र ग्रहण कर अधिकतर स्वतन्त्र वस्तु का विकास किया है। मैथिलीशरण गुप्त जी के 'हिडिम्बा' में 'महाभारत' के कथाक्रम का अनुसरण करके अपने विचार सगुम्फित किये गये हैं। मिश्र जी ने स्मृति संचारि के रूप में कथा का विकास किया है और अपनी भाव में अंतिम स्वर का माहात्म्य गाया है।

महाभारत में हिडिम्ब मानव-गन्ध पाकर अपनी बहन को पाण्डवों के हनन हेतु भेजता है।[1] 'हिडिम्बा' में वन में कष्ट की पृष्ठभूमि में यह प्रसंग प्रारम्भ होता है।[2] पायलों की ध्वनि सुनकर भीम चौंकते हैं। हिडिम्बा प्रणय की स्पष्ट अभिव्यक्ति करती है। दोनों में प्रेम संवाद चलता है। विलम्ब होने पर हिडिम्ब आता है। भाई को आता देखकर 'महाभारत' की हिडिम्बा अपराध का उच्चारण करती है।

---

1 म० आदि० १५१।१० १३
2 हिडिम्बा, पृ० ६

आवतत्येष दुष्टात्मा मम्नुद्ध पुरवादक ।[1]

सहोदर भ्राता एव एकमात्र रक्षक के लिए राक्षसी के मुख से उच्चरित उक्त शब्द मर्यादा का अतिक्रमण करते हैं। गुप्त जी ने स्वय आगमन की सूचना देकर यह प्रसग ही उपस्थित नही किया

आ गया इसी क्षण हिडिम्ब यमदन सा
भीरुआ की कल्पना का सच्चा भय भूत सा ॥[2]

'महाभारत' मे हिडिम्बा भाग जाने का प्रस्ताव करती है।[3] यह प्रस्ताव सच्चरित्रता के प्रतिकूल है। कवि राक्षसी मे भी आदर्श की झलक दर्शन के हेतु ऐसे प्रस्ताव को चित्रित नही करता, अपितु तर्क द्वारा हिडिम्बा के अधिकार का समर्थन करता है।

न्याय मे उन्हा पर न भार मेरा सारा है
रक्षक जिन्होने एक मात्र मेरा मारा है।[4]

उक्त कथन मे कवि ने परिष्कृत रुचि एव स्त्री के आध्यात्मिक रूप की अभिव्यक्ति की है। हिडिम्बा स्नेह को अधिकार का प्रश्न बनाकर समर्पण की भावना का प्रकाशन करती है। इससे उसके गार्हस्थिक स्वरूप की झाकी प्राप्त होती है।

कवि हिडिम्ब के चरित्र मे भी एक परिवर्तन करता है। 'महाभारत' मे मृत्यु के समय हिडिम्ब शान्त रहता है 'हिडिम्बा' मे वह बहिन के उचित वरचयन से सन्तुष्ट होकर प्राण त्यागता है।[5] हिडिम्बा भाई का शोक मनाने तीन दिन के लिए चली जाती है और बाद मे आकर अपना मन्तव्य प्रकट करती है। कवि ने कुन्ती हिडिम्बा सम्वाद को विस्तार से चित्रित किया है। यह विस्तार सकारण है। कवि इसी सम्वाद मे कथा की आत्मा स्पष्ट करता है। उसकी जीवन दृष्टि की मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। वह मानव और राक्षस, भाव प्रभाव प्रेम त्याग, नारीत्व की वास्तविकता आदि विषयो पर अपने विचार अभिव्यक्त करता है।

वैर की यथार्थ शुद्धि वर नही प्रेम है
और इस विश्व का इसी मे छिपा क्षेम है।[6]

× × ×

---

१ म० आदि० १५२।४
२ हिडिम्बा पृ० १८
३ म० आदि० १५१।२६ ३०
४ हिडिम्बा, पृ० ३३
५ हिडिम्बा, पृ० ३३
६ हिडिम्बा, पृ० ३४

आते हैं चढ़ाव से उतार तथा आवेंगे,
तो भी हम लोग सदा बढ़ते ही जावेंगे।[१]

'महाभारत' में हिडिम्बा की अभिव्यक्ति में पारिवारिक कल्पना का अभाव है। वह युद्ध काम भाव के कारण भीम का वरण करती है। 'हिडिम्बा' में उक्त भावना का चित्रण गार्हस्थिक मर्यादा की सीमा में किया गया है। हिडिम्बा कुन्ती की स्वीकृति से भीम का वरण करना चाहती है। उसके मन में माता बनने की इच्छा है। उसकी पूर्ति का यही उपाय मानकर वह ऐसा प्रस्ताव करती है।

नकुल और हिडिम्बा का देवर भाभी के रूप में परिहास की योजना कवि की मौलिक उद्भावना है। कवि ने यथासम्भव 'महाभारत' के अनिग्राह्य तथ्यों को बुद्धिसम्मत तथा मर्यादित रूप प्रदान किया है। अपने विचारों की अभिव्यक्ति के हेतु कथा में संवाद का बहुत कुछ भाग कवि को स्वयं निर्मित करना पड़ा है। यह उद्देश्य-पूर्ति के लिए आवश्यक भी था। कवि ऊँच-नीच की कृत्रिम पृथकता असमानता की विघातक भावना का विरोध कर दनुज में मानवीय गुणों की सम्भावना, त्याग प्रधान प्रेम, असभ्यों का सभ्य होने की आकांक्षा का प्रकाशन करता है। किन्तु विचारधारा की व्यापकता और वर्ण्य वस्तु की सीमा के कारण चिन्तन पक्ष अधिक नहीं उभर सका। नवयुग की विचारणाएं जिस मात्रा में व्यक्त की जानी चाहिए थी उतनी सफलता से न हो सकी, उनका सकेतमात्र करके ही कवि सतुष्ट हुआ है। 'महाभारत' में भीम हिडिम्बा का वध करने को तत्पर हो जाते हैं किन्तु युधिष्ठिर द्वारा रोक दिये जाते हैं।[२] कवि इस प्रसग के विषय में मौन रह गया है। समग्रतः कवि का सत्य लोक-जीवन की व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर चित्रित हुआ है, यह निश्चय ही महाभारतीय आख्यान का नवीन आलेखन है।

'सेनापति कर्ण' में लक्ष्मी नारायण मिश्र का दृष्टिकोण कथा की मनोवैज्ञानिकता के आधार पर व्यक्त हुआ है। महाभारत-युद्ध प्रसग की पृष्ठभूमि में हिडिम्बा का चिन्तन मानवीय उच्चता का द्योतक है। हिडिम्बा को पतिकुल की चिन्ता का भान होता है, उसे वह पुत्र पर प्रकट करती है। पति की इच्छा के लिए अपने जीवन का बलिदान करने के उपरान्त पति रक्षा के हेतु पुत्र का बलिदान करती है।

मिश्र जी ने निम्नांकित उल्लेखनीय परिवर्तन किये हैं।

भीम ने हिडिम्बा को नीच कुल जन्मा मानकर त्याग दिया और राजकुल के ऐश्वर्य विलास में भीम आपत्ति की सहायक पत्नी को भूल गये।[३] महाभारत में घटोत्कच को माता पिता का ज्ञान है[४] और वह समय-समय पर उनकी सहायता

१ हिडिम्बा, पृ० ४०
२ म० आदि० १५४।१
३ सेनापति कर्ण, पृ० ७५,
४ म० आदि० १५४।४५

करता रहा है। कवि ने महाभारतीय सत्य की उपेक्षा करके यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि माता के बताने पर ही उसे पिता का ज्ञान होता है।[1]

'महाभारत' में वन में अनायास मिलने पर हिडिम्ब और भीम का युद्ध होता है। 'सेनापति कर्ण' में कवि इस युद्ध का सम्बन्ध भीम और जरासंध के युद्ध से जोड़कर उत्कृष्ट कल्पना को कलात्मक रूप से चित्रित करता है। हिडिम्ब जरासंध वध का प्रतिशोध चाहता है और नरश्रेष्ठ भीम पर हिडिम्बा पहले से ही अनुरक्त है। इस रूप में कवि ने प्रेम और शत्रुता का पूर्व सम्बन्ध चित्रित किया है।

हिडिम्बा पुत्र को बताती है

भाई जो हिडिम्ब दानवेन्द्र बली मेरे थे
सह न सके व नर श्रेष्ठ की सुख्याति को—

हिडिम्ब की भावना का प्रकाशन करते हिडिम्बा कहती है

मार जरासन्ध को यशस्वी भीमसेन है
आज बना, किन्तु उस मार के समर में
लेना प्रतिशोध मुझको है मित्र वध का।[2]

निश्चित ही यह कल्पना अत्यन्त पुष्ट और महाभारतीय आख्यान को एक नयी दिशा देती है। राक्षसों के विस्तृत परिवार की सम्भावना में हिडिम्ब का वैर स्वाभाविक और तर्क संगत दिखाई देता है।

भीम एवं हिडिम्बा के युद्ध की नवीन कल्पना के साथ कवि हिडिम्बा और भीम के प्रेम प्रसंग को भी नये रूप में चित्रित करता है। हिडिम्बा पूर्व प्रेम के कारण भीम को देखकर द्रवित होती है। भीम उस द्रवणशीलता की प्रतिक्रिया इस रूप में व्यक्त करते हैं

देवि देखकर मुझको
द्रवित हुई थी तुम भूलता नहीं हूं मैं।
पाई शक्ति मैंने अनजान उन आँखों से
देखा एक बार जब तुमने मुझे लगा,
पान किया आज मैंने तुममें अमृत है।[3]

यहाँ भी महाभारत की कामातुर हिडिम्बा और उसके प्रति उदार भीमसेन और यहाँ यह प्रेम का उज्ज्वल प्रेरणा दायक स्थिति। भीम के मुख से उसकी अभिव्यक्ति में औन्नत्य का गरिमा की सम्भावना के प्रति आभार प्रकट है।

महाभारत में घटोत्कच की उत्पत्ति के उपरान्त हिडिम्बा भीम से विलग हो जाती है। यह सत्य कवि ने अपने कारण सहित सम्भवतः की परिकल्पना में स्वीकार

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० ८७
२ सेनापति कर्ण, पृ० ८६
३ सेनापति कर्ण, पृ० ६३

किया है। कवि की कल्पना है कि यह विलगता तत्कालीन सामन्तीय परम्परा के प्रतीक वशभेद के कारण हुई। 'महाभारत' मे ऐसा कोई सकेत नही है। काव्य मे स्वय भीम इस तथ्य को स्वीकार करते है।

यौवन के मद मे बनाया जिसे प्रेयसी,
और फिर छोड दिया कुल के विचार से।[1]

कथानक की दृष्टि से कवि के उक्त परिवतनो मे उनका विपयिगत दृष्टि कोण निहित है। समग्र ग्र थ म पाण्डवा के चरित्र को इस प्रकार की स्थिति मे प्रस्तुत कर अपकपा मक रूप देने की प्रवृत्ति की प्रधानता मिलती है। यह सव स्वीकृत तथ्य है कि भीम ने हिडिम्बा को इच्छानुसार विवाह कर स तान उत्पन्न की—भीम के प्रेम का यह प्रधान शत थी कि पुन उत्प न होने के उपरा त वह साथ म न रहगी।[2] वह युग स्त्री पुरुष से स्पष्ट सम्ब धो का युग था अत ऐसी स्थिति की कल्पना अ यावहारिक नही है। अत इम परिवेश मे पाण्डवो के चरित्र का अपकप करना तत्कालीन स्थिति की उपेक्षा करके मनमाने अर्थों का आरोपण होगा।

उक्त परिवतनो की सीमा मे कवि ने हिडिम्बा, घटोत्कच और भीमसेन का भावनाभ्रा का द्वन्द्व कलात्मकता से चित्रित किया है। 'महाभारत' के दिव्य शक्ति सम्प न पात्र को मानवीय सुख दु ख की अनुभूति का अवसर देकर चारित्रिक विकास का नवीन रूप उपस्थित किया है। महाभारतकार के समक्ष मानसिक द्वन्द्वा का प्रश्न ही नही था वहा दि यपात्र असुर, ऋषि सब अपनी शक्तिया से भलीभाति परिचित हैं।

हिडिम्बा मे पूर्वानुराग के रूप मे की गई कल्पना के द्वारा कवि स्त्रियोचित मर्यादा और सरलता की रक्षा करता है। उसके शौय प्रदशन मे जीवन का उज्ज्वलतम रूप चित्रित कर स्त्री क सभी धर्मों मे समान सहयोग की प्रतिष्ठा करता है।

---

१ सेनापतिकर्ण, पृ० २११
२ म० आदि० १५४।२०

महाभारत के चरित्र-चित्रण का प्रभाव

महाभारत में चरित्र-चित्रण
आधुनिक काव्य में चरित्र
वर्तमान काल मे चरित्र

पंचम अध्याय

महाभारत के चरित्र-चित्रण का प्रभाव

'महाभारत' के कथा प्रभाव की विवेचना करते हुए हमने देखा कि सभी कवियों ने अपनी विचारधारा और युग दृष्टि के कारण कथा में साहित्य परिवर्तन करके अतिप्राकृत तत्वों का बुद्धि सम्मत समाधान खोजने की चेष्टा की। कथानक का प्रभाव अधिकांश यथावत रहा और सभी परिवर्तनों का पृष्ठभूमि में सामाजिक मनोवैज्ञानिक स्थितियों को आधार बनाया गया। 'महाभारत' की कथा का कवियों ने स्वतंत्र रूप से ग्रहण कर चरित्र-सृष्टि में नवीनता का समावेश किया। आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण का साहित्य इस तथ्य का द्योतक है कि राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण की सीमा में, कवियों ने प्राचीन कथा और चरित्रों का नवीन संदर्भ में चित्रित करके युग सजगता का परिचय दिया। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 'महाभारत' के कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीष्म, दुर्योधन, कर्ण आदि प्रमुख चरित्र अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर आदि कवियों के द्वारा नवीन रूप में चित्रित हुए हैं। ये सभी पात्र एक ओर अपनी मूल विशेषताओं के साथ अभिव्यक्त हुए हैं, दूसरी ओर नवीन युग का प्रतिनिधित्व भी कर पाये हैं।

महाभारत चरित्र चित्रण विशेषताएं

प्राचीन ग्रन्थों का स्वरूप धार्मिक एवं साहित्यिक दोनों था। वे सभी ग्रन्थ पुराण शैली में लिखे गये इतिहास भी हैं और धार्मिक विचारधारा से पूर्ण साहित्यिक ग्रन्थ भी। अतः 'महाभारत' की चरित्र सृष्टि प्रतिपाद्य के अनुरूप ही अलौकिक है। वहां पात्र अपनी शक्ति से अनभिज्ञ नहीं और यदि कोई संघर्ष है तो समान शक्ति शाली पात्रों में है। मानसिक द्वन्द्व जैसी स्थिति कुछ ही पात्रों में आ पाई है। कुन्ती, युधिष्ठिर, द्रौपदी कर्ण आदि पात्रों में यह द्वन्द्व कहीं-कहीं पर उभर कर व्यक्त हुआ है। दिव्य शक्ति सम्पन्न पात्रों का मानवीय पात्रों से निकट सम्बन्ध भी समस्त वातावरण को अलौकिक शक्ति से प्रभावित करने में सहायक है। 'महाभारत' का अध्येता परम्परा से ही यह जानता है कि इन्द्र पुत्र अर्जुन विजयी होगा। कर्ण और अर्जुन का संघर्ष मानो दो दिव्य शक्तियों का संघर्ष है। इसमें अर्जुन की विजय परब्रह्म कृष्ण की विजय है। इस प्रकार महाभारत की चरित्र-सृष्टि में घटनाओं का स्थान अधिक है, मनोवृत्तियों का कम।

'महाभारत' में चरित्र सृष्टि का आधार यथार्थवादी प्रवृत्ति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। 'महाभारत' में चित्रित सभी सात्विक पात्र अपनी अपनी सीमा में

आदर्शवादी हैं। उनके प्रत्येक कर्म के पीछे आदर्श का आधार दिखाया गया है। वे वीरत्व के तेजोदीप्त जीवन के मध्य अपनी चित्तवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चरित्रों में सबसे प्रमुख उल्लेखनीय तत्व है इनकी निर्भयता और स्पष्टवादिता, ये जीवन में विविध और यथार्थवादी हैं[1]। व्यास जी ने चरित्रों का आलेखन अत्यन्त साहस के साथ किया है। उनमें आत्मनिर्भरता, पुरुषार्थ पर अटूट विश्वास, व्यवहार में शक्ति और कल्याणकारी वृत्तियों का समन्वय कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनसे इन सभी पात्रों के गुणों को आधुनिक काव्यकारों ने दो रूपों से ग्रहण किया है।

प्रथमतः अपरिवर्तनीय गुण द्वितीयतः युग की भावना के अनुरूप परिवर्तनीय गुण। कृष्ण 'महाभारत' में युग पुरुष ब्रह्म के अवतार, ईश्वर, नीतिज्ञ सभी रूपों में चित्रित हैं। आधुनिक कवि कृष्ण को चाहे उसी आस्था से ईश्वर न माने किन्तु 'महाभारत' के युद्ध में उनके योगदान की श्रेष्ठता को अस्वीकार नहीं कर सकता है और अपने समय में कृष्ण ने असुरों के संहार और मानवत्व की प्रतिष्ठा के लिए जो कुछ किया उसको आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत करके 'यदा यदाहि धर्मस्य' की उक्ति को नवीन आलोक में उपस्थित करता है। इन चरित्रों की प्रमुख विशेषता यही है कि ये अपने व्यवहार और मानसिक सन्तुलन में विशिष्ट सजगता लिये हैं।

वीर युगीन चरित्र महाभारत का प्रत्येक पात्र वीरयुगीन विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। उसे आत्म शौर्य पर अटूट विश्वास है। वीर युग में वीरत्व ही धर्म, नैतिकता और सामाजिक सात्विकता को नियमित करता है। व्यक्तिगत वीरत्व के प्रदर्शन के अनुरूप आस्थाओं तथा नियमों में परिवर्तन सम्भव है। नियमित और संयमित वीरत्व का प्रदर्शन उत्तर वीर युग में होता है।

वीर युग में व्यक्ति की शारीरिक वीरता व्यक्तिगत शक्ति का महत्व सर्वोपरि होता है। वही पात्र महान और अनुकरणीय है जो अधिक वीर और शक्ति सम्पन्न है। महाभारत के सभी चरित्र उज्ज्वल हैं, शक्ति की अदम्यता के प्रतीक हैं—ये युद्ध में विमुख होना नहीं जानते, शत्रु की तलवार पर युद्ध करना,

---

1 Vyasa is very bold in characterisation An air of independent spirit and an individual stamp are the outstanding features among the charaters as they are portrayed by Vyasa He has shown how the mind of a person works in the hour of trails The major men characters Yudhisthira Bhima Arjuna Nakul Sahadeva—are all peculiar in their mental dispositions and behaviours'——History of Sanskrit Literature V Varadachari p 53

युद्ध को कर्त्तव्य समझ कर लड़ना और भाग्य की बलवत्ता को स्वीकार करना आदि प्रमुख गुणों का प्रसार ही वीर युग के चरित्र मे व्यापक रूप से प्रदर्शित होता है।[1] यही कारण है कि 'महाभारत' पढ़ने के उपरान्त ऐसा लगता है कि यह युद्ध दुर्योधन, भीष्म आदि वीरों की व्यक्तिगत कहानी है।[2]

श्री एन० के० सिद्धान्त के विचार पाश्चात्य लेखकों से प्रभावित हैं—उनको 'महाभारत' के वीरो के संघर्ष मे व्यक्तिगत संघर्ष अधिक दिखाई देता है। वास्तविक स्थिति ऐसी नही है। 'महाभारत' में कौरवों और पाण्डवों का संघर्ष जातीय स्तर पर हुआ है। कौरवों का परास्त करने से पूर्व जरासंध और शिशुपाल का वध इस बात का द्योतक है कि पाण्डवों के शक्ति संचय मे भारतीय आर्य परम्परा का रक्षण विद्यमान रहा, जबकि कौरवों के पक्ष में उस परम्परा का साक्षात् हनन दिखाई देता था। अतः कृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लिया। यह सत्य है कि इस सामूहिक संघर्ष की विजय और पराजय कतिपय प्रमुख व्यक्तियों की शक्ति पर आधारित थी किन्तु उनके व्यक्तिगत द्वेष को ही संघर्ष का मूल कारण नही माना जा सकता।

वैयक्तिकता और सामाजिकता 'महाभारत' के पात्रों में जहां व्यक्तिगत वीरत्व प्रमुख था वहां सामाजिक दायित्व की भावना भी उतनी ही प्रबल थी। पहले तो उनका वीरत्व प्रदर्शन ही सामूहिक हित के लिए होता था। यदि जरासंध अनेक राजाओं को पकड़ कर बन्दी न बनाता तो उसका वध करने की आवश्यकता न पड़ती। यह भी स्वाभाविक है कि जो राजा स्वार्थ तुष्टि के लिए परिवार के साथ युद्ध कर सकता है वह सामान्य प्रजा पर अत्याचार भी कर सकता है।

वीर युग में चरित्र का नैतिक मानदण्ड धार्मिक या सामाजिक न होकर वैयक्तिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति विजय प्राप्ति के लिए जो कुछ करता है वह सर्वथा उचित है। इसीलिए धर्म के जितने रहस्यमय रूप 'महाभारत' में प्राप्त होते हैं उतने सम्भवतः अन्य ग्रन्थ में उपलब्ध नही होते। चिन्तन की प्रधानता वीर-युग के चरित्रों का स्वाभाविक गुण नहीं है, चिन्तन किसी किसी पात्र में अपवाद स्वरूप पाया जाता है।

अदम्य वीरत्व के साथ तपस्या और त्याग की भावना का समावेश भी वीर युग के चरित्र में पाया जाता है। ये चरित्र वीरता के चमत्कारिक कार्यों के साथ तपश्चर्या में भी उतने ही साहसी हैं। अर्जुन इन दोनों रूपों का प्रतिनिधित्व करता है। अर्जुन के अतिरिक्त तपश्चर्या में जयद्रथ, लौकिक त्याग भावना और ऋषित्व के प्रतिनिधि रूप में द्रोणाचार्य और भीष्म आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रेम का क्षेत्र 'महाभारत' के पात्रों मे प्रेम के क्षेत्र में एकनिष्ठता का अभाव है।

---

1 The Heroic Age of India ' 1929 p 85 86
2 The Heroic Age of India' p 76

'महाभारत' के प्रमुख वीर चरित्रों में प्रेम भी राजनीति का अंग है। वीर युग में बहु स्त्री परम्परा विकसित रहती है। 'महाभारत' में अर्जुन, भीम तथा अन्य प्रमुख वीरों की स्त्रियों का स्पष्ट उल्लेख है। आदर्शवादी भावना के अनुसार बहुस्त्रीत्व चरित्र का दोष है पर वीर युग की भावना में यह दोष नहीं माना जाता है।

सारांश यह है कि 'महाभारत' में जिस रूप में चरित्र का विकास हुआ है वह यथार्थवादी धरातल पर युग के आदर्शात्मक रूप का प्रकाशन करता है। प्रत्येक चरित्र का कार्य यथार्थ की सीमा के भीतर है पर उसका चरम-लक्ष्य है आदर्श। पाण्डवों के पक्ष को महाभारत में धर्मसम्मत आदर्शवादी और यथार्थ की कठोरता के साथ भी उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। कौरव पक्षीय वीरों में भी द्रोण, विदुर, भीष्म, आदर्शात्मक पात्र हैं। इनके चरित्र की स्थिति भी विरल है। ये अधर्म का पक्ष लेते हुए भी धर्मात्मा बने रहते हैं। द्रोण और भीष्म कौरवों की ओर से युद्ध करते हैं पर हृदय से पाण्डवों की विजय चाहते हैं। महाभारतकार इस स्थिति से लाभ उठाकर इन चरित्रों में मानसिक द्वन्द्व की स्थापना कर सकता था पर युग के आदर्श की व्याख्या के अनुसार वह ऐसा न कर पाया। भीष्म द्रोण मन से पाण्डव पक्षीय होने की उद्घोषणा कर देते हैं—भीष्म पाण्डवों को अवध्य घोषित करते हैं, इस पर भी युद्ध करते हैं। व्यक्तिगत कर्तव्य और व्यक्तिगत प्रेम तथा संघर्ष का जितना आश्चर्यजनक समन्वय इन चरित्रों में हो पाया है।

आधुनिक काव्य में चरित्र

आधुनिक काव्यकार महाभारतकालीन दिव्य वातावरण की सृष्टि नहीं करता। उसके दिव्य पात्र भी मानवीय हो जाते हैं और यदि मानवीय नहीं होते तो भी उनकी सत्ता मानव से ऊँची नहीं है। इस काल के प्रबन्ध काव्यों, 'कृष्णायन', 'जयभारत', 'सेनापति कर्ण', 'रश्मिरथी' आदि में महाभारत के सर्वशक्तिमान पात्रों का चित्रण मानवीय धरातल पर किया गया है। ये उच्च शक्ति सम्पन्न हैं—उनमें दिव्यता का आरोप करके बुद्धि-सम्पन्न बनाया गया है। उदाहरणार्थ 'महाभारत' के कृष्ण ब्रह्म के अवतार, सर्वशक्तिमान, लीलाधर्मी हैं, किन्तु आधुनिक काव्य के कृष्ण महामानव ही हैं—उनमें बुद्धि और शक्ति का आधिक्य है, अतः वे महान् और पूज्य हैं। इनके साथ कुछ वैष्णव भक्त आधुनिक कवियों ने—जिनमें मैथिलीशरण गुप्त प्रमुख हैं—कृष्ण के ब्रह्मत्व को ही आस्था से ग्रहण किया है।

मानव जीवन पर आधारित प्रबन्ध काव्यों में कथा विकास के साथ चरित्र सृष्टि महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है। कवि अपनी विचारधारा को युग-सापेक्ष आधार पर चरित्र के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। वह आस्थावान है या नहीं, परम्परावादी है या प्रगतिशील समन्वयवादी है या किसी एक सिद्धान्त का प्रति

दिक, इन तथ्यों की व्यंजना उसकी चरित्र दृष्टि से ही ज्ञात होती है। अतः प्रबंध काव्यों में 'महाभारत' के पात्रों का चरित्र विकास प्रत्येक कवि के अपने दृष्टिकोण के आधार पर हुआ है। आचार्य शुक्ल ने स्पष्ट किया है—हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों की भावना को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तः प्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता का प्रसार करती है।[1] कवि चरित्र भूमि के प्रसार-क्षेत्र में जिस जीवन दृष्टि के आधार पर, भावात्मक सत्ता का प्रसार करता है वही चरित्र चित्रण है। चरित्र के द्वारा ही कवि मानव को उच्च भूमि में प्रतिष्ठित करता है और दिव्य शक्ति को मानवीय रूप के मध्य अवतरित करके मानवता का प्रसार करता है। हिन्दी साहित्य में उपलब्ध आदिकाल से अब तक के प्रबन्ध काव्यों में चरित्र का यह विषय ही काव्य और पुराण की दृष्टि भेद की स्थापना करता है। उदाहरणार्थ रासो में पृथ्वीराज के चरित्र को दिव्य भूमि में प्रतिष्ठित किया गया है। 'रामचरित मानस' में दोनों भूमियों का समन्वय किया गया है और 'कृष्णायन' में कृष्ण की दिव्यता को मानवीय आवरण देकर लोक जीवन के मध्य प्रतिष्ठित करके कृष्ण की अलौकिकता को भी मानव मन के लिए सुगम बनाया गया है।

यह हमने पहले ही स्पष्ट किया है कि आधुनिक काव्य में 'महाभारत' के चरित्रों के पुनरालेखन की प्रवृत्ति मुख्य है। यह प्रवृत्ति जीवन्त साहित्य की सजीवता का परिचायक है। इसके आधार पर दो वर्ग किए जा सकते हैं।

१ पुनरुत्थान युग २ वर्तमान युग।

पुनरुत्थान युग की प्रथम प्रवृत्ति मूल से पूर्णतः सम्बन्ध बनाए रखना है। इसमें कवि पुनरुत्थान के लिए प्राचीन सांस्कृतिक आदर्शों की पुनः स्थापना करता है और प्राचीन लोकादर्श से सम्बन्ध रख कर उन्हीं आदर्शों को अपने युग में प्रतिष्ठित करता है।

द्वितीय प्रवृत्ति है युग के आदर्शानुसार मूल में यत्किंचित परिवर्तन करना। इस परिवर्तन में प्राचीनता और नवीन बौद्धिकता का समावेश होता है।

पुनरुत्थान युग की प्रथम प्रवृत्ति का कवि प्राचीन परम्परागत विश्वासों में परिवर्तन न करके उनका बुद्धि सम्मत समाधान खोजता है। द्वितीय प्रवृत्ति का कवि परम्परागत विश्वासों में परिवर्तन करके नवीन समाधान की ओर कुछ नये तथ्य उपस्थित करता है।

वर्तमान युग में आकर पुनरुत्थान की परम्परा भी समाप्त हो जाती है और कवि मूल से केवल उतना ही सम्बन्ध रखता है जितना वह आवश्यक समझता है। वह प्राचीनता का छायाभास ग्रहण कर अपने युग के यथार्थ और आदर्श का वाणी

---

1 रस मीमांसा, पृ० ७

देता है। इसी प्रवृत्ति का एक और चरण होता है जिसमें कवि मूल से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है और केवल भावना ग्रहण कर उसे नितान्त स्वतंत्र रूप से विकसित करता है। अत आधुनिक काव्यकार की चरित्र-सृष्टि मूल से अभिन्न नहीं होती उसमें युगानुसार परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का प्रेरक पहले 'समाज' मे और फिर व्यक्ति कवि मे निहित होता है।

पुनरुत्थान युग में चरित्र चित्रण प्रेरक तत्व इस काल मे साहित्य की प्रेरक युग प्रवृत्तिया यद्यपि काव्य को गीतात्मकता की ओर अधिक ले जा रही थी, किन्तु प्रबन्ध काव्यो मे भी युग प्रवृत्तियो का स्पष्ट चित्रण मिलता है। इस काल की सास्कृतिक, सामाजिक परिस्थितियो का अप्रत्यक्ष प्रभाव प्रबन्ध काव्यो पर पड़ा। इस दृष्टिकोण ने काव्य रचना मे प्रेरक शक्तियो का काय किया। सामान्यत इस युग मे रचे जाने वाले प्रमुख आख्यानात्मक काव्यो—नल नरेश', 'प्रिय प्रवास', 'जयद्रथ वध' मे प्राचीन मान्यताओ चरित्रो का बुद्धिवाद की नयी आवश्यकता के अनुसार चित्रित किया बुद्धिवादी, आदर्शवादी, मानववादी राष्ट्रवादी विचार धाराओ ने कवियो की मनोवृत्तियो पर गहरा प्रभाव छोडा। यह कहना उचित होगा कि इसने अपनी प्राचीन प्रतिष्ठित प्रतिमाओ को नवीन आलोक मे देखने का प्रयास किया।

बुद्धिवाद इन कवियो का दृष्टिकोण सास्कृतिक या सास्कृतिक जीवन के अनुशीलन मे इस समय बौद्धिकता का प्रभाव सर्वाधिक था। पाठको की गतानुगतिकता पर कवि ने प्रहार करके उसे नवीन भावना के अनुकूल चित्रित किया—मानव के प्रकाश से साधारणीकरण की प्रवृत्ति की ओर झुकना इस समय के काव्य की सामान्य प्रवृत्ति रही। ईश्वर के ईश्वरत्व की मान्यता के साथ धर्म के उच्चत्व मे भी प्रश्न लग गया। अवतारवाद का निषेध हुआ। इस निषेध की ध्वनि हरिऔध मे सरलता से प्राप्त होती है। मैथिली शरण गुप्त अवतार वाद का विरोध तो न कर सके, किन्तु उन्होंने अवतारवाद का बौद्धिक समाधान करने का प्रयास अवश्य किया। बुद्धिवाद के प्रभाव के कारण सर्वोपरि माने जाने वाले राम-कृष्ण आदि अवतारो की गणना भी मानवो मे होने लगी। बुद्धिवाद के इस प्रवाह मे आदर्शवाद का विरोध नहीं हुआ—और न ऐसा सिद्धान्त होना ही है।

आदर्शवाद बुद्धिवाद के अतिरिक्त आदर्शवाद काव्य की प्रमुख प्रेरक प्रवृत्ति रही। बुद्धिवाद आदर्श का विरोधी नहीं होता वह केवल आदर्श को स्वप्न की वस्तु न समझ कर अपनी कसौटी पर कस कर लोकजीवन के लिए उपयोगी बनाता है। इस काल मे लिखे गये देवयानी सती-सावित्री', नल-नरेश, वीर विजय, आदि कतिपय आख्यानात्मक काव्यो मे आदर्श की स्थापना पर बल दिया गया। देवयानी' में कच और देवयानी के प्रसंग मे भोगवाद का विरोध किया गया। सावित्री के चरित्र मे पतिव्रत के आदर्श दमयन्ती के चरित्र मे प्रेम की एकनिष्ठा अभिमन्यु पराक्रम मे अभिमन्यु के चरित्र मे कर्तव्य निष्ठा का आदर्श प्रस्तुत किया

गया। इन काव्यों में चरित्र चित्रण का स्वरूप पौराणिक रहा किन्तु प्रत्येक पात्र के साथ आदर्श की भावना की प्रमुखता के कारण उसका युगीन महत्व भी देखा जा सकता है। सामाजिक संस्कारों के परिष्कार की ध्वनियों के मध्य वर्ण के चरित्र के द्वारा जन्मगत असमानता का विरोध करने वाले कवि की सामाजिक सुधारवादी भावना श्लाघ्य है। कर्म की प्रतिष्ठा का सिद्धान्त मानने वाले के लिए ऐसे पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों का पुनराख्यान आवश्यक होता है।

जनवाद एवं मानववाद प्राचीन पात्रों के पुनराख्यान में इस युग की जनवादी एवं मानववादी प्रवृत्ति की झलक मिलती है। वीर-युग के चरित्रों में व्यक्तिगत उत्कर्ष की भावना प्रबल थी। तत्कालीन व्यक्तिगत उत्कर्ष को धर्म-नीति से वेष्टित कर आधुनिक मानववादी भावना का प्रसार किया गया। 'प्रियप्रवास' में मानव सेवा और मानव प्रेम का ही ईश्वर प्रेम के रूप में चित्रित किया गया। महाभारत में कृष्ण के उदात्त व्यक्तित्व ने अधर्म का नाश करके धर्म की स्थापना की, पाण्डवों के सत्य-पक्ष का समर्थन किया। आधुनिक युग में कृष्ण के उदात्त चरित्र का गुणगान किया गया क्योंकि अधर्म का नाश तो आज की भी मुख्य समस्या है। इस प्रकार के चरित्रों के पुनरांकन के द्वारा कवियों ने राष्ट्रवाद के शाश्वत सांस्कृतिक पक्ष को चित्रित किया। गीता के कर्मयोग की व्यावहारिकता राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में सहयोगी रही। भारतेन्दु काल के कवि के मानसिक संस्कारों में प्राचीन की निधि सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी तदुपरान्त सामाजिक यथार्थ। अतः कवियों ने सामाजिक यथार्थ का प्राचीनता के साथ समन्वित किया। चरित्र प्राचीन रहे समस्या नयी पात्र अतीत के रहे जीवन-दर्शन आधुनिक आस्था का सिद्धान्तवादी रूप पुरातन किन्तु व्यावहारिक रूप नवीन रहा। इस प्रकार पुनरुत्थान काल के आख्यान काव्यों में या तो दिव्य व्यक्तित्वों का गुणगान प्रमुख रहा या उन महामानवों का आदर्श चित्रित हुआ जिन्होंने वीर युग में अपने बलिदान से राष्ट्र की रक्षा की थी।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक पुनः व्यवस्था के हेतु परशुराम, अर्जुन, अभिमन्यु, जनमेजय तथा ऐतिहासिक वीर चन्द्रगुप्त, पृथ्वीराज आदि की प्रबन्धात्मक रचनाएं लिखी गई।

आधुनिक युग में शौर्य, वीरता, परसेवा, क्षमा, त्याग, देश प्रेम, आदि सात्विक गुणों का प्रसार भी इन वीरों के जीवन चरित्र के आधार पर किया गया। 'गीता' के ब्रह्मवाद का अत्यन्त सुन्दर समाधान 'प्रियप्रवास' के कवि ने प्रस्तुत किया कि जो कुछ भी विभूतिवान लक्ष्मीवान, या प्रभावशाली है वह मेरे ब्रह्म के तेजांश से उत्पन्न हुआ है।[1] गीता में तो ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है पर 'प्रियप्रवास में'

---

१ यद् यद् विभूतिमत सत्व श्रीमदूर्जित मेववा।
तत्त देवावगच्छ त्वं मम तेजोंश सम्भवम ॥ गीता, १०।४१

इसकी नयी व्याख्या है कि जो महापुरुष है उसका अवतार होना निश्चित है। लोक शब्दावली में यह कहा जा सकता है कि महापुरुष के प्रताप से ही लक्ष्मी, वैभव प्राप्त होते हैं।

वर्तमान काल में चरित्र चित्रण इस काल के चरित्र चित्रण का मूल आधार है सुधारवाद। यहां प्राचीन पात्रों को प्रतीक रूप में चित्रित किया गया। उनके चरित्र चित्रण पर स्वच्छन्दतावाद का प्रतीकात्मक प्रभाव पड़ा जिसका महत्व सामयिक रहा। महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों पर वर्तमान कालिक मनोवैज्ञानिक प्रणाली ने पर्याप्त प्रभाव डाला। सामान्यतः वीर युग के स्थिर पात्रों को भी मानसिक द्वन्द्व के मध्य चित्रित किया गया। वीर युग के मानसिक संघर्ष के अभाव की पूर्ति की गई। 'महाभारत' का चरित्र यथार्थवादी है, उस इस युग में एकरसता से चित्रित न कर आरोहावरोह के संघर्ष से युक्त दिखाया गया है। इस प्रभाव से आज की रचना प्राचीन के स्वप्नलोक का प्रतिनिधित्व करती वह अपने युग की रचना नहीं हो सकती थी। 'कुरुक्षेत्र' 'जयद्रथ वध' 'नहुष', 'अंगराज' आदि रचनाओं में महाभारत के प्रमुख पात्र मानसिक द्वन्द्व के कारण हमें ऐसे लगते हैं कि उनका अस्तित्व हमारे समान ही है। 'कुरुक्षेत्र' में कुन्ती का द्वन्द्व द्रष्टव्य है। 'महाभारत' की कुन्ती अपने पुत्रों के व्यक्तित्व से परिचित है[1] किन्तु 'कुरुक्षेत्र' की कुन्ती अतिमानवीय न होकर मानवी है।[2] 'अंगराज' में कर्ण के गौरव की अभिव्यंजना उसी रूप में की गई है पर परम्परागत प्रवृत्ति के प्रतिकूल पाण्डवों के चरित्र चित्रण में पर्याप्त कठोर रहा है। उसने युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम आदि का चरित्र उत्कर्ष की उस उच्चता के साथ चित्रित नहीं किया जिस रूप में वह पुनरुत्थान काल में चित्रित हुए थे। इस प्रकार महाभारतीय पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह दो युग निश्चित ही विभाजक रेखा अंकित करते हैं।

महाभारत के पुरुष पात्रों में पंच पाण्डव, कर्ण, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, अभिमन्यु, नहुष, जयद्रथ आदि प्रमुख हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से ये ही पात्र प्रमुख हैं जिनको आधार मानकर प्रबन्ध काव्यों की रचना की गई है। इन्हीं पात्रों के चरित्र चित्रण में प्रभाव और परिवर्तन को अधिक स्थान दिया गया है। प्रमुख स्त्री पात्रों में द्रौपदी, गान्धारी और कुन्ती हैं। अधिकतर इन्हीं पात्रों के चरित्र चित्रण की ओर लेखकों का ध्यान गया है। गौण पात्रों के चरित्र चित्रण में

---

1 प्रिय प्रवास भूमिका

2 म० आदि० १६०।१४

3 जो थी निराली निन्दना
सन्ध्य गया उसका छला,
पर दर सब जस मग्न सो लटी रही। कुरुक्षेत्र पृ० ३४,

उन्हीं को प्रमुखता दी गई है जिन पर लघु आख्यानात्मक काव्यों की सृष्टि हुई है।

'महाभारत' के अन्य पात्रों का सुविधा के लिए एक अन्य वर्गीकरण हो सकता है: आख्यानात्मक पात्र—वे पुरुष एवं स्त्री पात्र जो किसी आख्यान में आये हैं किन्तु आधुनिक काव्य में प्रबन्ध काव्य का स्वतंत्र विषय होने के कारण प्रमुख बन गये हैं। ऐसे पात्र अपनी कथा की स्वतंत्र सत्ता में प्रमुख हैं। उदाहरण के लिए, नहुष, ययाति, दुष्यन्त, राजा नल, एकलव्य आदि और स्त्री पात्रों में सावित्री, दमयन्ती, हिडिम्बा, उलूपी आदि पात्र।

भगवान् कृष्ण

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में ऐसे महापुरुषों का जन्म होता है जो अदम्य साहस और आदर्श चरित्र द्वारा जन जीवन में चेतना का आलोक जगाते हैं। ये महान व्यक्तित्व अत्याचार से पीडित जनता का उद्धार कर महानिर्वाण प्राप्त करते हैं, और इनकी स्मृति को युग-युगान्तरों तक अपने हृदय में सजो कर विश्व परितृप्त होता रहता है। कालातिपात से ये मानव देव अथवा अवतार की पदवी प्राप्त करते हैं और उनका चरित्र इतना दिव्य हो जाता है कि हम उनके ऐहिक अस्तित्व की कल्पना भी नहीं करते। प्रत्येक युग इनके चरित्रों को अपने अनुसार कल्पित कर, प्रेरणा प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ कृष्ण ने अपने युग में असुरवृत्ति सम्पन्न राजाओं को नष्ट करके एक छत्र साम्राज्य की स्थापना की। इस से परितृप्त प्रजा ने उन्हें ईश्वर बना दिया और महाकाव्यकार व्यास ने कृष्ण चरित्र दिव्य रूप में चित्रित किया। कृष्ण ने लोक जीवन में जो स्थान ग्रहण किया उसकी महत्ता के अनुरूप 'महाभारत' में कृष्ण ईश्वर नारायण के अवतार बन गये और अनेक कथाओं द्वारा इस स्वरूप की पुष्टि की गई।[1] कृष्ण को ब्रह्म माना गया और परम्परानुसार प्रत्येक भक्त उनको उसी रूप में स्वीकार करता है। आधुनिक काव्य में कृष्ण के अवतारी रूप में यत्किंचित परिवर्तन करके उसे आधुनिक बौद्धिक विवेक के प्रकाश में चित्रित किया गया है। यह निर्विवाद है कि आधुनिक युग आस्था, विश्वास और अन्धानुकरण का युग नहीं—साथ ही परम्परा विनिर्मुक्त भी नहीं, अतः मध्य मार्ग यही है कि प्राचीन अलौकिक रूपों को नवीन विवेक से परिष्कृत किया जाय।

'महाभारत' में कृष्ण के तीन रूप उल्लेखनीय हैं:

१ नीतिज्ञ कृष्ण,
२ लोक रक्षक कृष्ण,
३ परब्रह्म कृष्ण।

भगवान कृष्ण के उक्त रूप उनकी चरित्र-गाथा के तीन विशिष्ट स्थल हैं। नीतिज्ञ कृष्ण ने अपने युग की मान्यताओं की पुनः स्थापना की और लोकरक्षक

---

१ म० उद्योग० ४६।१६ २०

यन। लोकरक्षण में उनके योगदान का महान रूप जनता के समक्ष आया और उनको अग्रपद दिया गया। अतः यह यात्रा नीतिज्ञ रूप से प्रारम्भ होकर ब्रह्मरूप तक चली। 'महाभारत' के उपरान्त भक्ति के विकास के अनेक चरणों में अनेक विराम स्थलों के मध्य कृष्ण का बालरूप और गोपीवल्लभ रूप भी विकसित हुआ। भक्ति के विकास के साथ बालरूप और गोपीवल्लभ रूप की प्रधानता सैद्धान्तिक दृष्टि से रही। 'महाभारत' के उत्तर अंश 'हरिवंश पुराण' में कृष्ण के ब्रह्मरूप को अनेक अवस्थाओं में चित्रित किया गया। 'हरिवंश पुराण' के बाद श्रीमद्भागवत तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थों में कृष्ण के स्वरूप को परिवर्तित किया गया। 'महाभारत' और आधुनिक काव्य के मध्य कृष्ण के चरित्र ने अनेक रूप बदले और मार्ग में अनेक विराम चिह्न उपस्थित हुए किन्तु आधुनिक काव्यकार ने इन मध्यवर्ती स्वरूपों को छोड़कर प्रत्यक्षतः 'महाभारत' से अपना सम्बन्ध स्थापित किया। आधुनिक जीवन की व्यावहारिक विषमताओं के मध्य कृष्ण का कोई और रूप स्थिर नहीं रह सकता था अतः आस्था और विश्वास की आधार प्रतिमा को परिवर्तित करके उसे लोक जीवन में प्रतिष्ठित किया गया और लोक रक्षा के प्रमुख स्तम्भ के रूप में नीतिज्ञ और अवतारी कृष्ण की नई व्याख्या की गई।

मध्यकाल में कृष्ण के स्वरूप परिवर्तन का प्रमुख कारण कवियों का साम्प्रदायिक आवेग था। इस आवेग के आलोक में अनेक मतावलम्बियों ने कृष्ण का चरित्र अपने अनुरूप ढाल कर प्रस्तुत किया। जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करके वैष्णव अवतार कृष्ण को अपने मत का प्रतिनिधि बना लिया। आज का कवि किसी मत विशेष के आग्रह से युक्त नहीं है अतः सामान्यतः कृष्ण चरित्र के नवीन आलेखन में कोई मौलिक मतभेद मिलने की सम्भावना नहीं है। आज के कवि की दृष्टि प्रमुख रूप से इस बात पर रही है कि कृष्ण के संस्कार जन्य स्वरूप का बौद्धिक सन्तुष्टि के साथ नवीन सन्दर्भ में प्रस्तुतीकरण हो। आस्था की मधुरता के आवरण हटा कर महान् चरित्रवान् शक्तिसम्पन्न व्यक्तित्व के रूप में कृष्ण का चित्रण किया गया। आज के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक जागरण के समय में कृष्ण को राष्ट्रीय भावना का प्रतीक मानकर सांस्कृतिक उत्थान का आधार बनाया है।

नीतिज्ञ एवं योगिराज कृष्ण : नीतिज्ञ कृष्ण का चरित्र 'महाभारत' में पुरुषोत्तम रूप में विद्यमान है। लोक रक्षक कृष्ण एक शक्तिशाली यादव राजा हैं जो सम्पूर्ण भारत की विघटित शक्तियों को एक करना चाहते हैं। उनके चरित्र में सांस्कृतिक उत्थान की भावना और एक महाराष्ट्र की स्थापना का स्वप्न इतना महनीय है कि वे क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर पाण्डवों की छत्रछाया में प्रत्यक्ष महाभारत का निर्माण करते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कृष्ण नीति साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी साधन मात्र को अपना सकते हैं। राजनीति में सत्यासत्य की

कसौटी नितान्त व्यावहारिक है, कृष्ण इस व्यावहारिकता की सीमा के अन्तर्गत धर्म की स्थापना के हेतु कटिबद्ध हैं।

आधुनिक काव्य में चित्रित कृष्ण का चरित्र अधिक स्पृहणीय रहा। बौद्धिक दृष्टि की अधिकता के कारण कृष्ण के अन्य रूपों के प्रति जहां आसक्ति का परम्परागत भाव है वहां योगिराज कृष्ण के महाभारतीय चरित्र में कवि आधुनिक सुधारक का रूप देखता है। 'प्रियप्रवास' के कृष्ण पुरुषोत्तम हैं उनमें लोक सुधार की भावना के उच्चादर्श[1] के साथ कठोर कर्त्तव्य पालन[2] अदम्य प्रत्युत्पन्नमति, कठिनता में धर्म की शक्ति विद्यमान है। सामान्य व्यावहारिक जीवन में कृष्ण समत्व के समर्थक हैं।[3] अधिकारी को अधिकार से वंचित रखने की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए शक्ति को जीवन का मुख्य आधार मानते हैं।[4] कृष्ण चरित्र की मुख्य विशेषता है कि वे भारत से शक्ति के आसुरी दम्भ को समाप्त करना चाहते हैं। पाण्डव प्रत्येक कार्य में कृष्ण के अनुयायी हैं और गुण अवगुणों का उत्तरदायित्व उन पर ही है। इस भावचित्र को 'सेनापति कर्ण' में अत्यन्त मार्मिकता से चित्रित किया है। कृष्ण काल-चक्र और भाग्य को व्यक्ति पौरुष से अधिक महत्त्व देते हैं।[5] वे शस्त्रबल से पराजित आत्मबल का पुनरुत्थान चाहते हैं।[6] इसी कारण कृष्ण और बलराम ने अन्य यादवों का विरोध करके भी पाण्डवों का पक्ष ग्रहण किया।[7]

कृष्ण का चारित्रिक उत्कर्ष उनके कर्मों से सिद्ध है। उन्होंने निर्बलों को उठा कर संसार में दैवसत्ता की स्थापना की[8] और 'वीर संघात' द्वारा महान लोकादर्श की स्थापना करते हुए विश्व को निष्काम कर्म की शिक्षा दी।[9] युद्ध को रोकने के लिए कृष्ण ने पूर्ण प्रयत्न किया। कर्ण को युद्ध का प्रधान कारण मानकर उसे समझाने की चेष्टा की। 'महाभारत' में इस स्थल पर कृष्ण का हृदय जिस लोकव्यापी शान्ति की रक्षा के हेतु व्याकुलता से पूर्ण लक्षित है[10] उसकी एक झलक

---

१ प्रियप्रवास, सर्ग १६

२ जयभारत, पृ० ३००

३ जयभारत, पृ० ३२१

४ सेवा कराहमें या समर, प्रस्तुत सभी प्रकार हैं। जयभारत, पृ० २३२

५ पुरुष बली है नहीं, काल बली होता है—
जय या पराजय में यश अपयश में
नियति प्रधान रही— सेनापति कर्ण पृ०, २०६ २०८

६ सेनापतिकर्ण, पृ० २०६

७ सेनापतिकर्ण पृ० २०६

८ अंगराज, पृ० २९७

९ अंगराज, पृ० २९७

१० म० उद्योग० अध्याय १४०

'रश्मिरथी' में प्राप्त होती है।[१] नीति के जिन सिद्धान्तों का विवेचन 'महाभारत' में कृष्ण के द्वारा होता है उनसे कृष्ण चरित्र की महत्ता स्वतः सिद्ध है। अर्जुन को प्रबुद्ध कर, गीता के कर्मयोग की स्थापना कृष्ण जैसा महान चरित्र ही कर सकता था।

लोकरक्षक कृष्ण 'कृष्णायन' में कृष्ण लोकरक्षक और आर्य साम्राज्य के संस्थापक हैं। एक विशाल सुसांस्कृतिक आर्य राज्य का निर्माण उनका मुख्य उद्देश्य है। कृष्ण के अवतार का यही मुख्य कारण है।[२]

'कृष्णायन' के अन्त में कृष्ण के शब्दों से उनके वास्तविक रूप का परिचय प्राप्त हो जाता है—'भारतवर्ष अनेक राजवंशों में विभाजित था उसको एक रूप करना आवश्यक था अतः जरासंध आदि असुरों को मार कर मैंने इस पृथ्वी का उद्धार किया है"।[३] 'महाभारत' में कृष्ण ने नवीन भारत का निर्माण किया और आधुनिक कवि भी कृष्ण के चरित्र को 'भारत महि नवयुग निर्माता'[४] के रूप में चित्रित करता है।

परब्रह्म कृष्ण लोकरक्षक और योगिराज कृष्ण के अद्भुत कार्यों के महत्व के आधार पर महाभारत काल में ही उन्हें पुरुषोत्तम और दिव्य शक्ति सम्पन्न माना जाने लगा था। शनैः शनैः कृष्ण के चरित्र में ईश्वरत्व का प्रतिपादन हुआ। 'महाभारत' में नीतिज्ञ कृष्ण और ईश्वर कृष्ण दोनों रूप हैं और आधुनिक काव्य में भी कृष्ण के ईश्वरत्व की व्यापक प्रतिष्ठा है।

आज के कवि भी मनीषी कृष्ण की लीलाओं का कीर्तन किया करते हैं। उन्हीं से असत सत तथा सत्सत रूप सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है। उन्हीं से सन्तति प्रजा प्रवृत्ति कर्तव्य-कर्म जन्म मृत्यु तथा पुनर्जन्म होते हैं।[५]

'महाभारत' में कृष्ण के ब्रह्म रूप के प्रतिपादन के उपरान्त सर्वत्र प्रादुर्भाव के प्रसंग में अवतारवाद की प्रतिष्ठा की है। विश्ववंद्य महायशस्वी भगवान विष्णु जगत के जीवों पर अनुग्रह करने के लिए वसुदेव जी के यहाँ देवकी जी के द्वारा प्रकट हुए। वे भगवान आदि अन्त से रहित परमेश्वर सम्पूर्ण जगत के कर्ता तथा प्रभु हैं।[६]

भगवान कृष्ण के इस रूप की छाया सम्पूर्ण महाभारत में व्याप्त है। युद्ध की तथा युद्ध पूर्व की प्रमुख घटनाओं में उनके दिव्य व्यक्तित्व का समाधानात्मक

---

१ रश्मिरथी, पृ० ३७-३८

२ कृष्णायन पृ० ३१६

३ कृष्णायन पृ० ८०६

४ कृष्णायन पृ० ३१४

५ म० आदि० १।२५६-५८

६ म० आदि० ६३।९९-१०० जयद्रथवध, पृ० ६३

हस्तक्षेप उनके प्रभुत्व की उदघोषणा है। अनेक स्थानो पर कार्यों और प्रभावो से तथा अनेक स्थान पर सिद्धान्त विवेचन मे कृष्ण के सर्वव्यापी, सर्वातीत रूप का चित्रण किया गया है। सम्भवत यही कारण था कि अर्जुन ने निरस्त्र कृष्ण की सहायता को सशस्त्र सेना से अधिक महत्वपूर्ण समझा[1]। पाण्डवो की विजय का मूल मंत्र भी कृष्ण के द्वारा ही पढा गया।

महाभारत की घटनाओ मे सक्रिय भाग लेने के कारण अन्य पात्रो द्वारा कृष्ण के स्वरूप की व्याख्या अधिक गम्भीर रूप से हो पाई है। खाण्डव दाह के समय कृष्ण का ईश्वरत्व प्रकाश मे आता है। इसके अतिरिक्त राजसूय यज्ञ द्रौपदी वस्त्र हरण, दुर्वासा कोप, शान्ति दूत, जयद्रथ वध, घटोत्कच-वध के प्रसग भगवान् कृष्ण के अद्वितीय महत्व की घोषणा करते हैं। उन्होने ईश्वर के रूप मे पाण्डवो की रक्षा की और विस्तार से गीता प्रसग मे अपने स्वरूप पर प्रकाश डाला। इन प्रसगो के साथ मार्कण्डेय भीष्म, दुर्योधन अर्जुन, युधिष्ठिर, आदि प्रमुख पात्रो ने समय-समय पर कृष्ण की गरिमा का गान किया।[2]

'महाभारत' मे कृष्ण के व्यक्तित्व को साधारण चरित्र की कसौटी पर रक्खा ही नहीं जा सकता। वे ब्रह्म हैं, परम सत्ता अव्यक्त और सर्वव्यापक हैं। वेद द्वारा प्रतिपादित निर्गुण, अचिन्त्य ब्रह्म की भाति ही कृष्ण का स्वरूप सर्वमय, सर्व कारण तथा कार्यकारणातीत होते हुए सच्चिदानन्द स्वरूप ही है। अत भगवान कृष्ण परम तत्व विशेष हैं। मिश्र जी कृष्ण के ब्रह्म रूप की घोषणा करते हैं।

तुम योगेश योग साकारा योग शक्ति सिरजत भवसारा।
ससृति अणु अणु व्याप्त तुम प्राण रूप भगवान।[3]

धर्मराज युधिष्ठिर

'महाभारत' म धर्मराज युधिष्ठिर का सात्विक चरित्र विस्तृत रूप मे चित्रित है। वे धर्म के मूर्तिमान स्वरूप, धर्म के अंश से उत्पन्न, सत्वगुण प्रधान व्यक्ति है, 'महाभारत म उनका चरित्र असाधारण लोकोत्तर एव स्थिर है। उनमे धैर्य स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता दयालुता, और अविचल प्रेम आदि महान गुण विद्यमान है। राजा होकर भी वे मानव मात्र की समानता और स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे। अनेक सघर्ष मय परिस्थितियो म, जिनमे उनके सभी भाइयो के हृदय मे क्रोध की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, व शान्त, स्थिरचित्त बने रहे। वीरयुगीन चरित्र की विशेषताओ के प्रतिकूल युधिष्ठिर सत्वगुण सम्पन्न, सर्वदा सात्विकवृत्ति-सम्पन्न

---

१ सेना रहे मुझको जगत भी तुम बिना स्वीकृत नहीं।
जयभारत, पृ० ३०१

२ जयद्रथ वध, पृ० ९२ ९३

३ कृष्णायन, पृ० ५४

बने रहे। उनके प्रत्येक कार्य में आदर्श की स्थापना रही।

आधुनिक कवियों ने युधिष्ठिर के चरित्र का पुनर्स्पर्श किया है। पुनरुत्थान-काल में युधिष्ठिर के चरित्र का केवल पुनराख्यान है। वर्तमान काल के काव्यों में 'धर्मराज' 'सेनापति कर्ण' आदि काव्यों में युधिष्ठिर के परम्परागत चरित्र को अन्तः संघर्ष और वीरत्व के दौर्बल्य के नवीन रूप में देखने का प्रयास किया गया है। दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठिर का चरित्रांकन 'महाभारत' के शान्ति पर्व के जिज्ञासु युधिष्ठिर के अनुरूप किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर पश्चात्ताप और सन्ताप से तप्त हैं और जीवन के शाश्वत प्रश्नों का समाधान करते हैं, दिनकर के युधिष्ठिर मूल में 'महाभारत' के अनुरूप हैं किन्तु उनके सामने कुछ नये प्रश्न उपस्थित हैं। उनमें अन्तः संघर्ष अधिक है।

आधुनिक कवियों के समक्ष युधिष्ठिर के चरित्र चित्रण की समस्या जटिल रूप में आई क्योंकि वे अपने गुणों के लिए चिर प्रसिद्ध हैं। यदि उन्हें उसी रूप में स्वीकार किया जाता तो मौलिकता का प्रश्न सामने आता, ऐसी अवस्था में पुनर्स्पर्श एवं पुनः सृजन ही एकमात्र समाधान होता है। इन कवियों ने पुनः सृजन कम और पुनर्स्पर्श अधिक किया है।

युधिष्ठिर के चरित्रांकन के प्रमुख स्थल हैं वारणावत-यात्रा, द्रौपदी स्वयंवर द्यूत प्रसंग वन में दुर्योधन गन्धर्व-युद्ध जयद्रथ प्रसंग अरणि मन्थन-निरा प्रसंग, युद्ध प्रसंग भीष्म-वार्ता, स्वर्गारोहण प्रसंग। उक्त प्रसंगों के अतिरिक्त अनेक स्थल ऐसे हैं जिनमें युधिष्ठिर का चारित्रिक उत्कर्ष अभिव्यक्त हुआ है। इन प्रसंगों में उनका चरित्र विवादास्पद रूप ग्रहण कर गया है अतः इन्हीं पर विवेचना करना अधिक तर्कसंगत होगा। महाभारत और आधुनिक काव्य में एक मौलिक भेद यह है कि 'महाभारत' में युधिष्ठिर का चरित्र स्थिर है, वे केवल स्थिति की गम्भीरता और धर्म के स्वरूप की हानि के कारण कुछ अन्तः संघर्ष से युक्त होते हैं। किन्तु आधुनिक काव्य में मनोवैज्ञानिक रूप से उनके चरित्र में स्थिति परक मानसिक द्वन्द्व दिखाया है।

आज्ञापालन युधिष्ठिर के चरित्र का यह गुण वारणावत द्यूत और युद्ध तथा शान्ति प्रसंग में अभिव्यक्त हुआ है। युधिष्ठिर बड़ों के आज्ञाकारी[1]। उनमें आज्ञापालन में अन्तर्विरोध रूप से संलग्न हो जाते हैं। 'महाभारत' के युधिष्ठिर यह जानते हैं कि वारणावत भेजने में धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति दूषित है फिर भी वे उनकी आज्ञा निरापाय करके चल जाते हैं। 'जयभारत' में गुप्त जी ने उनकी सहायता का निरीह चित्रण किया है। महाभारत में युधिष्ठिर अपने को असहाय समझ कर वारणावत जाते हैं।[1] किन्तु आधुनिक काव्य में इस असहायता के भय का चित्रण नहीं है। 'महाभारत' में चारित्रिक दौर्बल्य प्रकट होता है। गुप्त जी ने इस स्थिति

१ म० आदि० १४२।११

का पुन सनन करके युधिष्ठिर के चरित्र का परिष्कार किया है।[1] असहायत्व की स्थिति में शीलवश नाना अधिक उत्कृष्ट और श्लाघ्य है।

द्रौपदी स्वयंवर प्रसंग में भी युधिष्ठिर के चरित्र का परिष्कार किया गया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर माता की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं। किंतु मूल ग्रन्थ में उनके चरित्र की स्थिति द्विविधापूर्ण प्रदर्शित की है। वे प्रथम तो अर्जुन के धर्म विवाह की स्वीकृति देते हैं[2] तत्पश्चात् कृष्ण द्वैपायन के कथन का स्मरण करके द्रौपदी के लिए पंचपतित्व की स्वीकृति देते हैं।[3] गुप्त जी ने इस स्थल पर युधिष्ठिर के चरित्र का स्वतंत्र रूप में समाधान किया है। दो ज्येष्ठ रहे और दो देवर होकर रहें। इस प्रकार द्रौपदी के सुख को पांचो भोगें।[4]

'महाभारत' में युधिष्ठिर का चरित्र सर्वथा अनासक्त निस्पृह राजा के रूप में चित्रित है। आधुनिक काव्य में अधिकांश कवियों ने उसे यथावत् स्वीकार किया है। द्यूत के प्रसंग में युधिष्ठिर की शान्ति, सहनशीलता असाधारण है। अपनी पत्नी का अपने सामने इस प्रकार तिरस्कृत होते देखकर भी जिस व्यक्ति को क्रोध नहीं आया उसके चरित्र की शीतलता कितनी हो सकती है, इसी आधार पर कृष्णायन के युधिष्ठिर विनत आज्ञाकारी हैं।

मार्यउ निश्चय युक्त स्वर सुननहि धर्म नरेश,
'पितु अग्रज के पूज्य मम सकहु न टारि निदेश ।।[5]

'महाभारत' में युधिष्ठिर अनिच्छा से द्यूत के लिए जाते हैं[6] और कृष्णायन[7] जयभारत[8], आदि काव्य ग्रंथों में भी अनिच्छा का चित्रण किया गया है। द्रौपदी के अपमान के बाद भी युधिष्ठिर विनयी और आज्ञाकारी बने रहते हैं।[9]

दयालुता एवं क्षमा 'महाभारत' में युधिष्ठिर आदि से अन्त तक दया और क्षमाभाव से युक्त हैं। असहायों पर दया करना चरित्र का साधारण धर्म हो सकता है, किन्तु दुष्ट और अत्याचारियों पर भी दया दिखाना युधिष्ठिर जैसे व्यक्ति का ही धर्म था। 'महाभारत' में आये अनेक प्रसंगों में से दुर्योधन गन्धर्व तथा जयद्रथ-

---

१ जो आज्ञा की छोड़ युधिष्ठिर क्या कहते।
सुजन शीलवश सहन दु:ख भी हैं सहते। जयभारत, पृ० ७०
२ म० आदि० १६०
३ म० आदि० १६०।१६
४ जयभारत, पृ० १२०
५ कृष्णायन, पृ० ४१६
६ म० सभा० ५६।१६
७ कृष्णायन, पृ० ४१८
८ जयभारत, पृ० १४५
९ जयभारत, पृ० १५०

द्रौपदी-प्रसग इस विषय मे मार्मिक स्थल हैं।

युधिष्ठिर द्रौपदी में समक्ष क्रोध की निन्दा और क्षमा की प्रशसा करते हैं। इन विचारो म उनका चरित्र स्पष्ट हो जाता है।[1] युधिष्ठिर क्षमा को ही धर्म कहते है।[2] इस सिद्धान्त का व्यवहार तब होता है जब उनको त्रास देने के लिए दुर्योधन वन मे आकर सयोगवश गन्धर्वों से परास्त होता है और दुर्योधन के सनिको की प्रार्थना पर युधिष्ठिर अर्जुन को दुर्योधन को छुडाने भेजते हैं[3] दुर्योधन के छूटने पर युधिष्ठिर उसे क्षमा करते हैं। वन वैभव' म गुप्त जी ने अत्यन्त मार्मिक शब्दो म युधिष्ठिर की दयालुता का चित्रण किया हैं।

कौरवो ने जो अत्याचार, किये है हम पर बारम्बार।
करेंगे उनका हमी विचार, नही औरो पर इसका भार।
क्रूर कौरव अपापी हैं हमारे फिर भी भाई हैं।[4]

जयद्रथ द्रौपदी प्रसग म युधिष्ठिर की दयालुता, क्षमाशीलता और मानवमात्र की स्वतन्त्रता का भाव अभिव्यक्त होता है।

जाय जयद्रथ नही किसी को दास बनाते हैं हम।
अपनी सी सबकी स्वतन्त्रता सदा मनाते हैं हम।[5]

आधुनिक प्रबन्ध काव्यों म युधिष्ठिर का चरित्र चित्रण विस्तार से उन्हीं काव्यो म हुआ है जो सामान्यत सम्पूर्ण कथासार के आधार पर रचित हुए हैं। एसे काव्य अल्प सख्या म है। 'कृष्णायन म स्थान स्थान पर युधिष्ठिर की दयालुता, क्षमाशीलता निस्पृहा और अनासक्ति का चित्रण किया है। यहा युधिष्ठिर आदर्श मानव हैं जो स्वार्थ और परस्पर सघर्ष के युग के मध्य निस्वार्थ व्यक्तित्व के प्रतीक हैं। छोटा का समान समफल की भावना आज की महती आवश्यकता है। यह समानता जीवन के सभी क्षेत्रों मे आवश्यक है। 'जयभारत' के युधिष्ठिर समानता के समर्थक हैं।

'सुनो तात हम सभी एक हैं भवसागर के तीर[6]
× × ×
परमात्मा के अशरूप हैं आत्मा सभी समान।[7]

---

१ म० वन० २९।१ ४२
२ म० वन० २९।३६ ३७
३ म० वन० २४३७
४ जयभारत पृ० २०८
५ जयभारत, पृ० २२६
६ जयभारत, पृ० ४७
७ जयभारत, पृ० ४७

राजसूय के प्रसग म अतिथि मात्र सब देव रूप थे जो हो प्राय प्रताय'[1] कहकर गुप्त जी ने युधिष्ठिर की समानता को मूलग्रन्थ से एक स्तर आगे चित्रित किया है। 'नकुल' के युधिष्ठिर समतावादी हैं।[2] सम्पूर्ण काव्य म युधिष्ठिर का चरित्र मादवपूर्ण प्रौदाय के साथ अभिव्यक्त हुआ है।[3] 'महाभारत' के युधिष्ठिर चिन्तन, मनन, उपदेश द्वारा मानव के वास्तविक जीवन की सत्यता का उद्घाटन करते हैं। उनमे सिद्धान्त प्रतिपादन की अधिकता इसलिए है कि सिद्धान्तो के स्वीकार करने से मानव मूलत सजग हो जाता है। समस्त विश्व मे प्रेम का उदघोष महान चरित्र ही कर सकता है। आज के अलगाव में ऐसी घोषणा का विशेष महत्त्व है। कवि आधुनिक युग के ज्वलन्त समवितरण के प्रश्न का समाधान त्याग म ढूढता है। इसके लिए युधिष्ठिर के चरित्र का पुन सृजन किया गया है।

अरणि मथनिका प्रसग म नकुल के प्राणदान का कारण माद्री तनय को जीवित देखना है।[४] यह कारण अपने म भारी होते हुए भी स्थूल है। यद्यपि इस भाव के मूल मे भी समानता का भाव विद्यमान है, पर नकुल में युधिष्ठिर का चरित्र नये रूप म, नये विचार के साथ चित्रित किया गया है। क्षमा, दया के मूलवर्ती भाव के साथ ही समत्व भाव का विकास होता है। दुर्योधन चित्ररथ युद्ध प्रसग म कहे गये युधिष्ठिर के वाक्यो म और नकुल म अभिव्यक्त विचार म पूर्ण साम्य है। युधिष्ठिर भीम को समझाते हैं "भाई बन्धुओ म मतभेद झगडे होते ही रहते हैं इससे आत्मीयता नही चली जाती[५] यक्ष मेरा विचार है कि अनृशसता ही परम धर्म है।[६] 'नकुल' के कवि ने इसी भाव को नवीन रूप से अभिव्यक्त किया है। इस सवाद को लेकर कवि शोषण के विरोध म युधिष्ठिर जैसे महान मानव के विचारो को प्रकट करता है। नकुल' के युधिष्ठिर आज के समाज की विडम्बना का चित्र[७] प्रस्तुत करते हुए छोटो के हेतु त्याग का समर्थन करते है।[८] महाभारत' के युधिष्ठिर ने आदि म अन्त तक आत्मदान किया, वे बारम्बार अनुजो को भी यही शिक्षा देते रहे।

---

१ जयभारत, पृ० १४२
२ करना है यदि हमे यहा यह पाप निवारण,
हो अभीष्ट सवत्र प्रेम कापूर्ण प्रसारण। नकुल, पृ० १०१
३ सियाराम शरण गुप्त। स० डा० नगेन्द्र, पृ० २०५
४ म० वन० ३१३।१३१
५ म० वन० २४३।२
६ आनृशस्य परो धर्म परमार्थाच्च मे मतम।
आनृशस्य चिकीर्षामि नकुलो यक्ष जीवतु। म० वन० ३१३।१२९
७ नकुल, पृ० १०१
८ छोटों का प्रतिपाल, बड़ो उनका जीवन प्रण, नकुल, पृ० १००

शिष्टाचार सात्विकता आत्मत्याग, उदारता, क्षमा तथा अन्य सात्विक गुणों के साथ उनमें सबसे मुख्य गुण है मित्र की महत्ता की उपमा और शिष्टाचार का पालन। गुरुजन, पितामह भाई आदि के प्रति एक प्रकार के शिष्टाचार का पालन होना चाहिये यह उनका सदा ध्यान रहा। उनके सिद्धान्त और व्यवहार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं।[1]

कर्ण[2] और याज्ञ[3] के रूप में युधिष्ठिर ने शिष्टाचार का पालन किया।

'महाभारत' में युधिष्ठिर के चरित्र का उज्ज्वल सिद्धान्त प्रतिपादन तथा व्यवहार दोनों में हुआ है। आधुनिक काव्यकारों की सीमा में केवल व्यवहार को ही स्थान मिला है। जिस प्रकार 'महाभारत' में युधिष्ठिर द्रौपदी, अर्जुन भीम के साथ विचार विवेचन में सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं उस प्रकार का विवेचन आधुनिक काव्य में नहीं हो पाया है। किसी भी प्रबन्ध काव्य में युधिष्ठिर अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं कर पाये। केवल व्यावहारिक दृष्टि से ही युधिष्ठिर के चरित्र का चित्रण हुआ है।

निस्पृहअनासक्ति 'महाभारत' के युधिष्ठिर निस्पृह और अनासक्त हैं। युधिष्ठिर की सात्विकता का यही मूल है कि वह संसार के प्रति अनासक्त है और सर्वत्र धर्मोपदेश करते दिखाई देते हैं। युद्धोपरान्त आत्मग्लानि धृतराष्ट्र गान्धारी के प्रति निश्छल आदर और राज्य के प्रति उपेक्षा के भाव से आधुनिक कवि सत्य, धार्मिकता निस्पृहा, करुणा और शान्ति का प्रसार करता है। युधिष्ठिर के चरित्र की अवतारणा आज के युग में यह सिद्ध करती है कि त्याग क्षमा और दया का महत्व शाश्वत है।

गत युग में धर्मराज थे नयता जगे विनीत
हार से थ वरन रहे थ जगती भर को जीत।[4]

सत्य में दान का प्रवृत्ति के तनु इतर अधिक सात्विक अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है। युधिष्ठिर के विरोधी पात्र भी उनके इस गुण से अभिभूत हैं रश्मिरथी का कर्ण कृष्ण से कहता है कि अरे न न को कथा युधिष्ठिर से न कहना यदि उनको ज्ञात हो गया तो व समस्त राज्य मुझे देंगे और मैं भी मित्र की प्रतिज्ञा के कारण उस अपने पास न रखकर दुर्योधन को और दूंगा। इस प्रकार युधिष्ठिर पुनः राज्य हीन हो जायेंगे।[5] करुणा और कर्ण के संवाद के मध्य 'महाभारत' में कर्ण के

१ जयभारत, पृ० १४१
२ म० विराट० ६८।२४
३ म० विराट० ६८।२६
४ म० शान्ति० ४३।१३
५ जयभारत, पृ० १४१
६ रश्मिरथी, पृ० ४६

मुख से ऐसी उक्ति का अभाव है। 'रश्मिरथी' के लेखक ने अप्रत्यक्ष रूप में कर्ण और युधिष्ठिर दोनों के चरित्र की विशेषताओं का चित्रण किया है। कर्ण युधिष्ठिर की अनासक्ति की प्रशंसा करता है।[1] 'जयभारत' और 'रश्मिरथी' के युधिष्ठिर 'महाभारत' के अनुरूप हैं। शांति पर्व में व्यक्त युधिष्ठिर की अनासक्ति इन प्रसंगों का आधार है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर की आत्मग्लानि उनकी अनासक्ति का ही एक रूप है। यदि युधिष्ठिर अनासक्त न होते तो आत्मग्लानि का प्रश्न ही उपस्थित न होता। आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में 'कृष्णायन'[3] 'जयभारत',[4] 'कुरुक्षेत्र',[5] आदि प्रमुख काव्यों में स्पष्टतः युधिष्ठिर के चरित्र का आस्था से चित्रित किया है। युधिष्ठिर में मानसिक द्वन्द्व की स्थिति अवश्य है किन्तु वह मूल में पृथक् नहीं। शान्ति-पर्व में युधिष्ठिर आत्मग्लानि से तप्त होकर राज्य छोड़कर वन में संन्यासी होकर रहने का निश्चय करते हैं। युधिष्ठिर का यह विचार दिनकर के ग्रन्थ के रूप में मानवता का सबसे प्रमुख आश्रय है। 'कुरुक्षेत्र' के युधिष्ठिर जीवन के कष्टतम क्षणों में भी धर्म का आश्रय न छोड़कर शान्ति एवं क्षमा को प्रमुख समझते हैं और बार-बार धर्म के हेतु राज्य त्याग की बात करते हैं।[6] 'कुरुक्षेत्र' के कवि ने धर्मराज की इस मनोदशा का चित्रण अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है। युधिष्ठिर के हृदय की सर्वाधिक कष्टकारक स्थिति है—उनके नाम और सांसारिक कर्म की कठोरता में भेद। वे धर्मराज होकर भी झूठ से न बच सके अजातशत्रु होकर भी युद्ध जैसा पातक करना पड़ा अतः वे चाहते हैं कि उनको कोई धर्मराज न कहे।[7]

युधिष्ठिर की निस्पृहा का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग महाभिनिष्क्रमण है। 'महाभारत' के इस प्रसंग को लेकर गुप्त जी ने 'जयभारत' में चरित्रों का सर्वाधिक परि

---

१ साम्राज्य न कभी स्वयं लेंगे
सारी सम्पत्ति मुझे देंगे। रश्मिरथी, पृ० ५७

२ म० शान्ति० ६।१६ ७

३ कृष्णायन, पृ० ७६४

४ तन से सिंहासन पर, मन से वन में भूप विराजे। जयभारत, पृ० ४३०

५ जिस दिन समर की अग्नि बुझ शान्त हुई,
एक आग तब से ही जलती है मन में,
हाय पितामह किसी भांति नहीं देखता हूँ,
मुँह दिखलाने योग्य निज को भुवन में। कुरुक्षेत्र, पृ० १६ २०

६ म० शान्ति० ७५।१५ १६

७ जानता हूँ पाप न धुलेगा वनवास से भी,
छिपा तो रहूँगा दुःख कुछ तो भुलाऊँगा,
व्यंग्य से बिंधेगा यहां जर्जर हृदय तो नहीं,
वन में कहीं तो धर्मराज न कहाऊँगा। कुरुक्षेत्र, पृ० २०

पतन किया है। 'महाभारत' में युधिष्ठिर अनुजों के पतन पर उनके प्रमुख दोष को कारण बताते हुए आगे बढ़ जाते हैं। जैसे उन व्यक्तियों के पतन पर युधिष्ठिर को क्षणिक क्षोभ भी न हो। युधिष्ठिर का यह चरित्र देवोपम है—'जयभारत' में युधिष्ठिर कारणों की विवेचना न करके अपने को ही बंधन मुक्त पाते हैं।

युधिष्ठिर के विषय में गुप्त जी की घोषणा है कि वे धर्मराज्य की स्थापना करके भोगों से विरत हो गये।[1]

ऐश्वर्य के प्रति विरक्ति का भाव और आने वालों के लिए स्थान देने की प्रवृत्ति।[2] युधिष्ठिर के उदार चरित्र द्वारा ही सम्भव हो सकती थी। युधिष्ठिर को द्वेष और मोह से रहित अनासक्त ज्ञानी के रूप में दिखाया गया है।[3]

वीरत्व युधिष्ठिर के चरित्र के त्याग करुणा, अनासक्ति, क्षमा आदि गुणों के साथ उनकी स्थिति से सर्वथा प्रतिकूल वीरत्व का गुण भी दिखाया गया है। शल्यपर्व में युधिष्ठिर ही शल्य का वध करते हैं और आन्तरिक गुणों के साथ शारीरिक गुणों का भी परिचय देते हैं। आधुनिक काव्यों में उनका वीरत्व गुण विरल रूप में ही दिखाई देता है। गुप्त जी ने युद्ध रचना में 'अंगराज' में शल्य-वध के अवसर पर और 'शल्यवध' में युधिष्ठिर के वीरत्व की अभिव्यक्ति की है। यह गुण प्रसंग से ही आया है। 'महाभारत' में कृष्ण युधिष्ठिर के वीरत्व की प्रशंसा करते हुए शल्य वध के हेतु प्रेरित करते हैं।

तस्माद् न प्रपश्यामि प्रतियोद्धारमाहवे।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र शार्दूल समविक्रमम्॥

'हे पुरुष सिंह आपका पराक्रम सिंह के समान है। आज आपके अतिरिक्त मैं दूसरे को नहीं देखता, जो शल्य के सम्मुख होकर युद्ध कर सके।'[4]

शल्यवध में महाभारत के अनुरूप ही युधिष्ठिर के वीरत्व की अभिव्यक्ति की गई है।[5]

गुप्त जी ने भी स्वभाव रक्षा के हेतु अहिंसक के शस्त्र ग्रहण का समर्थन किया है।[6]

जीवन पर्यन्त अहिंसा व्रती युधिष्ठिर के इस क्रोध और वीरत्व में अधिकार प्राप्ति के हेतु संघर्ष की व्यापक स्वीकृति है। आज के युग की विषमता में और संघर्षयुक्त स्थितियों में अहिंसक के हाथ में शस्त्र देना महती आवश्यकता है। युधि

---

१ जयभारत, पृ० ४३६
२ जयभारत, पृ० ४४४
३ जयभारत, पृ० ४४३
४ म० शल्य० ७।३३
५ शल्यवध, पृ० ३६
६ जयभारत, पृ० ३६७

ष्ठिर के चरित्र के इस स्वरूप के द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि अधिकार प्राप्ति के हेतु संघर्ष करना अनीति नहीं है।

महाभारत के प्रतिकूल आधुनिक काल में प्रत्येक वस्तु को नवीन रूप में देखने के इच्छुक और मनोवैज्ञानिक आधार पर चरित्रों की अवतारणा करने वाले कतिपय कवियों ने 'महाभारत' के पात्रों को प्रतिकूल रूप में चित्रित किया है। 'महाभारत' के महत्तम उनके लिए अप्रसन्न हैं और सदगत होकर चित्रित किये गये हैं। 'अंगराज' में लेखक ने कर्ण के चरित्र को उठाने के प्रयास में युधिष्ठिर के चरित्र को गिराया है। युधिष्ठिर का परम्परागत चरित्र एक झटके में खरोंच दिया गया। 'अंगराज' में युधिष्ठिर को राज्यलोलुप अनधिकार चेष्टा करने वाला, भोगी, चित्रित किया है। उनका दृष्टिकोण परम्परा विरोधी है, राम और युधिष्ठिर की तुलना करते कवि युधिष्ठिर को परराज्य ग्राहक करता है।[1]

वारणावत प्रसंग में पाण्डवों ने ही पहले योजना बनायी थी। वे द्रौपदी स्वयंवर में जाना चाहते थे।[2] उन्होंने विरोधी प्रचार किया[3] युधिष्ठिर ने झूठ बोलकर द्रोण की हत्या करायी।[4] युधिष्ठिर द्रौपदी के प्रति कामासक्त थे। युधिष्ठिर कापुरुष थे।[5] इस प्रकार 'अंगराज' में कवि ने कौरवों का पक्ष प्रतिपादन करने के हेतु युधिष्ठिर के चरित्र में गर्हित परिवर्तन किया है जिससे न तो कोई लावण्य स्थापित हुआ और न कोई युग की समस्या का समाधान ही। इस प्रकार के निरर्थक प्रयासों का हम स्वागत नहीं करते।

गुप्त जी ने युधिष्ठिर के चरित्र को आदर्शरूप में उपस्थित कर आज के युग में सात्विकता स्नेह करुणा की स्थापना की है। इसके विपरीत 'अंगराज' में उनके चरित्र का ह्रास चित्रित किया गया है। 'जयभारत' के युधिष्ठिर मृत तुल्य दुर्योधन को देखकर पश्चात्ताप करते हैं

> राम अब भी मैं यही कहता हूँ मन से,
> कामना नहीं है मुझे राज्य की, या स्वर्ग की,
> शिवा अपवर्ग की भी चाहता हूँ मैं यही

१ युधिष्ठिर की राज्य लोलुपता का ध्यान कीजिए। राम ने अपना राज्य त्यागा था। युधिष्ठिर दूसरे के राज्य पर आँख लगाये था। वह तो स्वार्थान्ध था। अंगराज भूमिका, पृ० १६ २०

२ अंगराज, भूमिका, पृ० २२

३ अंगराज, पृ० २०

४ निरस्त्रगुरु का वध कराके इसने अपनी कृतघ्नता और नीचता का ही परिचय दिया। अंगराज, भूमिका, पृ० २२

५ अंगराज, पृ० ६०

ज्वाला ही जुड़ा सकूँ मैं अपना कर दुःख को।[1]

आज का मानव मिथ्या अहंकार में ग्रस्त है। अपने अहंकार के कारण वह अपनी भूल पर भी पश्चात्ताप नहीं करना चाहता। 'जयभारत' में कवि ने विजेता के पश्चात्ताप में मानव के महान गुण की अभिव्यक्ति की है। मूलग्रंथ में दुर्योधन के पतन पर युधिष्ठिर दार्शनिकों की भाँति युद्ध को विधाता की इच्छा कहकर दुर्योधन को समझाते हैं। महाभारत में युधिष्ठिर ऐसे मार्मिकस्थल पर भी धर्मोपदेश दृष्टिगोचर होते हैं[2] गुप्त जी ने इस स्थल पर युधिष्ठिर के चरित्र को अत्यन्त प्रभावित रूप में चित्रित किया है।[3]

मन में समेट कर अपने शत्रु से अपनी भूल स्वीकार करना निश्चित ही महत्ता का द्योतक है और यह महत्ता युधिष्ठिर में ही हो सकती है। आज का कवि अपनी युगीन परिस्थितियों के कारण उस स्थिर चरित्र की मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में चित्रित करता है। युधिष्ठिर के चरित्र में धर्मनिष्ठा और कर्त्तव्यपरायणता का भाव आद्योपान्त लक्षित होता है। वे भावना के प्रतिकूल आचरण नहीं करते। आज के युग में ऐसे चरित्रों की अवतारणा की महती आवश्यकता है जिसके द्वारा जनता एक बार तो अपने स्वर्णिम अतीत से परिचित हो और दिव्य आदर्श का अनुसरण करने की प्रेरणा प्राप्त करे अतः गुप्त जी, मिश्र जी, दिनकर आदि ने ऐसे ही दिव्य चरित्रों की अवतारणा की है जो हमारे वीर युग के प्रतिनिधि हैं। तथापि यह बात अवश्य है कि आधुनिक काव्य में युधिष्ठिर का साधुवाद उतना नहीं है जितना महाभारत में।

महाबली भीमसेन

महाभारत के प्रमुख पात्रों में भीमसेन का व्यक्तित्व अपनी पृथक सत्ता रखता है। अपनी शारीरिक शक्ति के कारण भीम अपने युग के सर्वश्रेष्ठ योद्धा सिद्ध हुए। भीम के चरित्र में वीर युग के सभी गुण विद्यमान हैं। उनका शक्तिशाली व्यक्तित्व स्वाभिमान, गर्व, वीरता, सहनशीलता आदि मानवीय गुणों के समन्वय से निर्मित हुआ है। आधुनिक युग में बकसंहार, हिडिम्बा, दुर्योधन वध आदि खण्ड काव्यों में उनकी चारित्रिक विशेषताएं पूर्णरूपेण स्पष्ट हैं। महाभारत के अन्य प्रसंगों पर लिखे गए काव्यों में 'सेनापति कर्ण', 'जयभारत', 'नकुल', आदि में भीम का चरित्र प्रासंगिक रूप में आया है। किन्तु चाहे कथान्तर में भी उनका महाभारतीय

---

१ जयभारत, पृ० ४१०

२ म० शल्य० ५६।२२ २३

३ मन में समेटे उन्हें बोल आर्द्र वाणी से
भाई यदि अब भी तू भूल नहीं मानता
तो मैं मानता हूँ उसे तू क्षमा ही कर दे। जयभारत पृ० ४१०

मूल विशेषताएं अभिव्यञ्जित हो पाई हैं।

महाभारत' में भीम के चरित्र की विशेषताओं के लिए बालक्रीड़ा, रंगभूमि, लाक्षागृह और वनवास, विराट पर्व, युद्ध तथा अन्त में दुर्योधन-वध के प्रसंग मुख्य हैं। आधुनिक काव्य में इन्हीं प्रसंगों के प्रवाह में भीम का चरित्र चित्रण हुआ है।

शौर्य वीरत्व—भीमसेन के चरित्र का सब प्रमुख गुण वीरत्व है। 'महाभारत' के अनेक प्रसंगों में उनकी अद्भुत शक्ति और वीरता प्रकट हुई है। नागलोक जाकर भीम ने ऐसा रसपान किया, जिससे उनकी शक्ति दस हजार हाथियों के समान हो गई।[1]

अपरिमित बल के कारण भीम में गर्व का आधिक्य, वीरता के प्रति अटूट विश्वास से गर्वोक्ति शौर्यगान गुण के रूप में व्यक्त हुई है। रंगभूमि प्रसंग में भीमसेन का जातीय गर्व कर्ण के अपमान में व्यक्त हो उठा—कर्ण को युद्ध के लिये तत्पर होते देख भीम कहते हैं—'अरे सूत पुत्र। तू तो अर्जुन के हाथ से मरने योग्य भी नहीं है, तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथ में लेना चाहिए।[2]

अंगराज' में 'महाभारत' की उक्ति के आधार पर भीम के गर्व की व्यंजना हुई है।[3]

भीमसेन के चरित्र में गर्व और क्रोध ये इतना अधिक था कि वे समय पर शत्रु का अपमान करने में नहीं चूकते थे। दुर्योधन वध के समय भीम का प्रतिकार तीव्र रूप में व्यक्त हुआ। जिस दुर्योधन के कारण उन्हें अनेक कष्ट सहने पड़े उसका अपमान आदर्श के प्रतिकूल हो सकता है किन्तु मनोवैज्ञानिक अवश्य है। दुर्योधन के तिरस्कार की पृष्ठभूमि द्रौपदी का अपमान था।[4]

युधिष्ठिर ने भीम के इस कार्य को आत्महीन कहा। भीम आदर्शवादी अवश्य थे किन्तु सामान्य अवसर व मत्सरत्व यथा कर आदर्श की रक्षा करने की भावना को अव्यावहारिक समझते थे। अंगराज' में भीम का यह कार्य छलयुक्त बनाया गया है[5] किन्तु कवि मन स्थिति के चित्रण में पक्षपात कर गया है। 'जयभारत' के कवि ने भीम के इस कर्म को लज्जापूर्ण बताया है।

पापी मैं नहीं यह कह कर भीम ने
मारी पदलात और सिर पर उसके।
हैं हैं भीम, बोल उठे कृष्ण युधिष्ठिर भी
अर्जुनादि का भी सिर नीचा हुआ लज्जा से।

१ म० आदि० १२८।२२
२ म० आदि० १३६।६
३ अंगराज, पृ० ३१
४ म० शल्य० ५९।४ ५
५ अंगराज, पृ० २८४
६ जयभारत पृ० ४०४ ४०५

अपने शरीर में इतना बल समेट कर अनेक राक्षसों को क्षण भर में मारने वाले भीमकाय भीम दुर्योधन के अन्याचार को सहन करते रहे अग्रज के संकेत पर उन्होंने अपने रक्त की लालिमा को रोके रखा, यही अवसर था जब वे अपनी संचित घृणा की अभिव्यक्ति कर सकते थे। इस प्रसंग पर भीम के चरित्र को आदर्शवादी विचार के अनुरूप देखा गया है और मनोवैज्ञानिकता की उपेक्षा की गई है।

'जयभारत' में भीम आगे चल कर अपनी स्थिति स्पष्ट करते हैं

भीम बोले—मैंने कहा स्पष्ट था
तोड़ूंगा गदा से जांघ मैं इस जघन्य की।
शुद्ध योद्धाओं के साथ युद्ध के नियम हैं
कापुरुष क्रूर यह [1]

मिश्र जी ने एक ही दोहे में भीम की मनःस्थिति का चित्रण किया है कि रोष के कारण भीम संयम न कर सके और दुर्योधन के माथ पर प्रहार किया

भरित रोष प्रतिकार, सके न संयम भीम करि।
की हेठ चरण प्रहार महिपाथी अवनीप सिर।[2]

यहाँ प्रतिकार का चरम व्यक्त हुआ है, यह वीर चरित्र का स्वाभाविक गुण है।

महाभारत के प्रमुख युद्ध के अतिरिक्त विराट पर्व में सैरन्ध्री के प्रसंग में भीम की वीरता व्यक्त हुई है। द्रौपदी की आपत्ति का निवारण चारों पाण्डवों में से कोई न कर सका। यह कठिन कार्य भीम ने किया। अपनी प्राणप्रिया के मुख से करुण वचन सुनकर भीम द्रवित हो गये। जयभारत का यह अंश मूल ग्रंथ के अनुरूप ही है। इन प्रसंगों में भीम का चरित्र विलक्षण सहनशीलता और वीरत्व से संकुल है। द्रौपदी के विलाप के उत्तर में भीम युधिष्ठिर की आज्ञाकारिता के कारण अपनी सहनशीलता की व्यंजना करते हैं।[3] अंततः भीम कीचक का वध कर देते हैं।[4] 'सैरन्ध्री' में कीचक वध के प्रसंग में भीम की वीरता का द्योतन है।[5]

पाण्डवों में भीमसेन का चरित्र ही ऐसा है जो आज्ञा की शृंखलाओं को तोड़कर समय-समय पर यथार्थ चरित्र के रूप में उपस्थित हुआ है। आधुनिक कवि भीमसेन के चरित्र चित्रण में उसके अंतर की व्यथा नहीं देख पाये।

दया सद्भावना इतने उद्दण्ड वीरत्व के होते भी भीम के चरित्र में दया का अंश कम नहीं था। शान्ति के विश्राम को लेकर भीम सर्वथा शोषण और पश्चात्

१ जयभारत पृ० ४०५
२ कृष्णायन, पृ० ७६५
३ म० विराट० २१।२,५
४ म० विराट० २२।८२
५ सैरन्ध्री, पृ० ४०

का विरोध करते रहे। एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण परिवार की सहायतार्थ भीमसेन की दया उमड पडी। भीमसेन ब्राह्मण के दुख का पता लगाने की चिन्ता करने लगे।[1] 'महाभारत' मे इस प्रसग मे भीम का चारित्रिक उत्कर्ष है। आधुनिक काव्यो के भीम के चरित्र मे उतनी सफलता नही मिल पाई। 'महाभारत' के भीम का गौरव जयभारत' मे अक्षुण्ण न रह सका वहा वह उपहास की रेखा का स्पर्श कर गया है।[2]

भीम के चरित्र चित्रण मे कवियो ने केवल महाभारत' के भीम के उन सामान्य गुणो का चित्रण किया है जिनका सम्बन्ध वीरत्व, शौर्य से है। भीम के चरित्र मे शान्तिप्रियता और नीतिज्ञता का उज्ज्वल अश भी उतना ही है जितना उद्धतता और शक्ति का। 'महाभारत' मे भीम की नीतिज्ञता और शान्तिप्रियता अनेक स्थलो मे व्यक्त है। जीवन की व्यावहारिकता के विषय म व पुरुषार्थ का समर्थन करते हैं और सीधे युद्ध के द्वारा न्याय की व्यवस्था में विश्वास करत हैं।

जरासन्ध वध प्रसग मे भीम के नीतियुक्त वचन उनकी नीतिज्ञता का परिचय देत है।[3]

कृष्ण दूतत्व के प्रसग मे भीमसेन मधुर सम्भाषण का समर्थन करते हैं, भीम कहते हैं कि हे मधुसूदन कौरवों के मध्य आप शान्ति स्थापना की बात करें जो कुछ भी दुर्योधन स कहे शान्ति स और मधुर वाणी म कहे'[4]। अन्तत भीम शान्ति का पक्ष लत हैं।[5] इस प्रकार महाभारत' के भीमसेन का चरित्र एक नीतिज्ञ कुशल शान्ति प्रिय व्यक्ति के रूप म आता है जो शक्ति को भी उतनी ही व्यावहारिक वस्तु मानता है।

मनोवैज्ञानिक विवेचन सेनापतिकर्ण' म भीम का चरित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित हुआ है। कवि ने भीम के अन्तर की गहरी व्यथा को अभिव्यक्त करके महाभारत' के भीम की कठोरता और क्रूरता म कोमलता का अनुपम पुनर्स्पर्श किया है। भीम के हृदय के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए हिडिम्बा व पुत्र घटोत्कच का 'महाभारत के युद्ध म नय रूप स प्रवश कराया है। महाभारत' म भावनाओ का यह द्वन्द्व नहा है किन्तु सेनापतिकर्ण म अत्यन्त कुशलता स

---

१ शान्ततामरम यदद्‌ुःख यतश्चन समुत्थितम्।
दिदिक्षया व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात सुदुष्करम। म० आदि० १५६।१६

२ जयभारत, पृ० १०३

३ म० सभा० १८।११ १२

४ म० उद्योग० ७४।१६

५ अहमेतद् ब्रवीम्येव राजा चवप्रशसति।
मजु नो नवमुद्धार्यो भूयसी हि दयाजु ने॥ म० उद्योग० ७४।२३

भीम के मानसिक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति हो गई है। भीम के वीरत्व और द्वन्द्व का चित्रण द्रष्टव्य है।

भीमसेन विस्मित

आया इतने में वहां तापपूर्ण आँखें थीं

लाल लाल दहक रही था अंगारे सी[1]

भीम के मानसिक द्वन्द्व का कारण है अर्जुन का अवरोध। यदि ऐसा ही है तो पाण्डवों को पुनः वन चलना ही श्रेयस्कर होगा।

मानूं यदि मैं भी काल पृष्ठ पर काल है,

मारेगा अवश्य सत्य साची को समर में

कहते हो जो फिर तो रोको इस युद्ध को।

रोको हम घूम फिर गहन विपिन में—[2]

पुत्र-स्नेह के कारण भीम घटोत्कच को रण में नहीं भेजना चाहते। हिडिम्बा को लेकर कवि ने द्वन्द्व का चित्रण किया है। 'महाभारत' की भावना से पृथक कवि कल्पना करता है कि हिडिम्बा का त्याग कुल के विचार से किया गया था और आज उसने अपना पुत्र भेजा है तो भीम किस मुख से उस पुत्र को रण में भेजें जब कि एकाकी नारी मात्र है। इस प्रसंग में पिता के रूप में भीम का चित्रण नितान्त मौलिक है।

सुधीजन जगत के

क्या कहते सोचो तुम्हीं। स्वार्थ साधना में जो

भेज काल रण में हिडिम्बा के तनय को।

यौवन के मद में बनाया जिस प्रयसी

और फिर छोड़ दिया कुल के विचार से

× × ×

हारी है कहां क्या नहीं करना प्रणय की

दानवी को, मानि पुत्र मोह नहीं होता है।[3]

भीम के चरित्र का यह व्यक्ति रूप कवि की मौलिक सूझ है। उसने स्थिति की सम्भावना से किया भीम की व्यथा का चित्रण किया है किन्तु 'महाभारत' में इस रूप का अभाव है।

संक्षेप में इन्हीं कतिपय स्थलों पर 'महाभारत' के भीम का चरित्र चित्रण हुआ है। किन्तु जैसा कि संकेत किया जा चुका है आधुनिक काव्य में भीम का चरित्र

---

१ सेनापति कर्ण पृ० ५५

२ सेनापति कर्ण पृ० ५५

३ सेनापति कर्ण, पृ० २११

'महाभारत' के चरित्र गौरव का स्पर्श नहीं कर पाया।

कृष्ण सखा अर्जुन

अर्जुन 'महाभारत' के स्थिर पात्र हैं। वे शाश्वत वीर युगीन भावनाओं के प्रतीक हैं। उनके समक्ष कठिनतम परिस्थितियां भी साधारण हैं। आधुनिक काव्य में अर्जुन का चरित्र 'महाभारत' से साम्य रखता है। वैषम्य की स्थिति चरित्र चित्रण की प्रणाली में हो सकती है, मूल चरित्र में नहीं। 'महाभारत' की आस्था के प्रतिकूल काव्य कृतियों में भी अर्जुन का चरित्र शौर्य वीरत्व प्रधान चित्रित किया गया है। यद्यपि कुछ घटनाओं को लेकर उनके वीरत्व पर संदेह भी किया गया है तथापि वे घटनाएं 'महाभारत' से यथावत स्वीकृत हैं। एकलव्य, अर्जुन का मोह, कर्णार्जुन युद्ध जैसे कतिपय प्रसंग ऐसे हैं जिनके आधार पर आधुनिक कवियों ने अर्जुन के चरित्र में मानसिक द्वन्द्व और मनोवैज्ञानिक मानवीय दुर्बलता का चित्रण किया है।

'महाभारत' में वीरवर अर्जुन भगवान कृष्ण के मित्र और भक्त हैं। गीता में स्वयं कृष्ण ने "भक्तोऽसि मे सखा चेति, इष्टोऽसि मे दृढमिति" कहकर अर्जुन के इस रूप को स्वीकार किया है। कृष्ण के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति अर्जुन ने भी "करिष्ये वचनं तव" कहकर की है।

शौर्य वीरत्व—वीरत्व अर्जुन के चरित्र का सर्व प्रमुख गुण और जीवन का सार है। अर्जुन आद्यन्त युद्धरत और विजयी हैं। मूलग्रंथ में अर्जुन नारायण के नर रूप अवतार हैं।[1] उनमें दिव्य शक्ति विद्यमान है, वे शिव की आराधना करके अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं और इन्द्र की कृपा से सदेह स्वर्ग भ्रमण करके अनेक शस्त्रास्त्र प्राप्त करके लौटते हैं।

आधुनिक युग में अर्जुन के वीरत्व की दिव्यता को परम्परावादी कवियों ने यथावत चित्रित किया है, किन्तु अन्य कवियों ने उनका चरित्र वीर युगीन भावना के अनुरूप प्रस्तुत करते उन्हें नया आवरण दिया है। 'महाभारत' में अर्जुन में मानसिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं है किन्तु काव्य ग्रंथों में मानसिक द्वन्द्व की सफल अवतारणा है।

पुनरुत्थानकाल में अर्जुन के चरित्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं मिलता। जयद्रथ वध के चतुर्थ सर्ग में भगवान शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्ति की घटना के निरूपण में अतिमानवीय स्थिति का चित्रण है। अर्जुन के चरित्र में युद्धोत्साह का उद्रेक कराने के हेतु कृष्ण की योगमाया का आश्रय भी लिया गया है। भूरिश्रवा प्रसंग में अर्जुन अपने गुरु धर्म का आख्यान करते हैं। इन प्रसंगों में चरित्र सृष्टि प्राचीन शैली की ही है।

अर्जुन के चरित्र में सतत साधना और शस्त्र ज्ञान प्राप्ति में संलग्नता ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण वे अद्वितीय हो गये हैं। 'जयभारत' में उनकी निष्ठा मूल ग्रन्थ के अनुरूप है।

---

१ म० आदि० १३१।१३ १४

ये थे सभी सुयोग्य किन्तु अर्जुन की निष्ठा,
उन्हें दिलाकर रही सभी से अधिक प्रतिष्ठा।[1]

मानसिक द्वन्द्व — समस्त दिव्यास्त्रों से सम्पन्न अर्जुन एकलव्य के प्रसंग में स्वार्थवश एकलव्य से ईर्ष्या करते हैं। 'महाभारत' के अर्जुन एकलव्य का अंगूठा कटने पर मानसिक प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।[2] डा० रामकुमार वर्मा ने इस प्रसंग में मूलग्रन्थ के चरित्र को मानवीय दृष्टिकोण से चित्रित किया है। एकलव्य के लाघव को देखकर अर्जुन गुरु के प्रति शंकित हो उठते हैं।[3] अपने को अद्वितीय मानने वाले अर्जुन के मन में इस प्रकार की शंका की स्थिति दोनों ग्रन्थों में समान है, अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।

'महाभारत' में अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व का अभाव है किन्तु 'एकलव्य' में यह द्वन्द्व मानवीय उत्कृष्टता के साथ व्यंजित हुआ है। अर्जुन एकलव्य की साधना की प्रशंसा, निस्पृहता की स्तुति[4] और अहंकार के कारण अपने चरित्र की दुर्बलता का स्वीकार करते हैं।[5] अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व की चरम स्थिति वहाँ व्यक्त होती है जहाँ वह आर्य जाति के नष्ट होने की सम्भावना से अधिक उग्र हो छिपकर एकलव्य की दक्षिण भुजा काटने की कल्पना करते हैं किन्तु उसी समय इस जघन्य अपराध मानकर मन को धिक्कारते हैं।[6] जयभारत में भी एकलव्य के प्रसंग में अर्जुन के अभिमान भंग का चित्रण है।[7] किन्तु 'एकलव्य' जैसा मानसिक द्वन्द्व का चित्रण गुप्त जी नहीं कर पाए।

इस मानसिक द्वन्द्व से कवि का अभिप्रेत तत्युगीन मानव का प्रतिबिम्ब देखना है। कवि के इस परिवर्तन से अर्जुन के चरित्र का परिष्कार हुआ है। अर्जुन राजपुत्र हैं, उन्हें राज्य रक्षा के लिए सभी अनुचित उचित कार्य करने होंगे किन्तु कार्य की अधमता का आभास होना भी मानव का श्रेष्ठ गुण है और 'एकलव्य' का अर्जुन इसी आधुनिक मानव का प्रतीक है। मूल ग्रन्थ में अर्जुन अपने वीरत्व के प्रति आश्वस्त हैं उन्हें द्रोण और कृष्ण पर भी अटूट विश्वास है अतः मानसिक द्वन्द्व की स्थिति नहीं है। 'महाभारत' में घटोत्कच प्रसंग में कृष्ण की चातुरी से अर्जुन की रक्षा। एकघ्नी

---

१ जयभारत, पृ० ५१
२ म० आदि० १३१।६०
३ एकलव्य, पृ० २५४
४ कितना निस्पृह होगा एकलव्य वीर वह
जो कि गुरुमूर्ति को ही गुरु मान बैठा है। एकलव्य, पृ० २६४
५ सत्य है। मैं अहंभावित से रहा हूँ ग्रस्त
सभी से मैं महान मान बैठा हूँ। एकलव्य, पृ० २६४
६ एकलव्य, पृ० २६६-६७
७ जयभारत, पृ० ५५

से होती है। इस स्थल पर अर्जुन में किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं दिखाया गया। घटोत्कच की मृत्यु के उपरान्त सात्यकि रहस्योद्घाटन करता है।

योद्धारूप द्रुपद पराजय रंगस्थली, द्रौपदी परिणय आदि प्रसंगों में होने वाले युद्धों में अर्जुन का वीरत्व वर्णित है। वही मुख्य वीर है जिसके कारण विजय प्राप्त होती है। जयद्रथ वध में मूलग्रन्थ के समान ही अर्जुन के शौर्य, वीरत्व, युद्धोन्माद का चित्रण किया गया है।[1]

कृष्णायनकार ने भी अर्जुन के वीरत्व का चित्रण किया है किन्तु उसमें उतनी शक्ति का समावेश नहीं हो पाया जितना जयद्रथ वध में। कृष्णायन में वर्णनात्मकता के कारण पात्रों के शौर्य की व्यंजना में शक्ति का पर्याप्त अभाव है। धैर्यशील अर्जुन कठिनाई में विचलित नहीं होते। पुत्र के मरण पर पिता का स्वाभाविक शोक व्यक्त हुआ। किन्तु उस शोक का परिणति जयद्रथवध की प्रतिज्ञा में हुई। युद्ध के समय अर्जुन को धर्म-युद्ध का ध्यान सतत रहता था। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जो धर्मयुद्ध के विरुद्ध हो।

कर्ण स्वयं पार्थ की धर्म युद्ध प्रियता के विषय में कहकर उन्हें शरणभर रुकने को कहता है।[2]

युद्धनीति से प्रेरित होकर अर्जुन कर्ण पर प्रहार करके उसका वध कर देते हैं।

'अंगराज' में कवि ने मूल ग्रन्थ के प्रतिकूल अर्जुन का चरित्र चित्रित किया है। कवि ने अपनी पाण्डव विरोधी भावना के कारण युद्धनीति की उपेक्षा करके अर्जुन के चरित्र को निम्नरूप से चित्रित किया है।[3] अर्जुन के वीरत्व में सर्वथा सन्देह भय की भावना का प्रदर्शन किया है। अर्जुन की विजय में अर्जुन की वीरता का कारण न मानकर दैव को या छल को मुख्य कारण स्वीकार किया है।[4]

अर्जुन के चरित्र की यह व्याख्या कवि की मौलिक सृष्टि है जिसे उसने अनेक आन्तरिक और बाह्य उदाहरणों से सिद्ध करने की चेष्टा की है। महाभारत में चित्रित अर्जुन के दिव्य वीरत्व सम्पन्न चरित्र से अंगराज का अर्जुन नितान्त भिन्न है। 'अंगराज' का अर्जुन कपटाचारी है केवल छल से विजय प्राप्त करने वाला है।[5] कवि ने कर्ण के चरित्र में अतिरंजित उत्कर्ष के हेतु अर्जुन का अपकर्ष किया है।

---

१ जयद्रथ वध, पृ० ८०

२ विरमहु ! विरमहु ! पृथा कुमारा उचित न यहि क्षण शस्त्र प्रहारा
तुम शुचि भरत वंश सजाता शीलनिधान, धर्मरण ज्ञाता ।।

कृष्णायन, पृ० ४२४

३ अंगराज, पृ० २१६

४ अंगराज, पृ० २६३

५ छल से वर सज्जन को प्रनीत अपराधी जाते सदाजीत।

अंगराज, पृ० २३६

मनोवैज्ञानिकता 'सेनापति कर्ण' में मिश्र जी की दृष्टि चरित्रचित्रण में मनोवैज्ञानिक रही है। जब कर्ण का सामना करने का प्रश्न उपस्थित होता है तब कृष्ण अर्जुन को बचाना चाहते हैं, ऐसी परिस्थिति में द्रौपदी अर्जुन के वीरत्व को धिक्कार की चरम सीमा तक ललकारती है।

जानती जो दुर्जय धनुर्धर जगत में,
काल पृष्ठधारी है अकेला सुत राधा का,
तब तो स्वयंवर में वरती उसी को मैं।[1]

द्रौपदी की इस ललकार पर अर्जुन का वीरत्व जाग उठता है। उसमें स्वाभिमान और द्वन्द्व का मिश्रण अत्यन्त कुशलता से व्यक्त किया गया है।[2] अर्जुन मानव की मन्य आज्ञाकारिता में भी अनायास अविश्वास व्यक्त करते हैं।[3] 'महाभारत' के दिव्य शक्ति सम्पन्न अर्जुन को इस रूप में चित्रित कर उसे मानवीय भावनाओं से युक्त दिखाया गया है। कवि ने अर्जुन को मानवीय यथार्थ की दृष्टि से अंकित किया है। पत्नी से ऐसा ललकार सुनकर ऐसा अविश्वास मनोवैज्ञानिक और स्वाभाविक है। *'महाभारत' के चरित्र को कवि ने अपनी नयी दृष्टि दी है और स्थिति की* सम्भावना से चरित्र का पुनस्सर्जन किया है। इस प्रकार की द्वन्द्व की स्थिति से मूल में जिस वीरत्व का उत्कर्ष हुआ है, वही मानव की सच्ची वीरता है। अर्जुन को अपने पूर्व प्रसंगों की स्मृति हो आती है। 'महाभारत' का अर्जुन गर्व से अपने वीरत्व का वर्णन करता है किन्तु 'सेनापति कर्ण' का अर्जुन सहज प्रकृति में अपने वीरत्व का वर्णन करता है।[4] मिश्र जी ने अर्जुन को मानव रूप में चित्रित किया है। 'जयद्रथ वध' में अर्जुन की वीरोक्ति गर्वमिश्रित अवश्य है किन्तु स्वजनों की रक्षा के लिए कटिबद्धता की अभिव्यक्ति भी करती है।[5]

अन्य गुण द्रौपदी स्वयंवर एवं द्यूत के प्रसंग में अग्रज के प्रति अर्जुन की आज्ञाकारिता व्यक्त हुई है। महाभारत में पाण्डवों के चरित्र की अनेक क्षमताएं एवं दुर्बलताएं भ्रातृ संगठन से ऊंची नहीं है। अर्जुन द्रौपदी को जीतते हैं, किन्तु अग्रज के कहने पर माता की आज्ञा से उसके पत्नीत्व का विरोध भी नहीं करते। स्त्री के कारण होने वाले संघर्षों को निवारण करने के लिए यद्यपि यह मुख्य समाधान नहीं है, तथापि मातृभक्ति एवं आज्ञाकारिता का आदर्श अवश्य प्रस्तुत करती है।

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० १६२
२ सेनापति कर्ण, पृ० १६४
३ सेनापति कर्ण, पृ० १६५
४ म० कर्ण० ७४।८,१६ २०
५ सेनापति कर्ण, पृ० १६५ ६६
६ मेरा नियम यह है कहीं तक प्राण मेरा जायगा
अपने जनों को आपदा से वह अवश्य बचायगा। जयद्रथवध, पृ० ४८

अर्जुन अग्रज के प्रति सम्पूर्ण महान आदर्श की व्यंजना करते हैं, क्योंकि वे अपने प्रत्येक कार्य को युधिष्ठिर के लिए समर्पित करते हैं।[1]

'जयभारत' में गुप्त जी ने अर्जुन की आज्ञाकारिता का इसी रूप में चित्रण किया है।

मैं कृष्णा को लाया भर हूं,
परिवेत्ता नहीं सुखेश्वर हूं।[2]

अग्रज के प्रति जिस अनन्य भक्ति का परिचय 'महाभारत' में मिलता है वैसा आधुनिक काव्य में नहीं। 'महाभारत' में अर्जुन के चरित्र की पृष्ठभूमि राजनैतिक है। उनका अनन्य समर्पण राजनीति के कारण है। अर्जुन कर्ण को मार कर युधिष्ठिर को चिन्ता मुक्त करना चाहते हैं।[3]

अर्जुन के चरित्र में दुःख, क्षोभ, करुणा की अभिव्यक्ति के लिए अभिमन्यु वध प्रसंग सर्वाधिक मार्मिक है। इस स्थल पर उनके शौर्य की व्यंजना हम देख चुके हैं। करुणा का प्रसार 'महाभारत' में अधिक नहीं हुआ है और आधुनिक काव्य में इस प्रसंग पर लिखे गये काव्यों में 'जयद्रथ वध' 'अभिमन्यु वध' आदि कुछ काव्य ही स्वतन्त्र रूप से लिखे गये हैं। शेष काव्यों में यह घटना प्रसंग रूप से चित्रित है अतः अर्जुन के इस गुण की अधिक अभिव्यक्ति नहीं हो पाई है। 'महाभारत' में अर्जुन को चक्रव्यूह की रचना की सूचना मिलते ही अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका होती है।[4] वीर पिता का हृदय व्याकुल हो उठता है। वे व्याकुलता में अभिमन्यु को न देखकर स्वयं मृत्यु की कामना कर बैठते हैं।[5]

दिव्य शक्ति सम्पन्न होने के कारण 'महाभारत' में मानवीय दुर्बलताओं का चित्रण नहीं हुआ। व्यासजी के दिव्य पात्र साधारण मानव के समान चिन्तित क्यों होने लगे? किन्तु आधुनिक काव्य में उसे मानव रूप में प्रतिष्ठित किया है। यही कारण है कि वीरत्व मातृभक्ति और दयाशीलता आदि गुणों से वेष्टित अर्जुन का चरित्र आधुनिकता के प्रभाव में चित्रित हुआ है।

अभिमन्यु

'महाभारत' में अभिमन्यु थोड़े समय के लिए आता है। आचार्य द्रोण के द्वारा चक्रव्यूह की रचना और अर्जुन की अनुपस्थिति में अभिमन्यु का चक्रव्यूह वधन

---

१ म० आदि० १६०।८ ६
२ जयभारत, पृ० १२०
३ म० कर्ण० ७४।४० ४१
४ म० द्रोण० ७२।५ जयद्रथ वध, पृ० ३१
५ हा पुत्र का वितृप्तस्य सततं पुत्र दर्शने।
भाग्यहीनस्य कालेन यथा मे नीयसे बलात्। म० द्रोण० ७२।४३

अभिमन्यु के व्यक्तित्व को प्रधान बना देता है। अभिमन्यु के इस काव्य में उसका वीरत्व, कर्तव्यनिष्ठा, साहस, निर्भयता आदि गुण प्रकाश में आते हैं। इस कारण आधुनिक काव्यकारों ने अभिमन्यु के प्रसंग को लेकर काव्य रचना की है। अभिमन्यु के चरित्र द्वारा कवि कर्त्तव्यनिष्ठा के उस उच्चस्तरीय जीवन का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसमें असफलता का पूर्ण निश्चय होने पर भी व्यक्ति निर्भयता से कार्य की ओर अग्रसर होता है। वह स्वयं धर्म और न्याय के प्रति आस्थावान है, फल के प्रति नहीं। आधुनिक जीवन में अभिमन्यु का यह सन्देश निश्चित ही प्रेरणादायक है।

अभिमन्यु के चरित्र में आत्म बलिदान और लोकोपकार की भावना का पूर्ण विस्तार है। लोक रक्षा के हेतु, मान मर्यादा के कारण क्षत्रियत्व आत्म बलिदान करता है।

वीरत्व का आदर्श अभिमन्यु के चरित्र को आधुनिक काव्यकारों ने वीरत्व के आदर्श के रूप में स्वीकार किया है। अभिमन्यु का साहस और वीरता में कौरवों की सेना का साहस फीका पड़ गया। अभिमन्यु वीरों के लिए काल बन गया।[1] और भागने वाले वीरों की विवशता है कि उनमें इस वीर के समक्ष कुछ नहीं किया गया। वे अपनी जान छुपाकर भाग प्राण पर आए इसलिए पराजित नहीं हुए।

अभिमन्यु पराक्रम 'जयद्रथ वध' 'कुरुक्षेत्र' आदि काव्यों में अभिमन्यु वीरत्व का आदर्श है।[2] 'महाभारत' में अभिमन्यु के चरित्र में वीरत्व की प्रमुखता है।[3] उसी को आधार मानकर इन कवियों ने चरित्र चित्रण किया है।

अभिमन्यु का आत्म-बलिदान और जयद्रथ वध में वीरत्व के अतिरिक्त सिद्धान्त रूप में कर्त्तव्यनिष्ठा के प्रति सजगता का प्रतिपादन किया है। 'महाभारत' के अभिमन्यु के पराक्रम में अलौकिक शक्ति का आभास है।[4] इसी कारण सप्त महारथियों को एकत्र कर विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। आधुनिक काव्य में भी अभिमन्यु के चरित्र में लोकोत्तरता का आभास मिल जाता है।[5] चरित्र की अलौकिकता का समाधान करने का प्रयास नहीं हुआ है।

महाभारत में आचार्य द्रोण भी अभिमन्यु के शौर्य की प्रशंसा करते हैं।[6]

---

१ अर्जुन सुत तब हो गया काल सम कुद्धमान।
कौरव के सम्मुख फिरे जस होवे श्मशान। अभिमन्यु वध पृ० ७

२ क, अभिमन्यु वध, पृ० ३६ ख अभिमन्यु पराक्रम, पृ० ३३ ग कुरुक्षेत्र, दोहा १२८ घ, जयद्रथ वध पृ० १४ १८

३ म० द्रोण० ३६।४४

४ म० द्रोण० ३६।३६ ३६

५ जयद्रथ वध, पृ० १८ १६

६ म० द्रोण० ३६।११ १३, अभिमन्यु वध, पृ० २२

शौय के साथ अभिमन्यु के रण कौशल का चित्रण भी समान रूप से किया गया है। संजय के द्वारा कहे गये वचनों में अभिमन्यु की अमठता, विनम्रता और शूरता व्यक्त हुई है।[१] भगवान् कृष्ण ने सुभद्रा का अभिमन्यु का चारित्रिक उत्कर्ष बताते हुए उसे सान्त्वना दी।[२]

इस प्रकार 'महाभारत' का यह पात्र अपने असम्य उत्साह, अथक वीरत्व और सात्विक आत्मबलिदान के कारण आधुनिक काव्य में महनीय निष्ठा से चित्रित है।

नकुल-सहदेव

नकुल सहदेव का चरित्र चित्रण महाभारत और आधुनिक काव्य दोनों में अत्यन्त संक्षेप से हुआ है। महाभारत में इनके व्यक्तित्व के साथ प्रमुख घटनाओं का सम्बन्ध नहीं है जो इन चरित्रों को अधिक प्रभावशाली और व्यापक बना सके। तथापि इन दोनों माद्री पुत्रों के व्यक्तित्व के गुण स्थान-स्थान पर अभिव्यक्त हो जाते हैं। दोनों भाई जीवन में प्रवृत्ति मूलक विचारधारा का समर्थन करते हैं।[३] युधिष्ठिर की त्यागमयी और वैराग्य भावना का विरोध करके जीवन के कर्मक्षेत्र की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। विचारों की प्रौढ़ि के साथ शक्ति और वीरत्व का स्रोत भी अजस्र रूप से विद्यमान है। नकुल और सहदेव दोनों पश्चिम और दक्षिण दिशा विजय करते हैं।[५] इस युद्ध और महाभारत के अठारह दिनों के युद्ध में शौर्य का शक्ति प्रदर्शन पर्याप्त रूप में हो जाता है।

आधुनिक काव्य में अत्यन्त संक्षेप और प्रसंग मात्र से नकुल सहदेव के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। सियाराम शरण गुप्त के प्रबन्ध काव्य 'नकुल' में भी कथा का केन्द्र बिन्दु नकुल का चरित्र नहीं है। वह प्रत्यक्ष रूप से युधिष्ठिर से सम्बद्ध है और अन्तिम चरम स्थल पर नकुल की प्रधानता के कारण काव्य का नामकरण नकुल पर किया गया है। नकुल को अपने चारों बड़े भाइयों का स्नेह प्राप्त होता है अतः वह अपनी स्थिति से संतुष्ट और सुखी है।[६] छोटा होकर किसी महत्ता को प्राप्त करने पर मानवीय स्वाभाविक क्षोभ की भावना का सर्वथा अभाव है। सहदेव में वीरत्व, शौर्य रणभूमि में स्थैर्य आदि गुण उसके चरित्र को वीर युगीन परिवेश

१ म० द्रोण० ३४।६ १०
२ म० द्रोण० ७७।२१
३ म० शान्ति० अध्याय १२ १३
४ म० शान्ति० १३।२ ५
५ म० सभा० अध्याय ३१ ३२
६ पीछे आकर नहीं किसी विधि से मैं वंचित।
मेरा भाग्य सुदीर्घ चार अग्रजों तक संचित। नकुल, पृ० ५५

के अनुकूल बनाये रखते हैं।[1] शल्य के युद्ध करते हुए सहदेव तीव्र प्रहारों को सहन करता हुआ अविचल रहता है।[2] वह प्रलय कालीन शंकर के समान रुष्ट होकर शरों का संधान करता है। युद्ध में वह अन्य महारथियों की भांति भयंकर रूप धारण करता है।

ले सप्त सायक हाथ में सहदेव ने सरुष्ट हो।
पीड़ित किया जैसे प्रलयकालीन शंकर रुष्ट हो।

नकुल और सहदेव के चरित्रांकन में आधुनिक कवि अधिक नहीं रम सका है। इसका मुख्य कारण यही है कि चरित्र की जिस विलक्षणता से कवि प्रभावित होता है मूल ग्रन्थ में उसका अभाव है।

पितामह भीष्म

'महाभारत' में महामना भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी आदर्श पितृभक्त सत्य प्रतिज्ञ एवं अद्भुत वीर के रूप में समादृत हैं। महाभारत में भीष्म का चरित्र सब गुण सम्पन्न और आदरणीय है।

आधुनिक युग में भीष्म के चरित्र पर आधारित कोई पृथक् महत्वपूर्ण प्रबन्ध काव्य नहीं लिखा गया। तथापि अन्य काव्यों में भीष्म का आदर्श चरित्र उच्चता के गौरव से मंडित है। उनके चरित्र के मानव के उन विशेष गुणों की पुनः प्रतिष्ठा की गई है जिनके द्वारा मानव को देवत्व प्राप्त होता है।

'महाभारत' के भीष्म स्थिर चरित्र हैं। वे अपनी नीति और विचारधारा में पूर्ण आश्वस्त हैं। उनमें मानसिक संघर्ष का अभाव है। अपने कार्य क्षेत्र के प्रति पूर्णरूप से सुनिश्चित भीष्म के चरित्र में कोई संघर्ष हो भी कैसे सकता था? तथापि आधुनिक कवियों ने उनके आदर्शवादी स्थिर चरित्र में भी मानसिक द्वन्द्व के स्थलों को खोजने का प्रयास किया। महाभारत की परम्परा को स्वीकार करने वाले कवियों ने भीष्म का महाभारत के आदर्श के अनुरूप चित्रण किया किन्तु नवीन जीवन में मनोवैज्ञानिकता के समर्थकों ने उनके चरित्र में भी अन्तर मानसिक द्वन्द्वों को व्यक्त किया है।

आदर्श पितृ भक्ति और अखण्ड ब्रह्मचर्य भीष्म के चरित्र के मुख्य गुण हैं उनको विश्वव्यापी व्यक्तित्व प्रदान करने का कारण आदर्श पितृ भक्ति है। वे पिता के मोहित गुणमोह के लिये राज्य सत्ता-सुख का परित्याग करके प्रारम्भ में ही संसार के समक्ष अलौकिक त्याग का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।[3] आधुनिक काव्य में

---

१ म० सभा० अध्याय, ३६

२ पर रिपु नरों को मार के सहदेव सुस्थिर समर हा।
सम्बर शरासन अग्र ले रण क्षेत्र में जाता बढ़ा। —जयद्रथ, पृ० ६७

३ म० आदि० १००।६४-६६

उनका यह गुण मूलग्रन्थ के समान ही स्वीकृत है।[1] धर्म के लिए उन्होंने सहर्ष प्राणों का त्याग किया।[2] उनका यह रूप दधीचि के अस्थि त्याग से कम महत्व पूर्ण नहीं है। व अपने वचनों पर दृढ़ रहे। विचित्र वीर्य के निधन के बाद वंश संकट को बचाने के लिए भी उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं की।[3] अम्बा की प्रार्थना पर भी ध्यान नहीं दिया।[4] और अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया।[5]

वीरत्व भीष्म में वीर युगीन चरित्र के सभी गुण विद्यमान हैं। अपनी शक्ति का वर्णन, वीरत्व की प्रशंसा अनेक स्थलों पर निज की अद्वितीयता का चित्रण किया गया है।[6] युद्ध क्षेत्र में भीष्म विकराल रूप धारण कर लेते हैं।[7] और मनिल शरों से शत्रु पक्ष को पीडित करते हैं।[8]

कर्ण के प्रसंग में भीष्म के चरित्र का परिवर्तित रूप 'अंगराज' में उपलब्ध होता है। 'महाभारत' में भीष्म कर्ण को अर्धरथी कहते हैं और अन्त में यह मानते हैं कि युद्ध को टालने के लिए कर्ण को अर्धरथी कहा। आनन्द कुमार ने भीष्म के प्रति अधिक आदर भाव व्यक्त नहीं किया। यह केवल कर्ण के महत्व का सर्वोपरि रखने के लिए किया गया। 'महाभारत' में भीष्म अपने या कर्ण के मध्य एक को पहले युद्ध करने के लिए कहते हैं किन्तु 'अंगराज' में भीष्म कहते हैं कि कर्ण हमारा कहना नहीं मानेगा[9]। इससे भीष्म का आत्म विश्वास दुर्बल हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक संघर्ष भीष्म के चरित्र में लक्ष्मी नारायण मिश्र ने मानसिक संघर्ष की अवतारणा की है। इसके लिए अम्बा और कुन्ती के पुत्रों का प्रसंग ग्रहण किया है। महाभारतकार ने इस प्रकार का संघर्ष चित्रित नहीं किया और न उस युग के भीष्म को सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से इतना कुछ सोचने की आवश्यकता थी। यद्यपि भीष्म का अन्तर्द्वन्द्व महाभारतीय विचारधारा के अनुकूल नहीं, किन्तु आज का मनोवैज्ञानिक कवि उन सम्भावनाओं के प्रकाश में द्वापर के स्थिर चरित्र को देखता है। दुर्योधन भीष्म के चारित्रिक गुणों को स्मरण करके दुःखी होता है[10]

---

१ जयभारत, पृ० ३५
२ म० भीष्म० १०७।८४ ८६
३ म० आदि० १०३।१६ २१
४ म० उद्योग० १७८।३४
५ सेनापति कर्ण, पृ० २१ २२
६ म० भीष्म १०७।७५ ७६
७ म० भीष्म ५६।६२ ६४
८ अंगराज पृ० १६१
९ म० उद्योग० १५६।२२ २४, अंगराज, पृ० १७०
१० सेनापति कर्ण, पृ० २३

सर्वथा क्षात्र धर्म के विरुद्ध थी। महाभारतकार ने इस हत्या के प्रसंग में द्रोण के चरित्रांकन का प्रयास नहीं किया। अभिमन्यु वध प्रसंग पर लिखे गये काव्यों में द्रोण के आन्तरिक संघर्ष का चित्रण किया गया है।

पाण्डवों के पक्ष को लेकर जब दुर्योधन द्रोण पर पक्षपात का आरोप करता है तो द्रोण का व्यथित हृदय कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति करता है।

मैं पाण्डवों का प्यार कर लड़ता तुम्हारी ओर से,
विचलित मुझे क्या जानते हो धाम धर्म कठोर से।[1]
मैंने तुम्हारे हित स्वयं ही क्या उठा रक्खा यहां
अभिमन्यु के वध के सदृश मुझसे हुआ है पाप कहां।[2]

द्रोण के सन्तप्त होने का कारण दुर्योधन के कटुवचन हैं। स्वयं कर्ण द्रोणाचार्य की शक्ति एवं धर्मिक सामर्थ्य में कोई आशंका व्यक्त नहीं करता।

ब्रह्म-तेज और दण्ड द्रोण के चरित्र का प्रमुख गुण ब्रह्म तेज और दण्ड भावना है। द्रुपद ने द्रोण की भावना का तिरस्कार किया उसके बदले द्रोण ने गुरु दक्षिणा में द्रुपद की पराजय ग्रहण की और आधा राज्य देकर मित्रता बनाये रक्खी। यह प्रतिकार की भावना अपराधी को दण्ड देने के लिए है। नैतिक दृष्टि में मदान्ध व्यक्ति शाश्वत मानवता को भूल जाय तो दण्डित होना ही पड़ेगा।[3]

द्रोण ब्राह्मणत्व की क्षमाशीलता का परिचय देते हैं। जयभारतकार ने मूलग्रन्थ के अनुसार ही द्रोण का चरित्रांकन किया है 'महाभारत' में द्रोण क्षमा की मूर्ति हैं जयभारत में द्रोण शाश्वत मनुजत्व का चित्रण करते हैं।[4]

डा० रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' में द्रोणाचार्य के चरित्र को नये रूप में उपस्थित किया है। 'महाभारत' में द्रोण अर्जुन की अद्वितीयता के रक्षार्थ एकलव्य जैसे मन से शिष्य के दक्षिण अंगुष्ठ को गुरु दक्षिणा में मांगते हैं। मानवता की दृष्टि से यह कार्य अनुचित है। वर्मा जी ने द्रोण के चरित्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

'वे गुरु होने के कारण आचार्य का दायित्व और कर्तव्य समझते थे। साथ ही भीष्म की राजनीति और तत्कालीन समाज की स्थिति से भी वे परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने एकलव्य की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया और उसे अपना शिष्य नहीं बनाया।'[5]

---

१ जयद्रथ वध, पृ० ६८
२ जयद्रथ वध पृ० ६८
३ म० आदि० १३७।६४,६५
४ जयभारत पृ० ६६
५ एकलव्य पृ० ४

महाभारत में द्रोण वेतन मांगते हैं—

यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतन दीयता मम[1]

अन्तर्द्वन्द्व डा० वर्मा ने 'एकलव्य' में आचार्य द्रोण की इस मनोवृत्ति को अस्वीकार किया है। महान आचार्य की मनोवृत्ति क्या इतनी क्षुद्र हो सकती है? इस स्थल पर द्रोण के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व की सम्भावना है। कवि ने 'महाभारत' के स्थिर कठोर गुरु को मानवीय द्रवणशीलता के साथ और भीष्म की राजनीति से विवश चित्रित करके द्रोण के चरित्र को मौलिक तथा नवीन सदर्भ में उपस्थित किया है।

महाभारत में द्रोण एकलव्य की उपेक्षा करते हैं। 'एकलव्य' में द्रोण शिष्य के बुद्धि-वैभव को देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं।[2] 'एकलव्य' में द्रोण का मन द्वन्द्व उनके चरित्र का मुख्यरूप है। द्रोण राजगुरु हैं अतः राजनीति की आज्ञा से वे केवल राजपुत्रों को ही शिक्षा दे सकेंगे।[3]

एकलव्य की चरम उन्नति द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण है। स्वप्न में कवि ने द्रोण के द्वन्द्व का चित्रण किया है। इससे परोक्ष रूप में यह सिद्ध किया है कि एकलव्य जैसे निश्छल शिष्य को राजनीति के कारण अस्वीकृत करने के उपरान्त भी द्रोण उसे भुला न सके। यह उनकी अन्तश्चेतना को तारा को मथित करता रहा।[4]

द्रोण के चरित्र के द्वारा कवि सामाजिक असमानता का विरोध करता है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा का अधिकारी है।[5] द्रोण ब्राह्मण के मुख्य कर्त्तव्य शिक्षादान का निर्वाह न कर सके अतः उन्हें इसका क्षोभ है और धन में लीन हो जाने पर पश्चात्ताप भी। एकलव्य में द्रोण के हृदय में ब्राह्मणत्व और राजकुल की सीमाओं को लेकर जो मानसिक द्वन्द्व होता है वह कवि की मौलिक सूझ है।

धृतराष्ट्र

महाभारत में धृतराष्ट्र प्राधान्येन विद्यमान हैं। किन्तु आधुनिक काव्य में इनका चरित्राङ्कन अन्य प्रसंगों पर लिखे काव्यों में ही यत्किंचित रूप में हो पाया है। 'महाभारत' में राजा धृतराष्ट्र के चरित्र की तीन मुख्य वृत्तियां परिलक्षित हैं।

१ सत्य प्रेम, २ पुत्र प्रेम, ३ राज्य प्रेम।

सत्य प्रेम इन तीनों वृत्तियों का चित्रण अन्तर्द्वन्द्वात्मक रूप में हुआ है।

---

१ म० आदि० १३२।५४

२ एकलव्य, पृ० १२५

३ एकलव्य, पृ० १२६

४ यहां और वहां दोनों स्थानों में जीवित हूँ
ऐसी क्या विचित्र मेरे जीवन की स्थिति है। एकलव्य, पृ० २१९

५ एकलव्य, पृ० २२२

सवथा क्षात्र धम के विरुद्ध थी। महाभारतकार ने इस हत्या के प्रसग मे द्रोण के चरित्राकन का प्रयास नही किया। अभिमन्यु वध प्रसग पर लिखे गये काव्यो मे द्रोण के आतरिक सघष का चित्रण किया गया है।

पाण्डवो के पक्ष को लेकर जब दुर्योधन द्रोण पर पक्षपात का आरोप करता है तो द्रोण का व्यथित हृदय कितनी मार्मिक अभिव्यक्ति करता है।

मैं पाण्डवो को प्यार कर लडता तुम्हारी ओर से,
विचलित मुझे क्या जानते हो आत्म धम कठोर से।[1]
मैंने तुम्हारे हित स्वय ही क्या उठा रक्खा कहा,
अभिमन्यु के वध के सदृश मुझसे हुआ है अघ महो।[2]

द्रोण के सन्तप्त होने का कारण दुर्योधन के कटुवचन हैं। स्वय कण द्रोणाचाय की शक्ति एव पवित्र सामथ्य मे कोई आशका व्यक्त नही करता।

ब्रह्म-तेज और दण्ड द्रोण के चरित्र का प्रमुख गुण ब्रह्म तेज और दण्ड भावना है। द्रुपद ने द्रोण की भावना का तिरस्कार किया, उसके बदले द्रोण ने गुरु दक्षिणा मे द्रुपद की पराजय ग्रहण की और आधा राज्य देकर मित्रता बनाये रक्खी। यह प्रतिकार की भावना अपराधी को दण्ड देने के लिए है। भौतिक मद मे मत्त व्यक्ति शाश्वत मानवता को भूल जाय तो दण्डित होना ही पडेगा।[3]

द्रोण ब्राह्मणत्व की क्षमा शीलता का परिचय देते हैं। जयभारतकार ने मूलग्रन्थ के अनुसार ही द्रोण का चरित्राकन किया है 'महाभारत मे द्रोण क्षमा की मूर्ति है' जयभारत मे द्रोण शाश्वत मनुजत्व का चित्रण करते हैं।[4]

डा० रामकुमार वर्मा ने एकलव्य मे द्रोणाचाय के चरित्र को नये रूप मे उपस्थित किया है। महाभारत मे द्रोण अर्जुन की अद्वितीयता के रक्षाथ एकलव्य जैसे अनन्य शिष्य से दक्षिण अगुष्ठ को गुरु दक्षिणा मे मांगते हैं। मानवता की दृष्टि से यह काय अनुचित है। वर्मा जी ने द्रोण के चरित्र को स्पष्ट करते हुए लिखा है।

'वे गुरु होने के कारण आचाय का दायित्व और कतव्य समझते थे। साथ ही भीष्म की राजनीति और तत्कालीन समाज की स्थिति से भी वे परिचित थे। यही कारण है कि उन्होंने एकलव्य की प्राथना पर ध्यान नहीं दिया और उसे अपना शिष्य नहीं बनाया।[5]

---

१ जयद्रथ वध, पृ० ६८
२ जयद्रथ वध, पृ० ६८
३ म० आदि० १३७।६५ ६६
४ जयभारत, प० ६६
५ एकलव्य प० ४

'महाभारत' म द्रोण वेतन मागते हैं—

यदि शिष्योऽसि मे वीर वेतन दीयता मम[१]

अन्तर्द्वन्द्व डा० वर्मा ने 'एकलव्य' मे आचार्य द्रोण की इस मनोवृत्ति को अस्वीकार किया है। महान आचार्य की मनोवृत्ति क्या इतनी क्षुद्र हो सकती है? इस स्थल पर द्रोण के चरित्र मे अन्तर्द्वन्द्व की सम्भावना है। कवि ने 'महाभारत' के स्थिर कठोर गुरु को मानवीय द्रवणशीलता के साथ और भीष्म की राजनीति से विवश चित्रित करके द्रोण के चरित्र को मौलिक तथा नवीन सदर्भ मे उपस्थित किया है।

महाभारत' के द्रोण एकलव्य की उपेक्षा करते हैं। 'एकलव्य' म द्रोण शिष्य के बुद्धि वैभव को देखकर उसकी प्रशसा करते है।[२] 'एकलव्य' मे द्रोण का अन्तर्द्वन्द्व उनके चरित्र का मुख्यरूप है। द्रोण राजगुरु हैं अत राजनीति की आज्ञा से वे केवल राजपुत्रो को ही शिक्षा दे सकेंगे।[३]

एकलव्य की चरम उन्नति द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व का मुख्य कारण है। स्वप्न म कवि ने द्रोण के द्वन्द्व का चित्रण किया है। इससे परोक्ष रूप म यह सिद्ध किया है कि एकनिष्ठ जस निश्छल शिष्य का राजनीति के कारण अस्वीकृत करने के उपरान्त भी द्रोण उसे भुला न सके। यह उनकी अन्तश्चेतना के तारो को झकृत करता रहा।[४]

द्रोण के चरित्र के द्वारा कवि सामाजिक असमानता का विरोध करता है। प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा का अधिकारी है[५] द्रोण ब्राह्मण के मुख्य कर्तव्य शिक्षादान का निर्वाह न कर सके अत उन्हे इसका क्षोभ है और धन से क्षीण हो जाने पर पश्चाताप भी। एकलव्य' म द्रोण के हृदय म ब्राह्मणत्व और राजकुल की सीमाओ को लेकर जो मानसिक द्वन्द्व होता है वह कवि की मौलिक सूझ है।

धृतराष्ट्र

'महाभारत' मे धृतराष्ट्र आद्योपान्त विद्यमान हैं। किन्तु आधुनिक काव्य मे इनका चरित्राकन अन्य प्रसगो पर लिखे काव्यो म ही यत्किंचित रूप से हो पाया है। महाभारत' म राजा धृतराष्ट्र के चरित्र की तीन मुख्य वृत्तिया परिलक्षित हैं।

१ सत्य प्रेम, २ पुत्र प्रेम ३ राज्य प्रेम।

सत्य प्रेम इन तीनो वृत्तियो का चित्रण अन्तर्द्वन्द्वात्मक रूप म हुआ है।

---

१ म० आदि० १३२।५४

२ एकलव्य, पृ० १२५

३ एकलव्य, पृ० १२६

४ यहा और वहा दोनों स्थानों म जीवित हूं
ऐसी क्यार्थाचित्र मेरे जीवन की स्थिति है। एकलव्य, पृ० २१६

५ एकलव्य, पृ० २२२

हाभारत' के धृतराष्ट्र पर विदुर कृष्ण, भीम और द्रोण के विचारों का प्रभाव है। सी प्रभाव के कारण उनका सत्य प्रेम व्यक्त होता है। दुर्योधन धृतराष्ट्र का ज्येष्ठ त्र है। धृतराष्ट्र की ममत्वपूर्ण भावना पुत्र प्रेम के कारण अनेक ऐसे कार्य कराती , जिन्हें स्वयं धृतराष्ट्र अनुचित मानते हैं।

धृतराष्ट्र के चरित्र में सत्यप्रेम की प्रबल भावना है। धृतराष्ट्र पाण्डवों के *धिकार*[1] *और कृष्ण के संधि के प्रस्ताव को भी मानते हैं तथा कृष्ण के आगमन पर* सन्न होते हैं।[2] विदुर के समझाने पर उनकी और शकुनी के समझाने पर उसकी ात मानना अस्थिरता का द्योतक है। तथापि वे सत्यप्रेम और दयाभाव के कारण ी द्रौपदी को वर देते हैं।[3] 'अंधराज' में इस प्रसंग के आधार पर धृतराष्ट्र का रित्रांकन यथावत किया गया है।

राज्य लोलुपता 'महाभारत' के धृतराष्ट्र कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान न रखने ाला राज्य लोलुप राजा है। उनकी राज्य लालसा प्रत्यक्ष रूप से प्रकट नहीं होती किन्तु पुत्र की दुष्कृति में सहयोगी होने के कारण अप्रत्यक्ष रूप से राज्य विस्तार की ावना प्रकट होती है। पाण्डवों का वारणावत भेजना[4] द्यूत की आज्ञा देना[5] और ूत के समय क्या जीत लिया[6] प्रश्न करके प्रसन्न होना इस तथ्य का द्योतक है कि ृतराष्ट्र भी परोक्ष रूप से पाण्डवों से द्वेष करते थे।

धृतराष्ट्र पुत्र स्नेह के कारण मोहान्ध होकर विदुर जैसे हितचिंतक के विचारों ो मन में स्थान नहीं करते।[7] वे अपनी भावनाओं को भाग्यवादिता के ऊपर छोड़ ेते हैं।[8]

अन्तर्द्वन्द्व महाभारतकार ने धृतराष्ट्र के चरित्र में मनके दुगुणों से युक्त ोते हुए भी मानसिक द्वन्द्व की सृष्टि की है। अपने पाण्डुपुत्रों के प्रति स्नेह व ाकी प्रकट करने में भी ज्ञात होते हैं।[9] इसी द्वन्द्व के कारण वे अत्यन्त स्पष्ट रूप से ो युधिष्ठिर के समक्ष अपने अहंकारी पुत्रों की दुष्टता को स्वीकार करते हैं। उन पर भी सात्विकता का और कभी लोभ का आक्रमण होता रहा सात्विकता के प्रभाव

---

1. म० आदि० १३८।१२
   म० उद्योग० ७१।१६
3. म० सभा० ७१।२७
4. म० आदि० अध्याय १४२ जयभारत पृ० ७०
5. म० सभा० अध्याय ५६
6. म० सभा० अध्याय ७४
7. म० सभा० अध्याय ४
8. म० वन० अध्याय ६
9. म० आदि० १४१।१६

से वे दुर्योधन को बन्धु प्रेम का परामर्श देते हैं।[1] इस प्रकार धृतराष्ट्र में मानवीय दौर्बल्य की प्रधानता के कारण स्वाभाविक रूप से पुत्र प्रेम की स्थिति है।

आधुनिक काव्य में धृतराष्ट्र के चरित्र में अत्यन्त अल्प परिवर्तन किया गया है। 'महाभारत' के धृतराष्ट्र स्वयं पापपंकिल हैं पर गुप्त जी के धृतराष्ट्र विवशता से पीड़ित हैं।[3] 'जयभारत' में धृतराष्ट्र मोहान्ध अवश्य हैं पर दुरभिसन्धियों में उनका हाथ नहीं है। गुप्त जी भी धृतराष्ट्र का पूर्ण रूप से न बदल सके।

श्री कृष्ण के दूतत्व प्रसंग में गुप्त जी ने धृतराष्ट्र की विवशता का व्यापक चित्रण[4] करके उनकी मनोव्यथा को जानने का प्रयास किया है।

दुर्योधन

आधुनिक प्रबन्धकाव्यों में राजा दुर्योधन का चरित्र चित्रण एक महत्वाकांक्षी राजा, राजनीतिज्ञ एवं अन्यायी व्यक्ति के रूप में किया गया है। 'महाभारत' में दुर्योधन के चरित्र में तामसी एवं राजसी वृत्ति की प्रधानता दिखाई है और उसी का अनुकरण आधुनिक कवियों ने किया है। आधुनिक कवियों की विचारधारा को दुर्योधन के विषय में दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथमतः मैथिली शरण गुप्त, द्वारकाप्रसाद मिश्र आदि ने दुर्योधन के चरित्र को पूर्णतः महाभारत के अनुसार कलि के अवतार राज्यलोभी अयोग्य शासक दम्भी गुरुजनानादरकर्ता हठक के रूप में चित्रित किया है। द्वितीय वर्ग के कवियों ने दुर्योधन के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। आनन्द कुमार, लक्ष्मी नारायण मिश्र, दिनकर आदि प्रमुख कवियों ने दुर्योधन के चरित्र में परिवर्तन किया है। इन कवियों के मन में महाभारतकार का पाण्डव पक्ष अत्यन्त प्रबल है और वहां दुर्योधन के प्रति पूर्ण न्याय नहीं हुआ। वस्तुतः दुर्योधन के चरित्र की दुष्ट वृत्तियों का मुख्य कारण राज्य था, किन्तु राज्य के विषय में उसकी आसक्ति सामान्य थी।

'महाभारत' के दुर्योधन राजनीति में निपुण, धन एवं सम्मान देने में और अन्यों को अपना बना लेने में चतुर हैं। सम्भवतः इसी कारण हृदय से इच्छा न होते हुए भी भीष्म और द्रोण दुर्योधन के पक्ष में लड़े।

आधुनिक काव्यकारों ने दुर्योधन के ऊपर आधारित किसी पृथक प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की। महाभारत के अन्याय प्रसंगों पर रचित काव्यों में ही दुर्योधन के चरित्र विषयक विचारों की झलक मिलती है। जयभारत, कृष्णायन, 'सेनापति कर्ण', 'अंगराज' आदि रचनाओं में दुर्योधन का चरित्र चित्रण हुआ है। दुर्योधन के

---

१ म० सभा० ५४।१०
२ म० आदि० २००।१
३ जय भारत पृ० ६६
४ जयभारत, पृ० ३३३

चरित्र के प्रति प्रत्येक कवि का अपना पृथक् दृष्टिकोण है। यद्यपि यह दृष्टिकोण उनके विचारों की व्यावहारिकता पर आधृत है किन्तु इससे 'महाभारत' के दुर्योधन को नये प्रकाश में आने का अवसर प्राप्त हुआ है।

तामसिकचरित्र 'महाभारत' में दुर्योधन का विकास प्रारंभ से अन्ततक तामसी चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है। अकारण पाण्डवों से वमनस्य[१], भीमसेन को विष देना[२] निरन्तर पाण्डवों को कष्ट देना[३], वारणावत यात्रा की योजना[४], द्यूत क्रीडा[५], वनवास में भी पाण्डवों को तंग करने की योजना[६], कृष्ण के आगमन पर भी सुई की नोक के बराबर भूमि न देना[७] आदि कर्म उसकी दुष्टता के परिचायक हैं। वह शकुनि और कर्ण के परामर्श पर समस्त कार्य करता है और भीष्म, द्रोण तथा विदुर के परामर्श को ठुकरा देता है।

भारतीय परम्परा को यथावत स्वीकार करने वाले कवियों ने दुर्योधन के चरित्र के उक्त अवगुणों को महाभारत के स्वर में ही चित्रित किया है। उन्होंने पात्र की स्थिति परक भावानुभूति के प्रति उपेक्षा करके उसे स्थिर रूप में स्वीकार किया है। गुप्त जी का दुर्योधन प्रकृति का दुर्दान्त है अन्यथा गुणग्य और कुल जात भी है।[८] जयभारत में युधिष्ठिर दुर्योधन और एकलव्य की मित्रता में दुर्योधन की प्रीति को जघन्य बताते हैं।[९] वह मिथ्या अहंकार का प्रतीक है।[१०]

स्वाभिमान एवं वीरत्व दुर्योधन के चरित्र का प्रमुख रूप उसके स्वाभिमान और वीरत्व में है। उसमें रजोगुण की प्रधानता है। महाभारत' और आधुनिक काव्य में दुर्योधन के स्वाभिमान के प्रति उदारता की भावना का अभाव रहा। महाभारतकार इस भाव को दम्भ की सीमा मानकर चला और आधुनिक काव्य में भी भारती परम्परा के कवियों ने उसे स्वीकार किया। दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या थी किन्तु वह वीर क्षत्रिय की भांति रणभूमि में युद्ध करने की भावना का प्रकाशन करते हुए रण को ही एकमात्र निर्णायक मानता है।[११]

---

१ म० आदि० १२७।२५
२ म० आदि० १२७।४४-४५
३ म० आदि० अध्याय १२७
४ म० आदि० अध्याय १४१
५ म० सभा० अध्याय ५६
६ म० वन० अध्याय ७
७ म० उद्योग० अध्याय १२७
८ जयभारत पृ० ४२
९ जयभारत पृ० ५७
१० दुर्योधन वध, पृ० ४०
११ म० सभा० ४६।३६ दक्षिणात्य पाठ

स्पष्ट वक्ता दुर्योधन के चरित्र में स्पष्ट वक्तृत्व की शक्ति विद्यमान है। वह अत्यन्त नीतियुक्त वचनों के द्वारा विदुर का विरोध करता है। अपनी मनोवृत्ति के कार्यों में ईश्वर की ही नियन्ता मानकर विश्वास करता है।[१] उसका कथन है कि इस संसार का शासक एक है वही मुझे अनुशासित करता है, जैसे जगन्नियन्ता मुझे किसी काम में लगाता है मैं वैसा ही करता हूँ।[२] दुर्योधन के इन वचनों से उसकी भाग्यपरता स्पष्ट होती है। किंतु यह भाग्यवादिता उसे अकर्मण्य नहीं होने देती वह निरन्तर पुरुषार्थी बना रहता है। भाग्यवादी विचारधारा का किरलसूत्र उसके जीवन में विद्यमान था। आधुनिक कवियों में मिश्र जी ने दुर्योधन के चरित्र के इस रूप को देखने का प्रयास किया है।

पराक्रम विश्वासी दुर्योधन को अपने पराक्रम पर विश्वास है।[३] वह युद्ध का सन्देश भेजता है। वह हठधर्मी और गर्वी होते हुए आशावादी भी है। वह पराजय के कारणों को देखता हुआ भी उनके समक्ष परास्त न होकर संघर्ष करता है। यहीं पर आधुनिक कवि ने दुर्योधन के अहं के मध्य उसके शौर्य की झलक देखी। दुर्योधन भीष्म द्रोण के पतन को भाग्य की छलना मानता है।[४] अन्यथा इतने लोक विश्रुत वीर इस प्रकार न मारे जाते। इसी प्रसंग में वह धर्मराज की सत्यप्रियता पर व्यंग करता है।[५]

दुर्योधन को अपनी वीरता पर विश्वास है किन्तु पराजित होने पर वह आत्म ग्लानि[६] से भरता है। चक्रव्यूह के प्रसंग में यह ग्लानि उसके मन का संचारीभाव है। यह अधिक समय तक उसे प्रभावित नहीं कर सकी। गुप्तजी ने स्वतन्त्र प्रसंग में दुर्योधन की ग्लानि को चित्रित किया है। इससे सिद्ध होता है कि दुष्ट व्यक्ति भी पराजय को स्वीकार करता है और अपनी सीमा को मान लेता है। पर दुर्योधन क्षणिक भावना के बाद पुनः पूर्ववत हो जाता है।[७]

चरित्र की इस दुर्बलता के साथ उसका प्रबल पक्ष भी है। अन्धकाराच्छन्न मेघ-संकुल आकाश में विद्युल्लतिका के समान उसकी आस्था व्यक्त होती है। द्रोण के मरने पर वह इसलिए संधि नहीं करता कि यह अन्य मृत व्यक्तियों के प्रति विश्वासघात होगा। यह कर्त्तव्यनिष्ठा उसके चरित्र का उज्ज्वल रूप है। यहाँ पर महाभारतकार ने दुर्योधन के चरित्र के दो पक्ष चित्रित किए हैं। प्रथमतः उसके

---

१ म० सभा० ६४।६ ७
२ म० सभा० ६४।८
३ म० उद्योग० १६०।४७ ५२
४ सेनापति कर्ण, पृ० ६, ३१
५ सेनापति कर्ण, पृ० [illegible]
६ म० वन० २४६।४ १२
[illegible] जयभारत, पृ० २१६ २१७

मन में अपने पूर्वकृत पापों का स्मरण होता है।[1] द्वितीयतः इस समय की संधि अपमानजनक है[2] वह एक वीर की भांति रणभूमि में मृत्यु को वरेण्य समझता है।[3]

मनोवैज्ञानिकता महाभारतकार ने दुर्योधन के चरित्र को मनोवैज्ञानिक रूप में उपस्थित किया है। परन्तु मिश्र जी के दुर्योधन में मानवीय दुर्बलताओं के कारण पराजय के उपरान्त स्वाभाविक दुर्बलता प्रकट होती है पर उसका गर्व उसे पुनः प्रतिशोध के लिए प्रेरित करता है। यही मूल भाव दुर्योधन के चरित्र का केन्द्र बिन्दु है। कहीं-कहीं इस स्थल की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी हो पाई है। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने दुर्योधन की उक्त मानवीय दुर्बलता और प्रतिशोध की भावना के अज्ञात सम्मान की पृष्ठभूमि में चित्रित किया है। उसे अपने वंश का गर्व है।[4] 'अंगराज' में आनन्द कुमार ने द्रौपदी के अपमान के प्रसंग में दुर्योधन के चरित्र की व्याख्या की है।[5] आज के युग में दुर्योधन का चरित्र दर्पान्ध दम्भी और तामसी नहीं है जैसा महाभारत में। उसमें अदम्य आत्म बल की प्रधानता है।

चरित्र परिष्कार आधुनिक युग में सामान्यतः दुर्योधन के चरित्र के परिष्कार की ओर ध्यान दिया गया है। यह परिष्कार केवल भावनागत नहीं अपितु तार्किक है। दुर्योधन के प्रत्येक अवगुण के पीछे तर्क है एक स्वाभाविक उत्तेजना है जिसके कारण वह पाण्डवों का द्रोही बन गया है। आधुनिक कवियों ने यह जानने का पूर्ण प्रयास किया है कि इन परिस्थितियों में व्यक्ति का चरित्र कैसा हो सकता था?

दुर्योधन के प्रारंभिक द्वेष का कारण पाण्डवों का जन्म था। इसकी अभिव्यक्ति रश्मिरथी,[6] सेनापति कर्ण[7] और अंगराज में हुई है। पाण्डवों के जन्म की कथा को दुर्योधन अपने वंश का कलंक मानता है।[8]

स्वभाव में हठ के कारण ही सम्भवतः दुर्योधन ने पाण्डवों को राज्य नहीं दिया। आधा राज्य न देने के विषय में 'महाभारत' के समाधानों को स्वीकार न करके भी आधुनिक कवियों ने कोई तार्किक समाधान प्रस्तुत नहीं किया। आनन्द

---

१ म० शल्य० ५।८ ११ शल्यवध, पृ०२५
२ म० शल्य० ५।४४ ४५ शल्यवध पृ० २८
३ म० शल्य ५।४७
४ सेनापति कर्ण, पृ० ८ ६
५ अंगराज, पृ० ७६
६ सेनापति कर्ण, ३१
७ रश्मिरथी, पृ० ८
८ सेनापति कर्ण पृ० ७
६ सेनापति कर्ण, पृ० ७

कुमार' ने तो द्यूत का उत्तरदायित्व भी युधिष्ठिर पर डाल दिया[1] और दुर्योधन के चरित्र को निष्कलंक बनाने का प्रयास[2] किया। अंगराज के एकांगी आग्रह को तो हम स्वीकार नहीं करते किन्तु इतना अवश्य है कि तत्कालीन वर्ग एवं जाति बन्धन के युग में दुर्योधन का पाण्डवों के प्रति द्वेष पूर्ण व्यवहार अनुचित इसलिए था कि अन्य व्यक्तियों से इस व्यवहार का समर्थन नहीं मिला। समग्र रूप में आधुनिक काव्य में 'महाभारत' का दुर्योधन पर्याप्त रूप में सुयोधन ही बनकर चित्रित हुआ है।

कर्ण

'महाभारत' के चरित्रों में कर्ण सर्वाधिक विवाद का विषय रहा है। 'महाभारत' के अन्य प्रमुख पात्रों में युग भावना के गहरे आग्रह के कारण भी अधिक परिवर्तन नहीं किया जा सका किन्तु कर्ण एकमात्र ऐसा चरित्र रहा जिसके जीवन में आधुनिक सुधारवादी कवियों को वर्गभेद, धर्मभेद, जातिभेद के विरुद्ध स्वरघोष करने का आधार मिल सका। 'महाभारत' में कर्ण का चरित्र अत्यन्त प्रभावशाली और वीरता दान करुणा से परिपूर्ण है। वसुषेण, वृष, कर्ण, जीव आदि नाम भी परोक्ष रूप से उसके गुणों पर आधारित हैं। कवच कुण्डलधारी होने के कारण कर्ण का नाम वसुषेण रखा गया। कवच कुण्डल काटकर देने के कारण वैकर्तन कर्ण नाम हुआ, सत्यवादी तपस्वी, वदान्यादी होने के कारण उसका नाम वृष और बृहस्पति के समान बुद्धिमान होने के कारण उसका नाम जीव रक्खा गया। स्वयं कृष्ण ने कर्ण की चारित्रिक उच्चता का चित्रण इस प्रकार किया है—

> त्वमेव कर्ण जानासि वेदवादानसनातनम्।[3]
> त्वमेव धर्मशास्त्रेषु सूक्ष्मेषु परिनिष्ठितः॥

भिन्न प्रतीकार्थ वाचक धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ, वीर पुरुषार्थी त्यागी, कर्ण का चरित्र आधुनिक काव्य में 'महाभारत' से भी अधिक उज्ज्वल रूप में चित्रित किया गया है। कर्ण पर लिखे गये प्रबन्ध काव्यों में कवियों की मूल दृष्टि कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष की ओर रही है। कर्ण के चरित्र को माध्यम बनाकर इन कवियों ने अपनी सुधारवादी वृत्तियों की स्थापना की है। कर्ण के चरित्र के प्रति महाभारतकार की भी पूर्ण सहानुभूति रही है। हम पहले भी कह आये हैं कि कर्ण के चरित्रांकन में आधुनिक जीवन के दृष्टिकोण का अधिक प्रभाव है। वह कलंकित मानवता का प्रतीक है।[4] वीरत्व का आदर्श[5] पुरुषार्थ निष्ठा और त्याग की मूर्ति[6]

1. अंगराज, पृ० ७४
2. अंगराज, पृ० ७५
3. म० उद्योग १४०।७
4. रश्मिरथी, भू० पृ० रु ग।
5. सेनापति कर्ण, पृ० १२२, १३३
6. अंगराज, पृ० २८ २६

निष्कलंक एवं उदात्त[१] है। उसमें हम एक विशेष प्रकार की अहम्मन्यता पाते हैं, किन्तु यह अहम्मन्यता ही उसे अन्त तक पुरुषार्थी, दानी और शक्तिशाली बनाये रहती है।

आत्म विश्वास पूर्ण वीरत्व कर्ण के चरित्र का प्रमुख गुण आत्म विश्वास पूर्ण वीरता है। प्रारम्भ से ही कर्ण को अपने बल पर पूर्ण विश्वास है। रंगभूमि में अर्जुन की स्पर्धा में कर्ण का वीरत्व व्यक्त होता है। इस स्थल ने समान रूप से आधुनिक कवियों को प्रभावित किया है और सभी कवियों ने अपने अनुसार कर्ण के वीरत्व का चित्रण किया है। महाभारतकार ने कर्ण का व्यक्तित्व इस रूप में व्यक्त किया है।

सिंहर्षभगजेन्द्राणां बलवीर्य पराक्रम।
दीप्तिकान्ति द्युति गुणैः सूर्येन्दुज्वलनोपम ।[२]

महाभारतकार की इस उक्ति के आधार पर ही दिनकर का कर्ण रंगभूमि में अपना वीरत्व प्रकट करता है।

पूछो मेरी जाति शक्ति हो तो मेरे भुज बल से।
रवि समान दीपित ललाट से और कवच कुण्डल से ॥[३]

गुप्त जी का कर्ण वीर एवं दम्भी है।[४]

वीर युग का प्रतिनिधि कर्ण का चरित्र वीर युगीन भावनाओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। वीरता के साथ दम्भ और विश्वास दोनों होते हैं। कर्ण के साथ वीरत्व का प्रमुख रूप यह था कि वह कभी भी अपने को किसी से हेय न समझ सका। इसी विश्वास के साथ वह अन्त तक संघर्ष करता रहा। अर्जुन से द्वन्द्व युद्ध के अनेक अवसर आये द्रुपद के यहां द्रौपदी स्वयंवर में, विराट पर्व में गौहरण प्रसंग में तथा 'महाभारत' के मूल युद्ध में किन्तु 'महाभारत' का कर्ण सर्वदा परास्त होता रहा। 'अंगराज' में कर्ण का चरित्र मूल ग्रंथ की भावना को स्वीकार करते हुए भी अतिरंजित वीरत्व के साथ चित्रित किया गया है। कर्ण के चरित्र की विशेषता है कि वह निर्भयता से युद्ध में रत रहा। कर्ण शल्य से कहता है कि मैं भय प्राप्ति के लिए उत्पन्न नहीं हुआ हूं। मैं तो पराक्रम करने और यश बढ़ाने के लिए उत्पन्न हुआ हूं,[५] देवराज इन्द्र से भी युद्ध करते हुए मुझे भय नहीं हो सकता।[६]

---

१ त्रिपथगा, पृ० १
२ म० आदि० १३५।४
३ रश्मिरथी, पृ० ५
४ जयभारत पृ० ६
५ नाहिमद्य समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक।
विक्रमार्थमहं जातो यशोऽर्थं च तथात्मन। म० कर्ण० ४३।६
६ म० कर्ण० ३७।१३

'अंगराज' में कर्ण की निर्भयता का सुंदर चित्रण है। वीर व्यक्ति कभी भी शत्रु की सेना देखकर विचलित नहीं होता, शत्रु सेना उसके क्रोध का अवलम्बन है। अपने ध्येय की प्राप्ति के हेतु जीवन संग्राम में कूदना व्यक्ति के पुरुषार्थ की चरम स्थिति है। कर्ण इसी स्थिति का द्योतक है।[1]

कर्ण की दर्पोक्ति में उसका वीरत्व निहित है। वह अपने पुरुषार्थ के बल पर दिव्य शक्तियुक्त अर्जुन को ललकारता है। दिनकर ने कर्ण की ललकार को अत्यन्त सशक्त रूप में चित्रित किया है।

हो छिपा जहां भी पार्थ सुने अब हाथ समेटे लेता हूं,
सबके समक्ष द्वैरथ रण की मैं उसे चुनौती देता हूं।[2]

पार्थ को कर्ण की यह चुनौती[3] उसके वीरत्व का साक्षात प्रमाण है।

'सेनापति कर्ण' में कर्ण के वीरत्व का व्यापक चित्रण नहीं हो पाया। वीर व्यक्ति के हृदय में शत्रुवीर के लिए भी आदर का भाव होता है। 'महाभारत' का कर्ण अर्जुन के महत्व को स्वीकार करता है।[4] सेनापति कर्ण' का कर्ण अर्जुन की निन्दा सुनना नहीं चाहता क्योंकि वीरत्व धर्म में वीर निन्दा त्याज्य है।[5]

वीरत्व के चरम कर्मक्षेत्र में पहुंचकर कर्ण दैव की क्रूर गति से भी भयभीत नहीं होता है। 'महाभारत' का कर्ण विप्रशाप और परशुराम के शाप के स्मरण से भयभीत है।[6] इस पर भी उसे पुरुषार्थ में विश्वास है।[7] यही पर कर्ण का चरित्र अन्य युद्ध वीरों से उच्च हो जाता है। अन्य वीर जहां दैव विरोध को हटाकर युद्धरत हुए, कर्ण दैव विरोध के होते हुए भी युद्ध में संलग्न रहा। अर्जुन की विजय के हेतु इन्द्र को कवच कुण्डलों का दान मांगना पड़ा। इस स्थल पर दिनकर जी ने महाभारत के कर्ण के चरित्र का परिष्कार कर अत्यन्त तेजस्वी रूप में चित्रित किया है। 'महाभारत' का कर्ण शोक करता है, किन्तु 'रश्मिरथी' का कर्ण अपनी विजय की घोषणा करते हुए कितना प्रसन्न होता है।[8]

---

१ अंगराज, पृ० २२१
२ रश्मिरथी, पृ० १४४
३ रश्मिरथी, पृ० १६१
४ म० कर्ण० ४२।१५
५ सेनापति कर्ण, पृ० १८४
६ म० कर्ण० ४२।३
७ अंगराज, पृ० २२१
८ अब जाकर कहिये कि पुत्र मैं वृथा नहीं आया हूं,
अर्जुन तेरे लिये कर्ण से विजय मांग लाया हूं॥
दो वीरों ने किन्तु लिया कर आपस में निपटारा
हुआ जयी राधेय और अर्जुन इस रण में हारा। रश्मिरथी, पृ० ७५

दिनकर जी के कर्ण में महान वीर के गुणों की अभिव्यक्ति है। कर्ण शूर धर्म की व्याख्या करता है कि शूर व्यक्ति भाग्य को भी परिवर्तित कर सकता है।[1] कर्ण के चरित्र में वीरत्व के साथ सत्यता की प्रतिष्ठा[2] दिनकर की कर्ण को मुख्य देन है। मानवता छल और छद्म से कलंकित होती है। अपने बाहुबल पर भरोसा रखने वाला मर मर भी विजयी बनता है। अतः कर्ण बाहुबल का समर्थन करता है।[3]

धर्मयुद्ध कर्ण के चरित्र की मुख्य विशेषता है कि उसने कभी भी कूट युद्ध का आश्रय नहीं लिया। उसकी मानववादी भावना युद्ध क्षेत्र में भी जीवित रही।[4] वह अपने परलोक को इस जीवन में पाप करके मिटाना नहीं चाहता।[5]

कर्ण के वीरत्व और दानवीरता के अनेक स्थल महाभारत में प्राप्त हैं। कलिंग युद्ध का प्रसंग निश्चित ही कर्ण के शौर्य की अभिव्यक्ति करता है। आधुनिक काव्य में अंगराज में ही इसकी चर्चा की गई है। कर्ण का चरित्र इतना महान रहा कि कुरुराज ने भीष्म द्रोण के प्रति अविश्वास प्रकट किया पर कर्ण के प्रति वह पूर्ण आश्वासित रहा। कर्ण के चरित्र के सभी गुण कृष्ण ने एक ही स्थल पर व्यक्त कर दिये।[6] कर्ण के इन चारित्रिक गुणों के कारण ही आधुनिक काव्यों में यह चरित्र नायक बना। दिनकर[7] और आनन्द कुमार[8] ने कर्ण के चरित्रांकन में वीरता का आदर्श उपस्थित किया है। साहसी वीर कर्ण आज भी पुरुषार्थ प्रेमी व्यक्तियों के लिए आदर्श है। अपने जीवन में सब प्रकार की शक्ति को खोकर भी कर्ण पराक्रम के बल से लड़ा यही पुरुषार्थ प्रियता इन काव्यों की उपलब्धि है।

---

१ वह करतब है यह कि शूर जो चाहे कर सकता है,
नियति भाल पर पुरुष पांव निज बल से धर सकता है। रश्मिरथी पृ०७३
२ रश्मिरथी पृ० ७३
३ रश्मिरथी ७३
४ कपट दूषित करके प्रयोग, हम नहीं चाहते विजय भोग।
अंगराज पृ० २५६
५ अगला जीवन किसलिए भला
तब हो द्वेषान्ध बिगाड़ें मैं।
सांपों की जाकर शरण
सर्प बन क्यों मनुष्य को मारें मैं॥ रश्मिरथी पृ० १८१
६ तेजसा वहि्नसदृशो वायुवेग समो जवे
यमतुल्यः प्रतिमः क्रोधे सिंह संहननो बली। म० कर्ण० ७२।२६
७ रश्मिरथी, पृ० २०२ २०३
८ अंगराज पृ० २३७, २५६, २६०

मानसिक द्वन्द्व आधुनिक कवि ने कर्ण म मानसिक द्वन्द्व का चित्रण कर 'महाभारत' स पृथक् एक चारित्रिक विशेषता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।

'महाभारत' मे कर्ण के मानसिक सघर्ष के अनेक स्थल आते हैं। उन सभी स्थला म महाभारतकार मानसिक द्वन्द्व वा अन्तर व्यथा की गहरी अनुभूति क रूप म नहीं उतार सका। इसका कारण यह है कि महाभारत के विशाल रूप म मानसिक द्वन्द्व को अधिक स्थान नहीं दिया गया। वहा प्रत्येक पात्र अपनी शक्ति की सीमा म परिछिन्न है। अत कर्ण के मानसिक सघर्ष को व्यक्तिगत रूप मे 'महाभारत' म चित्रित नहीं किया गया। मानसिक द्वन्द्व क मुख्य स्थला मे कुन्ती-कर्ण सवाद इन्द्र कर्ण प्रसग, भीष्म-कर्ण सवाद परशुराम कर्ण प्रसग ही प्रमुख हैं। आधुनिक काव्यकारा ने महाभारत' के स्थला क आधार पर कर्ण क चरित्र का मानसिक सघर्ष प्रस्तुत किया है।

जातिगत सघर्ष महाभारत म कर्ण का चरित्र जिस रूप म विकसित हुआ है उसक कई मनोवैज्ञानिक कारण माने जा सकते हैं। रगभूमि म प्रथम बार कर्ण वीरत्व प्रदर्शन क लिए आता है। कर्ण वीर है तेजस्वी है और जन्मजात कवच कुण्डल धारी व्यक्ति है अत उस अपने वीरत्व व्यक्तिगत शक्ति पर अटूट विश्वास होना स्वाभाविक है। समान शक्तिशाली होने पर भी कर्ण जातिहीनता क कारण तिरस्कृत हुआ। इस जातिगत तिरस्कार के कारण वह पाण्डवा का घोर शत्रु और दुर्योधन का अनन्य मित्र बना था। कर्ण क मानसिक सघर्ष का मूल यही जाति और कर्म का सघर्ष है। 'महाभारत म यह सघर्ष व्यापक नहीं है। कृपाचार्य क प्रश्न को सुनकर कर्ण केवल लज्जित हो उठता है।[1]

दिनकर जी न इस स्थल पर कर्ण क चरित्र क आन्तरिक सघर्ष का चित्रण किया है।[2] इस प्रसग म जन्म और कर्म की विवेचना की है।[3] कुल और जाति क अहकार की समाप्ति हेतु कर्ण क चरित्र का प्रस्तुत करके[4] घोषणा की है कि भविष्य म व्यक्ति-सामर्थ्य क अनुसार समाज म स्थान ग्रहण कर सकेगा[5] केवल जन्म क कारण नहीं। कर्ण क चरित्र क द्वारा यह सिद्धान्त व्यापक रूप म उपस्थित किया गया है जो आज की बौद्धिकता का परिचायक है।

कुती और कर्ण क सवाद म महाभारत का कर्ण अधिक उग्र है[6] किन्तु आधुनिक कवियो न कर्ण क हृदय को अत्यन्त कोमल चित्रित किया है। दिनकर का

१ म० आदि० १३५।३४
२ रश्मिरथी, पृ० ४
३ रश्मिरथी पृ० ५ ६
४ रश्मिरथी पृ० ७
५ रश्मिरथी, पृ० ४६ ५०
६ म० उद्योग० १४६।८

रण भावुक है[१] अगराज म भी कण भावनामय है।[२] मिश्र जी का कण तो कुन्ती को
ासव की शक्ति क विषय म बताकर अपनी पराजय और भी स्वीकार कर लेता है।
घुम्रा के प्रति त्याग की यह उदार भावना 'सेनापतिकण' म मिश्र जी की मौलिक
झ है।[३] इस प्रसग क आधार पर कण के चरित्र को द्वन्द्वमय दिखाया है। वह
नतान्त स्वाभाविक रूप से कुन्ती की भत्सना करता है। उसके हृदय का सम्पूर्ण
ोप व्यक्त होता है पर अन्ततः वह दयालु हो जाता है।

परशुराम और कण क प्रसग म भी कण के मानसिक द्वन्द्व को स्वर
दया गया है। कण जन्मगत हीनता के कारण ही परशुराम से शिक्षा प्राप्त न कर
का, उस इस बात का क्षोभ नहीं किन्तु 'परशुराम' के मुख से ब्राह्मणकुमार शब्द
सुनते ही कण क हृदय म क्षोभ भर जाता है। मन धिक्कारने लगता है[४] कण ने
रशुराम से छल किया यह उसक चरित्र का दुबल पक्ष है। कण आत्मग्लानि
और रक्त की धार बहाकर छल क पाप को धो देता है और गुरु क शाप का निरो
ाय कर पुन पवित्र हो जाता है। कण के चरित्र के इस उदाहरण से आज का
वि छल का विरोध करता है और कहता है कि अनुचित रीति से प्राप्त विद्या
ार भरी एव भयकरी नही होगी।[५]

भगवती चरण वर्मा ने कण क चरित्र का चित्रण द्रौपदीस्वयवर के सन्दभ
र किया है। निश्चित ही यह वह दृष्टि है जिसको ओर अ य कवियो का ध्यान नहीं
या। वर्मा जी ने कण क जीवन म अजुन क प्रति शत्रुता का मुख्य कारण द्रौपदी से
अपमानित होना माना है। समान वीर होन क कारण भी कण द्रौपदी से अपमानित
हुआ। इसी स्थिति म वह उस अर्जुन का चिर शत्रु क्या न बनता जिसने द्रौपदी
ो प्राप्त किया।[६]

दानवीरता कण क चरित्र का मुख्य गुण दान वीरता थी। महाभारत'
ा वह ब्राह्मणो को अधिक दान देता दिखाई देता है। कवच कुण्डल दान माता कुन्ती
ो चार भाइयो का प्राणदान निश्चित ही उसके चरित्र को प्रशस्त बनाते हैं।[७] मिश्र
रश्मिरथी[८] मानन्द कुमार[९] तथा अन्य कवियो न कण की दानशीलता का यथावत

१ रश्मिरथी पृ० १०५ १०६
२ अगराज पृ० १५
३ सेनापति कण, पृ० १२६
४ रश्मिरथी, पृ० १७
५ अगराज, पृ० ५१
६ त्रिपथगा पृ० ४१
७ सेनापति कण पृ० ३४
८ रश्मिरथी, पृ० ६०
९ अगराज पृ० ६५

चित्रण किया।

कर्ण के चरित्र का मूल आधार उसके जन्मजात एवं अर्जित गुणों के संघर्ष में है। आधुनिक कवि कर्ण के वीरत्व पर और दानशीलता पर मुग्ध है अतः कर्ण की वीरता और दानशीलता की पुनः प्रतिष्ठा के हेतु कर्ण पर काव्य रचना की गई। इसके साथ कर्ण के चरित्र का सामाजिक रूप भी है। दिनकर ने रश्मिरथी की भूमिका में स्पष्ट किया है कि कर्ण चरित्र का उद्धार निश्चित ही नयी मानवता की स्थापना है।[1] वस्तुतः आज का कवि जन्मगत उच्चता धर्मगत प्रतिष्ठा के विरोध में अपना स्वरघोष करना चाहता है। 'सेनापति कर्ण' में जातिगत उच्चता और हीनता का विरोध किया गया।

'महाभारत' का कर्ण आदर्श पात्र है। कृष्ण भीष्म और स्वयं अर्जुन उसकी प्रशंसा करते हैं। वह पराक्रम व बल पर युद्ध करता है। उसे अपने पुरुषार्थ पर पूर्ण विश्वास है। आधुनिक कवि पराजित जाति के रक्त में एक बार पुनः आत्म-गौरव कर्म की उच्चता पुरुषार्थ के प्रति विश्वास और अनन्य मित्रता के गुण भरना चाहता है। दुर्योधन के प्रति कर्ण की मित्रता किसी महान् चरित्र का आचरण ही हो सकती है। ऐसी अभिन्न और अटूट मित्रभक्ति का निर्वाह कर्ण जैसा वीर ही कर सकता था। ऐसे उत्कृष्ट गुण जिस चरित्र में विद्यमान हैं उसका पुनरुत्थान आवश्यक है। कर्ण चरित्र पर लिखे काव्य इसी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। कर्ण का चरित्र इन शब्दों में अपने अस्तित्व की घोषणा करता है।

मैं उनका आदर्श किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे।
निज चरित्र बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।[2]

अश्वत्थामा

द्रोण पुत्र अश्वत्थामा का चरित्र महाभारत में अदम्य वीरत्व,[3] मनों की दृढ़ता[4] उदारता,[5] आदि सद्गुणों से युक्त है। वह ब्रह्म और क्षात्र तेज का अलौकिक समन्वय है। इन गुणों के अतिरिक्त महाभारत के युद्ध के अन्तिम दिन की रात्री में द्रौपदी के पुत्रों धृष्टद्युम्न तथा अन्य वीरों की जघन्य हत्या का अपराध भी अश्वत्थामा के चरित्र का मुख्य रूप है।[6] इस प्रकार 'महाभारत' का यह चरित्र दो विरोधी किनारों पर एक साथ व्यक्त हुआ है।

---

१ रश्मिरथी, भूमिका पृ० ख
२ रश्मिरथी, पृ० ६७
३ म० आदि० १२६।४७ म० द्रोण० अध्याय, १५६, १६०, १६५, २०१
४ म० शल्य० अध्याय ६५
५ म० सौप्तिक० १३।१६
६ म० सौप्तिक० अध्याय ८

आधुनिक काव्य में अश्वत्थामा के चरित्र का चित्रण उसके समस्त गुणों के साथ किया गया है और हत्या के अपराधी के रूप में उसकी भर्त्सना भी उतनी ही मात्रा में की गई है। लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने अश्वत्थामा के चरित्र का परिष्कार किया है। चरित्र सृष्टि की नवीनता इस रूप में प्रस्तुत की गई है कि मिश्र जी को महाभारत की अनेक लोक विश्रुत घटनाओं का अस्वीकार करना पड़ा।[१] यद्यपि कवि प्राचीन कथानकों के ग्रहण में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है किन्तु मिश्र जी ने बिना किसी पुष्ट तर्क के द्रौपदी के पुत्रों की स्थिति की अस्वीकृति दी है और इस कारण अश्वत्थामा के ऊपर लगे हत्या के आरोप को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयास किया है। सौप्तिक पर्व में वर्णित इन घटनाओं को न मानकर कवि ने अपने ग्रंथ में चरित्र का परिष्कार कर दिया है किन्तु आधार पुष्ट न होने के कारण हम यह स्वीकृत नहीं है। मैथिलीशरण गुप्त, आनन्दकुमार,[२] द्वारकाप्रसाद मिश्र[३] उग्रनारायण आदि कवियों ने अश्वत्थामा के चरित्र को 'महाभारत' के अनुरूप चित्रित करके उसके व्यक्तित्व में शौर्य की प्रतिष्ठा की है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अश्वत्थामा के चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उन्होंने सौप्तिक पर्व की घटना का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध द्रोण की हत्या से किया है। द्रोण का वध भी युद्ध करते नहीं हुआ था अपितु ध्यानस्थ द्रोण का सिर धृष्टद्युम्न ने काट डाला और पिता का प्रण पूर्ण किया। अश्वत्थामा का मन इस अत्याचार पर पूर्ण विदग्ध है इसी कारण वह अपने पितृघाती से प्रतिकार के लिए आश्वस्त है।[४]

इस मानसिक क्षोभ की पृष्ठ-भूमि में अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के वध की बार बार प्रतिज्ञा करता है।[५] मिश्र जी अश्वत्थामा के साधन का मध्य का प्रतिज्ञा धारा के साधना के अनुरूप मानते हैं और हत्या के दोष से अश्वत्थामा को मुक्त करते हैं।[६] मिश्र जी द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के नाश की कहानी को असत्य मानकर अश्वत्थामा के चरित्र दोष का निवारण का प्रयास करते हैं। इस चरित्र-सृष्टि में जहाँ तक धृष्टद्युम्न की हत्या की मानसिक पृष्ठभूमि का प्रश्न है हमें यह मान्य हो सकती है और कवि ने उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया है वह मनोवैज्ञानिक है। इसके साथ द्रौपदी के पाँच पुत्रों की अस्वीकृति से हम सहमत नहीं है। यह मिश्र जी की निर

---

१ सेनापति कर्ण, पृ० २६
२ जयभारत, पृ० ४१४
३ अंगराज, पृ० २८७
४ सेनापति कर्ण, पृ० २६
५ सेनापति कर्ण, पृ० ३०
६ सेनापति कर्ण, पृ० ६३

यत करपना है इससे द्रौणि के चरित्र का समुचित परिष्कार भी नहीं होता। 'जय-भारत' म इस जघन्य काय की भत्सना की है। 'जयभारत म अश्वत्थामा अपन का केवल मात्र प्रतिहिंसा से पूर्ण मानता है।[1] यह उसके चरित्र का वास्तविक रूप है और मिश्र जी ने उसे जिस रूप म चित्रित किया है उसम वास्तविकता कम और कवि की भावना का आरोपण अधिक है।

शल्य

कर्ण वध के उपरान्त कौरव सेना को युद्धभूमि म उत्साहित करने वाले इस सेनापति के चरित्र का आलम्बन विस्तार से नहीं हुआ है। 'महाभारत म शल्य माद्री के भाई और पाण्डवो के मामा हैं। शल्य के ऊपर स्वतन्त्र रूप से एक ही प्रबन्ध काव्य लिखा गया है। 'शल्य वध' म शल्य के चरित्र को महाभारत के अनुरूप ही चित्रित किया है। शौर्य्य प्रण पालन अदम्य उत्साह और कत्तव्य निष्ठा की प्रतिमूर्ति शल्य इस भावना के प्रतीक हैं कि किस प्रकार प्रणबद्धता के कारण अपने सम्बन्धियो से युद्ध किया जा सकता है।

शल्य के चरित्र का प्रमुख दर्शन सवप्रथम महाभारत के युद्ध म भाग लेने के लिए माग म प्रस्थान हुए होता है।[2] दुर्योधन छल से शल्य को अपनाने की चेष्टा म सफल होते हैं[3] माग म स्वागत करने वाले के प्रति शल्य वचन बद्ध होते हैं।[4] बाद म वास्तविकता जान लेने पर भी दुर्योधन की ओर रहते हैं। युधिष्ठिर को भी उनका प्रिय काय करने का वचन देते हैं।[5] इस वचन का अपने सारथ्य काल म पूर्ण रूप म निर्वाह करते हैं।

शल्य का चरित्राङ्कन वीर युगीन भावना के अनुरूप हुआ है। सेनापति बनने के प्रस्ताव के उत्तर म शल्य अपनी कत्तव्य निष्ठा[6] की अभिव्यक्ति करते हैं। इस अभिव्यक्ति म उनके शौय की व्यजना हो पाई है। शल्य के चरित्र को आधुनिक काव्य म विशिष्ट नवीन कलेवर नहीं दिया गया। धर्म युद्ध की निन्दा करते हैं और बन्धु विग्रह को दुर्भाग्य के रूप मे मानते हैं। किन्तु अवसर पर विशुद्ध क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए प्राण त्याग देते हैं।

---

१ सचमुच ही मुझमे पाप पुण्य का अब क्या बोध बचा है।
लेने को देकर और सभी कुछ, बस प्रतिशोध बचा है।
जयभारत पृ० ४१४

२ म० उद्योग० अध्याय ८७

३ शल्यवध, पृ० ७

४ शल्यवध, पृ० १०

५ शल्यवध, पृ० १२

६ शल्यवध, पृ० ३१ ३२

वीर युग के चरित्र के सभी गुण शल्य में व्यक्त हुए हैं। उनका स्थायीभाव उत्साह है और आत्मश्लाघा अनुभाव। वे अन्य वीरों की भांति अनेक स्थानों पर अपने वीरत्व की प्रशंसा करते हैं।

नहुष

नहुष 'महाभारत' का उपाख्यानात्मक पात्र है। गुप्त जी ने नहुष के चरित्र को 'महाभारत' के अनुकूल चित्रित किया है किन्तु व्यक्तिगत दृष्टि की विशेषता के कारण 'नहुष' खण्डकाव्य का नहुष कतिपय नवीनताओं के साथ प्रस्तुत हुआ है। नहुष के चरित्र की पृष्ठभूमि में कवि के विचार द्रष्टव्य हैं।

'परन्तु व्यासदेव के द्वारा वर्णित इस आख्यान में स्पष्ट दिखाई दिया कि मनुष्य बार-बार ऊँचे उठने का प्रयत्न करता है और मानवीय दुर्बलताएं बार-बार उसे नीचे ले आती हैं। मनुष्य को उन पर विजय पानी ही होगी।'[1]

नहुष के चरित्र में मानवीय दौर्बल्य का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। 'महाभारत' का नहुष साधिकार शची की माग करता है[2] किन्तु नहुष में यह अंग मनोविज्ञानिकता से चित्रित है। पहले नहुष शची को देखकर विचार करता है कि मैंने इसकी उपमा की[3] तदुपरान्त प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर शची के लिए संघर्ष करता है।[4] यह मनोवैज्ञानिक संघर्ष चरित्र की स्वाभाविकता प्रदान करता है।

नहुष के चरित्र को मानवीय सद्वृत्तियों के विकास और असद्वृत्तियों के दमन के रूप में व्यंजित किया है। सद्वृत्ति से मानव देवता बनता है पर उसके विपरीत होने पर उसका पतन भी हो सकता है।[5] नहुष के चरित्र से कवि ने आधुनिक जीवन में भोग की लालसा का विरोध किया है। परस्त्री अनुरक्तता के दोषों को व्यंजित करके आदर्श की स्थापना की है।

राजा नल

महाभारत के उपाख्यानों में नल का कथानक आधुनिक कवियों को अधिक प्रिय रहा। आधुनिक काव्य के पूर्व भी नल की कथा को लेकर अनेक लघु आख्यान काव्यों की रचना की गई। यद्यपि पूर्व आधुनिक काल के काव्यों ने कथानकों और चरित्र चित्रण में कवियों की मौलिकता का प्रश्न नहीं उठता न तो उन कवियों ने कथा में कुछ परिवर्तन किया और न पात्रों की चरित्ररेखाओं में। उस काल के काव्य महा

१ नहुष, निवेदन, पृ० ४
२ अर्हमिन्द्रोऽस्मि देवानां लोकानां च तथेश्वर
आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम्। म० उद्योग० ११ १८
३ नहुष, पृ० ४३
४ नहुष, पृ० ४८
५ नहुष पृ० ६३

भारत' के भावानुवाद की भांति 'महाभारत' के प्रभाव की परम्परा की एक कड़ी मात्र है।

नल दमयन्ती का कथानक मुख्यत प्रेम कथा है और दोनों पात्र शुद्ध एव निष्ठ प्रेम के प्रतीक हैं। प्रेम व्यक्तिगत सम्पत्ति होते हुए भी सामाजिक व्यवस्था की अपेक्षा करता है अत ऐसे चरित्रों का आलेखन सामाजिकता की दृष्टि से अत्य न आवश्यक होना है। वर्तमान युग का कवि इसी भाव से प्रेरित होकर इस उपाख्यान पर काव्य रचना करता है।

धीर ललित नायक 'नल नरेश' और 'दमयन्ती' काव्यों म नल धीर ललित नायक हैं। उनम धीर ललित नायक के सभी गुण विद्यमान हैं। एकनिष्ठ प्रेमी, सुराज्य व्यवस्थापक प्रजापालक आदि गुणों से युक्त नल का चरित्र अपने समय के सामाजिक जीवन की झांकी प्रस्तुत करता हुआ उस काल के सामन्ती जीवन का स्पष्ट चित्र अंकित करता है।

महाभारत के नल समस्त कथा म एक यन्त्र की भांति चलते प्रतीत होते हैं जब कि आधुनिक काव्य मे नल का व्यक्तित्व एक स्वतन्त्र नायक के रूप मे हुआ है और उनम व्यक्तिगत प्रेम तथा सामाजिक संघर्ष के कारण मानसिक द्वन्द्व की पूर्ण स्थापना है। इस रूप म आधुनिक नल 'महाभारत' के होते हुए भी नवीन रूप म उपस्थित हुए हैं।[1] उनका चरित्र महाभारतकालीन प्रेम और जीवन की स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है।

'महाभारत' म हस एव नल के वार्तालाप के मध्य नल का व्यक्तित्व अधिक मुखर नहीं हो पाता, 'दमयन्ती' म इस सम्वाद के समय कवि ने नल के चारित्रिक उत्कर्ष म मानव धर्म की सशक्त अभिव्यक्ति की है। नल हस की दुर्दशा [illegible] पर दु ख कातरता के कारण स्वय भी दुखी होते हैं। इसमें कवि ने [illegible] धर्म का प्रतिपादन किया है।[2]

एकनिष्ठ प्रेम नल के गुणों म उनकी एकनिष्ठा [illegible] है। नल के चरित्र म यह प्रेम की एकनिष्ठा मानव के सर्वोच्च [illegible] ष्ठित है।

नरेश' और 'दमयन्ती' दोना काव्यो म प्रेम की एकनिष्ठता का चित्रण स्त्री सामाजिक दायित्व पर हुआ है।

देव वार्तालाप प्रसग म 'महाभारत' म नल सत्यता बता कर क्षमायाचना करते हैं।

कथ तु जात सरम्भ स्त्रियमुत्सृजते पुमान।
पराक्रमीदृश वचनु तत क्षमन्तु महस्वरा ।[1]

प्रण प्रेम सघर्ष 'दमयन्ती'[2] म इस स्थल पर नल के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया गया है। नल के हृदय म वचन और प्रेम के मध्य सघर्ष होता है। इस सघर्ष म कवि न चरित्र का उत्थान किया है। महाभारत' का यन्त्र चालित नल 'दमयन्ती' म अनुभूति सवेद्य गम्भीर और विरल चित्रित किया गया है। वह मानवीय भावनाओ न प्रथित दिखत है।[3] दमयन्ती म प्रेम की एकनिष्ठता के साथ कम धारा गाता की प्रतिष्ठा का चित्रण किया है। दमयन्ती म नल पर पत्नी रत पति के त्याग की व्यवस्था मत हैं[4] महाभारत म इस प्रकार की स्थिति का चित्रण नही है।

महाभारत[5] और आधुनिक काव्य दोनो म नल को सुराज्य सस्थापक राजा के रूप म चित्रित किया गया है। नल के द्वारा युग से आज का कवि साथ शासन के गुणो की प्रतिष्ठा करता है। वस्तुत प्राचीन राज्यतत्र म जनता अधिक सुखी थी और आज प्रजातत्र म भी उस जनता सुख प्राप्त नही है। इसका एकमात्र कारण राजा का अच्छा चरित्र है। शासक का चरित्र सत्गुणसम्पन्न न स्वार्थहीन होता है तभी जनता सुखी होती है। आज का कवि नल के चरित्र के माध्यम से आधुनिक शासक को धर्मात्मा और कर्तव्यनिष्ठ तथा प्रजा पालक बनने का सन्देश देता है।

भौतिक सुख-त्याग पुरोहित जी ने नल के चरित्र का मौलिक रूप म उद्भावना की है। महाभारत मे नल पुन द्यूत खेलते हैं। नल नरेश म उनका चरित्र मनुष्यत्व की सीमा से ऊपर देवत्व की सीमा म चित्रित किया गया है। पुष्कर को पराजित करके नल पुन राज्य वैभव का स्वीकार नहीं करते। वे पुन सिंहासन पर उपस्थित न होकर पुत्र को राज्य देकर वनगमन करते हैं। इस प्रसग म कवि नल के चरित्र के द्वारा अधिकार सुख की सारहीनता को प्रतिष्ठित करता है। यह भौतिक सुख-त्याग उनके चरित्र की महत्ता है। चरित्र के इस गुण म

———

१ म० वन० ५५।१८
२ दमयन्ती, पृ० ६० ६१
३ नल नरेश, पृ० ६६
१ दमयन्ती, पृ० २६८
२ म० वन० ५७।४३ ४४
३ दमयन्ती पृ० २१ २२ नलनरेश पृ० २८

कवि आधुनिक जीवन में व्याप्त अधिकार लोलुपता के प्रति अधिकार त्याग की भावना का मार्ग प्रशस्त करना चाहता है। त्याग की चरम स्थिति में मानव को जीवन के चरमोत्कर्ष सदेह स्वर्गत्व की प्राप्ति होती है।

संक्षेप में नल के चरित्र का 'महाभारत' की भावना के अनुकूल चित्रित करते हुए भी आधुनिक कवियों ने आदर्श राजा, आदर्श प्रेमी, पति और भाई के रूप में चित्रित किया है। द्यूत के व्यसन का चरित्र का अवगुण कहा जा सकता है जो तत्कालीन राजतन्त्र की सामाजिकता की देन है।

एकलव्य

एकलव्य 'महाभारत' का गौण पात्र है। यह एक प्रासंगिक कथा का आधार है। महाभारत में कथा इतनी संक्षिप्त और शीघ्रता से कही गई है कि एकलव्य के चरित्र चित्रण के व्यापक स्थल का अभाव होना स्वाभाविक है। किन्तु कथा की संक्षिप्तता में ही एकलव्य में चरित्र और निषाद संस्कृति का उदात्त रूप व्यक्त हो जाता है। एकलव्य की चारित्रिक उच्चता के कारण ही डा० वर्मा ने 'एकलव्य' प्रबन्ध काव्य की सृष्टि की। इस काव्य में कवि ने आचार्य द्रोण के चरित्र का परिष्कार किया और एकलव्य के चरित्र की उच्चता घोषित की। कवि का कथन है कि—

एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह अनार्य नहीं है आर्य है क्योंकि उसमें ज्ञान का प्राधान्य है। यही उसमें महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है।[1]

'महाभारत' में एकलव्य का चरित्र चित्रण अधिक समीचीन नहीं हो पाया। गुरुद्रोण से शिक्षा की भीख मांगकर अस्वीकृत शिष्य मूर्ति से शिक्षा प्राप्त करता है और दक्षिण हाथ का अंगूठा काटकर गुरु दक्षिणा देता है। यह बात निश्चित हो उज्ज्वल चरित्र की द्योतक है। एकलव्य के चरित्र चित्रण में डा० वर्मा ने अभिजात और अनभिजात वर्ग के भेद को समाप्त करने का प्रयास किया है। शील केवल अभिजात वर्ग की ही सम्पत्ति नहीं, वह उसी मात्रा में एक साधारण व्यक्ति में हो सकता है। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर एकलव्य का चरित्र चित्रण हो पाया है।

एकलव्य के चरित्र की मुख्य विशेषताएं—शिक्षा, धनुर्वेद के प्रति निष्ठा एवं सच्ची जिज्ञासा, साधक के रूप में साधना की गम्भीर अनुभूति, अटूट गुरुभक्ति और शीलाचरण हैं। महाभारत में उक्त सभी गुण सांकेतिक रूप से चित्रित हैं। डा० वर्मा ने तथा अन्य कवियों ने इन सांकेतिक गुणों को मनोवैज्ञानिक सम्भावनाओं के आधार पर चित्रित किया है।

धनुर्वेद निष्ठा एकलव्य के चरित्र का मुख्य गुण धनुर्वेद के प्रति अनन्य संलग्नता है। वह गुरु द्रोण के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए आता है। निषाद-

---

१ एकलव्य आमुख पृ० ६

पुत्र होने के कारण अस्वीकृत होता है किन्तु इस अस्वीकृति से उसकी धनुर्वेद-साधना की जिज्ञासा समाप्त नहीं होती, अपितु बढ़ती है।[1]

महाभारत' में चरित्र का संकेत भर मिलता है। आधुनिक काव्य में इस स्थल पर एकलव्य के चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की गई है। गुरुद्रोण का शिष्य बनने से पूर्व उसके मन में कितनी स्वाभाविक भावनाएं उदित होती हैं।

प्रार्थना मैं उनसे करूंगा भक्ति भाव से
देव आपस ही पूर्ण शिक्षा धनुर्वेद की
चाहता है दास एकलव्य एकलव से।
कर दें कृतार्थ मुझे शिष्य का गुरुत्व दे।[2]

महाभारत' में आचार्य और शिष्य के मध्य संवादों के माध्यम से चरित्र चित्रण का अवकाश नहीं रहा। एकलव्य में कवि ने एकलव्य की जिज्ञासा सुन्दर रूप में व्यक्त की है।[3]

एकलव्य की जिज्ञासा धनुर्वेद शब्द के उच्चारण और उसके श्रवण रूप से ही प्रारम्भ होती है।[4] स्वयं आचार्य द्रोण एकलव्य के गुणों से अभिभूत हो जाते हैं।[5] एकलव्य के चरित्र की महत्ता इस बात में अधिक है कि वह मन से गुरु की भक्ति को अक्षुण्ण रखता है। अस्वीकृत होने पर भी उसकी साधना में अन्तर नहीं आता।

साधक एकलव्य साधक के रूप में एकलव्य का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। महाभारत में उसके कुशल अभ्यास तथा बाणों के लौटने और छोड़ने की तीव्रता व्यंजित की है।[6] इस संकेत के प्रभाव से आधुनिक काव्य में एकलव्य के साधक रूप का चित्रण किया गया है।

थापी है मैं स्वयं बनाकर गुरु की मृण्मयमूर्ति।
और उसी के सम्मुख उसने अशन शयन भी भूल,
साधन किया बाण विद्या का इच्छा के अनुकूल।[7]

गुरु की मिट्टी की प्रतिमा के समक्ष साधना करने वाला व्यक्तित्व कितना विलक्षण प्रतिभावान हो सकता है यह सहज अनुभव जन्य तथ्य है। एकलव्य के चरित्र के इस गुण से कवि आधुनिक जीवन में गुरु शिष्य के मध्य स्नेह और आदर

१ म० आदि० १३१।२३ ३४
२ एकलव्य, पृ० ७६
३ एकलव्य, पृ० १२०
४ एकलव्य, पृ० १२३
५ एकलव्य, पृ० १२५
६ म० आदि० १३१।३५
७ जयभारत, पृ० ५४

के क्षीण तनु को दृढ करना चाहता है। एकलव्य की साधना किसी भी शिष्य के लिए अनुकरणीय हो सकती है।

गुरुभक्ति-शील आचरण एकलव्य के उच्च चरित्र का मूल उसका शील है।[१] उसका शील गुरुभक्ति के रूप में और गुरु की वास्तविक स्थिति के ज्ञान के रूप में व्यक्त होता है। 'महाभारत' में एकलव्य दक्षिण हाथ का अंगूठा देकर गुरु दक्षिणा देता है[२] किन्तु 'एकलव्य' में एकलव्य की मानसिक सतप्तता का मार्मिक चित्रण किया गया है। डा० रामकुमार वर्मा तथा गुप्त जी ने एकलव्य के मन को पढ़ने का प्रयास किया है। गुप्त जी का एकलव्य कहता है—

एकलव्य बोला परन्तु मैं उऋण हो गया आज,
देव न मेरे लिए दुःखी हो और क्या कहूं दास,
जितना हो सकता था मैंने कर डाला अभ्यास।[३]

डा० वर्मा ने एकलव्य को शिष्यत्व के आदर्श की चरम सीमा पर चित्रित किया है। वह अपने गुरु की विवशता समझ लेता है और ब्राह्मण गुरु के उस बंधे हुए हृदय में भांकता है जो भीष्म की राजनीति की सीमा शृंखलाओं से आबद्ध है।[४]

एकलव्य के चरित्र की प्रमुख विशेषता यह है कि वह गुरु द्रोण के मर्म को जान लेता है[५] और भीष्म की नीति को अस्वीकृति का मुख्य कारण मानकर गुरु के प्रति असीम श्रद्धानमित होता है।

इस विचारधारा के साथ ही एकलव्य का आशावाद आलोकित होता है। वह राजकुल से गुरुकुल की कल्पना करता है[६] कि कुछ समय में गुरुकुल भी बनेगा और वहां गुरु की प्रतिभा, गुरु का ज्ञान राजनीति से प्रचारित न होकर मानवता से प्रचारित होगा।

एकलव्य लेखक के सामाजिक विचारों का प्रतीक है। डा० वर्मा ने एकलव्य के चरित्र में अछूतोद्धार की विचारधारा अभिव्यक्त की है। यह मान्यता निश्चित ही महाभारत के सांस्कृतिक दृष्टिकोण से समर्थित है। एकलव्य जातिवाद का विरोध और मानव मात्र की समानता की स्थापना करता है। एकलव्य के अनन्य भक्त हृदय में जातिवाद की समाप्ति के लिए क्रान्ति के भाव भी विद्यमान हैं। वह व्यक्ति के कर्म की प्रतिष्ठा करता है। जन्म गत उच्चता सामाजिक अन्याय है और कर्मगत प्रतिष्ठा व्यक्ति का वास्तविक अर्जित धन। एकलव्य कर्मश्रेष्ठ

---

१ एकलव्य, आमुख पृ० ४
२ म० आदि० १३१।५० ५८
३ जयभारत, पृ० ५६
४ एकलव्य, पृ० १३४
५ एकलव्य, पृ० १७७
६ एकलव्य, पृ० १७६

के धनी आधुनिक व्यक्ति का आशा-लोक है जिसका समर्थन 'महाभारत' भी करता है, और आज का युग भी।

महाभारत के स्त्री पात्र

नारी के चरित्र चित्रण का स्वरूप प्रबन्ध काव्यान्तर्गत चरित्र चित्रण स्वाभाविक और आवश्यक तत्व के रूप में विद्यमान रहता है। कवि चरित्र के द्वारा अनेक भावरूपों और अन्तः प्रकृतियों का व्यापक चित्रण करता है। पुरुष पात्रों के समान नारी पात्र भी काव्य विशेष के रचयिता की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार नारी पात्रों का व्यक्तित्व द्वय होता है। एक तो उनका शाश्वत पूर्व ग्रन्थ में चित्रित व्यक्तित्व, दूसरा कवि द्वारा परिवर्तित व्यक्तित्व। आधुनिक स्त्री चित्रण को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है।

नारी ने अपने समानाधिकार के दावे के साथ साहित्य में प्रवेश किया है और दृढ़ तथा उदात्त कंठ से पिछली शताब्दी की कल्पित अवास्तविक नारी मूर्ति के चित्रण का प्रतिवाद किया है।[1]

आधुनिक काव्यकारों ने नारी चित्रण में इस तथ्य का विशेष ध्यान रखा है कि हमारी परम्परागत साधना लुप्त नारी अति आधुनिकता के भ्रमजाल में भ्रमित न हो। इसके साथ जिन मनोवृत्तियों के उदात्त उद्घाटन में प्राचीन साहित्यकार का आदर्शवादी चरित्र चित्रण की स्वाभाविकता के मार्ग को अवरुद्ध कर सका आधुनिक कवि ने उस आदर्श के आवरण के मोह से अलग होकर मनोविकारों की भिन्न प्रवृत्ति और भिन्न अवस्थाओं में साम्य जस्य करने की चेष्टा की है। केवल इसी नवीन उपलब्धि के प्रकाश में महाभारतकाल की नारी के स्वरूप में आधुनिक कवि परिवर्तन कर सका है।

इसके अतिरिक्त जहाँ भी नारी का चरित्र चित्रण किसी अन्य आधार को लेकर हुआ है वह केवल आधुनिक कवि का बुद्धि विलास है जिसमें प्राचीनता के प्रति अनावश्यक एवं उग्र विरोध की झलक विद्यमान है। इस विरोध से किसी सांस्कृतिक एवं सभ्यतागत सामाजिक उत्थान की आशा नहीं की जा सकती। आनन्दकुमार के 'अंगराज' में द्रौपदी के चरित्र को इसी उग्र विरोधी भावना के परिणाम स्वरूप देखा जा सकता है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी मनोविज्ञानिकता के नाम पर द्रौपदी के चरित्र का 'महाभारत' विरोधी रूप चित्रित किया है और हिडिम्बा को अपनी सहानुभूति वह भी स्वकल्पित कथा के आधार पर देने की मौलिक चेष्टा की है।

महाभारत से प्रभावित काव्यों के नारी चित्रण में सामान्यतः मानववादी दृष्टिकोण को आधुनिक सुधारवादी और आदर्शवादी रूप के समन्वय से चित्रित किया है। 'जयभारत' में द्रौपदी और कुन्ती 'पांचाली' में द्रौपदी 'कृष्णायन' में कुन्ती एवं

---

1 हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ० १३३

द्रौपदी 'दमयन्ती' म दमयन्ती आदि स्त्री पात्रा का चरित्र चित्रण कवियों के मानवतावादी दृष्टिकोण से सम्पुष्ट है। इसम इन्होंने प्राचीन आदश की रक्षा करते हुए युगीन सुधारवादी दष्टिकोण के प्रभाव से नारी के व्यक्तित्व को अधिक शक्ति शाली चित्रित किया है। विकृत पात्रो का परिष्कार भी इसी सुधारवादी मनोवृत्ति के कारण सम्भव हो सका है।

महाभारत के स्त्री पात्र सामान्य विशेषताए 'महाभारत' के स्त्री पात्रो के विषय म स्वर्गीय चिन्तामणि विनायक वैद्य ने लिखा है 'महाभारत' के स्त्री पात्र साधारण स्त्रियो की अपेक्षा बहुत बडे बडे हैं परन्तु जो मनुष्यत्व का तत्व हमको प्रत्यन देखने म आता है वह इनम भी है।"[1] इसके आगे वैद्य जी लिखते है ' स्त्री जाति की विशुद्धता के सूचक ऐसे एसे प्रसगा का समावेश कवि ने अपने ग्रन्थ म किया है, जिसके कारण 'महाभारत' क स्त्री पात्रो की ओर हमारा विशेष प्रेम उत्पन्न होता है।'[2]

महाभारत म स्त्री पात्रो का चरित्र चित्रण दवी विचारधारा के अनुसार अवश्य किया गया है किन्तु कही कही उनम मानवीयता के ऐसे अन्त सघष का रूप प्रस्फुटित होता है जो पात्रो को स्वाभाविक बना देता है। उदाहरणाथ द्रौपदी सुभद्रा को देखकर स्वाभाविक ईर्ष्या से ग्रस्त अवश्य होती है[3] इसके अतिरिक्त अनेक स्थलो पर कुन्ती, सुभद्रा एव गा धारी की दुबलताए चित्रित हैं और वे साधारण मानवी की तरह व्यवहार करती हैं। किन्तु यह दुबलता सवथा क्षणिक होती है। मनोविकार की द्रुतता क उपरात वे पुन आश्वस्त होती हैं और अपन गौरव के अनुकूल आचरण करती है।[4]

महाभारत के प्रत्यक नारी पात्र मे धम भीरुता और पतिव्रत की अमोघ भावना विद्यमान है। व सभी अपने व्यक्तित्व का किसी न किसी प्रकार धमाचरण युक्त रखती हैं और अनेक भि न परिस्थितियो म भी महाभारतकार ने उनकी चारित्रिक रक्षा का विधान उपस्थित किया है।

द्रौपदी पाच पतियो के होते भी पचसतिया म गणनीय है। गान्धारी पति की अधता के कारण आखो पर पट्टी बाध लती है। कुन्ती धम क सरक्षण के कारण ही अनेक देवताओ का आवाहन कर वश रक्षा करती है। इन सभी नारी पात्रा का चरित्र अन्तर विरोधी प्रकृति क द्वारा चित्रित है।

आधुनिक कवि ने महाभारत के नारी पात्रा को मूल ग्र थ की भावना के अनुसार चित्रित किया है। कुछ कवियो न इन शाश्वत चरित्रो की विशुद्धता पर

१, महाभारत परिचय, पृ० ५६
२ महाभारत परिचय, पृ० ५६
३ म० आदि० २२०।१६ १७
४ म० आदि० २२०।२४

अपने मलिन विचारों की कीचड़ अवश्य उछाली है किन्तु उससे भारतीय परम्परा के इन निष्कलुष चरित्रों पर आंच नहीं आती। 'अगराज' के कवि ने द्रौपदी को विलासी स्त्री के रूप म चित्रित किया है और पूरे प्रयास स उसके चरित्र पर कलक लगाने की चेष्टा की है किन्तु ऐस प्रयासो की न्यूनता ही उनकी हेयता की द्योतक है।

द्रौपदी

द्रौपदी 'महाभारत' की प्रमुख स्त्री पात्र है चिन्तामणि ने द्रौपदी के चरित्र को अत्यन्त उज्ज्वल चरित्र बताया है। उनका कथन है कि द्रौपदी जसे पात्र द्वारा महाभारतकार ने स्त्री स्वभाव की उच्चता का ऐसा प्रबल उदाहरण हमारे सामने रक्खा है कि इस प्रकार के पात्र की योग्य प्रशसा करने के लिए हम खोजने स भी शब्द नहीं मिलते।[१]

'महाभारत' म द्रौपदी द्रुपद की अयोनिजा पुत्री है। इसकी उत्पत्ति यज्ञ वेदी से हुई। जन्म के समय आकाशवाणी ने कहा कि देवताओं का काम सिद्ध करने के लिए क्षत्रियो के सहार के उद्देश्य से इस रमणी रत्न का जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।[२] जिस प्रकार द्रौपदी का जन्म अलौकिक था उसी प्रकार उसक जीवन की अन्य घटनाए भी असाधारण रहीं। इन कारणो से महाभारत की द्रौपदी का चरित्र चित्रण अलौकिकता लिए है और आधुनिक काव्यकारो न उसे अधिक मानवीय और यथार्थवादी बनाने का प्रयास किया है।

अटल पातिव्रत द्रौपदी के चरित्र का मूलाधार उसका अटल पातिव्रत है। एक आदर्श पत्नी के रूप मे द्रौपदी समस्त 'महाभारत' मे आदरणीय है। वह केवल साधारण पत्नी नहीं, अपितु गुणशीला और चिन्तक भी है। द्रौपदी के आदर्श पत्नि-स्वरूप का चित्रण आधुनिक काव्य म अत्यन्त सम्मान के साथ हुआ है।

अपने पतियो मे एकनिष्ठ प्रेम, सभी कष्ट सहते हुए वन मे सहवास एव निर्वाण प्राप्ति तक साथ रहना आदि स्वरूप द्रौपदी के चरित्र को विलक्षणता प्रदान करते है। 'जयभारत' 'द्रौपदी' 'कौतेयकथा' 'रश्मिरथी' 'पाचाली' आदि काव्यो मे द्रौपदी का चरित्र 'महाभारत' की दिव्यता से मंडित है, यद्यपि युगानुसार उसमे आवश्यक परिवर्तन किए गय है।

द्रौपदी का व्यक्तित्व असाधारण है। उत्पन्न होने के उपरान्त वह साक्षात देवी दुर्गा के रूप मे प्रतीत होती है।[३]

कविवर नरेन्द्र शर्मा न 'द्रौपदी' म द्रौपदी का व्यक्तित्व इसी रूप म चित्रित किया है। कवि ने द्रौपदी को योगिनि शक्ति पचाग्नि शक्ति की साकार प्रतिमा

---

१ महाभारत, परिचय, पृ० ५८
२ म० आदि० १६६।४८ ४६
३ म० आदि० १६६।४६

माना है ।[1]

कवि के चरित्र का मुख्य आधार द्रौपदी की शक्ति है। वह प्रेरणादायिनी और नारी शक्ति का दृप्त दीप्त प्रतीक है।[2] आधुनिक काव्य में द्रौपदी का व्यक्तित्व तेजस्वी रूप म चित्रित है। भगवतीचरण वर्मा ने द्रौपदी को शक्ति का प्रतीक मान कर उसका चरित्र चित्रण किया है। उसम अवतार के अश को मानकर कवि ने द्रौपदी की दिव्यता को यथावत सुरक्षित रक्खा है।[3]

अपने पतियो के प्रति अनन्य निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण द्रौपदी वनगमन के अवसर पर प्रस्तुत करती है। द्रौपदी का वनगमन पतिसेवा के हेतु है। स्वय कुन्ती द्रौपदी के निष्पाप चरित्र के प्रति आश्वस्त है। उसे उसके कतव्यो के प्रति सचेष्ट करने की आवश्यकता नहीं वह स्वय अपने कतव्यो के प्रति सचेष्ट है।[4]

द्रौपदी की एक निष्ठा,[5] सपत्नियो के प्रति भी स्नेह,[6] एक मन से पतियों का चिन्तन,[7] नारी धम की सीमाओं को भली प्रकार समझना[8] पति के सुख दु खो मे समभाग[9] और पति की अनन्य भाव से सेवा करना ही, द्रौपदी नारी का महान धम मानती है।[10]

व्यावहारिक रूप द्रौपदी के चरित्र के गुण उसके व्यवहार म पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। 'महाभारत' म द्रौपदी का चरित्र अनेक अन्य विवादो से ग्रस्त है किन्तु इतना अधिक विलक्षण होते हुए भी उसम इतनी क्षमता विद्यमान है कि 'जयभारत म वह नारी के कर्तव्यों की प्रतीक बनकर उपस्थित होती है।[11] द्रौपदी का स्वाभिमान और एकनिष्ठता वन म जयद्रथ के प्रसग म स्पष्ट रूप म व्यक्त होती है। जयद्रथ द्रौपदी को पाण्डवो की असहायता बताकर अपने वश म करना चाहता है किन्तु द्रौपदी स्वाभिमानी फटकार स उसे उत्तर देती है।[12]

---

१ द्रौपदी, पृ० १२
२ द्रौपदी, भूमिका पृ० ८
३ त्रिपथगा, पृ० ६३
४ न त्वा संदेष्टुमर्हामि भर्तृ नप्रति शुचिस्मिते
साध्वी गुण समापन्ना भूषित त कुल द्वयम ॥ म० सभा० ७६।५
५ म० वन० २३३।२०
६ म० वन० २३३।१६
७ म० वन० २३३। २३ २४
८ म० वन० २३३।२७
९ म० वन० २३३।५७
१० म० वन० २३४।४ ५
११ जयभारत, पृ० १६१
१२ म० वन० २६८।२

द्रौपदी को अपने पतियों की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। विराट पर्व में भी कीचक से त्रस्त होने पर वह अपने विश्वास को दोहराती है।[१] 'जयभारत' में गुप्त जी ने इस विश्वास को अत्यन्त शक्तिशाली शब्दों में चित्रित किया है।[२] और द्रौपदी के तेजस्वी रूप को अभिव्यक्त किया है।

द्रौपदी के चरित्र के माध्यम से कवि स्त्रियों के सतीत्व, पातिव्रत एवं अनन्य निष्ठा का आदर करता है और आधुनिक युग में उसी आदर्श को अपनाने की प्रेरणा देता है। द्रौपदी आपत्ति के समय भी दृढ़ता एवं साहस से काम करती है उसे अपने सतीत्व पर विश्वास है और यही भावना उसकी शक्ति का आधार है।[३]

सहृदयता गुप्त जी ने स्त्री की शारीरिक दुर्बलता के साथ उसके आन्तरिक सतीत्व बल को महान चरित्र के गुण रूप में चित्रित किया है।[४] 'महाभारत' की द्रौपदी कीचक वध पर सदय नहीं होती किन्तु 'जयभारत' के कवि ने इस स्थल पर उसकी सदयता का चित्रण कर नारी के शाश्वत स्वरूप की झांकी प्रस्तुत की है।[५]

महाभारत का काल सामन्त प्रथा का सबसे अधिक अव्यवस्थित काल माना जा सकता है। उस काल में विवाह भी राजनीति के महत्त्वपूर्ण अंग थे। द्रुपद की पराजय के प्रमुख कारण कौरव थे अतः द्रुपद की सन्तान अपने प्रतिशोधन के हेतु कटिबद्ध थी। द्रौपदी का पंच पाण्डवों से विवाह भी इसी राजनैतिक दाव के रूप में माना जा सकता है। किन्तु धर्मशास्त्रों से अनुमोदित अपवाद के रूप में, या तत्कालीन बड़े व्यक्तियों के द्वारा समर्थित होने के कारण भी द्रौपदी का पंचपाण्डवों से विवाह अनैतिक नहीं था। द्रौपदी के चरित्र के प्रसंग में ही इस बात की विवेचना अपेक्षित है।

'अंगराज' के अनुसार द्रौपदी को पंचपति प्राप्त कर प्रसन्नता हुई। इसमें कारण था उसका कामोद्दीपन।[६] इसके अतिरिक्त जयभारत में कितना सुन्दर चारित्रिक समाधान खोजा है।

पाण्डवों के मन में जो ग्लानि नहीं होती है।
तो मैं मानता हूं धर्म हानि नहीं होती है।[७]

---

१ म० विराट० १४।४८

२ आर्या की दासी कहती हो, जाति तुम्हारी जानी।
मेरे प्रभु रखते हैं अब भी मुझे बनाकर रानी।
अपने को—मुझको भी हारे, धर्म नहीं वे हारे।
पंचतत्व मय इस तनु के हैं प्राणों से भी प्यारे॥ जयभारत, पृ० २२५

३ जयभारत पृ० २६६

४ जयभारत पृ० २६६

५ जयभारत पृ० २७७

६ अंगराज, पृ० ६८

७ जयभारत पृ० १२५

नरेन्द्र शर्मा ने भी द्रौपदी का अग्नि कुमारी के रूप में सती पत्नी के गौरव के साथ चित्रित किया है।[1] इस प्रकार द्रौपदी का पक्ष धर्म-सम्मत हो जाता है और उसके चरित्र को लेकर जिस प्रकार की अनर्गल और अमानविक बातें 'अंगराज' में कही गई है उनका कोई मूल्य नहीं रह जाता।

द्रौपदी के चरित्र को बलिदान और आत्म-त्याग का चरित्र न मानकर भोगी मानना अपनी अमांस्कृतिक दृष्टि का प्रकाशन करना है।

बौद्धिकता महाभारत में वह समय समय पर अपने शक्तिशाली विचारों की अभिव्यक्ति करती है। युधिष्ठिर को पुरुषार्थ की शिक्षा देती है। वह तप और क्षमा के अवसरों की दार्शनिक विवेचना करती है।[2] और युधिष्ठिर के न्याय और धर्म पर भी आक्षेप करती है।[3]

द्रौपदी के चरित्र निर्माण में उसकी असाधारण परिस्थितियों ने अधिक योग दिया। विवाह के समय उसे सब के समक्ष सूतपुत्र का विरोध करना पड़ा।[4] पांच पतियों से विवाह करने की विवशता को स्वीकार करके भी अनेक बार अपमानित होना पड़ा। इसी लाञ्छना के प्रसंग में उसका प्रतिकार, उग्र रूप धारण करता है। भगवान कृष्ण को अपनी दुखद गाथा का स्मरण दिला कर वह सन्धि न करने की प्रेरणा देती है।[5] उसके अपमान पर भी युधिष्ठिर धर्म निष्ठ बने रहे अतः उसमें सुस्थिरता न होना अस्वाभाविक नहीं।[6]

'पांचाली' 'द्रौपदी' और 'त्रिपथगा' तथा अन्य रचनाओं में महाभारत' के आधार पर द्रौपदी के चरित्र को विभिन्न स्वरूपों में चित्रित किया है। भगवती चरण वर्मा की दृष्टि उसे युग की प्रतिहिंसा की प्रतीक मानती है।[8] रांगेयराघव ने उसे तत्कालीन दास प्रथा के प्रकाश में चित्रित किया है।[9]

सेनापति कर्ण में वह साक्षात युद्धनीति में भाग लेती है।[10] यह यथार्थवादी किन्तु दिव्य शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व आधुनिक काव्य में यथार्थवादिता के परि

---

१ द्रौपदी पृ० ४८ ४९
२ म० वन० २८।२८
३ म० वन० ३०।१८, ३५ ३६
४ म० आदि० १८६ २३
५ म० उद्योग० ८२।१ १०
६ म० उद्योग० ८२।२८ २९
७ म० उद्योग० ८२।२९ ४० ४१
८ त्रिपथगा, पृ० ६८
९ पांचाली पृ० ६
१० सेनापति कर्ण पृ० २०१

कृष्ण ने अहिंसा की व्यावहारिक उपचर्या कर्म योग के उपलक्ष्य में सिद्ध की है। [1] "महाभारत' के अनुकरणीय पात्रों के व्यवहार में अहिंसा के अन्तर्गत, शांति, सहनशीलता, त्याग, बलिदान आदि भावों की अभिव्यक्ति की गई है किन्तु एक सीमा पर जाकर उक्त समस्त गुण अव्यावहारिक हो जाते हैं और हिंसा 'युद्ध' ही क्षात्र धर्म के रूप में अनुकरणीय हो जाता है। युधिष्ठिर याज्ञसेनी से बात करते हुए अन्य व्यक्तियों के क्षेम के साथ ही निज का क्षेम मानते हैं।[2] पीड़ा से बचने के लिए पर-पीडन से भी विरत रहना चाहिए अतः सत्य अहिंसा का धर्म धारण करना उचित है।[3] कोई भी धर्म हिंसा की आज्ञा नहीं देता, हिंसा के समान कोई पाप नहीं है।[4] जो व्यक्ति हिंसारत है वह ब्रह्मराक्षस, कर्महीन और त्याज्य है।[5] हिंसा को प्रश्रय देना लोक धर्म की उपेक्षा करना है।[6] हिंसा और अहिंसा के विषय में 'पांचाली' के कवि की दृष्टि पूर्ण रूप से व्यावहारिक है। वह हिंसा के मूल में द्रोह और स्वार्थ मानता है।[7] सत्य मिटाने के लिए और अहिंसा के प्रसार के लिए सहनशीलता क्षमा पर बल देता है।[8] मिश्र जी ने सत्य, अहिंसा इन्द्रिय-संयम को सब काल सुख देने वाला धर्म कहा है।[9] और नित्य धर्मों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है।

मानव धर्म के अन्तर्गत उक्त धर्मों के अतिरिक्त शौच, त्याग, सहनशीलता, अक्रोध अद्रोह आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। आधुनिक काव्य में मन्मत्तर इन सभी धर्मों का सैद्धांतिक और व्यावहारिक स्थापन हुआ है।[1] अपने से छोटे के हेतु

---

१ गीता १०।५, १६।२ पर शां० भा०

२ जयभारत, पृ० ६७

३ जयभारत पृ० २३५

४ हिंसासम कछु पाप नहिं।, कृष्णायन, पृ० ४४७

५ अगराज पृ० ४६

६ अगराज पृ० ४६

७ पांचाली पृ० ४४

८ पांचाली पृ० ४५, ४६

९ कृष्णायन, पृ० ८१३

१० कृष्णायन, पृ० ८२४

त्याग की भावना स धम धन का सरक्षण सम्भव[1] है। धम की पूण रक्षा हेतु अधिकार की समता और दुष्कृतियों का अन्त करना होगा।[2] अयथा धम का व्यापक और शाश्वत प्रसार सम्भव न हो सकगा। मानवता क विकास के लिए धम क विविध रूपों का व्यावहारिक प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। मानवता के महत्वपूण अगरूप मे महाभारत' मे जिस भावना से धम की स्थापना है उसी भावना से आधुनिक काव्य युगीन परिवेश म मानवता के चरम श्रेय को धम के आलोक म प्राप्त करना चाहता है। गुप्त जी व्यक्ति की उच्चता के हेतु अतिरिक्त भोग वत्ति का विरोध कर गीता क ध्यायतो विषयान् पुसान[3] के आधार पर असम्बत्तियों का निराकरण करते हैं। व्यक्ति के हृदय मे ही दस्य प्रवेश करता है, उस असुर को हृदय से निकालना ही मानव का परम धम ह।[4]

स्त्री धम मानव धम क अतगत हमने जिन धर्मों की विवचना की है व सम्पूण धम स्त्री क धम भी है क्योंकि स्त्री भी मानव है किन्तु सामाजिक व्यवस्था म उसका विशष स्थान है, इस कारण सामान्य मानव धर्मों के अतिरिक्त स्त्री क लिए कुछ अतिरिक्त धर्माचारों का व्यवस्था है। 'महाभारत' क वन पव म द्रौपदी और सत्यभामा सवाद म तथा अनुशासन पव म भी पावती क द्वारा स्त्री धम वणन है, वहा विस्तार स स्त्री धम की चर्चा है। इसके अतिरिक्त स्त्री धम का वणन अन्य अनक प्रसगो म भी आया है।

महेश्वर के पूछने पर उमा स्त्री धम का वणन करते हुए कहती है कि जिसक स्वभाव बातचीत, और आचरण उत्तम हो जिसका दशन स पति को सुख मिलता हो, जो अन्य पति क अतिरिक्त अन्य पुरुष म मन नहीं लगाती हो प्रसन्न मुख रहती हो वही धमपरायणा होता ह।[5] स्त्री क धम म पति पूजा अर्थात पतिव्रत पालन सब प्रमुख धम बताया गया है।[6] पतिव्रत धम पालन की श्रेष्ठता इसी स स्पष्ट है कि पति को ही नारियों का देवता, बधु बाधव और परमगति बताया है।[7]

---

१ छोटे क भी लिए बड म बड़ा समपण।
किया जाय जब तभी धम धन का सरक्षण। नहुष, पृ० १०१

२ पांचाली पृ० २२

३ गीता १२।६२

४ नहुष, पृ० ६५

५ म० अनु० १४६।३५ ३६

६ म० अनु० १४६।३८

७ म० अनु० १४६।५५, म० वन २३३।३७

सत्यभामा के पूछने पर द्रौपदी पति-सेवा को स्त्री का प्रमुख धर्म बताती है।[1] पति में अनन्य भक्ति, सदाचार का आचरण, लज्जा, पति-सेवा में सावधानी आदि गुणों को भी स्त्री के धर्म के अन्तर्गत बताया गया है।[2] स्त्री धर्म के अनेक गूढ़ रहस्यों का उपदेश देती हुई द्रौपदी स्त्री के लिए वाणी-संयम[3] को आवश्यक मानती है। पति द्वारा कही बात को अपने तक ही सीमित रखना, सुख का परम साधन है, क्योंकि मुख से बात के निकलने पर और पति को पता लगने पर, पति की ओर से विरक्ति का भाव प्रदर्शित होने का भय रहता है।[4]

गृहस्थ धर्म पति के प्रति निर्वाचित धर्मों का अनुष्ठान जहाँ पातिव्रत धर्म की मूल आवश्यकता है, वहाँ लोक धर्म के कारण गृहस्थ धर्म का पालन करना भी स्त्री का परम कर्तव्य है। स्त्री से ही गृहस्थ की प्रतिष्ठा है, वही गृहस्थ का मूल चक्र है। अतः गृहस्थ धर्म का उत्तरदायित्व पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर ही अधिक है। सद्गृहस्थ स्त्री के लिए घर को स्वच्छ और पवित्र बनाये रखना, देवताओं को पुष्प और बलि अर्पण करना और अतिथि तथा अन्य पोष्य वर्ग को भोजन से तृप्त करने का विधान है। ऐसी स्त्री सती धर्म के फल से युक्त होती है।[5] स्त्री धर्म की व्यापक विवेचना के लिए अनुशासन पर्व का शाण्डिली और सुमना-संवाद महत्वपूर्ण है। इस संवाद में पतिव्रता स्त्रियों के कर्तव्यों का वर्णन विस्तार से किया गया है। यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि परिवार के पालन पोषण के लिए भी स्त्री को चाहिए कि वह पति को कभी तंग न करे[6]। इस प्रकार मानव के सामान्य धर्माचरण के अतिरिक्त पति सेवा, गृहस्थ धर्म का पालन आदि अतिरिक्त कर्त्तव्य स्त्री के व्यक्तित्व के साथ अनुबद्ध हैं।

आधुनिक काव्य एवं स्त्री धर्म

आधुनिक जीवन में स्त्री की शक्ति और धर्म सीमा में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। परम्परागत विचारधारा ने स्त्री को जिन धर्माचारों में बाँध रखा था वे इस युग में शिथिल हुए हैं। स्त्री के धर्म को एक नवीन दृष्टि से देखा जाने लगा। सशक्त नया स्वर स्त्री स्वातन्त्र्य का उठा जिसने स्त्री के ऊपर पुरुष के अधिकार को कई क्षेत्रों में चुनौती दी और उसे नई आस्था स्वरूप नये रूप में प्रस्तुत किया।

---

१ म० वन० २३३।२२

२ म० वन० २३३।२१

३ सयच्छ भाव प्रतिगृह्य मौनम। म० वन० २३४।१०

४ म० वन० २३४।८

५ म० वन० १४६।४८ ५० म० शान्ति० ६१।२

६ म० अनु० १२३।१६

परिवर्तित युग की दृष्टि, और परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था का समन्वय करके आधुनिक कवि ने स्त्री के शाश्वत धर्मों को स्वीकार कर यत्किंचित् संशोधन किया है। अत महाभारतीय धर्म व्यवस्था के साथ युगीन आलोक भी द्रष्टव्य है।

नायिका प्रधान प्रबन्ध काव्यों म नारी धर्म की व्याख्या 'महाभारत' के आधार पर हुई है। नायक प्रधान काव्यों मे प्राचीन और नवीन का समन्वय हुआ है यद्यपि प्राचीन परम्परा की संशोधित दृष्टि सम्पूर्ण आचार विचार उसके पत्नी रूप मे निहित हैं किन्तु आधुनिक युग मे पत्नी के अतिरिक्त माता सखी, बहन आदि रूपों म उसके कर्त्तव्यों का विस्तार हो गया है।

स्त्री का क्षात्र धर्म पति और पुत्र को रण म सुसज्जित करने के स्त्री धर्म के प्रति आज का कवि भी उतना ही सजग है जितना महाभारत-काल का।[१] जो स्त्रियां सती होकर भी पति के कीर्ति पथ म बाधक होती हैं वे अपना कर्तव्य-पालन नहीं करतीं।[२] महाभारत' की विदुला अपने पुत्र को क्षात्र धर्म के लिए उत्तेजित करती है।[३] और आधुनिक कवि इस धर्म की पुनर्व्याख्या करके उस लोक जीवन मे प्रतिष्ठित करना चाहता है।[४] विदुलोपाख्यान की पृष्ठभूमि म कुन्ती अपने पुत्रों को युद्ध के हेतु प्रेरित करके स्त्री के क्षात्र धर्म का निर्वाह करती है। आधुनिक युग म स्वतन्त्रता संग्राम के लिए और चीनी आक्रमण के समय देश की रक्षा के लिए माता और बहनों के ओजस्वी सदेश म महाभारत की वाणी मुखरित हो रही है। स्त्रियों का क्षात्रधर्म 'महाभारत के उपरान्त इस देश म किसी भी युग म नवीन नहीं रहा, वह सवदा सजग और सजीव रहा। 'अंगराज म सेना के प्रयाण के समय माता का ओजस्वी सन्देश विदुला क सदेश स प्रभावित और युग की ध्वनि स संयुक्त है।[५]

१ जयद्रथ वध पृ० ६

२ जयद्रथ वध, प० ६

३ उत्तिष्ठ हे कापुरुष मा शेष्वैव पराजित ।
अमिमान म स्यन सर्वान निर्मानो बन्धुशोकद । म० उद्योग० १३३।८

४ कापुरुष समझ युग की पुकार तू पहले अपने आप सम्हल,
सुन मानवता की अभिलाषा, साहसी और आगे बढ़ चल ।
विदुलोपाख्यान पृ० ३१

५ माताएं बहनो थीं तुम हो आर्य प्रजाता की सन्तान।
तुमम हैं सब निहित हमारे जीवन, स्वप्न, जाति अभिमान ॥
हम जिस दिन के लिए तुम्हे देती हैं जन्म यातना भोग ।
बड़े भाग्य से हुआ उपस्थित आज अहोरत्रिए म सयोग । अंगराज, पृ० १७८

उद्योग पर्व में सन्धि का प्रस्ताव ले जाते समय द्रौपदी युद्ध की प्रेरणा देती है।[1] 'जय भारत' का कवि आज के युग में उस प्रेरणा को पुनः प्रतिष्ठित करके[2] कुन्ती के शब्दों में क्षत्राणी के धर्म का आख्यान करता है।[3] द्रौपदी पचतत्वों के लिए प्रेरणा बनकर उनको सगठित करती है।[4] और 'सेनापति कर्ण' की हिडिम्बा क्षात्र धर्म से प्रेरित अपने पुत्र को वश रक्षा के लिए उद्यत कर रण में भेजती है।[5] इस प्रकार 'महाभारत' में वर्णित स्त्री के क्षात्रधर्म के प्रति आज का कवि पूर्ण सजग है क्योंकि यह मान्यता एक युग की नहीं, शाश्वत मान्यता है।

पतिव्रत धर्म पतिव्रत धर्म स्त्री के लिए प्रमुख धर्म है। अन्य सम्पूर्ण धर्माचरण इसकी परिधि में सन्निविष्ट हैं। आर्य कन्या जिसका ध्यान कर लेती है उसी को पति रूप में वरण करती है।[6] दमयन्ती, सती सावित्री, द्रौपदी आदि स्त्री पात्रा का आदरणा आज भी अनुकरणीय हैं। अत पतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा परम्परागत मान्य आधारों पर हुई है। नहुष की अमानवीय यातना पर नहीं अपने धर्म की रक्षा करती है।[7] देवों की शक्ति के समक्ष दमयन्ती पतिव्रत धर्म के आधार पर ही नल का वरण करने अपनी रक्षा करती है।[8] पतिव्रत धर्म ही नारी का परम भूषण और

---

१ पच चत्र महावीर्या पुत्रा मे मधुसूदन।
अभिमन्यु पुरस्कृत्य यो त्स्यते कुरुभि सह॥ म० उद्योग० ८२।३८

२ जयभारत, पृ० ३१७

३ जीती [illegible] मैं तात यहीतुम उनसे कहना
आया अवसर आप यह प्रस्तुत हो इसके लिए,
क्षत्राणी पीड़ा प्रसव की, सहती है जिसके लिए॥ जयभारत, पृ० ३३५

४ द्रौपदी, पृ० ३८

५ सेनापति कर्ण, पृ० ६७

६ आर्य कन्या हृदय चढ़ ऐसा, वरें।
ध्यान दे जिसका करें, उसको वरें॥ दमयन्ती, पृ० १६

७ नहुष पृ० ५८

८ निषधेप दो तज अन्य के यदि कठ म माला पडे।
तो, भस्म हो जावे प्रथम यह भार तन नत म उरे॥ दमयन्ती, पृ० १३०

शुभ कर्म है।[1] 'नल नरेश' में नल-दमयन्ती के वार्तालाप में स्त्री के पतिव्रत धर्म की व्यापक व्याख्या हुई है। प्रेम की दृढ़ता को असंयम शमन के हेतु आवश्यक माना है।[2] आधुनिक युग में नारी को शिक्षित बनाने के साथ पति भक्ति की शिक्षा भी देनी चाहिए इस कारण सतियों के आख्यानात्मक काव्यों का प्रणयन आवश्यक है।[3] 'सेनापति कर्ण' की हिडिम्बा पति की बुराई करने पर अपने पुत्र को पितृघाती कहकर तिरस्कृत करती है।[4] हिडिम्बा पति को सब सम्बन्धों से ऊपर बताकर नारी के दोनों लोकों का रक्षक बताती है।[5] नारी की पति भक्ति को देखकर देवता यही कहते हैं कि विश्व की नारी दमयन्ती की पति भक्ति का अपना आदर्श मानें इसी कारण हमने परीक्षा ली थी[6] और प्रत्येक युग में स्त्री धर्म का आख्यान इसी हेतु होता आया है कि नारियाँ अपने धर्म की महत्ता को समझ सकें।

आधुनिक दृष्टि आधुनिक काव्य में स्त्रीधर्म का एक दूसरा पक्ष है। इसमें परम्परागत बन्धनों से कुछ स्वतन्त्रता दी गई है।

परम्परागत दृष्टिकोण से स्त्री का घोरतम अपराध है पति-वंचना। किन्तु आधुनिक कवि परिस्थिति सापेक्ष इस वंचना की स्वतन्त्रता देता है। 'द्वापर' की विधृता ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग किया है।[7] यद्यपि यह स्वतन्त्रता भक्ति की सीमा में दी गई है किन्तु कवि की मूल दृष्टि अधिकार स्वातन्त्र्य और समता की है। आधुनिक काव्य की नारी विषयक भावना और महाभारत' की भावना में एक अंतर यह है कि महाभारतकार नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा पर बल देता है। वह समाज सम्मत नियोग समाज सम्मत बहुपति, समाज सम्मत केवल एक पुत्र की प्राप्ति के लिए प्रेम का आदर्श मानकर चलता है। कुन्ती[8],

---

१ नारि का जग में पति व्रत धर्म ही
  है परम भूषण तथा शुभ कर्म ही। दमयन्ती, पृ० १६
२ नल नरेश, पृ० १२८ १३०
३ सती सावित्री पृ० ४०
४ अर नीच जानती जो निजगर्भ से
  जन्म दे रही हूँ पितृ निन्दक अभागे को
  खर तो बहाती उस पावक की धार में
  रात को ही हाय सेनापति कर्ण पृ० ७८
५ किन्तु दान पति का अपरिमित अमोघ है
  रक्षित करता है जो दोनों लोक नारी के। सेनापति कर्ण, पृ० ७९
६ दमयन्ती पृ० १३८
७ द्वापर पृ० २६, ३० ३६
८ म० आदि० १२२।५

द्रौपदी[१], और हिडिम्बा[२], ऐसे ही स्त्रीपात्र हैं। आज का कवि समाज की सीमा से पृथक भी स्त्री के धर्म की व्याख्या करता है। रश्मिरथी का कर्ण कुन्ती के माध्यम से इस वैयक्तिक पक्ष की विवेचना करता है। क्या स्त्री का धर्म यज्ञ की ज्वालाओं के फेरों से प्राप्त पति के ही प्रति है? क्या पुत्र के प्रति चाहे वह किसी अवस्था में उत्पन्न हुआ हो, माता का कुछ कर्त्तव्य नहीं? दिनकर के कर्ण का आरोप है कि कुन्ती उसे लेकर समाज के समक्ष क्यों नहीं आई?

> विधि का पहला वरदान मिला जब तुमको,
> गोदी में नन्हा दान मिला जब तुमको,
> क्या नहीं वीर माता बन आगे आई
> सबके समक्ष निर्भय होकर चिल्लाई?
> सुन लो समाज के प्रमुख धर्म ध्वज धारी
> सुतवती हो गई मैं अनब्याही नारी।
> अब चाहो तो रहने दो मुझे भवन में
> या जातिच्युत कर मुझे भेज दो वन में॥[३]

दिनकर द्वारा वर्णित यह स्त्री धर्म आज के युग में स्त्री के नैसर्गिक प्रवृत्ति के प्रति क्रान्तिकारी विद्रोह है। कवि का अपने युग से प्रश्न है कि यदि उक्त अवस्था में नारी पूजनीय है, तो क्या ऐसी अवस्था में भी वह पूज्या है? इस प्रकार आधुनिक कवि महाभारतीय परम्परा को पूर्ण रूप में स्वीकार करते हुए युग के ज्वलन्त प्रश्नों की विवेचना भी करता है। वह यह भी मानता है कि धर्म के प्रति स्त्री की आस्था ने आज के युग को पारतम पापों से बचा रखा है, उसकी मान्यता है कि यदि स्त्री धर्मच्युत हो जाय तो समाज नष्ट हो सकता है।[४] 'जयभारत' का कवि 'महाभारत' के स्त्री धर्म को युगीन परिवेश में प्रस्तुत करता है, वह आधुनिक जीवन की अलंकरण वृत्ति का विरोध करता है, जो बाह्य प्रदर्शन तक सीमित है।[५] वह शृंगार को केवल पति के निमित्त ही मानता है और जीवन के सुख के हेतु पति की व्यक्तिगत

---

१ म० आदि० १५४।११ १२
२ म० आदि० १६०।१६
३ रश्मिरथी पृ० ६५
४ तुम नारि धर्म की लीक न नेक रहेगी।
फट जायेगी प्रभु धरा। न नारि सहेगी॥ दमयन्ती पृ० २६७
५ जब बाहर आती हैं तब हम सजधज कर आती हैं।
घर भीतर ऐसी वैसी ही बहुधा रह जाती हैं॥ जयभारत पृ० १६०

देवरेव का समर्थन करता है।[१] गुप्त जी के दृष्टिकोण के विषय में डा० सत्येन्द्र के शब्द[२] भी यही सिद्ध करते हैं कि 'महाभारत' की प्रमुख चरित्र सृष्टि में गुप्त जी ने सांस्कृतिक और क्रान्ति के स्फुलिंगों का समन्वय करके एक नव्य रूप में स्त्री धर्म की समीक्षा की है।

वर्ण धर्म

'महाभारत' में वर्ण धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है। 'महाभारत' वर्ण धर्म का प्रबल समर्थक है और अनेक स्थान पर वर्णाश्रम धर्म की व्यापक प्रतिष्ठा है। अनेक लघु उपाख्यानों के द्वारा वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपादन अत्यन्त सरल और कथात्मक शैली में किया गया है। वर्णाश्रम प्रतिपादन में धृतराष्ट्र को विदुर का उपदेश[३], भीष्म द्वारा ब्रह्माजी के नीति शास्त्र और पृथु के चरित्र के प्रसंग में वर्ण और आश्रम धर्म का वर्णन[४] व्यास और शुक संवाद में आश्रम धर्म वर्णन[५] आदि ऐसे मुख्य स्थल हैं जिनके अध्ययन से महाभारत काल की वर्णाश्रम धर्म परम्परा का साक्षात्कार होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत वर्ण धर्म को सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का मूल मानता है तथा सामाजिक मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक भी। स्थान स्थान पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों की कर्त्तव्य सीमाएं अत्यन्त व्यापकता से चित्रित की गई हैं। तत्कालीन समाज ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को निर्विवाद रूप से

---

१ दास दासियां दिखलाते हैं कोरी प्रभुता जनकी।
सखि, सच्ची समाल हमको ही करनी है निजजन की॥ जयभारत पृ० १६०

२ 'गुप्त जी ने स्त्रियों में भारतीय आदर्श के सांचे में दिव्यता भरने की चेष्टा की है। स्त्रियों का जो भारतीय आदर्श दीर्घकालीन परम्परा मुक्ति के कारण अनुदार और रूखा सा दीखने लगा था और क्रान्ति के स्फुलिंगों को प्रेरित कर रहा था, उसी को नये भावुक तर्क से सजाकर, नई आत्मा से अभिसिंचित कर दिया है।' गुप्त जी की कला, पृ० १३२

३ म० उद्योग० अध्याय ४०

४ म० शान्ति० अध्याय ६० ६३

५ म० शान्ति० अध्याय २४२ २४५

मानता है,[१] और राज्य रक्षा के लिए क्षत्रिय धम का पालन भी उतना ही महत्वपूण है। 'महाभारत' द्विजातीय धम के प्रति इतना अधिक जागरूक है कि आचार की महत्ता के साथ कमणा वण की प्रतिष्ठा को भी स्वीकार करता है।[२] इस प्रकार जन्म और कम दानो दृष्टियो से महाभारत कार वर्णाश्रम का प्रतिपादन करता है। सनातन धम की मायता के अनुसार जीव को सभी वर्णों म होकर जीवन यात्रा करनी पडती है। वण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र, अतएव 'महाभारत' के अनुसार चतुवर्णों के धम का पृथक पृथक वणन स्पृहणीय है।

ब्राह्मण ब्राह्मण की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए ब्रह्मा जी ने ब्राह्मण को जन्म से महान, भाग्यशाली समस्त प्राणियो का वन्दनीय और अतिथि के रूप मे भोजन पाने का प्रथम अधिकारी बताया है।[३] ब्राह्मण धम की विवेचना करते हुए 'महाभारत' मे विदुर कहते है कि प्रतिदिन जल से स्नान, सन्ध्या करना यज्ञोपवीत धारण, स्वाध्याय, सत्य वाक्य ब्राह्मण के धम है।[४] भीष्म युधिष्ठिर को उपदेश करते हुए कहते है कि इन्द्रिय सयम ब्राह्मणो का प्राचीन धम है जिस के साथ स्वाध्याय से उनके सब कर्मों की पूर्ति हो जाती है।[५] इसके अतिरिक्त समस्त जीवो के प्रति मत्री भाव भी ब्राह्मण की कत्त य परिधि म आता है।[६] ब्राह्मण का धम यज्ञ करना कराना, विद्या पढना पढाना, दान लना और दना माने गय हैं।[७] इसके अतिरिक्त अन्य वर्णों के कत्तव्यो का पालन ब्राह्मण क लिए वर्जित है।[८]

ब्राह्मण सत्वगुण प्रधान होता है इस कारण शम, दम तप, शौच, ऋजुता ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य य नौ गुण ब्राह्मण क स्वाभाविक कम कहे गय हैं। इन्ही गुणो के कारण ब्राह्मण सब पूज्य है, उसका सन्तोष मगलमय है। विपरीत कर्मों म प्रवृत्त होन पर ब्राह्मणत्व से पतन का उल्लेख भी किया गया है। सत् पुरुषो का आश्रय लेकर प्रशस्त कर्मों म प्रवत्ति उन्नति का मूल साधन है और विपरीत कर्मों

---

१ म० अनु० अध्याय ३३ ३५

२ म० वन० १८०।२५ २६, ३१३।१०८

३ म० अनु० ३५।१

४ म० उद्योग० ४०।२५

५ म० शान्ति० ६०।१२

६ म० शान्ति० ६२।६

७ म० शान्ति० ६२।४

८ गीता० ४।१३ शा० भा०

का आचरण पतन का कारण है।[1] साधारण धर्म की विवेचना करते हुए क्रूरता का अभाव, अहिंसा, अप्रमाद, देवता और पितरों के हेतु दान देना, श्राद्ध, अतिथि सत्कार, सत्य अक्रोध, अपनी पत्नी में स तुष्टता पवित्रता, किसी में दोष न देखना, आत्मज्ञान और सहिष्णुता आदि धर्म द्विजातियों के मुख्य धर्म है।

क्षत्रिय ब्राह्मण के लिए बताये हुए अध्ययन-यजन दान आदि धर्म क्षत्रिय के लिए भी आवश्यक है। किन्तु प्रजा की रक्षा करना क्षत्रिय के लिए श्रेष्ठ धर्म है।[2] जो क्षत्रियोचित युद्ध आदि कर्म का सेवन करता है, वेदों के अध्ययन में लगा रहता है ब्राह्मणों को दान देता है और प्रजा से कर लेकर उसकी रक्षा करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है।[3] युद्ध कर्म निन्द्य अवश्य है किन्तु क्षत्रिय की धर्म परिधि में युद्ध भी कर्म के अन्तर्गत आता है। क्षत्रिय में सत्व गुण गौण और रजोगुण की प्रमुखता होती है। उसके अनुसार शौर्य, तेज धृति, दक्षता युद्ध में शत्रु से पराङ्मुख न होना आदि क्षत्रिय के स्वभावज गुण कहे गये हैं।[4]

अर्जुन के मोह को विच्छिन्न करने के लिए भगवान कृष्ण ने युद्ध को क्षत्रिय धर्म का मुख्य कर्त्तव्य कहकर उस पाप की सीमा से असम्पृक्त कर दिया है।[5] धर्म के ज्ञाता आर्य पुरुषों का कथन है कि क्षत्रिय धर्म का फल महान होता है अतः वह सर्वोच्च धर्म माना गया है।[6] क्षत्रिय राज्य करता है अतः राजधर्म-वर्णन के अन्तर्गत नीतिमत्ता दृढ़ता शक्तिमत्ता आदि गुणों का विवेचन किया गया है। नीति-हीनता दुर्बलता और कायरता क्षत्रिय के दोष है। राजा के धर्म के अन्तर्गत पुरुषार्थ

---

१ म० शान्ति० २६६।२६

२ टिप्पणी ब्राह्मण का लक्षण बताते हुए भृगु जी कहते हैं कि जो जाति कर्म आदि संस्कारों से सम्पन्न, पवित्र तथा वेदों के स्वाध्याय में संलग्न है कर्मों में स्थित शौच एवं सदाचार का पालन तथा परम उत्तम यज्ञ शिष्ट भोजन करता है गुरु के प्रति प्रेम नित्य व्रत पालन और सत्य में तत्पर रहता है और जिसमें दान अद्रोह दया, तप, आदि सद्गुण है वह ब्राह्मण माना गया है। म० शान्ति० १८६।२ ३ ४

३ रक्षा क्षत्रस्य शोभना। म० शान्ति० २६६।२०

४ क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन संगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते॥ म० शान्ति० १८८।५

५ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥ गीता० १८।४३ पर
शा० भा० पृ० ४३६

६ ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि। गीता० २।३८

७ म० शान्ति ६३।२६

की महत्ता प्रारब्ध से भी उच्चतर मानी गई है।[1] वन पर्व में भीम क्षत्रिय धर्म को कठोर कर्म करने वाला कहते हैं।[2] क्षत्रिय के लिए न तो भीख मांगने का विधान है और न वैश्य और शूद्र की जीविका का, उसके लिए तो बल और उत्साह ही विशेष धर्म है।[3] वह तपस्या के द्वारा उन लोकों को प्राप्त नहीं होता जिन्हें वह अपने लिए निहित युद्ध में विजय अथवा मृत्यु को अंगीकार करने से प्राप्त करता है।[4] इस प्रकार प्रजापालन सत्य के द्वारा शक्ति सहित राज्य धर्म का पालन युद्ध आदि कर्तव्य कर्म क्षत्रिय की धर्म परिधि में आते हैं।

वैश्य वैश्य के लक्षण बताते हुए 'महाभारत' में कहा गया है कि जो वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार, पशुपालन, खेती का काम करके अन्न संग्रह करने की रुचि रखता है वह वैश्य कहलाता है।[5] इस प्रकार ब्राह्मण के लिए बताये गये धर्माय कर्मों के अतिरिक्त कृषि, पशुपालन वाणिज्य, वैश्य जाति के स्वभावजन्य कर्म कहे गये हैं। वैश्य को चाहिए कि वह धन संग्रह करके कल्याण के कार्यों में लगाये। वैश्य क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य आश्रितजनों को समय-समय पर धन देकर उनकी सहायता करे और यज्ञों द्वारा तीनों *अग्नियों*[6] के पवित्र धूम की सुगन्ध ले तो वह स्वर्गलोक में भी दिव्य सुखों का उपभोग करता है।[7]

शूद्र शूद्र के लक्षण बताते हुए 'महाभारत' में कहा गया है कि जो वेद, सदाचार का परित्याग करके सदा सब कुछ खाने में अनुरक्त रहता है, सब तरह के काम करता है और बाहर भीतर अपवित्र रहता है उसे शूद्र कहते हैं।[8] शूद्र के कर्म

---

१ म० शान्ति० ५६।१४

२ म० वन० ३३।८४

३ भैक्ष्यचर्या न विहिता नच विट्शूद्रजीविका।
क्षत्रियस्य विशेषेणधर्मस्तु बलमौरसम। म० वन० ३३।५१

४ म० वन० ३३।७३

५ वाणिज्य पशुरक्षाच कृष्यादान रति शुचि।
वेदाध्ययन सम्पन्न स वैश्यइति संज्ञिता। म० शान्ति० १८८।६

६ ये तीन अग्नियां हैं—गार्हपत्याग्नि, दक्षिणाग्नि, और आहवनीयाग्नि।

७ म० उद्योग ४०।२८

८ म० शान्ति० १८८।७

विधान में द्विजाति सेवा ही प्रमुख है ।[1] यद्यपि शूद्र के लिए सेवा भाव के अतिरिक्त कुछ उच्च धर्मों की स्वीकृति भी है, किन्तु मुख्य रूप से सेवा ही उसका महान धर्म है । शूद्र को किसी प्रकार का धन संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि धन प्राप्त करने पर वह पाप में प्रवृत्त हो जाता है । धर्मात्मा शूद्र के लिए राजा से आज्ञा लेकर धार्मिक कृत्य करने की स्वतन्त्रता का भी विधान है ।[2]

आधुनिक काव्य में वर्ण धर्म

आधुनिक कवि वर्ण धर्म की स्वीकृति में अपने युग के सुधारवादी आन्दोलनों से अधिक प्रभावित हुआ है । वह महाभारत की वर्णाश्रम परम्परा को यथावत नहीं अपना सका । महाभारतकाल में वर्ण की प्रतिष्ठा समाज व्यवस्था का मुख्य रूप था यद्यपि वह आज के युग में भी सिद्धान्त में उसी रूप में विद्यमान है, किन्तु व्यवहार में पर्याप्त शिथिलता आ गई है । उस युग में वर्ण परम्परा जन्म और कर्मगत थी आज के युग में भी दोनों रूप सुरक्षित हैं अन्तर केवल मात्र इतना है कि जन्म मात्र की प्रतिष्ठा उतनी बलवती नहीं रही । आधुनिक परम्परावादी कवि महाभारत की परम्परा का यथाशक्ति निर्वाह करता है[3] किन्तु सुधारवादी कवि अनेक सामयिक प्रश्नों के साथ परम्परा का अपने युग के परिवेश में स्वीकार करता है ।

महाभारत-युग में ब्राह्मण की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है । आधुनिक कवियों के ब्राह्मण पात्र भी उच्चविचारक ज्ञानी धार्मिक परोपकारी और विशुद्ध पवित्र हैं । किन्तु उच्च पात्रों के साथ निम्न वर्ण के पात्रों के गुणों के प्रति भी आज का कवि श्रद्धालु है । एकलव्य के चरित्र पर लिखे गये प्रबन्ध काव्य व्यक्ति के गुण कर्म के प्रति वर्ण परम्परा से ऊपर उठकर आदर भाव की प्रतिष्ठा करते हैं । आधुनिक युग में कानीन पुत्र कर्ण के चरित्र पर लिखे काव्य सुधारवादी प्रवृत्ति के

---

१ शुश्रूषा चद्विजातीनां शूद्राणां धर्म उच्यते । म० वन० १५०।३६

२ म० शान्ति० ६०।३१

३ ब्राह्मण बढ़ावे बोध को, क्षत्रिय बढ़ावे शक्ति को ।
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को ।
यों एक मन होकर सभी वर्तव्य के पालक बनें ।
तो क्या न कीर्ति वितान चारों ओर भारत के तनें ।।
भारतभारती, पृ० १६७

पोषक हैं। इन कवियों ने 'महाभारत' की वर्ण व्यवस्था को यथावत स्वीकार नहीं किया। एकलव्य[1] और कर्ण[2] आज की समाज व्यवस्था में आदर के पात्र हैं।

ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत 'महाभारत' के अनुसार ही आधुनिक कवि तप-त्याग की श्रेष्ठता स्वीकार करता है।[3] महाभारत युग में ब्राह्मण की प्रतिष्ठा सर्वोपरि थी किन्तु आज के युग में ब्राह्मण केवल शंख और गंगाजल लिए खड़ा है तथा अत्याचारी राजा को रोकने में असमर्थ है।[4] राजा ब्राह्मण का अपमान करता है।[5] ऐसी परिस्थिति में ब्राह्मण का धर्म ब्रह्म-तेज के साथ खड्ग धारण करना भी हो जाता है।[6] यह खड्ग धारण धर्म रक्षा के लिए अनिवार्य है, अन्यथा हिंसा ब्राह्मण के धर्म के विरुद्ध है, ऐसी हिंसा से वह शाप प्राप्त करता है।[7] ब्राह्मण संसार की मेधा है अतः उसका धर्म है कि वह कल्याणकारी शिवत्व का प्रसार करे।[8]

क्षात्रधर्म के अन्तर्गत ब्राह्मण के समस्त गुणों की व्यवस्था है। युद्ध क्षत्रिय का धर्म है। ब्राह्मणों को दान देकर जो क्षत्रिय अपने क्षात्रधर्म का पालन करता है वह मोक्ष

---

१ 'एकलव्य ने जिस आचरण का परिचय दिया है, वह किसी उच्च कुल के व्यक्ति के आचरण के लिए भी आदर्श है। वह 'अनार्य' नहीं, 'आर्य' है, क्योंकि उसमें 'शील' का प्राधान्य है। यहीं उसमें महाकाव्य के नायक बनने की क्षमता है। भलेही वह 'सुर' अथवा 'सद्वंश' में उत्पन्न 'क्षत्रिय' नहीं। एकलव्य, आमुख पृ० ६

२ 'कर्ण चरित्र के उद्धार की चिंता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अहंकार विदा हो रहा है।' रश्मिरथी, भूमिका, पृ० ख

३ रश्मिरथी, पृ० १

४ रश्मिरथी, पृ० १४

५ रश्मिरथी, पृ० १५

६ रश्मिरथी, पृ० १६

७ अंगराज, पृ० ४६

८ कौन्तेय कथा, पृ० ७५

से पृथक रहे[1], तथा अन्तर-बाह्य पवित्रता, गुरुसेवा, इन्द्रिय संयम का विशेष पालन करे।[2] जो ब्रह्मचारी अपने धर्म का पालन नहीं करता वह पातकी होता है।

गृहस्थ गृहस्थाश्रम को 'महाभारत' में महान कहा गया है[3], इसके अन्तर्गत शेष आश्रमों का निर्वाह होता है इस कारण इसकी महत्ता सर्वोपरि है। गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत वेदों का अध्ययन, वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान, आश्रम में न्यायोचित विषयों का भोग, शास्त्रों की आज्ञा पालन, शठता और कुटिलता से पार्थक्य, उपकारी के प्रति कृतज्ञता, सत्यवादिता, क्षमा और अक्रूरता आदि धर्म आते हैं।[4] सद्गृहस्थ सरलता, अतिथि सत्कार आदि अपने धर्मों का पालन करते हुए परलोक में भी सुख को प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण स्वभावतः यज्ञ परायण हो गृहस्थ धर्म का पालन करता हो वही परम सुख को प्राप्त करता है।[5]

गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत अतिथि सेवा मुख्य गुण माना गया है। अपने आप न खाकर भी अतिथि को खिलाना, उसका सम्मान करना, गृहस्थ का मुख्य कर्तव्य है। शास्त्रों के विधान के अनुसार गृहस्थी को केवल अपने लिए ही भोजन न बनाकर पितर, देवता, अतिथियों के लिए भी बनाना चाहिए।[6] 'महाभारत' में गृहस्थधर्म के पालन रूप यज्ञ के साधन से अभ्युदय एवं निःश्रेयस की सिद्धि का उल्लेख किया है, क्योंकि यज्ञ से बचा हुआ भोजन हविष्य कल्प एवं अमृत माना गया है।[7] अतिथि धर्म के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है कि यदि द्वार पर वेद के पारंगत विद्वान, स्नातक, श्रोत्रिय, हव्य कव्य जितेन्द्रिय क्रियानिष्ठ और तपस्वी कोई ब्राह्मण अतिथि होकर आवे तो गृहस्थ उसका सत्कार करे।[8] इसके अतिरिक्त कौटुम्बिक व्यक्तियों के साथ विवाद में न पड़ना गृहस्थ का धर्म है। जो इन सबके साथ कलह को त्याग

---

१ म० शान्ति० ६१।२०

२ म० शान्ति० २४२।२०-२४

३ गार्हस्थ्य महाश्रम। म० शान्ति० ६१।२

४ म० शान्ति० ६१।१६-११

५ म० शान्ति० ६१।१६

६ म० शान्ति० २४३।५

७ म० शान्ति० २४३।१२

८ म० शान्ति० २४३।८-६

देना है वह पापो से मुक्त हो जाता है, [1] उसे चाहिए कि वह बन्धु-बान्धवों पर दया माता पिता और वृद्धों पर श्रद्धा का भाव बनाये रहे। इन्हें सन्तुष्ट रखने से महान् लोकों की प्राप्ति होती है। धर्म, व्याध, और जाजली तुलाधार के उपाख्यान में गृहस्थ धर्म का व्यापक विवेचन हुआ है। पृथ्वी देवी और भगवान श्रीकृष्ण के संवाद में गृहस्थ धर्म पालन की विधि का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। इस उपाख्यान में गृहस्थ के धार्मिक आचरण और सामान्य धर्मों का उल्लेख है। अन्ततः जो मनुष्य दोष दृष्टि का परित्याग करके गृहस्थोचित धर्मों का पालन करता है, उसे इस लोक में ऋषियों का वरदान प्राप्त होता है और वह पुण्य लोकों में भी सम्मानित होता है।[3]

वानप्रस्थ वानप्रस्थाश्रम 'सांसारिक त्याग का प्रथम सोपान है।' मनुष्य अपनी आयु का तृतीय भाग व्यतीत करने के लिए वन में वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे।[4] नियम के साथ रहना, प्रमाद से बचना, दिन के छठे भाग में एक बार अन्न ग्रहण करना, गृहस्थाश्रम की भांति अग्निहोत्र तथा यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन करना आदि धार्मिक चर्या का विधान उसके लिए विहित है।[5] वानप्रस्थ धर्म का पालन करने से प्रत्येक मनुष्य स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है।[6]

संन्यास वानप्रस्थ की अवधि पूरी होने पर आयु के चौथे भाग में संन्यास की दीक्षा लेकर एक दिन में पूरे होने वाले यज्ञ में अपना सर्वस्व दक्षिणा में डालकर संन्यास लेने का विधान है।[7] संन्यासी आत्मा का ही भजन करता है, आत्मा में ही रत होकर क्रीडा करता है।[8] आत्म यज्ञ का रूप इस प्रकार है कि अपने भीतर ही

---

१ म० शान्ति २४३।१४।१६

२ म० शान्ति २४३।१६

३ एतांस्तु धर्मान् गार्हस्थ्यान् य कुर्यादनसूयक ।
सहर्षिवरान् प्राप्य प्रेत्य लोके महीयते ॥ म० अनु० ९७।२३

४ म० शान्ति० २४४।४ ५

५ म० शान्ति० २४४।६

६ म० शान्ति० २४४।१८

७ म० शान्ति० २४४।२२ २३

८ म० शान्ति० २४४।२५

तीनों अग्नियों की विधि पूर्वक स्थापना करके देहपात तक प्राणाग्निहोत्र की विधि से यज्ञ करता रहे। संन्यासी का परम कर्तव्य है कि वह आत्मज्ञानी सुशील, और सदाचारी होकर क्रोध, मोह और संधि विग्रह का त्याग करके सब ओर से उदासीन रहे।[1] संन्यासी के लिए केवल भिक्षा धर्म ही मुख्य है।[2] संन्यासी न तो जीवन का अभिनन्दन करे और न मृत्यु का ही[3] इस प्रकार ब्रह्म का चिन्तन, आत्मा के साथ क्रीड़ा आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति और संसार के कल्याण की कामना करना संन्यासी का परम धर्म है।

आधुनिक काव्य आधुनिक कवि प्रतिबन्ध के द्वारा मानव जीवन विकास की सम्यक् व्यवस्था को स्वीकार करता हुआ आश्रम व्यवस्था की प्रतिष्ठा करता है। यद्यपि आज के व्यापक व्यावहारिक लाभ धर्म के अन्तर्गत आश्रमधर्म का समुचित पालन कठिन हो रहा है क्योंकि आज की विकासोन्मुख वैज्ञानिक विभूतियों ने मानव के समक्ष ऐसे विकट प्रश्न उपस्थित कर दिए हैं कि उसके व्यवस्थित जीवन का आदर्श छिन्न भिन्न हो गया है। आदर्श सामाजिक व्यवस्था के लिए आश्रम धर्म को उसके रूढ़ रूप में स्वीकार करना इस वैज्ञानिक युग के बुद्धिजीवी के सामर्थ्य में नहीं है। यही कारण है कि 'महाभारत से प्रभावित काव्यों में आश्रम धर्म का सैद्धान्तिक विवेचन अनुपलब्ध है। कहीं-कहीं पर प्राचीन पात्रों के मुख से अतीत के सन्दर्भ में आश्रम व्यवस्था के क्षय होने पर सामाजिक अव्यवस्था की घोषणा में ही आज के कवि की आश्रम धर्म प्रियता का आभास होता है।

महाभारत में आश्रम धर्म पालन से धर्म की रक्षा और अपालन से पाप का वर्णन है।[4] आज का कवि राष्ट्रीय और सामाजिक उत्थान के लिए उसी स्वर में आश्रम धर्म-पालन का समर्थन करके, अपालन की स्थिति में राष्ट्र क्षय

१ म० शान्ति० २४४।२६

२ म० शान्ति० २४५।७

३ नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्। म० शान्ति० २४५।१५

४ म० शान्ति० २४२।१५

का चित्रण करता है।[1] आश्रम धर्म के व्यतिक्रम पर गुप्त जी के दशरथ ग्लानि प्रकट करते हैं।[2] आश्रम धर्म से हीन व्यक्ति वैदिक नहीं हो सकता।[3] गुप्त जी की विधृता आश्रम धर्म के अपालनार्थ ही अत्यन्त क्षुब्ध है और क्रान्तिकारी वचन कह देती है। उसे दुःख है कि वह अतिथि के लिए आतिथेय के धर्म का पालन न कर सकी।[4] विधृता के दुःख की पृष्ठभूमि में परम्परा का पालन व्यंजित हो रहा है, क्योंकि यदि हमने परम्परा का पालन नहीं किया तो भावी सन्तति भी आश्रम धर्म पालन से विरत हो जायेगी।[5] आश्रम धर्म के व्यवस्थित पालन को समाज स्वस्थता का द्योतक मानते हुए गुप्त जी गृहस्थ धर्म[6] और सन्यास के बाद परम शान्ति[7] का प्रतिपादन करते हैं।

---

१ आश्रम धर्म भूलकर हमने
सीख लिया बस एक विराग,
क्यों न विदेशी दस्यु लूटते
विभव हमारा भवभाग। गुरुकुल, स० सं० २००४, पृ० २२१

२ साकेत, सं० सं० २००५, पृ० १२२

३ हिन्दू पृ० ३०५

४ मुट्ठी भर भी जो न दे सके
दासी थी मैं आहा। द्वापर, स०-स० २०१६ पृ० ३१

५ जहाँ 'दीयताँ' तथा 'भुज्यताँ' मुख्य यही दो बातें
जहाँ अतिथि हों आप देवता आज वहीं ये घातें।
भूले जाय यहाँ से वे हों, जो अब भी बालक हैं।
किन्तु हमारी परम्परा के अधम हैं पातक हैं। द्वापर पृ० ३२

६ उठते विचार हों परन्तु नहीं मन में
सहज विकार भी तो जागते हैं जन में।
निभने को उनसे गृहस्थता ही युक्ति है,
मुक्ति की ही ओर पहुँचाती यह युक्ति है। हिडिम्बा पृ० ३७

७ जब काल आवे सहज गति से शान्ति से विश्राम लें। जयभारत पृ० २११

गृहस्थ के लिए अतिथि सत्कार का स्थान सर्वोच्च है। 'दमयन्ती' के नल गृहस्थ धर्म का पूर्ण रूप से निर्वाह करते हैं।[1] 'जयभारत' के युधिष्ठिर दुर्वासा मुनि का सत्कार करते हैं।[2] द्रौपदी दुर्वासा के शाप से भयभीत नहीं है अपितु 'यह गार्हस्थ्य धर्म का ह्रास' कहकर सन्तप्त होती है।[3] गुप्त जी दोनों ओर से धर्म पालन पर बल देते हैं—ब्रह्मचारी और सन्यासियों का भी यह धर्म नहीं कि वे असमय में अनावश्यक रूप से गृहस्थ को सतप्त करें।[4] गृहस्थ का धर्म है कि वह अपना पेट न भरकर भी अतिथि को सन्तुष्ट करे।[5] धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती युधिष्ठिर को राज्य सिंहासन पर बिठाकर वन की ओर प्रयाण करते हैं। युधिष्ठिर कुन्ती को रोकते हैं किन्तु कुन्ती उन्हें अपने धर्म पर अविचल रहने की शिक्षा देकर वन को चल देती है।

आश्रम धर्म पालन की व्यवस्था यद्यपि आज के युग में अधिक व्यापक नहीं है, किन्तु गुप्तजी ने कंस और उग्रसेन के प्रसग में इसके व्यतिक्रम के दुष्ट परिणामों की विवेचना भी की है। उग्रसेन कहते हैं कि यदि हम अपने पुत्र को उसका राज्य देकर वन को जाते[6] तो कारागृह का कष्ट सहन न करना पडता।[7] जीवन के बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण आज का कवि आश्रम-व्यवस्था की परम्परा का सिद्धान्त और क्रिया—दोनों रूपों में पालन नहीं कर सका है। युग-परिवर्तन के साथ जीवन की परिवर्तित मान्यताओं का परिवर्तित चक्र उक्त व्यवस्था को कभी कभी 'रूढ़ि' मानने पर विवश कर देता है।

---

१ दमयन्ती, पृ० २८

२ जयभारत पृ० २२८

३ जयभारत प० २२६

४ देख हमारा दुर्व्यवहार, अवशगृही पर अत्याचार।
कौन करेगा किसी प्रकार, आगत का स्वागत सत्कार॥
जयभारत प० २३०

५ जयभारत, प० ४३३

६ जयभारत पृ० ४३४

७ उसका राज्य सौंप कर उसको यदि हम वन को जाते,
तुम्हीं विचारो, तो हम क्यों इस कारागृह मे आते ?
लोभ वस्तुत रहा हमारा, क्षोभ वृथा हम मानें,
नये कहाँ बढ़ें सोचो यदि, हट न यहां पुराने ? द्वापर, प० १०१

राजधम वणधम के अग राजधम का विस्तृत वणन 'महाभारत' के राज धमानुशासन पव मे किया गया है। 'महाभारत' म राजधम की महिमा का गुणगान राजतन्त्रीय व्यवस्था के अनुरूप है। उस काल मे प्रजा और राजा क पुत्र पिता सबध की कल्पना व्यापक रूप से फैली हुइ थी। इस कारण राजधम का और राजनीति की व्यवस्थाओ का व्यापक वणन धम यवस्था के सामाजिक रूप मे हुआ है। राजधम को समस्त धमाचारो का आधार सचालक और समस्त समाज व्यवस्था का केद्र मान कर[1] अय धर्मों को राजधम पर अवलम्बित और लोको को राजधम मे प्रतिष्ठित माना है।[2] 'महाभारत' परम्परागत राजतन्त्र का समथक है। अत कहा गया है कि धम के ज्ञाता आय पुरुषो का कथन है कि समस्त अय धर्मों का आश्रय तो अल्प है फल भी अल्प ही है परन्तु, क्षात्रधम का फल महान है और सभी धर्मों म राजधम प्रधान है।[3] यही सम्पूण जीव जगत का परमाथय है।[4] वन म विभिन्न आश्रमो में रहकर लोग जितना धम करते हैं, उनकी रक्षा करने से राजा उससे सौ गुने धम का भागी होता है।[5] यही नही, जो राजा प्रजा परायण है वह उत्तम धम फल को प्राप्त करता है।[6] राजधम की प्रतिष्ठा के साथ राजा के होने से लाभ और न होने से प्रजा के अलाभ का भी विस्तृत वणन किया गया है।[7]

राजा का कत्तव्य राजधम-वणन म सब से अधिक बल राजा के कत्तव्यो पर दिया गया है। 'महाभारत' मे जिस प्रसग और अवसर पर राज्य धम का उपदेश दिया गया है वह प्रसग भी इस विस्तृत वणन का मुख्य कारण है। युद्ध मे हुए

---

१ यथा राजन हस्तिपदे पदानि,

सलीयन्ते सव सत्त्वोदभवानि।

एव धर्मान राजधर्मेषु सर्वान,

सर्वावस्थान सम्प्रलीनान निबोध॥ म० शान्ति० ६३।२५

२ म० शान्ति० ६३।२६

३ म० शान्ति० ६३।२७ २८

४ म० शान्ति० ५६।३

५ वनेचरन्ति ये धममाश्रमेषु च भारत।

रक्षणात तच्छतगुण धम प्राप्नोति पार्थिव। म० शान्ति ६६।४१

६ म० शान्ति० ६६।३६

७ म० शान्ति० अध्याय ६८, ७८

भयकर नरसहार से निवृत्ति की ओर जाने वाले युधिष्ठिर को प्रवत्ति की ओर अग्रसर करने के हेतु इस उपदेश की उपस्थापना की गई। अत यह आवश्यक ही था कि साधु प्रवृत्ति नृपति युधिष्ठिर को कम सग्राम मे प्रवत्त करने के हेतु उनके कत्तव्यो का वणन विस्तार स किया जाए।

राजा का प्रथम और प्रमुख कत्तव्य प्रजापालन है।[१] राजा को चाहिए कि वह धमपूवक विवेक, विराग, यम, नियम शान्ति और सुमति से प्रजा की सुख सम्पत्ति की अभिवद्धि करे। उसे सत्यवादी, पराक्रमी क्षमाशील, दयालु निश्चयात्मिका बुद्धिवाला, समय पर दान देन वाला, नीति निपुण होना चाहिए।[२] चारो वर्णों की रक्षा और प्रजा को वणसकरता से बचाना भी उसका सनातन धम है।[३] राजनीति के छ गुण स धि, विग्रह यान आसन, द्वधी भाव और समाश्रय का अपनी बुद्धि से पालन कर।[४] याय और धन राज्य व्यवस्था क मूल हैं, अत राजा को न्याय मे यमराज तथा धन मे कुबेर के समान होना चाहिए।[५] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण और धम के उपलक्ष्य स राजा क अनेक कत्तव्यो का विधान भी है इनम से कुछ कत्त य नितान्त वैयक्तिक है और कुछ राजनीति स सम्बन्धित। धम का आचार, प्रजापालन, सात्विकता, आदि गुण वयक्तिक सीमा म आते हैं। राजनीति की सीमा म आने वाले राजा के प्रमुख कत्तव्यो का वणन शान्ति पव के ६९वें अध्याय मे विस्तार से हुआ है। इसम गुप्तचर नियुक्ति, अन्याय वर्णों की विश्वास प्राप्ति, भृत्यो स्त्रियो के प्रति काम कुशलता, राजकीय आचार व्यवहार शत्रु के साथ नीति, मन्त्रिमडल आदि की व्यवस्था पर विचार किया गया है। इनम से अधिकाश तत्व तत्कालीन राज्य व्यवस्था के नितान्त अनुकूल थ किन्तु आज की राज्य व्यवस्था म उनकी उपयोगिता सदिग्ध है।

---

१ म० शान्ति ५६।१२

२ लोकरजनमेवात्र राज्ञा धम सनातन।
सत्यस्य रक्षणचव व्यवहारस्य चाजवम।
न हिंस्यात पर वित्तानि देयकाले च दापयेत।
विक्रात सत्यवाक क्षान्तो नृपो न चलते पथ ॥ म० शान्ति ५७।११ १२

३ म० शान्ति ५७।१५

४ म० शान्ति० ५७।१६

५ म० शान्ति० ५७।१८

राज्य धर्मानुशासन पर्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्रजा में समान भाव बनाये रखना भी राज्य-व्यवस्था का एक गुण है। यद्यपि समत्व की सैद्धान्तिक समीक्षा नहीं की गई किन्तु जिन बातों से अराजकता फैलती है उनमें असमानता का एक तत्व के रूप में माना गया है। राज्य-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए राजा को पुरुषार्थी बलसम्पन्न, धर्माचारी और पुण्यात्मा होना आवश्यक है। जो राजा धर्म का अर्थ सिद्धि की अपेक्षा श्रेष्ठ मानता है और उसी को बढ़ाने में मन बुद्धि का उपयोग करता है, वह धर्म के कारण अधिक शोभा पाता है।[1] राजा का पुरुषार्थी होना राजव्यवस्था के लिए परम आवश्यक है।[2] राजा के लिए प्रारब्ध और पुरुषार्थ में पुरुषार्थ ही सर्वोत्तम नीति है।[3] राजा के लिए बलसंग्रह को परमावश्यक बताया गया है क्योंकि सम्पूर्ण जगत बल के अधीन होता है।[4] बलवान व्यक्ति जगत में सम्पत्ति, सेना और मन्त्री सब कुछ पा लेता है।[5] बल धर्म से भी श्रेष्ठ है क्योंकि बल से धर्म की प्रवृत्ति होती है। धर्म सदा बल के अधीन चलता है।[6] अतः बल संचय की राजा के लिये महती आवश्यकता है।

राज्यरक्षा के उपाय—राजधर्म के अन्तर्गत शान्ति पर्व के ८८वें अध्याय में राज्य रक्षा के उपायों की चर्चा विस्तार से की गई है। राज्य रक्षा के ये उपाय राज्य व्यवस्था नीति, युद्ध आदि के अनुरूप हैं। इन उपायों में राजदूत नियुक्ति, समय पर वेतन देना, प्रजा पर अन्याय न करना, कार्य-दक्षता, शूरता, शत्रु पक्ष में फूट डालना, बुद्धिमान पुरुषों का सत्संग, सेना का पुरस्कार आदि वितरण, पुरवासियों

---

१ म० शान्ति० ९२।७

२ म० शान्ति० ५६।१४-१५

३ म० शान्ति० ५६।१६

४ म० शान्ति० १३४।३

५ श्रियो बलममात्यांश्च बलवानिह विन्दति। म० शान्ति० १३४।४

६ प्रतिधर्माद् बलं मन्ये बलाद्धर्मः प्रवर्तते।
बले प्रतिष्ठितो धर्मो धरण्यामिव जङ्गमम्॥ म० शान्ति १३४।६

की गुट बन्दी मे फूट, सदा उद्योगशील बने रहना[1] आदि प्रमुख उपाय राज्य की रक्षा के लिए बताये हैं। इन उपायो के साथ उद्योगशीलता राजा का प्रमुख धर्म और राज्य रक्षा का मुख्य आधार माना है।[2] उद्योगहीन राजा सवदा शत्रु से परास्त हो जाता है।[3]

नीति और राज्य रक्षा के उपाय स्वरूप दड-नीति की महत्ता निर्विवाद रूप मे उपस्थापित की गई है। दड धम के अन्तगत यह स्पष्ट कहा गया है कि अपराध करने पर राजा अपने व्यक्ति को भी दड दे।[4] धार्मिक अनुग्रह और दड दोनो धर्मों के कारण राजा परमेश्वर और यम के समान होता है।[5] राजा अपने दड धम के कारण समस्त वर्णों को व्यवस्थित और आचारो का नियमन करता है। दड की महत्ता सर्वोपरि है उसके अभाव मे प्रजा म पाप की वृद्धि होती है। राजा स्वय दुवल हो जाता है और जिसका अंतिम परिणाम राज्य विसजन होना है। राजा के द्वारा क्षमा और दड के विषय मे 'महाभारत' की दृष्टि अत्यन्त सन्तुलित है। 'महाभारत' स्पष्ट घोषणा करता है कि क्षमा सवदा ही उचित नही होती अनधिकारी को क्षमा करने से अधम की वृद्धि होती है।[6]

आधुनिक काव्य 'महाभारत के राजधम का प्रभाव आधुनिक काव्य म प्रत्यक्ष रूप से पडा है। यद्यपि महाभारतकालीन राज्य व्यवस्था और आधुनिक राज्य व्यवस्था मे अन्तर है तथापि राज्य और राजधम के साथ कुछ ऐसे तत्व शाश्वत रूप से विद्यमान हैं जो युग की सकुचित सीमा से पृथक सावकालिक हैं। 'महाभारत' का

---

१ म० शान्ति० ५८।५ १२

२ म० शान्ति ५८।१४ १५

३ म० शान्ति ५८।१६

४ म० शान्ति ९१।३५

५ म० शान्ति० ९१।४२

६ म० शान्ति० ८६।२७

मूल उद्देश्य एक ऐसे विराट् महाराष्ट्र का निर्माण करना था जिसमें क्षेत्रीय सीमाओं से उठकर राजा और प्रजा विराट् संस्कृति तथा महान साम्राज्य की कल्पना कर सकें। 'महाभारत' के राजसूय प्रसंग में जिस राष्ट्रीय भावना का व्यापक विस्तार मिलता है वह आज भी अनुकरणीय है। उस युग में राजतन्त्रीय व्यवस्था में चक्रवर्ती राजा की कल्पना विद्यमान थी और आधुनिक युग में परतन्त्रता और स्वतन्त्रता के काल में भारत राष्ट्र की सीमा के अन्तर्गत अखंड राज्य की स्थापना की भावना है। स्वतन्त्रता से पूर्व लिखे गये 'महाभारत' से प्रभावित प्रबन्ध काव्यों में 'महाभारत' की विराट् भावना के अनुकूल न्याय राज्य-संस्थापन की भावना पल्लवित हो रही थी। जिस ग्रंथ में 'महाभारत' में राजधर्म को समस्त धर्माचारों का आधार और संचालक कहा गया है। उसी भावना के अनुरूप आधुनिक काव्य में राजधर्म की विवेचना हुई है। जो राजा है और जिसके ऊपर शासन-व्यवस्था का भार है, जिसने अपने राष्ट्र की रक्षा करते हुए विश्वशान्ति में महान-त्याग देना है। ऐसे क्षत्रिय और राजधर्म का परमकर्त्तव्य धर्म की रक्षा करना है।[1] अतः राजधर्म ही जीवन का धर्म है।[2]

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों के नायक राज धर्म की महत्ता से विभूषित है। राजा का प्रथम कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करते हुए न्याय-साम्राज्य की व्यवस्था करना

---

१ क्षत्रिय हो राजधर्म चाहता है तुमसे
जीवन धनुष पर तीर रक्खो प्राण का
धर्म बीटिका पड़ी हो यदि कूप में
तो निकालो शीघ्र उसे लक्ष्य बेध करके। एकलव्य पृ० १६

२ हम सब उसको निभावेंगे सदैव ही,
क्षत्रिय हैं, राजधर्म जीवन का धर्म है। एकलव्य, पृ० २०

× × ×

रघुनन्दन जनजो हरि पदमूला, ममता सोई सब धर्मन मूला।
अन्य धर्म यह मनाय कारी यह प्रत्यक्ष सर्वहित कारी॥

कृष्णायन पृ० ८२६

है। अर्जुन आर्य साम्राज्य की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है।[1] युधिष्ठिर के चरित्र में राज्य धर्म की प्रतिष्ठा अत्यन्त उच्च आदर्शों के आधार पर हुई है। 'जय भारत' के अर्जुन और युधिष्ठिर महाभारतीय पात्रों की उच्च भावना से विभूषित हैं। युधिष्ठिर के आदर्श चरित्र में भारत की शरणागत रक्षा की परम्परा सजीव रूप से विद्यमान है।

'महाभारत' का मुख्य उद्देश्य धर्म की स्थापना है। 'सेनापति कर्ण' में कवि उस महान उद्देश्य के लिए प्रत्येक सम्भव प्रयत्न का समर्थन करता है। राजधर्म में नीति का स्थान आदर्श से भी ऊपर है। कृष्ण के शब्दों में शक्ति की आवश्यकता पर बल दिया गया है[2] और शत्रु की शक्तिहीनता तथा मित्र की शक्ति का समर्थन है।[3] प्रजा पालन राजा का राष्ट्रीय और आन्तरिक कर्त्तव्य है किन्तु साम, दाम, दंड और भेद किसी भी नीति से राष्ट्र रक्षा उससे भी महान धर्म है।[4] व्यक्तिगत स्वार्थ और अधर्म के विनाश हेतु युद्ध राजधर्म का अनिवार्य अंग है।[5] राज्यधर्म की क्षत्र

---

१ अवशेष आर्य शासन लाना,
पर क्या यह मुझे प्रसंग पाना। जयभारत, पृ० १२१

२ भीम शरणागत का अपमान ?
कहा है आज तुम्हारा मान ? जयभारत, पृ० २०७

३ शक्ति दम्भ भारत से मुझको मिटाना है।
आत्मबल हारता रहा जो शस्त्र बल से,
जड़ के अधीन सदा चेतन बना रहा,

× × ×

सत्य हो कि नीति हो उसे ही मानता हूँ मैं
जनमन रंजन की जिससे भुवन में
बरी बल हीन बनें मित्र बलशाली हों। सेनापति कर्ण, पृ० २०६

४ एकलव्य, पृ० २६५-६६ शल्यवध, पृ० ११३, द्वापर, पृ० १११

५ ओ समर तो और भी अपवाद है,
चाहता कोई नहीं इसको,
मगर जूझना पड़ता सभी को,
शत्रु जब आ गया हो द्वार पर ललकारता।
कुरुक्षेत्र, पृ० २४

छाया म न्याय प्राप्ति हेतु लडना पाप नही।[1] राजा का धम है कि वह प्रजा म भय का वातावरण हटा कर निभयता का प्रचार करे 'दमयन्ती' म नल महाभारत वर्णित राजधम के उच्च आदर्शों का पालन करत हैं।[2] आधुनिक कवि आज के राजनतिक कटुतापूण वातावरण म प्राचीन आदर्शात्मक राज्यधम की पुनः स्थापना करना चाहता है। दुर्योधन का पक्ष इस दृष्टि से असत्य का पक्ष है। अत सामान्यत उसका विरोध करके पाण्डवो के पक्ष का समथन किया गया है। 'अगराज' के कण के सुशासन म उच्चादर्शों की व्यवस्था है।[3] राजा के अधिकार को मानते हुए भी आधुनिक कवि प्रजा के अधिकारा की उपेक्षा नही कर सकता। आधुनिक युग मे राजा के लिए दवी सिद्धात की स्वीकृति नि शेप हो चुकी है। राजा प्रजा का प्रतिनिधि है उसक उत्तराधिकार का प्रश्न भी प्रजा की शक्ति की सीमा म आता है। आधुनिक कवियो म गुप्त जी राज्यतन्त्र के प्रतिनिष्ठावान हैं, तथापि उनके काव्यो म गणतन्त्र, प्रजातन्त्र आदि अनेक व्यवस्थाओ का प्रतिपादन भी है। कवि गणतन्त्र के विधान को सामाजिक बौद्धिकता का उत्कप मानता है, राजा प्रजा को सहभागी बताकर एक व्यापक राष्ट्रीय समत्व की स्थापना करता है।[4] गुप्त जी क राजतन्त्र का आदश रामराज्य है और आदश राजा है राम। इसके साथ गुप्तजी की दृढ धारणा है कि सामान्य व्यक्ति अपने स्वार्थों के कारण सचतना से श्रेष्ठ निर्वाचन

---

१ किसने कहा, पाप है समुचित
 स्वत्व प्राप्ति हित लडना ?
 उठा न्याय का खडग समर मे
 अभय मारना-मरना। कुरुक्षत्र, पृ० ३५

२ न नप से भी है ऐसी भीति
 कि कल को वह लेगा भू-छीन
 और हम रह जायेंगे दीन। दमयन्ती, पृ० २२

३ स्तम्भ बनाकर सत्य अहिंसा न्याय धम को।
 नृप ने किया प्रतिष्ठ लोक सभ्यता-सध को॥
 किया देश व्यापक प्रचार विद्या-कौशल का।
 मान नाम का मिला सभी को बल निबल का। अगराज प० ३६

४ वे ही हम जो बुद्धि निधान करते थे गणतन्त्र विधान। हिन्दू प० २६८

५ राजवश भी रहे प्रजा के साथ सदा सम्भक्त। पृथ्वीपुत्र, प० २७

स"यनिर्माण, व्यूह निर्माण, गुप्तचर विभाग आदि की व्यवस्था पर बल दिया गया है। यद्यपि अहिंसा के आधार पर निर्मित शासन प्रणाली की प्रशसा की गई है तथापि प्रतिरक्षा पर भी पर्याप्त विचार किया है। 'महाभारत' से प्रभावित आधुनिक काव्य म तत्कालीन युद्ध नीति का विस्तृत वर्णन इसलिए मिलता है कि कवि उस काल के युद्ध का चित्रण करता है किन्तु वह युद्ध नीति कुछ विभागो म आज पुरानी पड गई है। आज का कवि युगीन विचारधारा क कारण युद्ध, हिंसा, अहिंसा त्याग का विवेचन राजनीति की दृष्टि स करता है। सभी काव्यो म शक्ति सचय पर बल दिया है। बलको ही समस्त धम का आधार माना है' और सैन्य शिक्षा की अनिवायता स्वीकार की है।[२] न्याय की स्थापना के हेतु राज धर्म का अतिम उपाय युद्ध है।[३] जहा न्याय की रक्षा नही होती, और राजा अत्याचारी हो जाता है वहा विद्रोह होता है अत राजनीतिक आवश्यकता के रूप मे राजा को समानता न्याय एव धम का अनुकरण अपेक्षित है। असमानता के आवरण मे विस्फोट की ज्वाला धधकती है और एक न एक दिन भयकर विस्फोट होता है। दिनकर के भीष्म 'महाभारत' क वातावरण की सीमा म युधिष्ठिर को राजा के कत्तव्या की शिक्षा देते है जिससे शान्ति की स्थापना हो।

राजधम क क्षेत्र मे आततायी को दड देना सर्वोत्तम विधान है। आततायी को दड देने से राजा को कलक नही लगता अपितु स्वत्व छीनने वाला उद्दड स्वय ही अपने नाश का उत्तरदायी होता है।[४]

---

१ धन से आता है धम, धम से बल है
बल से आता है धन जगती मे निश्चय,
इन तीनो का है ध्येय व्यक्ति का सुख ही
जिसमे जितना बल हो वह उतना भोगे ॥ पांचाली पृ० ५५

२ सैन्य शिक्षा भी है अनिवाय
सभी गुरुकुल करते हैं काय। दमयन्ती पृ० २२

३ जब ध्वस्त उपाय सभी हों, तब न्याय सृष्टि के हित हो,
क्षत्रिय को रण के पथ में जाना तब धर्म्य, वरद है। कौन्तेय कथा, पृ० ७६

४ कुरुक्षेत्र, पृ० १७,२०, ३७

कृष्ण अर्जु न से 'महाभारत' के युद्ध मे पाण्डवो की सहायता करने के कारणो पर प्रकाश डालत हुए कहत हैं—जो राजास्वाथ वश दूसरे के राज्य का हरण करता है, उसको दड देना उससे बडे राजा का कर्त्तव्य है और इसी कारण मैंने तुम्हारा साथ दिया।[1] जय भारत के युधिष्ठिर कर्त्तव्य को कठोरता के प्रकाश मे अपने युद्ध धम की विवचना करत हैं जिसका निष्कष यह है कि राज्य धम से प्रेरित होकर ही युद्ध किया गया।[2] युद्ध उस समय तक पृथ्वी पर अनिवाय आवश्यकता के रूप म विद्यमान रहगा जब तक समस्त भूतल हिंस प्रवत्ति का त्याग नही करेगा।[3] एसी परिस्थिति मे युद्ध ही महान राजधम है। आधुनिक कवियो ने युद्ध का स्थिति-सापक्ष समथन करते हुए भी उसे एक मात्र उपाय के रूप म स्वीकार नही किया। महाभारतकार न भी युद्ध की भयकरता के उपरान्त युधिष्ठिर को शान्ति हतु और मानवता की रक्षा के लिए राजधम म दीक्षित किया[4] उसी भावना के आधार पर आज का कवि भी शान्ति के लिए त्याग तप, दया आदि की व्यवस्था को स्वीकार करता है।[5]

'महाभारत' की धम विधि का आधुनिक काव्य पर प्रभाव देखते हुए एक बात विशेष रूप स आधुनिक काव्य म द्रष्टव्य है कि यह प्रभाव परम्परागत दृष्टि से ही न होकर महाभारत से मूलत सम्बद्ध होत हुए भी सामयिक आलोक म हुआ है। मानव धम स्त्री धम, राजधम के अन्तगत 'महाभारत' की विचारधारा का

---

१ हरत जो स्वाथ हेतु परराजू,
करत सो अघी समाज अकाजू।
× × ×
निहित राज्य मह जनकल्याणा,
होत न तासु दान प्रतिदाना।
लीन्ह तुम्हार पक्ष मे यहि रण। कृष्णायन, पृ० ८३३

२ दोष नहीं मेरा, यदि है तो क्षात्र धम का।
हम अपराधी निज धम पालने के हैं
यह है त्रिगुण तो हमारा अपराध क्या? जयभारत, पृ० ४०६

३ कुरुक्षेत्र, पृ० ४१

४ म० शान्ति० अध्याय २३ २४

५ क उपाय से सचय राष्ट्र शक्ति का प्रभाव से शासन लोक मग का।
समाज का पालन सद्विचार से यही प्रजारजक राजधम है।
अमराज, पृ० १२६

ए स्नेह बलिदान होंगे माप नरता के एक
धरती मनुष्य की बनेगी स्वग प्रीति से।। कुरुक्षेत्र, पृ०

अधिक अनुकरण हुआ है किन्तु वर्णाश्रम धर्म की सीमा में आधुनिक काव्य में 'महाभारत' के अनुकरण की अपेक्षा युगीन दृष्टि सापेक्ष विवेचना अधिक है। आज का कवि समाज चिन्तक है, अतः वह मूलरूप में एक स्रोत 'महाभारत' से स्वीकार करता है और फिर स्वतन्त्र रूप से अपने युग की समस्याओं का विश्लेषण करता है। कवि का विस्तृत मानसिक प्रवाहधारा में सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर महाभारतीय विचार धारा की झलक दिखाई दे जाती है। 'महाभारत' में जिस प्रकार धर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है, उसी प्रकार आधुनिक कवि भी धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है और धर्म की स्थापना के लिए बार बार जनार्दन के अवतरण की कामना करता है।

जब तक न मनुज का धर्म भूमि पायेगा
आयेंगे सदा जनार्दन मेरे जैसे
जो धर्म स्थापना हेतु लड़ेंगे अविरत।[1]

महाभारत के दर्शन का प्रभाव

महाभारत-पूर्व-युग
महाभारत-युग
आधुनिक काव्य

सप्तम अध्याय

महाभारत के दर्शन का प्रभाव

भारतीय दर्शन दृष्टिकोण

मानव को अपने परिवेश और अपने प्रति जिज्ञासा ही 'दर्शन' का मूल कारण है। दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'देखना'। हमारे नेत्र बाह्य पदार्थों का दर्शन करते हैं यह बाह्य विषय है। हमारी बुद्धि ज्ञान द्वारा तथा आत्मा 'अनुभूति' द्वारा जिन सूक्ष्म तत्वों का विश्लेषण और अनुभव प्राप्त करती है, उनका क्रमबद्ध स्वरूप ही 'दर्शन' या दर्शन शास्त्र कहलाता है।[1]

भारत अत्यन्त प्राचीन देश है और यहाँ के आर्यों की प्रवृत्ति सर्वदा जीवन के उच्चतम मूल्यों को प्राप्त करने की ओर रही है। यही कारण है कि जहाँ अन्य दर्शन ऐन्द्रिय प्रवृत्तियों के विश्लेषण में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री मान लेते हैं, वहाँ भारतीय दर्शन एक उद्देश्यपूर्ण, साधन प्रधान जीवन दृष्टि है।[2] भारतीय दर्शन विश्लेषण मात्र नहीं है, वह जीवन परिपाटी भी है।

नास्तिक मतों को छोड़कर प्रायः समस्त भारतीय 'दर्शन' 'आत्मा' के अस्तित्व को स्वीकारते हैं और देहबद्धता को कष्टों का कारण मानते हैं। आत्मा के ही व्यापक स्वरूप ब्रह्म को जीवन का परम लक्ष्य मानकर मोक्ष प्राप्ति के उपायों का अवलंबन भारतीय दर्शनों का अभिधेय है। भारतीय दर्शन का सर्वदा जीवन धर्म से सम्बन्धित रहने का भी यही प्रमुख कारण है।[3]

भारतीयदर्शन जीवनानुभूति की नवता को सर्वदा धारण करते रहे हैं और मानव की चिर संघर्षशील परिस्थितियों में उनका विकासक्रम घटित होता रहा है। वेद-पूर्व प्रकृति परता, टोटम पूजा एवं जगतकर्ता के प्रति रहस्यमय जिज्ञासाओं में से भारतीय आर्यों ने वैदिकयुग में मीमांसा-दर्शन को जन्म दिया। पूर्व मीमांसा कर्म[illegible] प्रधान था तो उत्तर मीमांसा ज्ञान प्रधान हुई। प्रकृति के मूलभूततत्व और पुरुष [illegible] ने सांख्य को जन्म दिया तो ध्यान धारणा-समाधि की मोक्षानुकूलता ने 'योग' [illegible] हुआ। 'न्याय' ब्रह्म, जीव एवं जगत् की स्थापना की विशिष्ट प्रणाली [illegible] आधुनिक हुआ तो उसी के वस्तु विचार रूप में 'वैशेषिक' का विस्तार हुआ। [illegible] को भारतीय तत्व ज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ज्ञान [illegible] साधनों में उलझता हुआ भारतीय दर्शन परमात्मतत्त्व प्राप्ति [illegible]

---

१ भारतीय दर्शन, पृ० ३४

२ तुलसीदर्शनमीमांसा, पृ० १८

३ '*The Philosophy of Rabindr*[illegible]

निरंतर प्रेरित करता रहा है और आज के भारत का सम्मान भी विशेषकर उसकी दार्शनिक बातों के कारण ही होता है। वस्तुतः जिस प्रकार पुष्प का पराग, ज्योत्स्ना की स्वच्छता, सूर्य का तेज अपने मूलाधार के अस्तित्व से अभिन्न है तद्वत् भारतीय चिंताधारा और 'दर्शन' का भी अभेद्य संबंध है।

महाभारत भारतीय दर्शन का विश्वकोश भारतीय दर्शन की विकास-परम्परा में 'महाभारत' का महत्वपूर्ण स्थान है। 'महाभारत' से पूर्व वेद उपनिषद् आदि आर्ष ग्रंथों में जिस दार्शनिक विचारधारा का विकास सहस्रों वर्ष में हुआ उसके विभिन्न रूपों का सम्यक् चयन 'महाभारत' के कलेवर में हुआ। उपनिषदों में जो तत्वज्ञान साधना और सिद्धि दोनों दृष्टियों से प्रौढ़ि प्राप्त कर चुका था उसी का समन्वित व्यवहृत और नवीन रूपों में ढालने का कार्य 'महाभारत' में हुआ है। 'महाभारत' का दृष्टिकोण अपने युग में फैले हुए समस्त जीवन चिन्तनों को सूत्रबद्ध कर उनके आधार पर ऐसे अविरोधी साधन पक्ष का निर्माण करता रहा है, जो न केवल किसी विशेष युग में अपितु युग युग तक मानव जीवन को अनुप्राणित करता रहेगा। महाभारत के चिन्तन की सूक्ष्म शिराएं इतनी व्यापक हैं कि उसमें भारतीय जीवन का अतीत वर्तमान और सम्भावित भविष्य सभी एक साथ प्रत्यक्ष होने लगता है। अतः जीवन के अन्य अंगों के साथ ही दर्शन की दृष्टि से भी 'महाभारत' को भारतीय दर्शन का विश्वकोश कहा जाता है।[1] 'महाभारत' में योग[2], सांख्य[3] पाञ्चरात्र[4], पाशुपत[5] वेदान्त[6] आदि प्रमुख दार्शनिक मतों के साथ उन असंख्य विचार धाराओं का भी उल्लेख हुआ है जो आज परम्परा के रूप में हमारे समक्ष नहीं हैं।

महाभारत पूर्व युग में दर्शन वेदों में भारतीय मेधा की विभिन्न अतिप्राकृत शक्तियों के प्रति आदिम जिज्ञासा मन्त्रबद्ध है, और साथ ही परमात्मा के उस व्यापक निर्विकार, सर्वोपरि स्वरूप की समग्र अनुभूतियां भी संचित हैं, जो दर्शन की विकसित अवस्था की द्योतक हैं। अनेक पश्चिमी विद्वान वेदों को बहुदेववाद की अवस्था

---

१ *'Mahabharata as fifth Veda" —Journal of the American Oriental Society, Vol 13, p 112*

२ म० शान्ति० अध्याय २४०

३ म० शान्ति० अध्याय ३१०

४ म० शान्ति० अध्याय ३३४ ३५१

५ म० शान्ति० अध्याय १७ १८

६ हिंदुत्व, पृ० २६१ ६२

तक विकसित मानते हैं।[1] अन्य लोग वेदों में बहुदेववाद से भी पश्चात की ब्रह्म की अद्वैत स्थिति को स्वीकार करते हैं जहां ब्रह्म को ही जगत का मूल तत्व स्वीकृत किया गया है। विभिन्न देवता उसी 'एक' के अंग हैं और उसी एक की मान्यता विभिन्न रूपों में होती है, ऐसा स्पष्ट उल्लेख है।[2] फिर भी यह निश्चित है कि शास्त्र की दृष्टि से किसी विशिष्ट दर्शन की स्थापना वैदिक काल में नहीं हुई थी। जिन्हें वैदिक दर्शन कहा जाता है उनकी विधिवत स्थापना तो परवर्ती काल में वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न ऋषियों द्वारा की गई है। वैदिक कर्मकाण्ड के आधार पर पूर्व मीमांसा का विकास हुआ तथा वेदों के परवर्ती भाग उपनिषदों के आधार पर उत्तर मीमांसा या वेदान्त का। सांख्य तथा योग की परम्पराएं 'महाभारत' से पूर्व की हैं और इन दोनों का पर्याप्त उल्लेख 'महाभारत' में हुआ है। न्याय और वैशेषिक की नींव भी महाभारत पूर्व युग में पड़ चुकी थी, यद्यपि उनके विधिवत संपादन की तिथियों के संबंध में पर्याप्त विवाद है।

चार्वाक तथा अन्य भौतिकवादी दर्शनों के कारण भी महाभारत पूर्व युग में पर्याप्त अव्यवस्था रही। चार्वाक मत ने एक ओर आध्यात्मिक बंधनों को अस्वीकार कर समाज में उच्छृंखलता को जन्म दिया था तो पूरणकश्यप के अक्रियावाद ने भी उसी प्रकार सामाजिक अव्यवस्था को उत्तेजित किया। उसके दार्शनिक सिद्धान्तों की अन्तिम परिणति थी किसी भी क्रिया का, फल चाहे वह शुभ हो या अशुभ कर्त्ता को भोगना नहीं पड़ता है। चोरी करने से, बटमारी करने से, पर-स्त्री गमन करने से, झूठ बोलने से न तो पाप किया जाता है, न पाप का आगम होता है। इसी प्रकार दान देने से, दान दिलाने से, यज्ञ करने से या कराने से न पुण्य होता है न पुण्य का आगम होता है।[3] प्रकुध कात्यायन के शाश्वतवाद में, संजय वेलट्ठिपुत्त के अनिश्चिततावाद में, मक्खलिगोसाल के नियतिवाद आदि में भी ऐसे ही तत्व भरे पड़े थे। वस्तुतः 'महाभारत' का पूर्वकाल भारतीय चिंतन के लिये भीषण आघात का काल था जब एक ओर से वैदिक धर्म पर जैन और बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शन छाने लगे थे तथा दूसरी ओर अनेक भौतिकवादी तथा समाज विरोधी ... उसे खोखली बनाने में लगे थे। इस पृष्ठ भूमि में 'महाभारत' ... का अत्यधिक महत्व है क्योंकि उसने नास्तिक दर्शनों की प्रतारणा ... वैदिक दर्शनों में समन्वय कर, तत्कालीन उन्नत पांचरात्र मत ... पर दार्शनिक पुनर्स्थापना की।

---

१ *The Ril is polytheistic—The Crown ...* *1915, p 72 73*

२ महाभाग्यात देवताया एक एव आत्मा ...।
एकस्य आत्मन अन्य देवा प्रत्यगानि ...

३ भारतीय दर्शन, पृ० ६७

महाभारत के प्रमुख दार्शनिक सम्प्रदाय

उपनिषद काल से सूत्रकाल तक का सम्पूर्णदार्शनिक विचारधारा का विकास 'महाभारत' मे प्राप्त होता है। साख्य, योग, पाचरात्र, वेदान्त और पाशुपत मत 'महाभारत' मे प्रसिद्ध थे।

साख्य योग पाचरात्र वेदा पाशुपत तथा।
नानायेतानि राजर्षे विद्धि नानामतानि व ॥[1]

यद्यपि इन मतो मे भी परस्पर विभिन्न विचारधाराओ का उल्लेख हुआ है फिर भी यह निश्चय है कि महाभारत' के प्राचीनतम भाग से विकसित स्वरूप तक इन मतो की प्रतिष्ठा हो चुकी थी। साख्य और योग की चर्चा 'महाभारत' म प्राचीन मत के रूप मे हुई है।[2] पाचरात्र और पाशुपत वेदान्त मत का विकास भी 'महाभारत' मे हो चुका था। इन मतो की विशेष चर्चा इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है।

योग दर्शन श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने ऐसी सम्भावना व्यक्त की है कि योगदर्शन साख्य से प्राचीन है। वस्तुत महाभारत मे योग के आदि उपदेष्टा के रूप मे हिरण्यगर्भ का नाम लिया गया है। जिससे स्पष्ट है कि इस मार्ग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और उसका आरम्भ इसीलिए किसी एक व्यक्ति से न मान कर ब्रह्मा से माना गया है। महाभारत के परवर्ती काल म महर्षिपतजलि ने योगशास्त्र का व्यवस्थित सकलन और सम्पादन किया अत वे ही उसके नियमित आचार्य माने जाते हैं। योग का स्पष्ट आधार उपनिषदो मे प्राप्त है। कठोपनिषद् मे योग की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

तामयोगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणम्।
अप्रमत्तस्तदाभवति योगोहि प्रभवाप्ययौ ॥[3]

अर्थात् मन और इन्द्रियो की अप्रमत्त धारणा का नाम ही योग है। महाभारत मे भी योग की यही परिभाषा की गई है। शान्ति पर्व म व्यास जी का कथन है—

एकत्र बुद्धि मनसोरिन्द्रियाणा च सर्वश
आत्मनो व्यापिनस्तात ज्ञान मेतदनुत्तमम ।[4]

अर्थात इन्द्रिय, मन और बुद्धि की वृत्तियो का सब ओर से निरोध कर सर्वव्यापी आत्मा के साथ उनका एकत्व ही योग है। उक्त परिभाषाओ का सारसकलन ही

---

१ म० शान्ति ३४६।६४
२ म० शान्ति० ३०८।४५,४६
३ कठ० २।३।११
४ म० शान्ति० २४०।२

तंजलि ने 'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'[1] नामक सूत्र मे प्रस्तुत कर दिया है।

'महाभारत' का योग शब्द अनेक स्थलो पर विविध अर्थों मे प्रयुक्त है। विभिन्न साधन मार्गों को भी यहा योग कहा गया है, जैसे सांख्ययोग, कर्मयोग ज्ञानयोग इत्यादि। योग शास्त्र के पारिभाषिक अर्थों म भी ध्यानयोग आदि की चर्चा की गई है। वस्तुत योग के विभिन्न अगो को ही कही-कही स्वतन्त्र नाम से सम्बोधित किया गया है। योग के अष्टागो म ध्यान का भी स्थान है, फिर भी कही-कही सामान्य योग मार्ग से पृथक् रूप म ध्यान-योग या जपयोग का विकास हुआ प्रतीत होता है।

'महाभारत' म योग के विभिन्न स्वरूपो का अध्ययन करने के उपरान्त इस निष्कर्ष पर सहज ही उपनीत हुआ जा सकता है कि महाभारत युग म योग एक जीवित और परिवर्धमान साधन था।

सांख्य प्राचीनता और महत्व की दृष्टि से भारतीय दर्शनों म सांख्य का स्थान अन्यतम है। आरम्भ स ही सख्य नाम की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध म विप्रतिपत्ति रही है। 'महाभारत' के अनुसार तत्वो की निश्चित सख्या होने के कारण ही इस मत का नाम सांख्य पड़ा है[2] दूसरे मत के अनुसार प्रकृति तथा पुरुष के विषय म विवेक ज्ञान होने स इस दर्शन का नाम सांख्य है।[3]

'महाभारत' के अध्ययन से स्पष्ट है कि उस युग म सांख्य मत का प्रभाव विशेष रूप से था और साथ ही उसकी जीवित परम्परा भी विद्वानो की स्मृति म थी। जहा अन्य मतो के प्रथम उपदेष्टा के रूप मे किन्ही देवताओ का नाम लिया गया है वहा सांख्य मत के प्रवर्तक कपिल माने गये हैं।[4] उन्हें आदि विद्वान की उपाधि स भी विभूषित किया गया है। उनकी दो रचनाओ का उल्लेख किया जाता है। तत्व समास तथा सांख्य सूत्र। यद्यपि तत्व समास' को डा० कीथ ने बहुत बाद की रचना माना है और इसी प्रकार सर्व दर्शन सग्रह' म उल्लेख न होने स कुछ विद्वान सांख्य सूत्र' को भी परवर्ती रचना मानते हैं तथापि महाभारत' का सांख्य कपिल का सांख्य को आदि आचार्य सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।[5] कपिल के शिष्य आसुरि और उनके शिष्य थे पचशिख। शान्ति पर्व मे इन्ही पचशिख और जनक का सवाद प्रस्तुत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सवाद म

---

१ योग शास्त्र १।१
२ म० शान्ति० ३०६।४२
३ भारतीय दर्शन पृ० ३०६
४ म० शान्ति० ३५०।६
५ म० शान्ति० अध्याय ३०२ ३०८

सांख्य दर्शन के अनुसार अनेक गम्भीर विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह माना जाता है कि पञ्चशिख ने साठ हजार श्लोकों की एक रचना 'षष्ठितन्त्र' का निर्माण किया। इसी परम्परा में ईश्वर कृष्ण की 'सांख्यकारिका' एक अत्यन्त उल्लेखनीय ग्रन्थ है। जिसके उदाहरण शंकराचार्य ने भी अपने शारीरक भाष्य में दिये हैं। इनका समय भी ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है अतः ये 'महाभारत' के परवर्ती काल के आचार्य सिद्ध होते हैं। वास्तव में सांख्य के वर्तमान काल में प्राप्त सभी ग्रन्थ 'महाभारत' के परवर्ती हैं। इस सम्बन्ध में प्राचीन सिद्धान्त ज्ञान हेतु एक मात्र 'महाभारत' ही प्रमाण है।

महाभारत में सांख्य का उल्लेख जिस रूप में हुआ है उससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि प्रारम्भ में यह मत निरीश्वरवादी था।[1] सांख्य में प्रथम सत्रह तथा बाद में चौबीस तत्त्वों को माना गया है परन्तु महाभारतकार ने इन २४ तत्त्वों के अनन्तर पच्चीसवें ईश्वरतत्व को भी असन्दिग्ध रूप में स्थान दिया है।[2] इस प्रकार महाभारतकार ने ईश्वरवादी भूमिका पर सांख्य को ला खड़ा किया है तदनुकूल सांख्य की साधना में भी परिवर्तन किया गया है वस्तुतः 'महाभारत' में सांख्य के साथ ही योग और वेदान्त के ज्ञान का भी सूक्ष्म सम्मिश्रण किया गया है।

पांचरात्र पांचरात्र शब्द की व्याख्या करते हुए 'रात्र' को ज्ञान का पर्याय माना गया है। परम तत्व, मुक्ति, भुक्ति, योग तथा विषय इन पांच तत्वों के निरूपण से ही इस मार्ग का नाम पांचरात्र पड़ा।[3] पांचरात्र के अन्य नाम हैं—भागवत या सात्वत। ऐसा अनुमान किया गया है कि सात्वत शब्द का प्रयोग यादव क्षत्रियों के लिए होता था। सम्भव है श्री कृष्ण के साथ इस मत का सम्बन्ध होने के कारण ही इसको यह नाम प्राप्त हुआ हो।

पांचरात्र का सिद्धान्त वेदों से ही सम्बन्धित माना जाता है। छान्दोग्य उपनिषद में जिस एकायन विद्या का उल्लेख है उसी में पांचरात्र के प्राचीन सिद्धान्त सन्निहित हैं। शतपथ ब्राह्मण में पांचरात्र-सत्र का वर्णन मिलता है। परन्तु इसमें पांचरात्र सिद्धान्तों की व्याख्या विस्तार से उपलब्ध नहीं है। ऐसा अनुमान है कि 'महाभारत' के युग में पांचरात्र अथवा सात्वत परम्परा के अनेक संहिता-ग्रन्थ विद्यमान थे। उनमें से आज भी अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं जिन्हें अनेक विद्वान प्राचीन प्रामाणिक मानते हैं। फिर भी पांचरात्र के प्राचीनतम प्रामाणिक उल्लेख 'महाभारत'

---

१ सांख्या सांख्य प्रभाषन्ति योगा योग द्विजातय ।
अनीश्वर कथमुच्ये दित्येव शत्रुकर्शन । म० शान्ति० ३००।२ ३

२ म० शान्ति० ३०८।५ ७

३ भारतीय दर्शन पृ० ५३६

४ भारतीय दर्शन पृ० ५४३

मे ही मिलते हैं।

'महाभारत' मे शांति पर्व के अन्तर्गत ३३४वें अध्याय से ३४६ वें अध्याय तक नारायण उपाख्यान मे इस मत का विस्तृत वर्णन है। इस मत के मूल आधार नारायण है। नारद की जिज्ञासा शान्त करने के हेतु नारायण ने पाचरात्र धर्म का उपदेश दिया। इस धर्म का प्रथम अनुयायी राजा उपरिचर वसु था। चित्र शिखंडी नाम के सप्त ऋषियो ने वेदो का निष्कर्ष निकालकर पाचरात्र नामक शास्त्र तैयार किया। इस शास्त्र मे पुरुषार्थ चतुष्टय का विवेचन है।

वेदान्त वेदो का तत्व ज्ञान उपनिषदो मे विस्तार से प्रतिपादित है। इसी हेतु उपनिषदो को वेदान्त भी कहा जाता है। तथा औपनिषद ज्ञान की अभिधा भी 'वेदान्त' ही है। भारतीय चिन्ता धारा को जितना उपनिषदो ने प्रभावित किया है उतना अन्य किन्ही ग्रन्थो ने नहीं। वदिक स्थूल कर्म काड की प्रतिक्रिया मे ऋषियो का सूक्ष्म आत्मचिन्तन रूपी अमृत इन उपनिषदो का प्राणतत्व है। आत्मा को जानने का प्रयत्न ही उपनिषदो का एक मात्र लक्ष्य है। परन्तु इनमे इस आत्म तत्व की खोज इतनी वैविध्यमयी है, कि परवर्ती दर्शन को विभिन्न विरोधी रूपो मे उन्ही से पृष्ठभूमि प्राप्त हुई। तत्व ज्ञान की एक व्यवस्थित परम्परा के निर्माण के लिए सूत्र युग मे जिन आचार्यों ने प्रयत्न किया वे बादरायण व्यास थे। 'ब्रह्मसूत्र' उनकी अमर कृति है जिसकी रचना महाभारत' के पश्चात हुई। 'महाभारत मे जिन सूत्रो का उल्लेख हुआ है, विद्वानो का अनुमान है वे किन्ही अन्य आचार्यो की कृति रहे होंगे, इस प्रसग मे अपान्तरतमा नामक ऋषि का नाम लिया जाता है।

साख्य योग, पाचरात्र आदि के साथ ही 'वेद' शब्द से इन्ही वेदान्त वाक्यो की चर्चा है[1] और सम्भव है इस सम्बन्धित श्लोक के आगे जिन अपान्तरतमा[2] की चर्चा है वे भी इसी मत से सम्बन्धित हो। गीता मे भी वेदान्तकृत' शब्द आया है। इससे वेदान्त की निश्चित परम्पराओ का उस समय प्रवर्तन हो चुका था, यह असन्दिग्ध है। अन्यत्र भी त्याग और जप आदि के प्रसगो मे वेदान्त शास्त्र का विवेचन हुआ है।

उपनिषदो का आत्मतत्व विश्लेषण और इनकी मोक्ष सम्बन्धी परिकल्पना 'महाभारत' का मुख्य प्रतिपाद्य है। यदि परिमाण की दृष्टि से देखा जाय तो सम्भवत 'महाभारत' की विचार-सम्पत्ति का मूल केन्द्र वेदान्त ही सिद्ध होगा। गीता का ज्ञान समस्त उपनिषदो का सार कहा गया है। उपनिषद गाय हैं उन्हे दुहने वाले गोपाल हैं और दुग्ध है गीतामृत।[3]

---

१ म० शान्ति० ३४९।६४

२ म० शान्ति० ३४९।६६

३ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दन । गीता माहात्म्य

'महाभारत' के भृगु भारद्वाज संवाद में जीव का विवेचन,[१] मनु बृहस्पति संवाद में मोक्ष धर्म-वर्णन वेदान्त सिद्धान्त के अनुरूप मिलता है। वेदान्त का यह प्रमुख सिद्धान्त कि सुख दुख, पुण्य अपुण्य की मुक्ति पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है—'महाभारत' में निश्चित हो गया था।[२] उपनिषदों के मत में प्रणव की उपासना करने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। 'महाभारत' में भी ब्रह्म प्राप्ति के लिए प्रणवोपासना का विधान है।[३]

पाशुपत जिस प्रकार विष्णु को प्रधानता देकर वैष्णवदर्शन का विस्तार हुआ उसी प्रकार शिव के ब्रह्म रूप को केन्द्र मानकर विभिन्न दर्शनों का भी प्रचार हुआ उपनिषदों में शिव और शक्ति का विचार हुआ है। कालान्तर में शैव मत के अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों की स्थापना हुई। महाभारत' से ज्ञात होता है कि उस युग में पाशुपत मत का प्रचार हो चुका था। यद्यपि इस मत का व्यवस्थित प्रवर्तन तो नकुलीश या लकुलीश द्वारा हुआ जिनका समय 'महाभारत से परवर्ती है। परन्तु शिव के विभिन्न स्तोत्रों[४] में तथा अनुशासन पर्व के उपमन्यु उपाख्यान[५] में इस मत की चर्चा हुई है।

महाभारत में इन उल्लेखों का यही उपयोग ज्ञात पड़ता है कि तत्कालीन अवैष्णव विचार धारा का समन्वय भी वैष्णव धर्म के साथ किया गया। गीता में कृष्ण ने 'रुद्राणां शंकरश्चास्मि[६]' कहकर रुद्र और विष्णु की इसी रूप में अभिन्नता प्रतिपादित की है।

आधुनिक कवि की दृष्टि

आधुनिक कवि आध्यात्मवादी या दार्शनिक नहीं है। वह विचारक है उसके विचार चिंतन की परिधि व्यक्त जीवन और प्रत्यक्ष जगत है। यद्यपि ईश्वर एवं मानवेतर अन्य स्थितियों के प्रति भी उसकी जिज्ञासा रहती है तथापि तद्विषयक जिज्ञासा गम्भीर दार्शनिक दृष्टि के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाई। प्रत्यक्ष जगत के परे जो कुछ सत्ता है और जिसका सांगोपांग विवेचन हमारे आर्ष ग्रंथों में हुआ है उसके प्रति आधुनिक कवि दार्शनिक तर्क वितर्क नहीं करता।

आधुनिक कवि के तीन वर्ग प्रथम वर्ग में वैष्णव भावना अथवा श्रद्धा

---

१ म० शान्ति० अध्याय १८७
२ म० शान्ति० अध्याय २०५
३ म० शान्ति० अध्याय २३२
४ म० शान्ति० २८० २८४
५ म० अनु १६।१५ १६
६ गीता १०।२३

विश्वास का क्षेत्र है, द्वितीय वर्ग में श्रद्धा का मूल प्राचीन है किन्तु उसकी व्यावहारिक दृष्टि नवीन युग से प्रभावित है। तृतीय वर्ग में श्रद्धा का अभाव है। 'महाभारत' के कथा प्रभाव के दिग्दर्शन में भी हमने इसी प्रकार कवियों के तीन वर्ग किए हैं। 'महाभारत' के विचार-दर्शन से सामान्यत सभी आधुनिक कवि प्रत्यक्षत अथवा परोक्षत प्रभावित हैं। 'यन्न भारते तन्न भारते' की भावना के अनुसार किसी कृति में महाभारत की कथा और पात्रों का अभाव सम्भव है किन्तु आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक नैतिक वैयक्तिक दर्शन किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है।

भारतीय तत्व चिंतन परोक्ष सत्ता में ही केन्द्रित नहीं हुआ उसने सामाजिक जीवन विकास की अनेक परिस्थितियों पर सम्यक विचार किया है। वह आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचने की कामना से पूर्ण होते हुए भी व्यावहारिक जीवन का गहरा और व्यापक विवेचन करता है। उसमें जीवन विकास के तत्त्व पूर्णरूपेण सन्निध हैं। उनमें उदासीनता का प्रभाव नहीं है। वस्तुत इन कवियों के प्रथम वर्ग ने महाभारतीय विचार दर्शन से संस्कृतियों के समन्वय की धारणा तथा मानवोत्थान सर्जक निष्ठा, जीवन के प्रति आस्था, सामाजिक न्याय के प्रति दृढ़ विश्वास और अन्तत कुरीतियों के प्रति सशक्त विद्रोह की भावना प्राप्त की है।

दर्शन की दृष्टि से आधुनिक कवि विशिष्टाद्वैतवादी अद्वैतवादी, द्वैतवादी आदि मतों की साम्प्रदायिक सीमा में नहीं आते। प्रत्येक कवि ने दर्शन को जीवन की व्यावहारिक सज्जा के आवरण तथा युगीन परिवेश में ग्रहण किया है। महाभारत के कर्मवाद का जितना अधिक व्यावहारिक प्रभाव आधुनिक काव्य पर पड़ा है उस रूप में पूर्ववर्ती काव्य कर्मवाद से चेतना प्राप्त न कर सका। इसका प्रमुख कारण यह है कि गीता का कर्मवाद आधुनिक युग-व्यवहारों के अधिक अनुकूल है।

प्राचीनता आधुनिक सदर्भ में महाभारत का युद्ध हुआ। युद्धोपरान्त भीष्म ने मन से परास्त युधिष्ठिर को प्रवृत्ति का उपदेश दिया। वह उपदेश आज के संदर्भ में उतना ही सजीव एवं नूतन है जितना कि उस युग में रहा होगा। अत आज के कवि ने आधुनिक काल की समस्याओं और उस काल के प्रश्नों में अभूतपूर्व समत्व देखा और उन पर विचार किया। यदि यह कहा जाय कि आज के कवि की विचारधारा में 'महाभारत' के कर्मवाद की पुन प्रतिष्ठा हुई है तो अत्युक्ति न होगी। गुप्त जी का 'जयभारत' दिनकर का 'कुरुक्षेत्र' मिश्र जी का 'सेनापति कर्ण' एवं द्वारका प्रसाद मिश्र का 'कृष्णायन' आदि काव्य इसी रूप में महाभारत के जीवन दर्शन से प्रभावित हैं जिनमें महाभारत के विचार पक्ष की पुन प्रतिष्ठा हुई है।

दो युगों में अन्तर 'महाभारत' में सत्य के स्वरूप की प्रतिष्ठा जिस

है उस प्रकार आधुनिक कवि ने इसे नहीं अपनाया। ब्रह्म विषयक विचारणा ऊपरी तल पर व्यक्त हुई है। माया के विषय में सिद्धान्त रूप से प्राचीन मान्यता को स्वीकार किया गया, किन्तु उसके विवेचन में अन्तर है। माया स्वयं आलोच्य तत्व नहीं रहा, जगत जीव, सृष्टि आदि के स्वरूपों का भी वह गम्भीरता से विवेचन नहीं कर पाया। वह [redacted] आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के सामाजिक स्वरूपों के विषय पर अधिक विचार करता है। अतः उसकी दार्शनिकता जीवन के व्यावहारिक चिंतन में अधिक और आध्यात्मिक चिंतन में न्यून है।

ब्रह्म

वेद में ब्रह्म वेद भारतीय दर्शन के प्राण हैं, ये भारतीय दार्शनिक विचार धारा के मूल स्रोत हैं। उनमें दार्शनिक विचारधारा की रूप रेखा जिस प्रकार मिलती है उसके विषय में आगे चलकर पर्याप्त विवेचन हुआ, जिसके फलस्वरूप अनेक दार्शनिक मतों की स्थापना हुई है। वेद नित्य, निखिल ज्ञान के अमूल्य भंडार, और धर्म का साक्षात्कार करने वाले महर्षियों के द्वारा अनुभूत परमतत्व के परिचायक हैं। उनका वैशिष्ट्य इसी में है कि वे प्रत्यक्ष से अगम्य तथा अनुमान के द्वारा अननुभावित अलौकिक उपाय का बोध कराते हैं।[1] उपनिषद और महाभारतीय ब्रह्म विषयक विचारणा का स्रोत भी वेद ही है। ब्रह्म जीव माया सम्बन्धी जिन तत्वों का मतामतान्तर विवेचन उपनिषदों में हुआ है उनका मूल रूप वेदों में सुरक्षित है।

ब्रह्म के स्वरूप और उसके सर्वव्यापी होने की महत्वपूर्ण कल्पना अनेक सूक्तों में उपलब्ध होती है। पुरुष सूक्त (ऋग० १०।९०) अदिति सूक्त (१।८९) में इसका सर्वोत्तम दृष्टान्त उपलब्ध है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्
सभूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।
पुरुष एवेदंसर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्—

के अनुसार हजार मस्तक, हजार आँखें और हजार पैर वाला पुरुष है—भूतकाल में जो कुछ उत्पन्न हुआ भविष्य में जो कुछ होगा वह सब पुरुष ही है।

इस सूक्त में सर्वेश्वर वाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। अदिति के वर्णन के अवसर पर भी पुरुष तथा अदिति की सर्व व्यापकता मानकर उसकी विश्व से अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया।

'अथर्ववेद के उच्छिष्टसूक्त (११।९) से यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म की व्यापकता और आत्मा से अभिन्नता का सिद्धान्त 'अथर्ववेद' को मान्य है। ब्रह्म की अपरनाम संज्ञा स्कम्भ (आधार) है। स्कम्भ को ज्येष्ठ ब्रह्म मानकर उसकी आत्मा

---

१ श्रुतिश्च नः प्रमाणमतीन्द्रियार्थ विज्ञानोत्पत्तौ शांकर भाष्य २।३।१

से एकता का प्रतिपादन किया गया है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः
तमेव विद्वान न बिभाय मृत्यो
रात्मानं धीरमजरं युवानं। (१०।८।४४)

इस प्रकार उच्छिष्ट सूक्त में उच्छिष्ट नाम के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप का ही परिचय दिया गया है। दृश्य प्रपंच के निषेध करने के अनन्तर जो अवशिष्ट रहता है वही उच्छिष्ट अर्थात् बाधारहित ब्रह्म है।

ब्रह्म विषयक विचारधारा की अभिव्यक्ति करने वाले अनेक सूक्तों से यह स्पष्ट होता है कि प्रजापति हिरण्यगर्भ पुरुष स्कम्भ उच्छिष्ट आदि नाम एक ही परम तत्त्व के वाचक हैं। इनको उपनिषदों के ब्रह्म तत्त्व तथा ब्रह्मात्मैक्यवाद की पूर्व पीठिका माना गया है। इन शब्दों में निहित गूढ़तत्वों का विवेचन ही उपनिषदों का प्रधान लक्ष्य है। नासदीय सूक्त भी ऋग्वेदीय अद्वैत भावना की अभिव्यक्ति करता है। तत्कालीन ऋषि संसार के प्रति जिज्ञासा के भाव से पूर्ण होकर स्थूल से सूक्ष्म की खोज की ओर अग्रसर होता है। सृष्टि के आदिकाल में क्या था? आकाश स्वर्ग था या नहीं? क्या गम्भीर जल था? मृत्यु और अमरत्व कहाँ था? आदि प्रश्नों के अनन्तर निषेधात्मक संज्ञाओं से सत्तात्मक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उस ब्रह्म के स्वरूप को व्यक्त करता है कि उस समय वह एक ही था जो वायु रहित होकर भी अपने सामर्थ्य से श्वास लेता था।

वह एक है, तदेकम् वह तत् तथा सत् शब्दों से सम्बोधित है क्योंकि वह लिंग रहित है उसी से यावत् चेतन और अचेतन वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है। वह एक है अद्वितीय है अग्नि आदि उसी के भिन्न रूप को धारण करने वाले हैं।[1]

उपनिषद् में ब्रह्म उपनिषदों का ब्रह्म अजन्मा, अखंड निर्विकार और निराकार है। उनमें ब्रह्म के सगुण रूप की विवेचना भी है। मूलतः ब्रह्म के दो स्वरूपों का विशद वर्णन किया गया है— सविशेष सगुणरूप, तथा निर्विशेष अथवा निर्गुण रूप। अधिक स्पष्ट करने के लिए निर्विशेष को परब्रह्म और सविशेष को ब्रह्म कहा गया है। निर्विशेष ब्रह्म किसी लक्षण अथवा विशेषण से अभिहित नहीं किया जा सकता। अतः परब्रह्म को निर्गुण, निर्विशेष, निरुपाधि निर्विकल्प आदि संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है। सविशेष की सत्ता भावात्मक है, वह गुण उपाधि, लक्षण से

---

१ इन्द्रमित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गुरुत्मान
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। ऋ० १।१६४।४६

अलङ्कृत है। सविशेष ब्रह्म के लिए, पुलिग शब्द और निर्विशेष के लिए नपुसक लिग का प्रयोग किया गया है, किन्तु दोनो मे वस्तुगत भेद का अभाव है। केनोपनिषद् मे ब्रह्म के निष्प्रपच रूप का सजीव चित्रण किया गया है। जिस वाणी कह नहीं सकती पर जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसे ही ब्रह्म जानो, यह वह नही, जिसकी उपासना तुम करते हो।[1]

मुण्डकोपनिषद् कहती है—

यत तद् अद्रश्यमग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम अचक्षु श्रोत्रम् तदपाणिपादम्
य विभुम सर्वगत सुसूक्ष्म तदव्यय तदभूत योनि परिपश्यन्ति धीरा।[2]

इस मत्र म उभयविद पदो के द्वारा ब्रह्म-तत्व का प्रतिपादन किया गया है, त सगुण निर्गुण म निश्चय ही वस्तुगत भेद नही। ब्रह्म विषयक सभी विचार-धारायें इस मान्यता से पुष्ट हैं। इस उभय वाचकत्व के कारण शास्त्रकारो मे मत भेद है शकर श्रुतिको निर्गुण का प्रतिपादक मानते हैं और रामानुज सगुण का तथापि सभी ने यह माना है कि वह परम तत्व एक ही है।

परब्रह्म के वर्णन मे अभावात्मक 'न' का प्रयोग अधिक है। बृहदारण्यक उपनिषद[3] मे याज्ञवल्क्य गार्गी को ब्रह्म के स्वरूप का परिचय देते हुए कहते हैं—'हे गार्गी, वह अक्षर ब्रह्म न स्थूल है न अणु है न दीर्घ है न रक्त है न चिकना है। वह छाया से भिन्न और अधकार वायु तथा आकाश से पृथक है वह असग है और रस तथा गध से विहीन। उसे न चक्षु ग्रहण कर सकती है न श्रोत्र। मन तथा मुख से भी उसका सम्बन्ध नही। वह परिमाण रहित है, अतएव वह न अन्दर है न बाहर है, वह कुछ नही खाता न उसे कोई खा सकता है।'

माडूक्योपनिषद कहती है कि ब्रह्म जन्म रहित, निद्रा रहित, स्वप्न शून्य नाम रूप से रहित नित्य प्रकाश स्वरूप और सर्वज्ञ है, उसमे किसी प्रकार का कर्तव्य नही।[4] अन्य उपनिषदो मे अनेक अभावात्मक शब्दो के द्वारा ब्रह्म के स्वरूप की अभिव्यक्ति की गई है। ब्रह्म सब बन्धनो से रहित सर्वोपरि है वह स्वय प्रकाश है और वह सर्वानुभव स्वरूप सृष्टि पालन तथा सहार का प्रतीक अखड, अजन्मा एव स्वत प्रमाणित है।

वस्तुत भारतीय आर्ष ग्रथो मे जागृत चेतना के प्रतिभासित चरम सत्य को

---

१ यद वाचाऽनभ्युदित येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्मत्व विद्धि नेद यदिदमुपासते। केनो० १।४

२ मुण्डकोपनिषद १।१।६

३ बृहदारण्यक उपनिषद ३।८।८

४ अजमनिद्रम स्वप्नमनामकम रूपकम।
सकृद्विभात सर्वज्ञ नोपचार कथचन॥ मा० उ० पृ० ३६

ब्रह्म की सत्ता दी गई है। समस्त जीवन का सत्य चर अचर का मूल ब्रह्म ही है। इस कारण सर्वखल्विदं ब्रह्म' के प्रतिपादकों ने ब्रह्म की प्रतिष्ठा की है। प्राचीन धर्म ग्रंथों तथा महाभारत' में भी परब्रह्म को 'सच्चिदानन्द घन' के नाम से अभिहित किया गया है।

महाभारत में ब्रह्म 'महाभारत' में स्वतन्त्र रूप से ब्रह्म की स्वरूपात्मक व्याख्या अनेक स्थानों पर हुई है। तब तक ब्रह्म और विष्णु की एकता का प्रचार हो गया था। विष्णु ब्रह्मा और शिव ब्रह्म की तीन शक्तियों के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

ब्रह्म सबका कारण, अन्तर्यामी और नियन्ता है। यज्ञों में इसका आवाहन किया जाता है। यह सत्य स्वरूप (ऋत) एकाक्षर ब्रह्म (प्रणव एवं एकमात्र अविनाशी और सर्वव्यापी परमात्मा) व्यक्ताव्यक्त (साकार निराकार) स्वरूप एवं सनातन है। यह ब्रह्म सत, असत अथवा सदसत रूप में विराजमान होते हुए भी इस रूप से विलक्षण है। विश्व से अभिन्न सम्पूर्ण परापर (सूक्ष्म-स्थूल) जगत का स्रष्टा और पुराण रूप है।[1]

इन पंक्तियों में ब्रह्म का स्वरूप स्पष्ट करके उसके वक्तव्य और प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है। 'व्यक्ताव्यक्त' कहकर उसके साकार एवं निराकार रूप की स्थापना की गई है। यही से ब्रह्म के शुद्ध रूप में विष्णुत्व, शिवत्व ब्रह्मत्व[2] आदि अनेक रूपों का समावेश है क्योंकि शुद्ध ब्रह्म साकार भी हो सकता है। पहले वह विष्णु के रूप में साकार हुआ और पुनः कृष्ण आदि अवतार रूपों में व्यक्त हुआ।

महाभारतकार ब्रह्म के शुद्ध रूप में माङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम।[3] कहकर मंगलमय विष्णु एवं ब्रह्म के एकत्व की स्थापना करता है। यद्यपि 'महाभारत' में शुद्ध ब्रह्म का अधिक विवेचन नहीं हुआ और जहाँ कहीं ब्रह्म का स्वरूपात्मक परिचय दिया गया वहीं कृष्ण का नाम आ गया है अतः यहाँ कृष्ण और ब्रह्म पृथक नहीं हैं। महाभारत में मुख्यरूप से कृष्ण' को ब्रह्म रूप में प्रतिपादित किया गया है। कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन 'महाभारत' की दार्शनिक उपलब्धि है। महाभारतकार कृष्ण को जगन्नियन्ता देवाधिदेव अखिल लोकपति, नारायण स्वरूप वासुदेव मानते हैं। कृष्ण ही सत्य ऋत और पुण्य हैं तथा अविनाशी सनातन ज्योति हैं।

शाश्वतं अक्षरं परमं ध्रुवं ज्योतिः सनातनम्।
यस्य दिव्यानि कर्माणि कथयन्ति मनीषिणः॥

---

१ म० आदि० १।२२।२२
२ म० शान्ति० २८०।८ ३७ ६२ ६३
३ म० आदि० १।२४

असच्चसदसच्चैव यस्माद् विश्वं प्रवर्तते ।
सन्ततिश्च प्रवृत्तिश्च जन्म मृत्यु पुनर्भवा ॥[१]

महा ब्रह्म के सनातन, निर्विकार, निराकार, अखंड रूप का आरोप कृष्ण के व्यक्तित्व में हुआ है। भगवान विष्णु ही वसुदेव जी के यहाँ देवकी के द्वारा प्रकट हुए हैं व अनन्त जगत के कर्ता, अव्यक्त अक्षर, ब्रह्म एवं त्रिगुणमय हैं।

अनुग्रहार्थं लोकानां विष्णुर्लोकनमस्कृतः
वासुदेवात्तु देवक्यां प्रादुर्भूतो महायशाः
अनादिनिधनो देवः स कर्ता जगतः प्रभुः
अव्यक्तमक्षरं ब्रह्म प्रधानं त्रिगुणात्मकम् ।[२]

धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में देवर्षि नारद को नारायण के अवतरण का स्मरण हो आता है।[३] यज्ञ में अग्र पूजा के रूप में भीष्म श्रीकृष्ण के नाम का प्रस्ताव रखते हैं। भीष्म कहते हैं कि वासुदेव ही इस चराचर विश्व के उत्पत्ति स्थान एवं विश्राम भूमि हैं और इस समस्त प्राणि जगत का अस्तित्व ही उन्हीं के हेतु है। वासुदेव ही अव्यक्त प्रकृति सनातन कर्ता और समस्त प्राणियों के अधीश्वर हैं, अतएव वे ही पूजनीय हैं।[४] 'महाभारत' के कृष्ण परम ब्रह्म हैं—डा० अग्रवाल ने महाभारत के अनेक उद्धरणों से 'भारत सावित्री' में श्रीकृष्ण के ब्रह्मत्व का प्रतिपादन किया है।[५] भीष्म कृष्ण और अर्जुन के अभेदत्व की स्थापना करते हैं। भीष्म के द्वारा भागवतों के दार्शनिक तत्व को अत्यधिक शक्तिशाली शब्दों में व्यक्त किया गया है। एक ही सत्व या चैतन्य नारायण और नर इन दो रूपों में प्रकट हुए हैं।[६] मोटे तौर पर ऐसा विदित होता है कि भगवान् वासुदेव एवं संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की व्यूहात्मक उपासना प्राचीन सात्वत धर्म की विशेषता थी।[७]

भक्ति प्रतिपादन कृष्ण और ब्रह्म के अभेदत्व की पूर्णता के साथ भक्ति का विकास भी यथावत हुआ किन्तु मध्यकालीन भक्त कवियों की विचारधारा परवर्ती पौराणिक विचारधारा से अधिक प्रभावित है। वैष्णव पुराणों में विष्णु को परब्रह्म मान कर कृष्ण को अवतार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। 'महाभारत' के गीता खंड में कृष्ण ने अर्जुन मोह भंग के हेतु अपने स्वरूप का जो परिचय दिया है

---

१ म० सभा० ६८।४१ ४२
२ म० आदि ६३।९९ १००
३ म० सभा० ३६।१२
४ म० सभा० ३८।२३ २४
५ भारत सावित्री, पृ० १८५,१८६
६ म० उद्योग० ४९।१९ २०
७ भारत सावित्री पृ० १८७

वही परवर्ती भागवत पुराण की मुख्य आधार शिला है।

सभापर्व में द्रौपदी भगवान कृष्ण को रक्षा के लिए पुकारती है और रक्षा भी होती है। द्रौपदी उस समय कृष्ण के ब्रह्मरूप[1] का चिन्तन करती है। वनवास के समय अर्जुन[2] और द्रौपदी[3] दोनों ही कृष्ण के अव्यक्त ब्रह्मरूप का वर्णन करते है। मार्कण्डेय समस्या पर्व, शान्ति पर्व और अनेक स्थानों पर महाभारतकार कृष्ण के ब्रह्म रूप की स्थापना करता है।

आधुनिक काव्य महाभारत की ब्रह्म विषयक धारणा का प्रभाव आधुनिक कवियों पर प्रभूत मात्रा में पड़ा है। 'महाभारत' से आधुनिक काल तक ब्रह्म विषयक धारणा पर अनेक रूपों में विचार हुआ अतः आधुनिक कवि की विचारधारा का सीधा सम्बन्ध महाभारत' से तो है ही, किन्तु वह मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलनों से भी प्रभावित है। भक्ति आन्दोलनों का स्रोत 'महाभारत' है, अतः आधुनिक कवि का सीधा सम्बन्ध महाभारत से हो जाता है।

नित्य नैमित्तिक रूप महाभारत के ब्रह्म का विकास नित्य और नैमित्तिक रूपों में हुआ है। ब्रह्म का नित्य रूप भक्ति सिद्धान्त की आधार शिला और भक्तों का परम रूप है। वे नित्य रूप की उपासना करते हैं। द्रौपदी के कथन में महाभारत में इस नित्य रूप के संकेत भी प्राप्त हो जाते हैं।[4] महाभारत' का ब्रह्म पौराणिक युग में यात्रा करता हुआ मध्ययुगीन दार्शनिकों के हाथों गोपीजन वल्लभ राधावल्लभ बना। आधुनिक कवि अपनी वैष्णवी एवं युगीन भावना के अनुसार उस दो रूप में स्वीकार करता है।

आधुनिक कवि के ब्रह्म का एक रूप नित्य रूप है। सम्पूर्ण आधुनिक कृष्ण-काव्य में भारतेन्दु से अब तक इस नित्य रूप के दर्शन होते है। भारतेन्दु जगन्नाथ दास रत्नाकर और प्रकारान्तर भेद से मैथिलीशरण गुप्त द्वारकाप्रसाद मिश्र तथा विसाहूराय के कृष्ण पूर्ण ब्रह्म है। इन कवियों की ब्रह्म विषयक मान्यता और उसका काव्यगत चित्रण 'महाभारत से प्रभावित होने के साथ मध्ययुगीन आन्दोलनों से भी प्रभावित है।

ब्रह्म का महामानव रूप महाभारत के ब्रह्म विषयक प्रभाव का द्वितीय रूप मानव रूप है। इसमें महाभारत के ब्रह्म को मानवी धरातल पर पुरुषोत्तम, लोक संग्रही लोकरक्षक नेता के रूप में चित्रित किया गया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' दिनकर, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भानुकुमार आदि कवियों ने महा

---

1 म० सभा० ६८।४१ ४२

2 म० वन० १२।२१ २२

3 म० वन० १२।५१ ५३

4 म० सभा० ६८।४१ ४२

भारत' के ब्रह्म को बुद्धिवादिता के साथ लोकोत्तर महामानव के रूप में चित्रित किया है।

आधुनिक कवियों ने ब्रह्म के विषय में अधिक दार्शनिक विवेचन नहीं किया फिर भी उनके कृष्ण परब्रह्म हैं, यह मान्यता उन्होंने स्थान स्थान पर व्यक्त की है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आधुनिक काव्य में ब्रह्म विषयक गूढ विवेचन तो अप्राप्य है किन्तु 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण के परब्रह्म रूप का चित्रण अनेक स्थलों पर उपलब्ध है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कृष्ण परब्रह्म हैं। भारतेन्दु ने कृष्ण-वन्दना के पदों में भगवान् से अपने विरद की रक्षा की प्रार्थना की है।[1] भारतेन्दु काल के प्रमुख कवियों ने[2] कृष्ण के ब्रह्मरूप का चित्रण किया है। यह समय पुनर्जागरण का अवश्य था, किन्तु कवि अपनी प्राचीन मान्यताओं को भी श्रद्धा के साथ व्यक्त करता था, जिसका स्वरूप प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान है।

जगन्नाथदास रत्नाकर के कृष्ण पूर्णब्रह्म हैं।[3] यद्यपि 'उद्धवशतक' में कृष्ण के स्वरूप का चित्रण मध्ययुगीन विकसित गोपी कृष्ण के रूप में हुआ है किन्तु उसका मूल स्रोत 'महाभारत' है अतः इसे 'महाभारत' से प्रभावित मानने में कोई आपत्ति दिखाई नहीं देती। उद्धव कृष्ण और ब्रह्म की एकता सिद्ध करता है तभी तो गोपियों को उस एकता का विरोध करना पड़ता है।[4]

प्रियप्रवासकार ने भी कृष्ण के ब्रह्म रूप की चर्चा की है। यद्यपि 'हरिऔध' ने 'महाभारत' की ब्रह्म विषयक मान्यता को महामानवीय धरातल पर व्यक्त किया है किन्तु मूल दृष्टि का आधार 'महाभारत' ही है। राधा ब्रह्म के विश्व रूप को और विश्व और कृष्ण के अभेद को स्वीकार करती है। वह श्याम में ही जगपति को उस

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० २३

२ प्रेमघन ग्रन्थावली पृ० २८

३ पंचतत्त्व मे जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तो,
हम तुम उनमे समान ही समाई है।
कहै रत्नाकर विभूति पंचभूत हू की,
एक ही सी सकल प्रभूतनि मे पोई है।
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सब
काँच फलकानि ज्यों अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम पलक उघारि ज्ञान आँखिन सौं
कान्ह सबही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है। उद्धवशतक पद स० ३८

४ मानौ हम काहू ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम। उद्धवशतक, पद स० ४६

प्रकार देखती है।[1] जिस प्रकार महाभारतकार ने कृष्ण में ब्रह्म को देखा।[2] मिश्र जी ने 'कृष्णायन' और विसाहूराय ने 'कृष्णायण' में 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण के ब्रह्म रूप की उपस्थापना की है। 'महाभारत' में गोपियों के साथ नित्य विहार की चर्चा नहीं है, किन्तु इन ग्रन्थों में मध्ययुगीन भक्ति-सम्प्रदायों के प्रभाव के कारण राधाकृष्ण का रूप व्यक्त हुआ है। ब्रह्म के शुद्ध रूप की व्याख्या करते समय विसाहूराम कहते हैं कि कृष्ण परब्रह्म, अगुण और अखंड हैं, उन्हीं से चेतन और जड़ प्रतिभासित हैं सारे संसार में उन्हीं का प्रकाश है।[3] कृष्ण का यह रूप 'महाभारत' से प्रभावित है। 'महाभारत' के अनुसार कृष्ण अवतार हैं इस कारण भी, 'महाभारत' का प्रभाव स्वीकार किया गया है। 'महाभारत' में लिखा है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।[4]

अतएव 'कृष्णायण' में कहा गया कि —

जब जब होवहिं धर्म की, हानि सुनहु मुनिवृन्द
धरि तनु प्रभु आवहिं बहुरि, करि नाशहिं निरकन्द।[5]

द्वारका प्रसाद मिश्र ने भी अवतार प्रयोजन-स्वरूप कृष्ण के 'असुर विनाशन जनहित कारी' रूप का चित्रण किया है।[6]

मिश्र जी पूर्ण श्रद्धा के साथ कृष्ण के पर ब्रह्मत्व की व्याख्या करते हैं। 'कृष्णायण' के 'तुम अनन्त तवगुणउ अनन्ता' आदि शब्दों में ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या की गई है। मिश्रजी तथा विसाहूराम ने ब्रह्म के नित्य और नैमित्तिक दोनों

---

१ मैंने की है कथन जितनी शास्त्र विज्ञात बातें।
ये बातें हैं प्रकट करतीं ब्रह्म है विश्वरूपी॥
व्यापी है विश्व प्रियतम विश्व में प्राण प्यारा।
यों ही मैंने जगतपति को श्याम में है विलोका॥ प्रिय प्रवास, ग १६

२ कृष्णस्य हि कृते विश्वमिदं भूतं चराचरम्। म० सभा० ३८।८

३ कृष्ण सोई पर ब्रह्म मुनीशा। अवगुण अकल जिहि काहु न दीसा।
जिहि सम्मुख जड़ चेतन भासा। सकल विश्व महं जासु प्रकासा॥
जासु कृपा लवलेशते विष्णु विरंचि महेश।
करहिं विभव मद पराभव सोई कृष्ण भुवनेश। कृष्णायण, पृ० १७

४ गीता ४।७

५ कृष्णायण पृ० १७

६ जन्म परब्रह्मसाक्षात्

असुर विनासन जन हितकारी, नाम कृष्ण, विष्णुहि अवतारी।
कंस विनाश जासु कर होई, निजु स्वरूप प्रकटे ब्रज सोई॥

कृष्णायन, पृ० ३५

कर्मों का चित्रण किया है। विमाहूराम का परम पूज्य रूप नित्य लीला है अत सम्पूर्ण नैमित्तिक कर्मों को करा कि उपरान्त विसाहूराम वे ब्रह्म 'कृष्ण' 'महाभारत' की तरह निर्वाण का प्राप्त नहीं होते, किन्तु व्रज म आकर वे नित्य रास करते है।[1]

कृष्णायनकार ने कृष्ण को पूर्णब्रह्म मानते हुए उन्हें सोलह कलाओ से युक्त अवतार बताया है।[2] इस प्रकार 'महाभारत' की ब्रह्म विषयक मान्यताएं आधुनिक काव्य म पूर्ण रूप से प्राप्त होती है। जयद्रथ वध' में कृष्ण अवतारी चरित्र हैं, कवि उन्हे परम्परागत विश्वास के साथ स्वीकार करता है। 'जयद्रथवध' की सम्पूर्ण कथा म कृष्ण का ब्रह्मत्व धर्म की रक्षा करता है। 'जहा कृष्ण हैं, वहा धर्म है और जहा धर्म है वही विजय है यह भावना 'द्वापर' 'जयद्रथवध और जयभारत' मे प्राणधारा के समान विद्यमान है। 'द्वापर' का कवि 'महाभारत' की विचारधारा का यथावत मानता है। उसका आराध्य कृष्ण 'महाभारत' का पूर्ण ब्रह्म ही है —

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच ॥[3]

इसके अनुसार 'द्वापर' की घोषणा है कि —

कोई हो, सब धर्म छोड तू
आ, बस मेरा शरण धरे,
डर मत कौन पाप वह जिससे
मेरे हाथो तू न तरे।[4]

'द्वापर' में गुप्त जी ने कृष्ण की ब्रह्म विषयक मान्यता का सशक्त प्रतिपादन किया है। कवि आधुनिक जीवन मे भ्राम समाजियो की दृष्टि का विरोध करते हुए कृष्ण के सनातन रूप की अभिव्यक्ति करता है।[5] द्वापर' की इस मान्यता पर 'महाभारत'

---

१ कृष्णायन, पृ० ४५०

२ मयेहु कला षोडश सहित, कृष्णचन्द्र अवतार,
पूर्ण ब्रह्म हरियश विमल, बरनहु मति अनुसार। कृष्णायन पृ० ३

३ गीता १८।६६

४ द्वापर, पृ० १२

५ कृष्ण अवैदिक और राम भी ?
ठहरो धीरज धारो
× × ×
रामकृष्ण का रूप कहां से देख दृष्टि तुम्हारी।
इन्द्र वरुण तक ही परिमित है यह श्रुति सृष्टि तुम्हारी।
द्वापर, पृ० ३९ ४०

के पूर्ण प्रभाव के साथ सहस्रों वर्षों की कृष्ण विषयक भावधाराओं का प्रतिबिम्ब भी अंकित है।

बुद्धिवादी दृष्टि आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि प्राचीन आस्था में अविश्वास करती है किन्तु पुनरुत्थानवादी कवि युग धर्म को शाश्वत धर्म से पृथक न होने की चेतावनी देता है। इस कारण वह ईश्वरत्व के प्रति अदम्य आस्था को जागृत करने के कारण प्राचीन अलौकिक रूप को यथावत् स्वीकार करता है। गुप्तजी के कृष्ण विष्णु ही हैं।[1] इस रूप का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर हुआ है।[2] अर्जुन की सफलता इसी में है कि वह कृष्ण के इस रूप को जानते हैं[3], यद्यपि अविद्या माया से ग्रस्त कौरव इससे अपरिचित हैं।

अर्जुन मोह के कारण अपने को युद्ध तथा बन्धुओं की हत्या का कारण मानते हैं तो कृष्ण उन्हें वास्तविक रूप दिखाकर बताते हैं कि वह तो निमित्त मात्र है। मूल कर्त्ता तो ब्रह्म ही है।[4]

रामधारीसिंह दिनकर ने ब्रह्म विषयक दार्शनिक विवेचन अधिक नहीं किया, किन्तु उन्होंने कृष्ण के परब्रह्म रूप को महाभारतीय रूप में ही स्वीकार किया है।[5] कृष्ण अपने विराट रूप का दर्शन कराते अपने में अमरत्व एवं संहार रूप की स्थिति को व्यक्त करते हैं।[6] उनमें में समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त है चराचर जीव, जग क्षर-अक्षर सूर्य चन्द्र सभी कुछ कृष्ण में स्थित हैं।[7] इस प्रकार स्पष्टतः 'महाभारत' की ब्रह्म विषयक विचारधारा का पूर्ण प्रभाव आधुनिक कवियों में प्राप्त है।

पुराणकालीन ब्रह्म विषयक विचारधारा को आधुनिक कवि ने अपने सामाजिक

---

१ श्री वत्स लाञ्छन विष्णु तब कहकर वचन प्रना पगे
धीरज बंधाकर पाडवों को शीघ्र समझाने लगे। जयद्रथवध, पृ० ३४

२ जयद्रथवध, प० ६४, जयभारत, पृ० १४८,२९७,२९९

३ अयुध्य मान संग्रामे वारयामास केशवम ।। म० उद्योग०, ७।२१

× × ×

सैना रहे, मुझको जगत भी तुम विनास्वीकृत नहीं।
श्रीकृष्ण रहते हैं जहा सब सिद्धियां रहती वहीं। जयभारत, प० ३०१

४ जयभारत, प० ३६७

५ रश्मिरथी प० ३१

६ रश्मिरथी, पृ० ३१

७ दृग हों तो दृश्य अकाड देख, मुझमें सारा ब्रह्माड देख।
चर अचर जीव, जग क्षर, अक्षर नश्वर मनुष्य सुरजाति अमर,
शतकोटि सूर्य, शत कोटि चन्द्र शत कोटि सरित, सरसिन्धु मन्द्र।
रश्मिरथी, प० ३२

एवं राजनीतिक वातावरण के मध्य लोक जीवन के धरातल पर महामानव के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन जीवन से आधुनिक जीवन तक बुद्धिवाद के व्यापक प्रसार के कारण ब्रह्म विषयक विचारणा में शनैः शनैः परिवर्तन होता रहा है, और आधुनिक वैज्ञानिक प्रयत्न आत्मक जीवन पद्धति ने ईश्वर विषयक विश्वास में नवीनता का समावेश किया। 'महाभारत' के कृष्ण और 'प्रिय प्रवास' के कृष्ण में सहस्रों वर्षों का यही अन्तर विद्यमान है। धार्मिक दृष्टिकोण में अवतार भक्तों का रंजन करके पृथ्वी का उद्धार करते हैं, तो बुद्धिवादी दृष्टि से महापुरुषों का पृथ्वी पर अभ्युदय वर्षों में एक दो बार होता है और वे अपने कर्त्तव्यों से ऐसा ईश्वरीय जीवन विकसित करते हैं कि पाप की काई कट जाती है और पुण्य का पवित्रजल स्पष्ट हो जाता है। दिनकर ने परशुराम के अभ्युदय को[1] या सियाराम शरण गुप्त जी ने अर्जुन के नरावतार को[2] इसी बुद्धिवादी दृष्टि से चित्रित किया है।

आधुनिक कवि लोक जीवन के आधुनिक बौद्धिक व्यापार के कारण ब्रह्मत्व को महामानवत्व में चित्रित कर पुनः आस्थावादी विचार धारा के कारण महामानव को ब्रह्म रूप में प्रतिष्ठित कर देता है। उपनिषद' और 'महाभारत' की विचार परम्परा में कविवर सुमित्रानन्दन पंत ब्रह्म को संसार का निमित्त आत्मा, नित्य स्वरूप सगुण, निर्गुण, बहुरूप अरूप आदि नामों से अभिहित करते हैं।[3]

महाभारत' में ब्रह्म में विष्णुत्व कृष्णत्व और शिवत्व का समन्वय किया है। विष्णु कृष्ण और शिव तीनों को परब्रह्म रूप में चित्रित किया है—कौन्तेय कथा में शिव प्राणी मात्र के पालक, संहारक, भूतेश्वर और प्रकृति, चेतन गुण के संचालक हैं।[4]

जीव

स्वरूप ब्रह्म के स्वरूपात्मक विवेचन के साथ महाभारत' में जीवात्मा का

---

१ रश्मिरथी पृ० १२

२ नकुल पृ० ६८

३ ब्रह्म ही जगत प्रपंच निमित्त
ब्रह्म ही उपादान, आधार,
जागतिक जीवन ब्रह्म विवर्त
ब्रह्म ही स्थूल सूक्ष्म का सार!
वस्तुमय रूप सगुण, सोपाधि,
ब्रह्म आत्मा पर, नित्य स्वरूप,
ज्ञेय ज्ञाता या ज्ञान अनन्य,
सगुण निर्गुण, बहुरूप अरूप। लोकायतन, पृ० ३२८

४ कौन्तेय कथा, पृ० ७२

दार्शनिक विवेचन प्रचुर मात्रा में हुआ है। 'महाभारत' के जीवात्मा विषयक विवेचन मे पूर्ववर्ती उपनिषदो के विवेचन को ही प्रमुखता दी गई है। महाभारतकारने उन्ही के मतो को अपने शब्दो मे व्यक्त किया है।

भारतीय तत्व ज्ञान इस बात को स्वीकार करता है कि चित्त, मन, बुद्धि, पचेन्द्रिय और पचप्राण स्वय मे जड अथवा अव्यक्त के ही भाग हैं। इनमे अपनी कोई गति नही है। ये सभी जीवात्मा की गतिशक्ति से सम्प्रेरित होकर चलते हैं। जब तक जीव की सत्ता विद्यमान है तभी तक इन सब मे गति है जीव विमुक्त होने पर ये सब जड और निरुपयोगी हो जाते है। जीव विषयक कल्पना भारतीय दर्शन की उदात्त कल्पना है। इस विषय में अनेक विवादो के उपरान्त इस निश्चय पर तो सभी पहुच गये है कि जीवात्मा ईश्वर का अश है। पचेन्द्रिय देह का कोई न कोई अभिमानी देही अवश्य है। इन्द्रियो को अपना ज्ञान नही होता किन्तु इन्द्रियो की प्रेरणा शक्ति जीव को इन्द्रियो का ज्ञान होता है।

उपनिषदो में जीव और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है। 'उपनिषदो' का विचार ही आगे चलकर सभी विचारणाओ का स्रोत बना।

उपनिषद मे आत्म तत्व आत्मा के विषय मे तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं —

१ आत्मा का स्वरूप क्या है ?

२ क्या आत्मा इसी जीवन काल तक रहता है या इसके उपरान्त भी उसका निवास है ?

३ आत्मा की कितनी अवस्थाए है ?

प्रथम और द्वितीय प्रश्न का विवेचन 'कठोपनिषद्' मे अत्यन्त व्यापकता के साथ हुआ है। कठोपनिषद मे आत्मा को अजर अमर, सर्वव्यापी बताकर कहा है कि—आत्मा नित्य वस्तु है, न कभी वह मरता है न कभी अवस्थादि कृत दोषो को प्राप्त होता है। नचिकेता और यमराज के प्रसग मे आत्मा विषयक मीमासा करते हुए उपनिषदकार कहता है कि यह जीवात्मा विषय ग्रहण करने वाली सभी इन्द्रियो से, सकल्प विकल्पात्मक मन से विवेचनात्मक बुद्धि से तथा हमारी सत्ता के कारणभूत प्राणो से पृथक् है। एक रूपक के द्वारा आत्मा की श्रेष्ठता और स्वरूप का सुन्दर परिचय दिया गया है।

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धि मन प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान तेषु गोचरान।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्त भोक्तेत्याहुर्मनीषिण ।[1]

---

१ कठोपनिषद २।३।४

यह शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है, मन प्रग्रह (लगाम) है, इन्द्रियां घोड़े हैं, जो विषयरूपी मार्ग पर चला करते हैं और आत्मा रथ का स्वामी है।" यहां पर यम ने आत्मा की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। रथादियों का समस्त कार्य व्यापार रथ के स्वामी के हेतु होता है अतः शरीरादिका समस्त व्यापार रथी आत्मा के हेतु है अतः आत्मा ही श्रेष्ठ है।

मुण्डकोपनिषद्' में शुद्ध आत्मा को 'तुरीय' कहकर जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति—आत्मा की तीन अवस्थाएं मानी हैं।

जाग्रत अवस्था में आत्मा बाह्य अवस्थाओं का अनुभव करता है। स्वप्नावस्था में यह मानसिक आभ्यान्तर जगत का अनुभव करता है। सुषुप्ति में वह परमानन्द स्वरूपता का अनुभव करता है। इन्हीं रूपों के लिए आत्मा को विश्व तैजस और प्राज्ञ कहते हैं। 'माण्डूक्योपनिषद' उक्त अवस्थाओं से पूर्णात्मा का परिचय देती है, जिसकी स्थिति इस प्रकार है। कि उस समय न तो बाह्य चेतना रहती है न अन्तश्चेतना और न दोनों का सम्मिश्रण ही, न प्रज्ञा रहती है न अप्रज्ञा उस समय तो अदृष्ट अग्राह्य अव्यवहार्य अलक्षण, अचिन्तनीय अव्यपदेश्य केवल आत्मा प्रत्ययसार होता है। उस समय प्रपंचोपशम (बाह्य जगत की शान्तता) शान्तशिव, अद्वैत जो चतुर्थ कहा जाता है—यह आत्मा है, इसे ही जानना चाहिए।[1] यही आत्मा निर्गुण ब्रह्म के एकत्व से सिद्ध है। ओंकार इसी आत्मा का वाचक अक्षर है। इस प्रकार उपनिषदों में जीवात्मा को ब्रह्म से अभिन्न बताकर अद्वैत की स्थापना की गई है। किन्तु परवर्ती दार्शनिकों ने अपने अपने मत स्थापित किए हैं।

महाभारत में जीवात्मा—महाभारत' में जीवात्मा सम्बन्धी विचार कई स्थानों पर अभिव्यक्त हुए हैं। शान्तिपर्व के एक सौ छियासीवें अध्याय में भरद्वाज और भृगु का संवाद है। भरद्वाज जीव की सत्ता पर नाना उक्तियों से शंका उपस्थित करते हैं। महामुनि भृगु उनकी शंका का निवारण करके जीव की सत्ता और नित्यता को सिद्ध करते हैं।

भरद्वाज की शंका है कि यदि प्राणवायु ही शरीर को जीवित रखती है तो शरीर में जीव की सत्ता का स्वीकार करना व्यर्थ है,[2] क्योंकि जब किसी प्राणी की मृत्यु होती है तो वहां जीव की सत्ता की उपलब्धि नहीं होती, प्राण वायु ही इस

---

१ माण्डूक्य उप० प० ७

२ यदि प्राणयते वायुर्वायुरेव विचेष्टते।
।श्वसित्या भावते चैव तस्माज्जीवो निरर्थकः ॥ म० शान्ति० १८६।१

शरीर का त्याग करके जाती है, और शरीर की गर्मी नष्ट हो जाती है।[१]

भरद्वाज की शंका का समाधान करते हुए भृगु कहते हैं कि शरीर के आश्रय से रहने वाला जीव उसके नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता, जैसे समिधाओं के आश्रित हुई आग उनके जल जाने पर भी विद्यमान रहती है उसी प्रकार जीव का प्रत्यक्ष अनुभव होता है।[२] अग्नि के बुझने की शंका का समाधान करते हुए आगे महामुनि भृगु जीव, अग्नि, प्राण वायु के सम्बन्ध को शरीर के साथ निश्चित करते हुए कहते हैं—'समिधाओं के जल जाने पर भी अग्नि का नाश नहीं होता, वह अव्यक्त रूप से आकाश में स्थित रहती है क्योंकि निराश्रय अग्नि का ग्रहण होना कठिन है। उसी प्रकार शरीर को त्याग देने पर जीव आकाश की भांति स्थित होता है। अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण वह बुझी हुई आग के समान दृष्टिगोचर नहीं होता, परन्तु रहता अवश्य है। अग्नि ही प्राणों को धारण करती है। जीव को उस अग्नि के समान ही ज्योतिर्मय समझो। वायु उस अग्नि को देह के भीतर धारण किये रहती है। श्वास के रुकने पर वायु के साथ अग्नि भी नष्ट हो जाती है।[३] भृगु मुनि के कथन का सार यह है कि देह के नष्ट होने पर भी जीव का नाश नहीं होता।[४]

यहां पर विचारणीय विषय यह है कि जीव को 'आकाशवत' कहकर उसकी व्यापक एवं सूक्ष्म सत्ता का प्रतिपादन किया गया है। यदि यह कहा जाता कि जीव आकाश में चला जाता है तो फिर प्रश्न उठ सकता था कि आकाश में कहां रहता है? अतः आकाशवत कह कर इस प्रश्न की सम्भावना को ही समाप्त कर दिया गया, और आकाशवत कह कर आकाश की भांति ही जीवात्मा को अजर, अमर, अखंड, रूप में स्वीकार किया गया है।

भगवान कृष्ण के द्वारा अर्जुन के मोह के अवसर पर आत्मा की नित्यता का प्रतिपादन हुआ है। वस्तुतः जीवात्मा के स्वरूप का विवेचन भी यहां के विवेचन

१ जन्तो प्रजीयम नस्य जीवो नत्रोपलभ्यते।
वायुरेव जहात्येनमूष्मा भावश्च न यति। म० शान्ति १८६।३

२ न शरीराश्रितो जीवस्तस्मिन्नष्टे प्रणश्यति।
समिधामिव दग्धानां यथाग्निर्दृश्यते तथा। म० शान्ति० १८७।२

३ समिधामुपयोगान्ते यथाग्निर्नोपलभ्यते।
आकाशानुगतत्वाद्धि दुर्ग्राह्यो हि निराश्रयः॥
तथा शरीर सन्त्यागे जीवो ह्याकाशवत् स्थितः।
न गृह्यते तु सूक्ष्मत्वाद् यथा ज्योतिर्न संशयः॥
प्राणान् धारयते ह्यग्निः सजीव उपधार्यताम्।
वायुसंधारणो ह्यग्निर्नश्यत्युच्छ्वास निग्रहात्। म० शान्ति० १८७।५-७

४ न जीव नाशोऽस्ति हि देहभेदे। म० शान्ति० १८७।२७

के समान जटिल है, अत उसके स्वरूप की सव सम्मत व्याख्या इस प्रकार की गई है कि देहादि के गुणों से व्याप्त होकर वह आत्मा है और इन विकारों से हीन वह परमात्मा है। आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है।

ममवाशो जीवलोके जीवभूत सनातन ।[1]

'महाभारत' म एक अन्य स्थान पर जीवात्मा के स्वरूप की व्यापक व्याख्या है। यह बात नही कि जो इन्द्रियो के लिए अगोचर है वह है ही नही और यह भी नही कि जिसका ज्ञान नही होता, वह होता ही नही। यदि हिमालय का दूसरा पक्ष अथवा चन्द्र मडल का पृष्ठ भाग किसी ने नही देखा तो इससे यह थोडे ही कहा जा सकता है कि वह है ही नही। कि बहुना हम निश्चयपूर्वक यही कहते हैं कि वे आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म और ज्ञान स्वरूपी है चन्द्रमडल पर हम कलक देखते हैं परन्तु यह हमारे ध्यान मे नही आता कि यह पृथ्वी का प्रतिबिम्ब है। इसी प्रकार यह बात भी सहसा ध्यान म नहीं आती कि आत्मा ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। देखना अथवा न देखना अस्तित्व अथवा अभाव का लक्षण नही है। यह हम अपनी बुद्धिमत्ता से निश्चय कर सकते हैं कि सूर्य म गति है। इसी भांति हम यह बात भी कह सकते हैं कि सूर्य अस्त से उदयतक कहीं न कहीं रहता है। जिस प्रकार हरिण की सहायता से हरिण अथवा हाथी की सहायता से हाथी और पक्षियो की सहायता से पक्षी पकडते हैं उसी प्रकार ज्ञेयकी सहायता से ज्ञेय का ज्ञान सकते हैं। स्थूलदेह अथवा लिंग शरीर म रहने वाला अमूर्त आत्मतत्व ज्ञान से ही जाना जा सकता है। जन्म, मृत्यु वृद्धि जरा इत्यादि देह के धर्म हैं आत्मा के नहीं। इसके साथ यह भी निश्चय है कि शरीरान्तगत आत्मा की उपलब्धि हमें होती है, शरीर से वियुक्त आत्मा की नहीं।[2]

मनु के उक्त विवेचन म चन्द्रमा के उदाहरण से आत्मा के स्वरूप और नित्यता का सुन्दर चित्रण किया गया है। पृथ्वी की छाया आकाश मे विचरण करती है पर हमारे लिए वह अगोचर है। सूर्य की विरुद्ध दिशा म पृथ्वी की छाया जब चन्द्र पर आती है तब दिखाई देती है इसके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं म वह दिखाई नहीं देती। इस दृष्टान्त के द्वारा आत्मा के स्वरूप का विवेचन हमारे दार्शनिकों की सूक्ष्म विवेचन शक्ति का परिचायक है। इसम यह सिद्ध होता है कि अमूर्त आत्मा देह स वियुक्त अस्तित्ववान होते हुए भी हमे दिखाई नही देता।[3] आत्मा छाया के समान अमूर्त है। यह परमात्मा की छाया है इसी कारण आत्मा म परमात्मा का चित स्वरूप और आनन्द स्वरूप भी है इसका अर्थ यह है, कि आत्मा है और

१ गीता १५।७

२ म० शान्ति० २०३।५ १२

३ महाभारत मीमासा, पृ० ४६७

वह ईश्वर का अंश है।

आत्मा का शरीर धारण — आवागमन का प्रश्न भी इसी प्रसंग में उठाया गया है। प्रश्न है कि 'शरीर में भी ईश्वरांश आत्मा क्यों आता है ? भारतीय तत्व-ज्ञान इसका उत्तर कर्म सिद्धान्त के आधार पर देता है। आवागमन का मुख्य कारण जीव के कर्म की उपपत्ति है।[1] ईश्वर की इच्छा और आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति की अपेक्षा कर्म सिद्धान्त अधिक उपयोगी और व्यावहारिक है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार समस्त सृष्टि नियमबद्ध है। और प्रत्येक के कर्मानुसार आत्मा भिन्न देहों में प्रवेश करता है। यह सांसारिक कर्मानुसार प्रचलित रहता है। कर्म भोग के नियमानुसार आत्मा इस अनन्त भाव चक्र में इस देह से दूसरे देह में विचरण करता है।

अर्जुन मोह के प्रसंग में भगवान कृष्ण जीवात्मा की चैतन्यात्मक स्थिति का वर्णन करते हैं। जीव परमेश्वर की उत्कृष्ट विभूति है। वही क्षेत्रज्ञ है, क्योंकि शरीर (क्षेत्र) में ज्ञाता रूप से निवास करने वाला जीव (क्षेत्रज्ञ) है। आत्मा अजन्मा नित्य, शाश्वत है, हन्यमान शरीर में भी उसका हनन नहीं होता।[2] जीव कभी नहीं मरता न वह किसी को मारता है। ऐसा न मानने वाला अल्पज्ञ है।[3] आत्मा अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, नित्य और सर्वव्यापी है।[4] इस प्रकार 'महाभारत' में ब्रह्म के अनुसार ही जीव के स्वरूप और उसकी अनेक स्थितियों पर विचार किया गया है।

आधुनिक काव्य — 'महाभारत' की जीवात्मा सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर यथेष्ट रूप में पड़ा है। किन्तु यहाँ यह कह देना अव्यावहारिक नहीं होगा कि यह प्रभाव सीधा 'महाभारत' से अनुमानित है यद्यपि इसके स्वरूप-निर्माण में 'महाभारत' और पुराण युग के उपरान्त मध्यकालीन भक्ति-काल का भी योग है। आधुनिक कवि ने महाभारत पूर्ववर्ती और परवर्ती पुराणों, तथा भक्ति विकास की दीर्घ परम्परा से यह प्रभाव ग्रहण किया है। इस दीर्घ परम्परा में 'महाभारत' का योगदान प्रत्यक्ष है और वह उसी रूप में आधुनिक काव्य में उपस्थित है।

महाभारत की जीवात्मा सम्बन्धी विचारधारा को जगन्नाथ दास रत्नाकर

---

१ म० शान्ति० २११।१० ११

२ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। गीता। २।२०

३ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ गीता। ३।१९

४ अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥ गीता २।२४

ने उसकी विकसित परम्परा के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि उनकी विचारधारा पर 'महाभारत' के अतिरिक्त सूत्रयुग तक विकसित परम्परा का प्रभाव है किन्तु जीव और ईश्वर की अद्वैतता[1] और कृष्ण में सर्वस्व[2] देखने की भावना मूलत उपनिषद और 'महाभारत' की है। 'महाभारत' में कृष्ण ने ब्रह्मरूप का प्रतिपादन करके सब में उसी को देखने की भावना का चित्रण किया है। रत्नाकर जी इस भावना से अनुप्राणित हैं।

मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में जीव और ईश्वर की अद्वैतता का प्रतिपादन किया है। गुप्त जी यह मानते हैं कि माया के प्रपंच से ही जीव और परमात्मा में भेद होता है—अन्यथा दोनों तत्व अभिन्न हैं।[3]

आधुनिक कवि जीवात्मा के विषय में अधिक विवेचन नहीं करता पर वह अपनी वैष्णवी भावना के कारण प्राचीन विचारधारा को आस्था से ग्रहण करता है। उद्धव यशोदा से कहता है कि तेरा परमात्मीय तुझी में है यदि तू अपनी आत्मा के प्रकाश से देख सके।[4] 'महाभारत' में भगवान् कृष्ण के शब्दों के साथ शब्द मिलाते हुए गुप्त जी आत्मा को 'न हन्यते हन्यमाने शरीरे' के रूप में स्वीकार करते हैं।

मारने वाला जो जाने
और जो इसे मरा माने
उभय वे हैं अनजान अतीव,
न मरता है, न मारता जीव
सर्वथा मरने को है देह,
अमर है आत्मा नि:सन्देह।[5]

स्वर्गारोहण प्रसंग में गुप्त जी ने जीव की संसार विषयक मुक्ति की स्थिति का चित्रण करते हुए 'महाभारत' के इस प्रतिपाद्य को यथावत स्वीकार किया है कि जन्म मृत्यु कष्ट आदि देह के धर्म हैं आत्मा के नहीं।

भौतिकता के सब भावस्वय

---

१ उद्धवशतक' पद १५
२ उद्धवशतक, पद ३६
३ प्राप्य अन्तत वह परमात्मा
आत्मा ही के द्वारा
मिथ्या माया का प्रपंच है
दृश्यमान यह सारा। द्वापर, पृ० १७२
४ द्वापर, पृ० १६७
५ जयभारत, पृ० ३६४

आध्यात्मिकता से व्यक्त हुए।

× × ×

उन्मुक्त जीव से वे सुकृति

स्वच्छन्द, स्वस्थ अब दीख पड़े।[1]

यहाँ इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि जीवात्मा कर्म के नियमित नियम के द्वारा शरीर के विकारादि को भोगता है। शरीर के धर्म समाप्त होने पर जीवात्मा उन्मुक्त आत्म रूप हो जाता है। यही जीवात्मा का मूल रूप है। कृष्णायनकार ने आत्मा की नित्यता और ब्रह्म की एकता को 'महाभारत' के विचारानुसार ही अभिव्यक्त किया है। अद्वैत का प्रतिपादन जिस रूप में महाभारत में किया गया है, उसी रूप को द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने गीता काण्ड[2] में व्यक्त किया है।

अगराज में आनन्द कुमार ने जीवात्मा को लोक की ऐसी जीवनी शक्ति माना है, जो अपने मूल रूप में ब्रह्माण्ड कोष में स्थित है और लोक में जीवनधारा का संचारण करती है।[3] संसार में प्रतिभासित अनेकता ब्रह्म रूप में एक ही है। यह प्रतिभास सांसारिकता के कारण होता है। वस्तुतः ब्रह्म ही एकमात्र चेतनाधार है और वही लोक में प्राणरूप में प्रतिष्ठित है।[4], जीव का यात्रा क्रम नित्य है। जीव के सभी कर्म नित्य हैं और वह अमर है। कवि यह मानता है कि इस नित्य संसार में अग्नि न बुद्ध भी नहीं।[5] कवि इस विचार का प्रतिपादन करता है कि देह जीव का कृत्रिम शरीर है, देह नष्ट होने पर कृत्रिम शरीर नष्ट होता है, जो अमर, सत्य है वह नियमान है। वह अविनाशी है।[6]

कृष्णायनकार ने 'महाभारत' के अनुसार ही ब्रह्म की सर्वत्र व्याप्ति और सम्पूर्ण जगत् में एक ही तत्व की अभिव्यक्ति का प्रतिपादन किया है। ब्रह्म एवं जीव की एकता का दार्शनिक विचार भारतीय परम्परा में प्राणरस की भाँति प्रविष्ट हो चुका है।

मैं तुम माहि तुमहु मोहि माहि

रवलहु विस्मय कारण नाहि।

---

१ जयभारत पृ० ४४२

२ अवभुतवत आत्महि कोउ पेखत, कोउतस सुनत, कोउतस बरनत।
तदपि देखि सुनि बरनि अनूपा जानत कोउ न तासु स्वरूपा।
कृष्णायन, पृ० ५४१

३ अगराज पृ० ७

४ अगराज, पृ० ७

५ अगराज पृ० ८

६ होता है बस नाश जीव के कृत्रिम तन का।
अक्षर रहता सत्य रूप उसके जीवन का॥ अगराज, पृ० ८

एकहि तत्व व्याप्त जगसारा,
नहिं कहुँ मैं, तुम मोर तुम्हारा ॥[1]

कविवर सुमित्रा नन्दन पंत ने आत्मा को अमर रथी और मानव शरीर को रथ के रूप में 'महाभारत' की विचारधारा को ही वाणी दी है।[2] यह आत्मा अस्पर्श, अशब्द, अरूप, अरस, अव्यय नित्य आद्यन्त रहित, अजरामर है।[3] आत्मा के उक्त दार्शनिक विवेचन के उपरान्त कवि अन्तरात्मा के ज्ञानविद होने पर जीवन में शाश्वत चेतना का विकास और शान्ति का अधिष्ठान मानता है।[4]

जगत्

उत्पत्ति क्रम 'महाभारत' में दार्शनिक दृष्टि से जगत की उत्पत्ति, और स्वरूप पर विचार किया गया है। मूल प्रश्न यह है कि यदि सृष्टि है तो किसी ने उसे उत्पन्न किया होगा ? जिसने उत्पन्न की उसे किसने इसके लिए बाध्य किया ? इन प्रश्नों का समाधान महाभारत में सांख्य वेदान्त तथा अन्य मतों की दृष्टि से हुआ है। ब्रह्म की कल्पना का मुख्य प्रश्न सृष्टि उत्पन्न कर्त्ता, पालन कर्त्ता के रूप में दार्शनिकों के समक्ष आया और सभी दार्शनिक मतों में यद्यपि, भिन्न क्रम से जगत की उत्पत्ति बताई गई है तथापि ये भिन्न क्रम एक ही व्यवस्था से वेदान्तसूत्रों में उपस्थित किये गये हैं।

सांख्य वेदांत मत सांख्य मत में पुरुष सम्बन्धी कल्पना जगत सृष्टि कर्त्ता ईश्वर की कल्पना से भिन्न है। उनके विचार में प्रकृति जड़ जगत है, जो पुरुष के सान्निध्य से अपने स्वभाव से ही सृष्टि उत्पन्न करती है। वेदान्त के अनुसार परमेश्वर सृष्टि अपने में से उत्पन्न करता है। जैसे मकड़ी अपने में से जाला उत्पन्न करती है उसी प्रकार परमेश्वर अपने से सृष्टि उत्पन्न करता है और प्रलय काल में अपने में ही लय कर देता है।[5] वेदान्त में यह सिद्धान्त अभिन्न निमित्तोपादन

---

१ कृष्णायन पृ० २४

२ यह आत्मा अमर रथी नरतन जीवन रथ,
सारथिसद बुद्धि, मनस प्रग्रह, भू असि पथ। लोकायतन, पृ० २३९

३ अस्पर्श अशब्द अरूप अरस, अव्ययनित
आद्यन्त रहित आत्मा, अजरामर निश्चित। लोकायतन, पृ० २३०

४ वह एक अन्तरात्मा सबको कर अधिकृत
बहुधा धारण करता सब कामना पूरित।
वह नित्य अनित्यों में, चेतन में चेतन
उसको पा शाश्वत सिन्धु शान्तिपातामन। लोकायतन, पृ० २४०

[5] सृष्ट्वा देवमनुष्यांस्तु गन्धर्वोरगराक्षसान्।
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया। म० वन० १८८।३०

सिद्धान्त कहलाता है इसका तात्पर्य है कि जगत का निमित्त तथा उपादान कारण अभिन्न अर्थात् एक ही है। उसमें कुम्हार और मिट्टी के समान तात्त्विक भेद नहीं है। सृष्टि और सृष्टा जगत और ईश्वर, प्रकृति और पुरुष अभिन्न हैं—उनमें द्वैत नहीं है।

महाभारत में जगदुत्पत्ति क्रम 'महाभारत' में कई स्थलों पर सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। पुनरावृत्ति के कारण सृष्टि क्रम में कुछ अन्तर भी मिलता है। इस क्रमान्तर का एक कारण मत विभिन्नता भी हो सकता है। किन्तु मूलतः यत्किंचित भेद से सब क्रमों में एकसूत्रता की स्थापना हो जाती है।

वनपर्व में बालमुकुन्द कहते हैं कि मैं ही समस्त स्थावर प्राणियों और देवता आदि की रचना तथा संहार करता हूं।[1] प्रलय काल में समस्त प्राणियों का महा निद्रारूप माया से मोहित करके स्थित रहता हूं इस समय ब्रह्मा सोये रहते हैं।[2] उनके जागने पर उनसे एकीभूत होकर सृष्टि की रचना करूंगा।[3] यहां यह स्पष्ट है कि ईश्वर ही जगत की सृष्टि करता है और उसमें ही सृष्टि उत्पन्न करने के कारण, निमित्त एवं उपादान की अभिन्नता रहती है।

भरद्वाज भृगु-संवाद भरद्वाज भृगु संवाद में जगत की उत्पत्ति का वर्णन व्यापक रूप से किया गया है। 'भगवान नारायण के सृष्टि विषयक संकल्प से सृष्टि उत्पत्ति हुई।[4] यह सृष्टि क्रम इस प्रकार है —सबसे प्रथम महत्तत्व की उत्पत्ति हुई, महत्तत्व से अहंकार और अहंकार रूप भगवान से आकाश की उत्पत्ति हुई। आकाश से जल जल से अग्नि, एवं वायु उत्पन्न हुए। अग्नि एवं वायु के संयोग से पृथ्वी का जन्म हुआ।[5] इस सृष्टि क्रम का मूलाधार क्या है? यह 'महाभारत' से स्पष्ट नहीं। एक वस्तु की उत्पत्ति में दूसरी वस्तु कारण बनती है अतः इस क्रम को भी पूर्वोक्त अभिन्न निमित्तोपादान क्रम के समान ही मानना उचित होगा।

देवल-नारद संवाद में उपनिषदों के अनुरूप सृष्टि क्रम बताया गया है। उसके अनुसार अक्षर से आकाश आकाश से वायु वायु से अग्नि, अग्नि से जल जल

१ म० वन० १८९।३०
२ म० वन० १८९।४१
३ म० वन० १८९।४८ ११
४ म० शान्ति० १८२।११
५ म० शान्ति० १८२।१३ १४
टिप्पणी यह उत्पत्ति क्रम श्रुति-सम्मत क्रम से भिन्न है। यहां पर आकाश से वायु वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति बताई है।

से पृथ्वी पृथ्वी से ओषधि, ओषधियों से अन्न और अन्न से जीव उत्पन्न हुआ।[1] इस उत्पत्ति के विरुद्ध ही सृष्टि का लय क्रम भी माना गया है। जिससे यह सिद्ध होता है कि महाभारतकार ने सृष्टि और उत्पत्ति के विषय मे वेदान्त मत स्वीकार किया है।

व्यास शुकसंवाद व्यास जी शुकदेव से सृष्टि की उत्पत्ति के विषय मे कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति अविद्या (त्रिगुणात्मिक प्रकृति) द्वारा होती है।[2] व्यास-कथित सृष्टि क्रम अन्य क्रमों के अनुसार ही है, उसमे अधिक भेद नहीं है। इस क्रम मे सब प्रथम महत्तत्व फिर आधार भूत मन, मन से सात मानस-ऋषियों की सृष्टि और फिर सृष्टि की इच्छा से प्रेरित मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है।[3]

सृष्टि क्यों ? 'सृष्टि कैसे ?' के साथ, सृष्टि क्यो ?' यह प्रश्न जगत के स्वरूप और उसके अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण है। जगत सत्य है अथवा मिथ्या, इस बात की विवेचना भी इसी प्रश्न के अन्तर्गत हो जाती है। महाभारतकार ने निरीश्वर वादियो के विपरीत उपनिषदो के मत का आधार लेकर ईश्वर को ही सृष्टि का मूल माना है। 'उपनिषद मे 'आत्मैव इदमग्र आसीत् सोमन्यत् बहुस्याम प्रजायते'[4] के अनुसार प्रथम केवल ब्रह्म ही था ब्रह्म के मन मे आया कि मैं अनेक होऊँ और प्रजा उत्पन्न करूं। अर्थात् निष्क्रिय परमेश्वर के मन मे इच्छा हुई और इच्छा के कारण जगत् निर्मित हुआ।

इस सिद्धान्त को भी पूर्ण मान्यता इस हेतु नहीं मिली कि इच्छानुसार अच्छी और बुरी सृष्टि को क्यो उत्पन्न किया गया ? किन्तु 'गीता' मे भगवान ने इस 'क्यो का उत्तर अत्यन्त सशक्त तर्क से दिया है। 'कि प्रात काल के समय धीरे धीरे अव्यक्त से भिन्न भिन्न व्यक्तियां उत्पन्न होती हैं। सन्ध्या के समय जैसे संसार धीरे धीरे अदृश्य होता जाता है उसी प्रकार संहार काल मे भिन्न भिन्न व्यक्तियां अव्यक्त मे लीन होती हैं।[5]

शंकर ने मायावाद के कारण संसार का अस्तित्व ही नहीं माना। 'महाभारत मे उनके मायावाद का व्यापक रूप तो अप्राप्य है किन्तु उसके स्रोत अवश्य उपलब्ध है। महाभारत म माया के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति और संहार के साथ

१ म० शांति० २७५
२ म० शान्ति० २३२।२
३ म० शान्ति० २३२।३ ८
४ बृहद० १४,११७
५ अव्यक्ता व्यक्तयः सर्वा प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥ गीता ८।१८

जगत की अनित्यता का जिस रूप में वर्णन किया गया है उसे मायावाद का स्रोत मानने में विशेष अवरोध नहीं।

सनत्सुजातपर्व का संवाद इस विषय में महत्वपूर्ण है।[1] धृतराष्ट्र प्रश्न करते हैं। 'उस पुराण अजन्मा परब्रह्म को उत्पत्ति के लिए कौन बाध्य करता है, उसको इसमें क्या सुख होता है?' इसके उत्तर में विकार योग से विश्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।[2]

आधुनिक काव्य

हिन्दी जगत के आधुनिक कवि ने सृष्टि के स्वरूप, उत्पत्ति और संहार के विषय में स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं किया है। महाभारत काल में व्यक्ति जगत के भौतिक अस्तित्व को स्वीकार करके ब्रह्म की अखंड सत्यता का प्रतिपादन करता था। आज का कवि भी जगत् को महान भौतिक सत्य के रूप में स्वीकार करता है तथापि अपने सामाजिक परिवेश के कारण दार्शनिक दृष्टि से जगत की स्थिति के विषय में विचार करना उसे अति प्राचीन लगता है। ब्रह्म की स्वीकृति आज के युग में भावात्मक है पर जगत की स्वीकृति यथार्थ और वास्तविक है। वह वास्तविकता को उसके भौतिक परिवेश में स्वीकार कर उससे सन्तुष्ट है। 'महाभारत' की जगद् विषयक विचारणा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर अत्यन्त विरल रूप में पड़ा है। महाभारत काल के दार्शनिक की दृष्टि आधुनिक युग में कठिन प्रायः है अतः सृष्टि के विषय में तद्वत मान्यता का प्रभाव दिखाई देता है। तथापि कहीं कहीं पर सृष्टि विषयक विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है।

जैसा कि पहले कहा गया है। आधुनिक कवि की दृष्टि में जगत वास्तविक है, यथार्थ है, वह उसके उत्पत्ति के कारणों पर उतना विचार नहीं करता जितना उसकी स्थिति, गतिमत्ता और स्वरूप पर। वह जगत् को असत्य नहीं मानता और उसके स्वाभाविक विकास में समस्त परागतियों का विकास मानता है। विश्व के दुःख, आनन्द, भौतिक कष्ट आदि सभी तत्व मानव के लिए वरेण्य हैं। सब के सन्तुलित समन्वय से जीवन की प्राणधारा का सार्थक प्रतिमान रहता है। 'महाभारत' में सृष्टि को परमात्मा से उत्पन्न माना गया है। सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर ही है वही इसे

---

१ को सौ नियुङ्क्ते तमजं पुराणं
सर्वेमिदं सर्वमनुक्रमेण।
किं वास्य कार्यमथवा सुखं च।
तन्मे विद्वान्ब्रूहि सर्वं यथावत॥ म० उद्योग ४२।१६

२ विकार योगेन करोतिविश्वम। म० उद्योग० ४२।२१

अपनी इच्छानुसार निर्मित करता है।[1] 'दमयन्ती' काव्य मे भी ईश्वर के अंश रूप मे सृष्टि को स्वीकार किया गया है कि संसार उसी ब्रह्म का रूप है।

किन्तु यह भव है उसी का रूप,
व्याप्त कण कण म अदृश्य अनूप।
सव व्यापक यो उसी का नाम,
वह स्वय कर्त्ता बना निष्काम।[2]

इन पंक्तियो म 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट है कि ईश्वर त्रिगुणात्मक सृष्टि का रचयिता होकर भी उससे निर्लिप्त है। 'निष्काम' शब्द से कवि को ब्रह्म की निर्लिप्तता ही अभिप्रेत है। 'क्योंकि है यह विश्व ईश स्वरूप ऐसा कहकर कवि संसार को सर्वथा मिथ्या नही मानता।

भगवान् कृष्ण के विराट रूप प्रदर्शन म दिनकर ने जगत के अस्तित्व को ब्रह्म मे लीन माना है। गगन, पवन, अग्नि, सकल संसार और संहार सभी कुछ दृश्य मान, ब्रह्म म लीन है अत दिनकर 'महाभारत' क अनुसार अद्वैत की स्थिति को स्वीकार करते हैं।[3]

मैथिलीशरण गुप्त जगत् को माया के प्रपच के रूप मे मिथ्या मानते हैं। मिथ्या माया का प्रपच है, दृश्यमान यह सारा'।[4] 'महाभारत' म संसार के मिथ्यात्व का दार्शनिक सैद्धांतिक प्रतिपादन नही किया गया किन्तु ब्रह्म को ही परम सत्य मानकर संसार के सत्य को उस रूप म स्वीकार नही किया है। संसार को अनित्य माना गया है। जो वस्तु अनित्य और अविद्या माया से उत्पन्न है, वह नित्य नही हो सकती, अत जो नित्य नही है वह नाशवान है।

आधुनिक कवि जगत की नश्वरता की विचारधारा का सम्बन्ध 'महाभारत' से जोड लेता है पर वह तत्कालीन दार्शनिको की भांति उसे असत्य नही मानता। जब संसार है, दिखाई दे रहा है, तहात्मा उसके विकारो का अनुभव कर रहा है ता यह संसार असत्य नही है। इस तर्क का खडन भी मिलता है। महाभारतकार प्रत्येक रूप से संसार को कष्टदायक मानता है। 'महाभारत म अनेक स्थलो म आत्मा की मुक्ति की बात कहकर सासारिक वैभव को मुक्ति का बाधक माना है।[5] इस तथ्य की विवेचना इस प्रकार हो सकती है कि यदि चरम पदार्थ मुक्ति मोक्ष है और संसार की आसक्ति उसमें बाधक है तो यह विश्व सत्य कैसे हो सकता है हरिऔध भी संसार म आत्म सुख को ही प्रधान मानते हैं यद्यपि संसार के वश म होकर आत्म-

---

१ म० शान्ति० अध्याय २२०, २७५, २३२
२ दमयन्ती, पृ० १६०
३ रश्मिरथी, पृ० ३१
४ द्वापर पृ० १७३
. म० शान्ति० २०४।४ ६

न मिलना नहीं।[1]

मिश्र जी की दृष्टि में प्रलयकाल की वेला में सृष्टि जलमग्न हो जाती है। एकमात्र सत्य विद्यमान रहता है।[2] 'महाभारत' की इस विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव 'सेनापति कर्ण' में उपलब्ध है—

चिन्ता नहीं डूबता तो अखिल जगत है,
डूबनी है सारी सृष्टि वेला में प्रलय की।[3]

महाभारतकार की भावना शुद्ध दार्शनिक है। किन्तु आधुनिक कवि मान्य आध्यात्मिक सिद्धान्तों को लोक व्यवहार के स्तर पर जीवन में उतारता है। प्रलय काल में सृष्टि का ब्रह्म में लीन होना सत्य है, सृष्टि विलय के साथ समस्त सांसारिक तत्व समाप्त हो जायेंगे ऐसी परिस्थिति में यह उचित प्रतीत होता है कि व्यक्ति सृष्टि का नश्वर मानकर न तो उसमें अधिक आसक्ति का प्रदर्शन करे, और न अपने कर्तव्य कर्मों से विमुख हो।

आज का दार्शनिक कवि ब्रह्म और जगत में अभेदत्व स्वीकार करता है। पन्त जी के विचार में प्रभु सृष्टि की रचना ही नहीं करते अपितु स्वयं सृष्टि बन जाते हैं और इस प्रकार वे जगत में अपनी ही अभिव्यक्ति पाते हैं।[4] संसार मिथ्या न होकर विश्वात्मा की सुखप्रेरित सृजन कला का अद्भुत चमत्कार है। अन्तर इतना है कि ब्रह्म अपरिवर्तित है और जगत परिवर्तनशीलता के गुण से व्याप्त है। यह परिवर्तनशीलता उसका गुण भी है और क्षण भंगुरता का आभास भी।

जग भगवत सृजन कला, असीम सुख प्रेरित,
सब कुछ प्रतिपल होता रहता परिवर्तित।[5]

पंत जी संसार को मिथ्या नहीं मानते क्योंकि वह ईश्वर का क्रीड़ा प्रांगण है। जगत् में क्षण भंगुरत्व पर शाश्वत ब्रह्म अपने अखंड स्वरूप का आभास कराता है अतः जगत् असत्य नहीं है।[6] यह विश्व स्वयं ब्रह्म का रूप है और ब्रह्म का चेतन

१ प्रिय प्रवास, १६।४५
२ म० वन० १८८।४० और म० शान्ति० अध्याय २३३
३ सेनापति कर्ण, पृ० ३१ ३२
४ लोकायतन, पृ० २३३
५ लोकायतन, पृ० २३३
६ मिथ्या न जगत यह ईश्वर का घर आंगन,
क्षण के सधुपण पर करता शाश्वत विचरण॥

× × ×

विश्वात्मा सत्य जगद् विश्वास के पथ पर
अतश्चेतन अभिव्यक्ति सदय अविनश्वर। लोकायतन, पृ० २३४

अपनी इच्छानुसार निर्मित करता है।[1] 'दमयन्ती' काव्य मे भी ईश्वर के अश रूप मे सृष्टि को स्वीकार किया गया है कि ससार उसी ब्रह्म का रूप है।

किन्तु यह भव है उसी का रूप,
व्याप्त कण कण म अदृश्य अनूप।
सब व्यापक यो उसी का नाम
वह स्वय कर्त्ता बना निष्काम।[2]

इन पक्तियो म 'गीता' का प्रभाव स्पष्ट है कि ईश्वर त्रिगुणात्मक सृष्टि का रचयिता होकर भी उससे निर्लिप्त है। 'निष्काम' शब्द स कवि को ब्रह्म की निर्लिप्तता ही अभिप्रेत है। क्योकि है यह विश्व इश स्वरूप ऐसा कहकर कवि ससार को सवथा मिथ्या नही मानता।

भगवान कृष्ण के विराट रूप प्रदर्शन मे दिनकर न जगत क अस्तित्व को ब्रह्म म लीन माना है। गगन, पवन, अग्नि, सकल ससार और सहार सभी कुछ दृश्य मान, ब्रह्म म लीन है अत दिनकर 'महाभारत' के अनुसार अद्वत की स्थिति को स्वीकार करते हैं।[3]

मथिलीशरण गुप्त जगत को माया क प्रपच क रूप मे मिथ्या मानते हैं। 'मिथ्या माया का प्रपच है दृश्यमान यह सारा।'[4] 'महाभारत' म ससार क मिथ्यात्व का दार्शनिक सद्धान्तिक प्रतिपादन नही किया गया किन्तु ब्रह्म का ही परम सत्य मानकर ससार के सत्य को उस रूप मे स्वीकार नही किया है। ससार का अनित्य माना गया है। जो वस्तु अनित्य और अविद्या माया से उत्पन्न है वह नित्य नही हो सकती, अत जो नित्य नही है वह नाशवान है।

आधुनिक कवि जगत की नश्वरता की विचारधारा का सम्बन्ध 'महाभारत' स जोड लेता है पर वह तत्कालीन दार्शनिको की भाति उस असत्य नही मानता। जब ससार है दिखाई द रहा है, महात्मा उसक विकारो का अनुभव कर रहा है तो यह ससार असत्य नही है। इस तक का खडन भी मिलता है। महाभारतकार प्रत्येक रूप से ससार को कष्टदायक मानता है। 'महाभारत म अनेक स्थलो मे आत्मा की मुक्ति की बात कहकर सासारिक वैभव का मुक्ति का बाधक माना है।[5] इस तथ्य की विवेचना इस प्रकार हो सकती है कि यदि चरम पदाथ मुक्ति मोक्ष है और ससार की आसक्ति उसम बाधक है तो यह विश्व सत्य कस हो सकता है हरिऔध भी ससार म आत्म सुख को ही प्रधान मानते हैं यद्यपि ससार के वश म होकर आत्म-

१ म० शान्ति० अध्याय २२०, २७५, २३२
२ दमयन्ती, पृ० १६०
३ रश्मिरथी, पृ० ३१
४ द्वापर, पृ० १७३
५ म० शान्ति० २०४।४ ६

सुख मिलता नहीं[1]

मिश्र जी की दृष्टि में प्रलयकाल की वेला में सृष्टि जलमग्न हो जाती है। एकमात्र सत्य विद्यमान रहता है।[2] 'महाभारत' की इस विचारधारा का प्रत्यक्ष प्रभाव 'सेनापति कर्ण' में उपलब्ध है—

चिन्ता नहीं डूबता तो अखिल जगत है,
डूबती है सारी सृष्टि वेला में प्रलय की।[3]

महाभारतकार की भावना शुद्ध दार्शनिक है। किन्तु आधुनिक कवि मान्य आध्यात्मिक सिद्धान्तों को लोक-व्यवहार के स्तर पर जीवन में उतारता है। प्रलय काल में सृष्टि का ब्रह्म में लीन होना सत्य है सृष्टि विलय के साथ समस्त सांसारिक तत्त्व समाप्त हो जायेंगे, ऐसी परिस्थिति में यह उचित प्रतीत होता है कि व्यक्ति सृष्टि को नश्वर मानकर न तो उसमें अधिक आसक्ति का प्रदर्शन करे, और न अपने कर्त्तव्य कर्मों से विमुख हो।

आज का दार्शनिक कवि ब्रह्म और जगत में अभेदत्व स्वीकार करता है। पंत जी के विचार में प्रभु सृष्टि की रचना ही नहीं करते अपितु स्वयं सृष्टि बन जाते हैं और इस प्रकार वे जगत में अपनी ही अभिव्यक्ति पाते हैं।[4] संसार मिथ्या न होकर विश्वात्मा की सुखप्रेरित सृजन कला का अद्भुत चमत्कार है। अन्तर इतना है कि ब्रह्म अपरिवर्तित है और जगत परिवर्तनशीलता के गुण से व्याप्त है। यह परिवर्तनशीलता उसका गुण भी है और क्षण भंगुरता का आभास भी।

जग भगवत सृजन कला, असीम सुख प्रेरित,
सब कुछ प्रतिपल होता रहता परिवर्तित।[5]

पंत जी संसार को मिथ्या नहीं मानते क्योंकि वह ईश्वर का क्रीड़ा प्रांगण है। जगत् के क्षण भंगुरत्व पर शाश्वत ब्रह्म अनन्त अखंड स्वरूप का आभास कराता है अतः जगत असत्य नहीं है।[6] यह विश्व स्वयं ब्रह्म का रूप है और ब्रह्म का चेतन

१ प्रिय प्रवास, १६।४५
२ म० वन० १८६।४० और म० शान्ति० अध्याय २३३
३ सेनापति कर्ण, पृ० ३१ ३२
४ लोकायतन, पृ० २३३
५ लोकायतन, पृ० २३३
६ मिथ्या न जगत यह ईश्वर का घर आंगन
क्षण के लघु रण धर करता शाश्वत विचरण ॥
× × ×
विश्वात्मा सत्य जगत विकास के पथ पर
अंतःस्थित अभिव्यक्ति सत्य अविनश्वर। लोकायतन, पृ० २३४

तत्व सृष्टि का सचालन करता है।[1] सृष्टि का अपना पृथक अस्तित्व नहीं है वह ब्रह्म द्वारा सचालित पालित और नष्ट होती है। ब्रह्म के अव्यक्त स्वरूप मे ही व्यक्त जगत की स्थिति है।[2]

आधुनिक कवि उक्त अनेक रूपो मे जगत के विषय मे विचार करता है। अन्तत जगत नश्वर है।[3] उसकी नश्वरता और क्षणिक सत्यता, उसे स्वीकार्य है वह जगत को उसके समस्त गुण और अवगुणो से युक्त रूप मे स्वीकार कर प्रवृत्ति-मूलक जीवन दर्शन की स्थापना करता है।

माया

महाभारत' के दार्शनिक चिन्तन के अन्तर्गत माया का विचार ब्रह्म, जीवात्मा जगत आदि के समान विस्तार से नही किया गया है। तात्पर्य यह है कि महाभारत कार ने जिस प्रकार ब्रह्म आत्मा और सृष्टि, सृष्टि की उत्पत्ति, सहार आदि का विवेचन अनेक उपाख्यानो के द्वारा किया है और तात्कालिक अनेक सम्प्रदायो के तत्वचिन्तन म समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाया है उसी रूप मे माया' को स्वतन्त्र विवेचन का विषय नही बनाया। चार-पाच स्थलो पर ही 'माया' की चर्चा हुई है। 'माया' को लेकर परवर्ती दार्शनिको मे जितना ऊहापोह हुआ है उसका मूलाधार 'महाभारत' से उत्कृष्ट नही मानना चाहिए। उसका विकास तो स्वतन्त्र रूप से हुआ है।

माया का उल्लेख गीता मे माया परमेश्वर की शक्ति है।[4] यहा पर भी माया के विषय म अधिक विस्तार से नही कहा गया। शान्ति पर्व म श्वेतकेतु-सुवचला के सवाद मे श्वतकेतु ईश्वर की अनेक मायाओ की चर्चा करते हैं।[5] सुवचला श्वेत

---

१ मैं स्वय सृष्टि हू भव हू, कल्याण कामना चिन्तन।
मै विश्व प्रकृति मे चेतन गुण सचालन करता [redacted]। कौन्तेय कथा, पृ० ७२

२ निज अव्यय रूपहि द्वारा
व्याप्त कीन्ह यह जग मे सारा। कृष्णायन, पृ० ५७२

× × ×

यह जगत सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलम्बित,
अपने मे मिथ्या, बाह्य द्वन्द से मथित। लोकायतन, पृ० २३४

३ इस नश्वर जग मे मरकर भी रहते अमर इसी विध सज्जन।
अगराज, पृ० १०६

४ सम्भवाम्यात्ममयया, गीता

५ यावत पांसव उद्दिष्टास्तावत्योऽस्य विभूतय।
तावत्यश्चैव मायास्तु तावत्योऽस्याश्च शक्तय॥
म० शान्ति० ३२०। दाक्षिणात्य पाठ का ६०वां श्लोक।

हेतु से ससार, जन्म, अनेक प्रकार के विरोधो का प्रयोजन पूछती है[1] तो उसका उत्तर 'परमेश्वर सक्रीडा लोक सृष्टिरिय शुभे'[2] के रूप मे मिलता है। तदुपरान्त वे कहते हैं कि धूलि के जितने कण हैं, परमेश्वर श्री हरि की उतनी ही विभूतिया हैं, उतनी ही उनकी मायाए हैं और उनकी माया की उतनी शक्तिया भी हैं। इस कथन से यह स्पष्ट है कि माया का परमेश्वर की शक्ति के रूप म मानना और उससे ससार की स्थिति की स्थापना महाभारत काल म पूर्ण रूप से मान्य थी।

माया विकार 'माया शब्द के प्रयोग के अतिरिक्त एक दो स्थल ऐसे हैं जिनम 'विकार शब्द का अथ टीकाकारो ने माया किया है। इनमे उद्योग पर्व का सनत्सुजात पव अधिक महत्व पूर्ण है। इस पव मे ब्रह्म और माया का स्वरूपात्मक सम्बन्ध स्पष्ट रूप से चित्रित किया। धतराष्ट्र और सनत्सुजात के सवाद म धतराष्ट्र प्रश्न करते हैं कि यदि यह परमात्मा ही क्रमश सम्पूर्ण जगत रूप म प्रकट होता है तो उस अजन्मा और पुरातन पुरुष पर कौन शासन करता है, अथवा उस इस रूप मे आने की क्या आवश्यकता है?

सनत्सुजात धतराष्ट्र के प्रश्न के उत्तर म जीवात्मा की महत्ता और माया के सम्बन्ध की विवेचना करते हैं कि, अनादि माया' के सम्बन्ध से जीवो का काम सुख आदि से सम्बन्ध होता रहता है, ऐसा होने पर भी जीव की महत्ता नष्ट नही होती क्योकि माया के सम्बन्ध स जीव के देहादि पुन उत्पन्न होते हैं।[4] जो नित्य स्वरूप भगवान है, व ही परब्रह्म माया के सहयोग से इस विश्व, ब्रह्माड की सृष्टि करते हैं। यह माया उन्ही परब्रह्म की शक्ति है। महात्मा पुरुष इसे मानते है।[5] इस रूप मे सनत्सुजात ने 'विकार' का प्रयोग किया। विकार' शब्द की अपनी कोई पृथक सत्ता दार्शनिकों म नही अत टीकाकार का माया' अथ उचित ही जान पड़ता है। चिन्ता

---

१ म० शान्ति० २२०१ दाक्षिणात्य पाठ का ५६वां श्लोक।

२ म० शान्ति० २२०१दक्षिणात्य पाठ ५वा श्लोक, पृ० ४६६२

३ कोऽसौ नियुङ्क्ते तमज पुराण
सर्वेदिद सव मनुक्रमेण,
किं वास्य कायमथवा सुखच
तन्मे विद्वन ब्रूहि सव यथावत। म० उद्योग० ४२।१६

४ म० उद्योग० ४२।२०

५ यएतद वा भगवान सनित्यो
विकार योगेन करोति विश्वम।
तथा च तच्छक्तिरिति स्ममन्यते।
तथाथ योगे चमवन्ति वेदा ॥ म० उद्योग ४२।२१

महर्षि विनायक वद्य ने भी इसे इसी रूप में स्वीकार किया है।[1]

शान्तिपर्व में भी एक स्थान पर कहा गया है कि माया के कारण ही परमेश्वर का रूप छोटा अथवा बड़ा होता है।[2] यहां भी टीकाकार ने 'माया' शब्द का प्रयोग किया है।

प्रकृति माया 'महाभारत' में भगवान् कृष्ण अर्जुन की शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। मैं सब को जानता हूं तू नहीं जानता क्योंकि पाप पुण्यादि संस्कारों से आच्छादित तेरी ज्ञान शक्ति इस ज्ञान में असमर्थ है। पर मैं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला हूं'। इसके बाद ईश्वर का पाप पुण्य से असम्बन्ध होने पर भी जन्म क्यों होता है? इस विषय में भगवान कहते हैं 'यद्यपि मैं अज मा अव्ययात्मा ज्ञानशक्ति स्वभाव वाला हूं और ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का नियमन करने वाला ईश्वर हूं तो भी अपनी त्रिगुणात्मिक वैष्णवी माया को जिसके वश में समस्त संसार रहता है, और जिससे मुग्ध हुआ मनुष्य अपने वासुदेव स्वरूप को नहीं जानता, उसी अपनी प्रकृति माया को अपने वश में रखकर अपनी लीला से ही शरीर वाला सा जन्म लिया होता हूं।[3] यहां माया विषयक दो बातों पर ध्यान देना चाहिए एक तो यह कि माया परमेश्वर की शक्ति है और परमेश्वर उसको अपने वश में रखता है अर्थात् माया द्वारा प्रतिभासित तत्व ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध नहीं हो सकता। माया सर्वथा ब्रह्म के आधीन है। दूसरा तथ्य यह है कि जीव माया के कारण ही अपने मूल रूप को नहीं जान पाता। महाभारत' में माया को इन्द्रजाल की शक्ति,[4] रहस्य युक्त दवी शक्ति[5] योग शक्ति[6] और मोहित करने वाली[7] शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया। माया को ऐसी कृत्या माना है जिसकी शक्ति से आकाश में उड़ना और रसातल में जाना भी सम्भव हो सके। इस प्रकार अनेक रूपों में माया का व्यवहार हुआ है। इन सब प्रकारों का वर्णन आधुनिक कवियों ने अपनी विचार धारा के अनुरूप किया है।

आधुनिक काव्य में माया आधुनिक कवियों ने माया को ईश्वर की शक्ति अथवा सांसारिक कष्ट माना है। यद्यपि माया का अधिक दार्शनिक विवेचन सम्भव

---

१ 'महाभारत मीमांसा, पृ० ५३६
२ म० शान्ति० १८२।३४
३ म० भीष्म २८।६
४ म० उद्योग० १६०।५४ ५७, गीता ७।१२
५ म० वन ३१।३७
६ म० उद्योग० १६०।५५ ५६
७ म० वन० ३०।३२

नहीं हो सका क्योंकि 'महाभारत' से प्रभावित काव्यों की दृष्टि सामाजिक और सांस्कृतिक अधिक रही, दार्शनिक नहीं, फिर भी यत्रतत्र माया के विषय में अभिव्यक्ति हुई है।

मैथिलीशरण गुप्त ने माया को कृष्ण की कौतुकी शक्ति माना है। इस माया के आश्रय से ही कृष्ण अनेक कौतुक करते हैं।[1] अर्जुन की प्रतिज्ञा के अवसर पर अर्जुन भगवान की विस्मयी माया का चमत्कार देखते हैं।[2] माया के इस रूप के साथ गुप्त जी परमात्म साक्षात्कार के मार्ग में माया को बाधा मानते हैं और माया के विकार लोभ, मोह, काम, क्रोध को मार्ग कालुटेरा मानते हैं।[3]

'महाभारत' में समस्त सृष्टि की उत्पत्ति माया द्वारा मानी गई है।[4] द्वापर में गुप्त जी समस्त सांसारिक प्रपंच को मिथ्या और मायात्मक मानते हैं।[5] किन्तु उन्होंने यह भी माना है कि 'मिथ्या कैसे है माया भी जब तक वह मायावी'[6] ब्रह्म और माया का सम्बन्ध शाश्वत है अतः माया को मिथ्या मानना भी उचित नहीं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने माया मोह का दार्शनिक विवेचन तो नहीं किया किन्तु मोह को संसार चक्र की मुख्य धुरी माना है। मोह के कारण ही व्यक्ति संसार में सदसत कर्म करता है और सांसारिक माया पाश से आबद्ध होकर पथ भ्रष्ट होता है, और ब्रह्मज्ञानी सांसारिक मोहपाश से मुक्त मोह रहित, ब्रह्मधाम को प्राप्त होता है।[7] मानव अनेक बार मोहग्रस्त होता है। विश्व की सत्ता भ्रान्त करता है, तथापि वह आत्मज्ञान से माया पर विजय प्राप्त कर लेता है।[8] 'पांचाली' प्रबन्ध काव्य में

---

१ कर योगमाया को सजग निद्रित जगत की व्याप्ति को।
झट ले चले वे पार्थ को शिव निकट अस्त्र प्राप्ति को॥ जयद्रथवध, पृ० ४८
२ सब हो गई उनको विदित माया महा विस्मयमयी॥ जयद्रथवध, पृ० ८५
३ नहुष, मंगलाचरण, पृ० १३
४ म० उद्योग० ४२।२१
५ द्वापर, पृ० १७३
६ द्वापर, पृ० १७८
७ परन्तु मोह चक्र में
क्यों हो पड़े भाई तुम ? जन्म ब्रह्म कुल में
तुमने लिया जो ब्रह्मज्ञानी बनो लोक में।
काट यह माया-पाश साधना की असि से
सिद्धि धरो जाओ ब्रह्मधाम, इस लोक की
कामना में हो रहे हो हाय, पथ भ्रष्ट क्यों ? सेनापति कर्ण, पृ० ४०-४१
८ अगणित क्षेत्रज्ञ नरवर खो गया था मोह में
मूढ़ बन विजड़ित चरण यामुन दृष्टि विद्रोह में। द्रौपदी, पृ० ३८

रामानन्द तिवारी ने प्रकृति को सासारिक छल का मुख्य कारण माना है। सासारिकता के योगात्मक प्रतिकार की विवेचना करते हुए 'योग एक प्रतिकार प्रकृति से सम्भव छल का'[1] कहकर प्रकृति की मायात्मिका स्थिति को स्वीकार किया है।

कृष्ण के प्रति गोपियों के सात्विक समर्पण का समर्थन करते हुए हरिऔध जी ने माया के अनेक रूपों का वर्णन किया है। मोह व्यक्ति को ममत्वपूर्ण बनाता है, पर सासारिक ममत्व व्यक्ति को वासना सुख लालसा की ओर ले जाता है। सुख लालसा की ओर जाकर वह अपने स्वरूप को भूलता है।[2] कृष्णायनकार माया के नष्ट होने पर ही जीव मुक्ति की कल्पना करते हैं।[3] त्रिगुणात्मिका प्रकृति माया से ग्रस्त व्यक्ति अल्पज्ञ, मदमति है वह जीवन की वास्तविकता को नहीं जान सकता। जो प्राणी माया रहित और पूर्ण ज्ञानी है वह भ्रमित नहीं होता।[4] ईश्वर माया के द्वारा ही क्रीडा करता है। नराकार रूप मे माया के द्वारा असत्य के सर्वनाश और सत्य की स्थापना का खेल करता है। अपनी शक्ति माया के द्वारा सर्वज्ञ ईश्वर स्वय श्रेष्ठता का प्रदर्शन करता है।[5]

आधुनिकता आज के कवि ने अपनी सामाजिक प्रवृत्ति के अनुसार 'माया' के दार्शनिक स्वरूप को सामाजिक स्तर पर चित्रित किया है। दर्शन' के क्षेत्र में विषय वासना स्त्री, पुत्र सासारिक ऐश्वर्य सब कुछ माया है, इसे त्यागकर ही परम पद की प्राप्ति सम्भव है किन्तु आधुनिक बुद्धिवादी कवि मानसिक जगत की विडम्बना के समस्त उपचारो को माया के रूप म ही मानता है। हमारी स्वार्थदृष्टि केवल निज की उन्नति की कामना, हृदय के राग विराग सभी मायात्मक हैं। जब तक इन पर विजय प्राप्त नही होगी तब तक समाज का सुख सम्भव नही है। अत कुरुक्षेत्र के युधिष्ठिर मायाजन्य आत्म राग से सघर्ष करके मानवता की विजयकामना

---

१ पार्वती, पृ० २७१

२ प्रिय प्रवास, सर्ग १६

३ जिनसेउ काया माया माना
भेंटे मुक्त जीव भगवाना। कृष्णायन पृ० ५२०

४ प्रकृति गुणमय मुग्ध मूढ़ जन,
अर्जुन ! लिप्त रहत गुण कमन।
अस अल्पज्ञ, मदमति मनुजन।
मरमहि नहि पूर्ण ज्ञानिजन॥ कृष्णायन, पृ० ५४६

५ अगराज, पृ० २६६ ६७

करते हैं।[1] दार्शनिक दृष्टि से माया के विकार काम, क्रोध, लोभ और मोह, व्यक्ति कोसाधना पथ पर अग्रसर होने से रोकते हैं अतः मोक्ष की प्राप्ति के मार्ग में इन पर विजय पाना आवश्यक है। इसी कारण अनेक भक्त-कवियों ने मायात्मक सांसारिकता से छुटकारा पाने की प्रार्थना की है। आधुनिक कवि समाज की बौद्धिक चेतना में व्याप्त इन मायात्मक रूपों की नई व्याख्या करता है लोभ, मोह, व्यक्ति के स्वार्थ का मूल हैं। यह व्यक्तिगत स्वार्थ अनेक राजनैतिक संघर्षों की जड़ है यदि लोभ की इस नागिन का ज्ञान व्यक्ति को हो जाय तो वह प्रथम क्षुद्रत्व की सीमा का त्याग करने में समर्थ हो सकता है। लोभ मन की उस ज्योति का हरण कर लेता है जिससे मानवलोक कल्याण के पथ पर अग्रसर हो सकता है।[2] अतः आधुनिक कवि महाभारतकार के स्वर में ही वैयक्तिक, सामाजिक और आध्यात्मिक चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने के लिए 'माया' का खंडन और हृदय की निर्मल ज्योति का समर्थन करता है।

मोक्ष

भारतीय दर्शन में मोक्ष सर्वोच्च पद है और मोक्ष का स्वरूप भी ब्रह्म की भांति अचिन्त्य और केवल अनुभव गम्य है। यह इसलिए कहा गया है कि मोक्ष दृश्यमान निश्चय से अनुभूत नहीं है 'महाभारत' में मोक्ष को परमपद कहा गया है।[3] अत्यन्त सूक्ष्मानुभूति होने के कारण मोक्ष का स्वतन्त्र स्वरूपात्मक विवेचन सम्भव नहीं। सभी तत्त्वज्ञानियों ने इतना ही कहा है कि मोक्ष वह परम पद है जिसकी

---

१ यह होगा महारण राग के साथ
युधिष्ठिर हो विजयी निकलेगा।
नरसंस्कृति की रण छिन्न लता पर
शांति सुधा फल दिव्य फलेगा।
कुरुक्षेत्र की धूलि नहीं इतिपथ की
मानव ऊपर और चलेगा।
मनुज का यह पुत्र निराश नहीं
नवधर्म प्रदीप अवश्य जलेगा। कुरुक्षेत्र, पृ० ६४

२ यह राग सिंहासन हो जड़ था
इस युद्ध की मैं अब जानता हूं
द्रुपदा-कच में थी जो लोभ की नागिन
आज उसे पहचानता हूं
मन के तम की शुभ ज्योति हरी
इस लोभ ने ही यह मानता हूं। कुरुक्षेत्र, पृ० ६३ ६४

३ प्रोच्यते परमं पदम्। म० अनुशासन० पृ० ६००८

प्राप्ति मानव का सर्वोच्च ध्येय है। ससार मे जीव सासारिक बधनो के कारण विशेष सत्ता वोध होता है, और सासारिक सत्ता हीनता ही मोक्ष है। मोक्ष की स्थिति म जीव की कोई पृथक सत्ता नही। पृथक सत्ता के अभाव मे वह सत्ता शून्य और ब्रह्म से एकात्मत्व अनुभव करता है। अत कहना होगा कि ब्रह्म से एकत्व ही जीवमुक्ति मोक्ष है।

महाभारत म मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या महेश्वर, इस प्रकार कहते हैं — देवि मोक्ष से उत्तम कोई तत्व नही और न मोक्ष से श्रेष्ठ कोई गति है, ज्ञानी पुरुष उसे कभी निवृत्त न होने वाला श्रेष्ठ एव आत्यन्तिक सुख मानते है[1], वह नित्य, अविनाशी, अक्षोभ्य अजेय, शाश्वत, शिव स्वरूप देवताओ और असुरो के लिए स्पृहणीय है, ज्ञानी लोग ही उसम प्रवेश करते हैं।[2] मोक्ष का अर्थ जीवनमुक्ति ससार मुक्ति के रूप मे किया गया है अत समस्त सासारिक तत्व मोक्ष मार्ग मे बाधक हैं और उन पर विजय प्राप्त करने वाला प्राणी ही मोक्ष का अधिकारी है।

मोक्ष के साधन महाभारतकार न मोक्ष के साधन-मार्गों पर व्यापकता से विचार किया है। इस ग्रथ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उस काल म मुख्यरूप से दो प्रकार के साधन प्रचलित थे —प्रथम साधन ससार त्याग और निष्क्रियता से मोक्ष प्राप्ति अर्थात वैराग्य निवृत्ति द्वितीय मार्ग है ससार म रहकर धर्माचरण द्वारा मोक्ष प्राप्ति प्रवृत्ति। ईश्वर से जीवात्मा का तादात्म्य होना भारतीय आर्यों का अन्तिम ध्येय है यही मोक्ष है। इस मोक्ष के लिए ससार छोडकर अरण्य म जाकर निष्क्रिय बनकर परमेश्वर का चिंतन करना चाहिए। वेदात साख्य और योग का मोक्ष मार्ग यही है। यहा यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो मनुष्य ससार छोडकर अरण्य मे नही जाता किन्तु ससार म रहकर धर्माचरण करके जीवन व्यतीत करता है, उस मनुष्य के लिए मोक्ष है या नही ?

मोक्ष के साधक को क्या वन निवास अनिवार्य है ? अथवा जगत् के सब कर्मों का त्याग करके उनसे सम्बन्ध अवश्य तोडना चाहिए ? महाभारत म इस प्रश्न की चर्चा अनेक स्थानो म की गई है और इस प्रश्न का उत्तर परस्पर विभिन्न आधारो से दिया गया है।

कस्यैषा वाग्भवेत्सत्या नास्ति मोक्षो गृहादिति।[3]

'यह किसका कथन सत्य होगा कि घर म रहने से मोक्ष नही मिलता।" इस विषय म भिन्न मतो का विचार करते हुए महाभारत काल मे यही मत विशेष

---

१ म० अनु० पृ० ६००८
२ म० अनु० पृ० ६००८
३ म० शान्ति० २६६।१०

ग्र है कि सासारिक को मोक्ष नही मिलता ।

'महाभारत' का यह मत है कि मोक्ष पाने के लिए वराग्य आवश्यक है । द्या द्वारा आत्मा का विषयों से ससर्ग समाप्त कर जब मन स्थिर होगा तभी क्ष मिलेगा ।

द्वितीय भाग 'महाभारत' के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भगवान कृष्ण ने राग्य को अधिक महत्त्व नही दिया उन्होंने निष्काम कर्म, धर्माचरण के आधार पर । मोक्ष प्राप्त करने की भावना का प्रसार किया । कृष्ण ने ससार मे रहकर धर्म या नीति का आचरण करना ही मोक्ष का मार्ग बताया । यह स्वतन्त्र मत गीता मे तिपादित हुआ है । उनके मत म मोक्ष प्राप्ति के लिए निर्निरयत्व अथवा सन्यास जितना निश्चित और विश्वासपूर्ण मार्ग है, उतना ही स्वधर्म से, न्याय से, निष्काम बुद्धि से अर्थात फल त्याग बुद्धि स कर्म करना भी मोक्ष का निश्चित मार्ग है । धर्म युक्त निष्काम कर्माचरण का मार्ग सिर्फ भगवत गीता मे ही नहीं बतलाया गया के तु सम्पूर्ण 'महाभारत' म अथ से इति तक इसका प्रसार है ।

वद्यजी के अनुसार "इन राष्ट्रीय महाकाव्यो मे राम, युधिष्ठिर, भीष्म आदि के चरित्र, कर्मयोग का अमर सिद्धान्त पाठको के चित्त पर अकित करने के लिए, अपनी उच्च वाणी से अत्यन्त उत्तम रगों से रगे हैं । इन चरित्रो के द्वारा उन्होंने उपदेश दिया है कि इसी उच्च तत्व के अनुसार आचरण करने से मनुष्य को परम पद प्राप्त होगा । हमारे मत से 'महाभारत' का पोथा चाहे जितना बढ गया हो तथापि उसका परमोच्च नीतितत्व का यह सिद्धान्त कही लुप्त नही हुआ है । वह पाठको की दृष्टि के सामने स्पष्ट अक्षरो म लिखा सदव दिखाई देता है" ।[1]

'महाभारत' म धर्म आठ प्रकार का बतलाया गया है । यज्ञ, वेदाध्ययन, दान और तप का एक वर्ग है और सत्य, क्षमा, इन्द्रिय दमन और निर्लोभ का दूसरा । इसमे कर्म और नीति मार्ग का वर्णन है । कर्म मार्ग उतना उच्च नही है क्योंकि यह केवल प्रदर्शन के लिए भी हो सकता है । नीति मार्ग ही वास्तविक मार्ग है । गीता मे सद्गुणो की दवी सम्पत्ति से मोक्ष प्राप्ति का विधान भी सुरक्षित है ।

युधिष्ठिर का आचरण योग साख्य और वेदान्त के मत स सन्यास के निर्निरयत्व के समान स्वधर्म स निष्काम बुद्धि से, कर्म का आचरण भी मोक्ष के लिए विश्वसनीय है । सम्पूर्ण 'महाभारत' म धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र के द्वारा इसी

१ महाभारत मीमासा, पृ० ५१२

२ इज्याध्ययन दानानि
तप सत्य क्षमा दम ।
अलोभइति मार्गोय
धर्मस्याष्ट विधि स्मृत ॥ म० वन० २।७५

सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। युधिष्ठिर के धर्माचरण पर जब द्रौपदी अव्यावहारिकता का संदेह करती है तो वे उत्तर देते हैं।

धर्मंचरामि सुश्रोणि
न धर्म फल कारणात।
धर्मवाणिज्यको हीनो
जघन्या धर्मवादिनाम् ॥[१]

युधिष्ठिर के कथन और सवत्र आचरण से यह स्पष्ट है कि इस संसार में सात्विक प्रवृत्ति मार्गी व्यक्ति भी शुद्ध धर्माचरण द्वारा अपने को इतना ऊंचा कर लेता है कि वह परमपद का अधिकारी होता है। इस प्रकार 'महाभारत' में मोक्ष की प्राप्ति के निवृत्ति मूलक एवं सात्विक प्रवृत्ति मूलक जीवन दृष्टियों का विवेचन है।

आधुनिक काव्य 'महाभारत' मोक्ष-सम्बन्धी विचारधारा का प्रभाव आधुनिक काव्य पर युग के संदर्भ में, दिखाई देता है। आज विज्ञान और बुद्धि का युग है, अतः यह तो निश्चित है कि वैराग्य साधन से प्राप्त होने वाले मोक्ष का प्रभाव अधिक नहीं पड़ सकता। आधुनिक कवि प्रत्येक आध्यात्मिक तत्व को आज के लोक-जीवन के आदर्श पर स्वीकार कर सकता है। हमारे लोक-संघर्ष ने जीवन को इतना अधिक व्यस्त और एकान्त बना दिया है कि आज का विचारक सामाजिक दायित्व की ओर अधिक उन्मुख है जो राष्ट्रिय तथा सांस्कृतिक उत्थान पर विचार करता है।

आधुनिक संदर्भ में मोक्ष आज के जीवन का वैषम्य मोक्ष की आधुनिक व्याख्या करता है। संसार का त्याग कर आत्मा और परमात्मा के एकत्व की दार्शनिकता में न उलझ कर वह जीवन के अन्य क्षेत्रों में मुक्ति की कामना करता है, वह सांसारिक कष्टों से मुक्ति चाहता है और लौकिक व्यवहार की विषमताओं से मुक्ति की कामना करता है। प्राचीन जीवन में वैराग्य की प्रधानता का मुख्य कारण उस युग की परिस्थिति थी। अतः उस काल की राज्य व्यवस्था भी सम्पूर्ण रूप से त्याग पर आधारीभूत हो गई थी।

सामाजिक अहं का अभाव महाभारत-काल में मोक्ष को परस्पर विपरीत मार्ग से प्राप्त करने का व्यापक प्रचार मिलता है इसका कारण स्पष्ट है। उस काल के समाज में व्यक्ति सामाजिक सम्बन्ध से विचार नहीं करता था। समष्टि रूप से सामाजिक अहंभाव की सजीवता का अभाव सम्पूर्ण युग में था। प्रत्येक व्यक्ति निजी सुख-दुःख और उसके निवारण की व्यक्तिगत प्रक्रिया से ग्रस्त था। साधना का समग्र पथ वैयक्तिक उच्चता का प्रतिरूप था अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उस युग में आज के जीवन के समान संघ शक्ति का अभ्युदय नहीं हुआ था। इस कारण व्यक्तिगत चिंतन प्रधान विचारकों ने वैराग्य, संसार त्याग को मोक्ष का साधन बताया। क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति व्यक्तिगत है अतः

१ म० शान्० ३१।४५

उसका साधन भी व्यक्तिगत होगा।

कृष्ण का सामाजिक ग्रह व्यक्तिगत जीवनधारा के विपरीत भगवान कृष्ण ने समष्टि के ग्रह का प्रतिपादन किया। इसी कारण कृष्ण ने त्याग और वैराग्य की महत्ता को स्वीकार करते हुए भी धर्म पर अधिक बल दिया। धर्माचरण द्वारा जीवन के सम्पूर्ण कर्तव्यों का पालन करते हुए व्यक्ति परम पद को प्राप्त कर सकता है।

तत्कालीन राज्य व्यवस्था से क्षत्रियों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध था अतः उन्होंने त्याग, वैराग्य का प्रतिपादन नहीं किया। जीवन की द्रुतगामिता से शेष तीन वर्ण पृथक थे अतः ब्राह्मणों ने वैराग्य का प्रतिपादन किया। भगवान कृष्ण मूलतः राज्य-व्यवस्था के धरातल के ऊपर भाव थे अतः कर्मयोग का प्रचार करके क्षत्रिय के लिए युद्ध क्षेत्र की हिंसा को भी धर्म के अन्तर्गत रखकर अर्जुन को प्रोत्साहित किया।[1]

धर्म एवं नीति का समन्वय कर्मयोगियों ने धर्माचरण और नीति का समन्वय किया। आधुनिक कवि इस समन्वय को लोक जीवन की उन्नति के अनुकूल मानता है अतः कृष्ण के कर्मवाद का व्यावहारिक धरातल पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इन साधन मार्गों का विवेचन अगले प्रसंग में विस्तार से होगा। कर्ममार्गियों ने एक प्रमुख बात का प्रतिपादन किया कि नीति, आचरण की सात्विकता, धर्म-पालन, न्यायप्रियता से इस संसार में भी मुख मोक्ष सुख का अनुभव हो सकता है और लोकोपरान्त मोक्ष की उपलब्धि भी सम्भव है।

आधुनिक काव्यों में मोक्ष की आध्यात्मिकता का सीधा प्रभाव 'महाभारत' से उपलब्ध होता है किन्तु उसमें मध्यवर्ती दार्शनिक सम्प्रदायों के विभिन्न विचारों का भी प्रभाव सम्मिश्रित हो गया है। हिन्दी के अनेक आधुनिक कवियों ने मोक्ष, मुक्ति, सद्गति आदि दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग करके आत्म मुक्ति की स्थिति का चित्रण किया है। महाभारत में सांसारिक वैभव के त्याग से मोक्ष की प्राप्ति की सम्भावना व्यक्त की है। प्रिय प्रवास की राधा भी भोग लालसाओं को त्याग कर आत्म उत्सर्ग के साथ मुक्ति की कामना करती।[2] हरिऔध जी योग, सांख्य तथा वेदांत की वैराग्यमयी मुक्ति की स्थापना न करके कर्ममार्गी की तरह लोक सेवी को सच्चा आत्म त्यागी बताकर 'मुक्त' रूप में चित्रित करते हैं।[3]

---

१ गीता २।३७,३८

२ प्रिय प्रवास, १६।४१

३ जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्मत्यागी।
जी से प्यारा जगत हित औ लोक-सेवा जिसे है।
प्यारी सच्चा अवनितल में आत्मत्यागी वही है। प्रियप्रवास, १६।४२

युग सम्मत रूप आधुनिक कवि ने मोक्ष की मूल दृष्टि 'महाभारत' से प्राप्त की, किन्तु उसका युग सम्मत रूप ही व्यक्त किया है। आज वैराग्य प्राप्त मुक्ति से अधिक श्रेष्ठ लोक जीवन की सेवा से वैयक्तिक अहंकार के त्याग की महत्ता है। जो लोकसेवक इस व्यक्तिगत क्षुद्रत्व को त्याग कर अपने को व्यापक बना लेता है वही मुक्ति का अधिकारी है।

मैथिली शरण गुप्त की यशोदा को भी सांसारिकता में ही मुक्ति का आनन्द उपलब्ध है।[1] नहुष के उत्थान पतन में कवि ने शुद्धधर्माचरण से स्वर्ग की प्राप्ति और धर्माचरण से विरत होने की स्थिति में पतन का चित्रण कर कर्मवाद को स्वीकार किया है। नहुष ने वैराग्य से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं की अपितु स्वकर्मों की उच्चता से। वही पतनोन्मुख नहुष उन्हीं के बल पर अपवर्ग की भी कामना करता है।[2] 'जयभारत' के स्वर्गारोहण पर्व में पाडवों के देह पतन के उपरान्त युधिष्ठिर को जिस मुक्ति के आनन्द का अनुभव होता है उसमें त्याग और योग का सम्मिश्रण है।[3] यहाँ भी युधिष्ठिर अपने धर्माचरण में दृढ़ रहकर कुत्ते तक को त्यागने के लिए तैयार नहीं होते।[4] संसार में रहकर युधिष्ठिर ने अपने धर्म का निर्वाह किया अतः अन्त में वे प्रकृतिजयी होकर मुक्त हो गये।[5] मोक्ष मार्ग की प्रमुख बाधा ममत्व, मोह, अथवा माया है ऐसा वैराग्य-वादियों ने भी माना है। युधिष्ठिर का चरित्र इन बन्धनों से रहित निष्ठावान और कर्त्तव्यपरायण का रहा, अतः उन्हें सदेह परमपद की प्राप्ति हुई।[6] अतः 'जयभारत' में नारायण स्वयं देहात्मक नर का बन्धन मुक्त होने पर स्वागत करते हैं।[7]

धर्म के दो मार्ग वनपर्व के द्वितीय अध्याय में धर्म के कर्म मार्ग और नीति मार्गों का अध्ययन इस विश्वास को दृढ़ करता है कि निष्काम कर्म करने वाला भी, वेदान्ती एवं योगी की भांति, मोक्ष को प्राप्त होता है।[8]

जयभारतकार 'महाभारत' की भावना का यथावत चित्रण करता है।[9]

---

१ द्वापर, पृ० २८
२ आज मेरा भुक्तोज्झित हो गया है स्वर्ग भी,
 लेके दिखा दूंगा कल मैं ही अपवर्ग भी ॥ नहुष, पृ० ६५
३ जयभारत, पृ० ४४२
४ म० महा० ३।१२
५ जयभारत, पृ० ४४२
६ प्राप्तोऽसि भरतश्रेष्ठ दिव्यां गतिमनुत्तमाम। म० महा० ३।२२
७ जयभारत, पृ० ४४२
८ एवं कर्माणि कुर्वन्ति संसार विजिगीषव ।
 रागद्वेष विनिर्मुक्ता ऐश्वर्य देवता गता ॥ म० वन० २।८०
९ जयभारत, पृ० ३६४ ३६५

'जयद्रथ वध' में भी धर्माचरण में लीन व्यक्ति को मुक्त माना गया है।[1] 'अंगराज' के कवि ने क्रियाशीलता से सिद्धि प्राप्ति का प्रतिपादन करते हुए देहांत के पश्चात मोक्ष के आध्यात्मिक रूप को तो प्राचीन आस्था के साथ स्वीकार नहीं किया किन्तु उसका बुद्धिवादी समाधान इस रूप में अवश्य किया है कि व्यक्ति अपने आदर्श धर्माचरण से लोक में प्रतिष्ठित होता है।[2] दिनकर का कर्ण कर्मवाद और पुरुषार्थ की उस चरम ज्योति का प्रतीक है जो अपने सत्कर्मों से इस लोक में प्रतिष्ठित होकर उच्च पद को प्राप्त हुआ है।[3] उन्होंने सत्कर्म और तपस्या का लोक संग्रही रूप अपनाया है। हारीत ने भी 'दमयन्ती' काव्य में मोक्ष के आध्यात्मिक रूप को मूलतः मानकर उसका युगानुरूप चित्रण किया है। वास्तविक मोक्ष यदि ब्रह्म की प्राप्ति है, तो लोक-सेवा में हम उसी ब्रह्म प्राप्ति का अनुभव कर सकते हैं।[4] दिनकर तपस्या और संयम के समन्वय को अमरत्व के लिए आवश्यक मानते हैं।

नरता का आदर्श तपस्या के भीतर पलता है,
देता वही प्रकाश आग में जो अभीत जलता है।
आजीवन झेलते दाह का दंश वीर व्रतधारी,
हो पाते तब कहीं अमरता के पद के अधिकारी।[5]

दर्शन : साधना पक्ष

भारतीय दार्शनिकों ने दर्शन के सिद्धि पक्ष पर जितना विचार किया है उतनी ही मात्रा में साधना पक्ष की विवेचना भी की है। सिद्धि प्राप्ति के हेतु साधना के अनेक मार्ग भारतीय तत्त्व चिन्तन की आधार शिला हैं। यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि साधना पक्ष को लेकर अनेक सम्प्रदायों और मतों का आविर्भाव हुआ अतः दार्शनिक विवेचन में साधना पक्ष का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

ब्रह्म क्या है? उसका स्वरूप क्या है? जगत, सृष्टि और मोक्ष क्या है? तथा अनन्त मोक्ष की प्राप्ति कैसे होती है? आदि प्रश्न मन में आने पर भारतीय तत्व-

१ जयद्रथवध, पृ० ५५

२ सदुद्योग में यदि होता कृतोद्योग, क्रियाशीलता से सदा सिद्धि होना,
मले देह का अन्त हो, किन्तु प्राणी स्वआदर्श से लोक में व्याप्त होना।
अंगराज, पृ० २६५

३ रश्मिरथी पृ० २०२

४ जब उसीका रूप जीव अनेक,
कहां ? उसकी प्राप्ति में सब कल्प।
ईश सेवा का व्रत प्रियतम
लोक सेवा है सुमार्जित नाम। दमयन्ती पृ० १६०

५ रश्मिरथी, पृ० ५६

चिन्तकों ने साधन मार्ग की ओर विचारना प्रारम्भ किया। दर्शन का मूल अभिप्राय अचिन्त्यतत्व को देखना अथवा अनुभूत करना है, अतः वह जिस मार्ग से अनुभूत किया जा सकता है, उस मार्ग का विकास आध्यात्म तत्व के साथ चला।

साधन पक्ष का विकास — साधन पक्ष का विकास मानव विकास से असपृक्त नहीं है। मानव के अभ्युदय के साथ उसका उदय हुआ है। अनीश्वरवादी और ईश्वरवादी मतों के मध्य साधना का उत्तरोत्तर विकास होता गया। मानव चेतना के विकास के साथ सामाजिक परिस्थितियों ने भी साधना-पक्ष के उत्थान पतन में गहरा योगदान किया। यह नितांत स्वाभाविक है कि चिन्तन का एक पक्ष जब चरम उन्नति पर पहुंचता है तो उसका विरोध होने लगता है और नया मत जनता के समक्ष आता है। यह विरोध और पुनः सृजन युगों के विकास की अनिवार्य प्रतिक्रियाएं हैं। भारतीय चिन्तन धारा के विकास से इस सूत्र को ठीक प्रकार समझा जा सकता है।

कर्म योग

वैदिक युग — चरम लक्ष्य ब्रह्म अथवा परमपद मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म सिद्धान्त परम प्राचीन है। मानव की उत्पत्ति के साथ इस कर्म मार्ग का अभिन्न सम्बन्ध है। इस संसार में जब मानव है तो वह कर्म करेगा, जब कर्म करेगा तो उस कर्म के आधीन उसे इहलोक और परलोक के समस्त पदों की प्राप्ति सम्भव है। कर्म सिद्धान्त की प्राचीनता इसी से जानी जा सकती है कि आत्मा के समस्त व्यापारों का मूल कर्म है। कर्म शब्द को लेकर अनेक प्रकार की व्याख्याएं की जा सकती हैं। जीव और कर्म के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि जीव को जन्म-मरण के चक्र में कर्मानुरोध से संसार की अनेक योनियों में प्रविष्ट होना पड़ता है।

जीव का संचरण कर्मानुसार होता है। उपनिषदों में भी कर्म और जीव के सामरिस्य का समन्वय किया गया है। ईश्वर की इच्छा अथवा आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति की अपेक्षा आत्मा के आवागमन के विषय में भी कर्म सिद्धान्त ही सर्वश्रेष्ठ है। कर्म की उत्पत्ति के कारण ही जीव पुनः पुनः शरीर में प्रवेश करता है। इस प्रकार कर्म मार्ग अत्यन्त प्राचीन और अधिक मान्य रहा है।

कर्म-काण्ड से कर्म योग — महाभारत के कर्म मार्ग तक कर्म व्यापार ने एक विशेष यात्रा की। वेदों में कर्म शब्द की प्रधानता है। देवों की उपासना, यज्ञादि क्रियाएं कर्म शब्द के अन्तर्गत हैं। यज्ञ करने वाला व्यक्ति परम पद का अधिकारी होता है। यज्ञों में देव यज्ञ, पितृयज्ञ, ऋषियज्ञ के अतिरिक्त अश्वमेध और राजसूय आदि का प्रचलन था। यज्ञ वैदिक युग की उपासना पद्धति के महत्वपूर्ण अंग थे। बड़े-बड़े यज्ञों में देवों का आवाहन, सोमरस पान आदि की क्रियाएं कर्म को मोक्ष-प्राप्ति के हेतु प्रधान मानती थीं।

उपनिषद्-युग — वस्तुतः उपनिषदों का युग ज्ञान युग के रूप में स्वीकृत है

किन्तु इस काल में विकसित अन्य दार्शनिक मतों में कुछ में तो कर्म को भी स्थान मिला और कुछ में कर्म की उपेक्षा करके ज्ञान, योग, संन्यास की प्रधानता रही। भारतीय षड्दर्शनों का विकास उपनिषदों के युगों में ही हो रहा था। अतः यह स्पष्ट है कि एक ही युग में विभिन्न साधन पक्षों की मान्यता थी।

उपनिषद् युग का दार्शनिक आत्मनिष्ठ अधिक था। इसकी आत्मनिष्ठा के कारण ही आत्मज्ञान की विचारधारा न केवल दबकर। इस पर भी कर्म स्वतन्त्रता की स्वीकृति और कर्म विरोध दोनों ही उपनिषदों में प्राप्त हैं। जैसे उसकी इच्छा है वैसे ही उसका क्रतु 'संकल्प' होता है तथा संकल्प के अनुसार मानव कर्म करता है।[1] इसके साथ 'कौषीतकि' उपनिषद् ने कर्म-स्वातन्त्र्य का निषेध किया है।[2] 'छान्दोग्य'[3] और मुक्तोपनिषद्'[4] ने कर्म पुरुषार्थ को स्वीकार किया है। उपनिषदों में जहाँ पर भी कर्म की स्वीकृति है वह कर्म काण्ड से भिन्न व्यक्ति की साधना के उस रूप में मान्य है, जो ज्ञान का एक अंग बनकर आती है। पुरुषार्थ करने से व्यक्ति की समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और वह चिन्तन के पक्ष में आत्म ज्ञान के चरम ध्येय तक पहुँच जाता है।

महाभारत और कर्म योग दो व्यक्तित्व प्रवृत्ति और निवृत्ति का समन्वय करके कर्म योग की शिक्षा देने वाले कृष्ण और भीष्म ये दो व्यक्तित्व 'महाभारत' में प्रमुख हैं। कृष्ण ने कर्म योग की शिक्षा मोह-ग्रस्त अर्जुन को दी और कर्म को जीवन का व्यापक धर्म बताकर यह कहा कि यदि 'मैं कर्म न करूँ तो विश्व कर्महीन हो जाए'।[5] इसी सिद्धान्त को भीष्म ने कर्म पुरुषार्थ की शिक्षा के रूप में प्रवृत्ति का उपदेश सामन्तानि पूर्ण युधिष्ठिर को दिया। इन दोनों में अन्तर यह है कि कृष्ण की शिक्षा लक्ष्य में जहाँ आध्यात्मिक है वहाँ भीष्म की व्यावहारिक शिक्षा आध्यात्मिक और राजनैतिक रूप में समन्वित हो गई है। इस प्रकार महाभारत में कर्म योग का विवेचन भगवान कृष्ण के मुख से गीता में और भीष्म के मुख से शान्ति पर्व, अनुशासन पर्व में हुआ है। इसके अतिरिक्त कर्म एवं पुरुषार्थ की चर्चा जहाँ भी आई है वह लौकिक रूप में उक्त स्थलों से अभिन्न है या विशुद्ध लौकिक साधन रूप में वर्णित की गई है। उदाहरणार्थ कर्ण जिस पुरुषार्थ की बात कहता है वह नितान्त

१ बृह० उप० ४।४।५
२ कौषीतकि, ३।८
३ छान्दोग्य, ८।१६
४ मुक्तिकोपनिषद्, २।१।६
५ न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥ गीता ३।२२।२३

व्यक्तिगत और सांसारिक यश प्राप्ति का उपाय है किन्तु युधिष्ठिर, द्रौपदी, भीष्म आदि जिस पुरुषार्थ की बात करते हैं वह मोक्ष से सम्बन्धित है। इसका कारण यह है कि इन पात्रों ने पुरुषार्थ की मीमांसा धर्माचरण के रूप में की है और कृष्ण के अनुसार धर्माचरण ही परमपद प्राप्ति में मुख्य साधन है। कर्म उस धर्माचरण का मुख्य अंश है। अतः 'महाभारत' में वैराग्य और संन्यास को स्वीकार करते हुए भी कर्म योग को सर्वोपरि माना है।

कर्म योग समीक्षा कर्म काण्ड की प्रतिष्ठा करने वाले मीमांसा दर्शन से भी आगे महाभारतकार ने गीता में कर्म और यज्ञ को अत्यन्त व्यापक रूप में स्वीकार किया है। निष्काम बुद्धि से किए गए और परमात्मा की ओर ले जाने वाले सभी कर्मों को यज्ञ कहा गया है।[1] महाभारत के कर्मयोग की तीन विशेषताएं हैं—

१ कर्मचक्र की अनिवार्यता

२ कर्म चक्र से पलायन धर्म की कायरता है

३ कर्म से मोक्ष की प्राप्ति

कर्म चक्र की अनिवार्यता को भगवान् कृष्ण प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा बलात् प्राणी से कर्म कराने की बात कहकर सिद्ध करते हैं।[2] शान्ति पर्व में जब युधिष्ठिर वैराग्य लेकर जंगल में जाने की इच्छा करते हैं, तो व्यास जी उन्हें प्रवृत्ति की ओर मोड़कर कर्म चक्र की अनिवार्यता को सिद्ध करते हैं, और कर्म को ईश्वर समर्पित करने का प्रतिपादन करते हैं।[3]

दूसरे पक्ष में धर्माचरण के रूप में कर्म योग की शिक्षा दी गई है। यदि व्यक्ति कर्म से पलायन करता है तो वह धर्म विमुख होता है। इस कठोर नियम के अनुसार अर्जुन को युद्ध के लिए कटिबद्ध होना पड़ा और युधिष्ठिर को भी युद्ध करना पड़ा। शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को प्रवृत्ति की ओर इसी हेतु उन्मुख किया गया कि जीवन व कर्म को त्याग कर जंगल में जाकर शान्ति की कामना मृगतृष्णा मात्र है। सच्ची शान्ति, आत्म सुख इसी परमपद की प्राप्ति में है। अतः क्षत्रिय के लिए राज्य धर्म का पालन अनिवार्य है। कर्मनिष्ठ व्यक्ति दुष्कर्मों का प्रायश्चित सत्कर्मों से कर सकता है किन्तु प्रायश्चित्त के अभाव में मरकर व्यक्ति परलोक में संतप्त रहता है।[4]

मोक्ष का साधन कर्म भगवान कृष्ण ने कर्म को मोक्ष का परम साधन माना है। यद्यपि कर्म के साथ ज्ञान योग भक्ति की उपेक्षा नहीं की गई, किन्तु प्रधानता

---

१ गीता ४।१५ ३२

२ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।
   कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ गीता ३।५

३ म० शान्ति० ३२।२०

४ म० शान्ति० ३२।२५

कर्म की ही है। कृष्ण ने कर्म को मोक्ष का साधन मानकर उसकी स्थापना की
किन्तु निष्काम कर्म की व्याख्या में कर्म का वास्तविक रूप उपस्थित किया, जिससे
मोक्ष पद प्राप्त हो सकता है। गीता' में साधन मार्ग का आरम्भ निष्काम कर्म से
करके उसका अन्त शरणागति में किया गया है। निष्काम कर्म करने में तथा ध्यान
योग के अभ्यास से साधक ब्रह्म भाव को प्राप्त कर लेता है इस दशा में वह प्रसन्न
चित्त होकर समस्त प्राणियों में समभाव रखता है।

कर्म के तीन सोपान—कर्म योग की शिक्षा देते हुए भगवान कृष्ण ने सबसे
अधिक बल निष्काम कर्म के लिए दिया है। इसीलिए गीता में यह उपदेश दिया
गया है कि फलाकांक्षाहीन किए गए कर्म बन्धन को उत्पन्न नहीं करते। कर्म के साथ
प्रमुख बाधा साधक की कामना अर्थात फलासक्ति है। भगवान कृष्ण ने योग' शब्द
का प्रयोग युक्ति के रूप में किया है।[1] पतंजल-योग का अर्थ तो कुछ ही स्थलों पर
अभिप्रेत है। कर्म वाद के कर्म योग रूप में रूपांतर के तीन सोपानों की चर्चा
विस्तार से आई है। इनमें प्रथम सोपान अर्थात भावना का वर्णन है द्वितीय
सोपान है कर्तृत्व के अभिमान का त्याग तृतीय सोपान है ईश्वरार्पण। कर्मयोग के
उक्त तीनों सोपान एक प्रकार से कर्मयोग की साधना के तीन मुख्य आयाम हैं। कर्म
योगी के लिए प्रथम आवश्यकता है कि वह कर्म करते हुए उसके फल की इच्छा न
करे।[2] फलाकांक्षा के त्याग को भगवान कृष्ण ने महत्वपूर्ण सोपान के रूप में प्रति-
पादित किया है। यही साधना-मार्ग कर्म-योगी को मोक्ष तक ले जाता है। यदि कर्म
योगी फल की कामना ही नहीं छोड़ पाया तो वह साधना पथ के अन्त माना तक
किस प्रकार पहुँचेगा? कर्मयोगी के धर्माचरण का मूल सूत्र फलत्याग ही है। भीष्म
ने युधिष्ठिर को सामाजिक आसक्ति-त्याग के साथ जीवन में प्रविष्ट होने का उपदेश
इसी आधार पर दिया था कि आसक्ति व्यक्ति के कर्म निष्ठ हृदय में विकार उत्पन्न
करती है और साधक के हृदय में किसी भी प्रकार का विकार साधना का बाधक है।[3]

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥[4]

इस श्लोक को कर्म योग का महामंत्र मानना चाहिए। इसी का व्यावहारिक उपदेश
भीष्म ने शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को दिया। आसक्ति का त्याग करके कर्म फल का
त्याग ही उचित है कर्म का त्याग अनुचित है।

कर्तृत्वाभिमान का त्याग—कर्म-योगी का दूसरा सोपान कर्तृत्वाभिमान का

---

१ श्री मद्भगवद् गीता रहस्य पृ० ५७

२ गीता० २।४७

३ म० शान्ति० ६२।६ ११

४ गीता० २।४७

त्याग है। कर्म फल की इच्छा के त्याग से ही साधना की पूर्णता नहीं होती। यदि कर्तव्य करने का अभिमान रहा तो अहंकार की यह भावना साधना में बाधक होगी। मनुष्य त्रिगुणात्मिका प्रकृति के गुणों का दास है अतः उसे अभिमान करने का अधिकार ही कहाँ? यहाँ यह स्पष्ट है कि व्यक्ति सांसारिक कर्म-बंधन में अपने को निमित्तमात्र समझे, नियोजक नहीं।

ईश्वरार्पण कर्मयोगी साधक का अन्तिम सोपान अपने कर्म को ईश्वर के अर्पण करने में है।[1] 'गीता' में स्पष्ट कहा है कि समस्त कार्यों की निष्पत्ति भगवदर्पण की भावना से होनी चाहिए।[2] भगवान कृष्ण कहते हैं कि जीव के सभी कर्म आहुति, भोजन दान, तपस्या आदि ईश्वरार्पण होने पर ही वह कर्म बंधन के शुभाशुभ फलों से मुक्त होगा।

अज्ञानी तो आसक्ति युक्त कर्म करता है, पर ज्ञानी अनासक्त होकर कर्तव्य बुद्धि से लोक संग्रह के निमित्त आचरण करता है।

संक्षेप में महाभारतकार का कर्म योग इस रूप में समझा जा सकता है कि सकाम कर्म सांसारिक बंधनमात्र है उससे निःश्रेयस की प्राप्ति नहीं अकाम कर्म ही मोक्ष और मुक्ति का चरम साधन है।

आधुनिक काव्य साधन पक्ष की दृष्टि से आधुनिक काव्य पर कर्मयोग और भक्ति मार्ग का व्यापक प्रभाव है। कर्म करना मानव जीवन का सर्वाधिक व्यापक नियम है जिसमें जीवन के सभी पक्ष समाविष्ट हैं। एक ओर मानव के सभी कर्म दया, सत्यपालन, कर्तव्यनिष्ठा आदि जीवन की व्यवस्था के लिए अनिवार्य हैं, दूसरी ओर कर्म के सर्वोच्च साधन से परमपद की प्राप्ति सम्भव है। अतः कर्मवाद आधुनिक युग के लिए नई प्रेरणा के रूप में उपस्थित हुआ। महाभारत युग की जिस भयंकरता के मध्य कृष्ण ने कर्मयोग की स्थापना की थी, उसकी आवश्यकता आज के युग में उससे भी अधिक अनुभव की गई। इस कारण आज का कवि कर्म योग का जितना स्तवन करता है उतना अन्य किसी साधन पक्ष का नहीं। इस प्रवृत्ति के लिए युगीन वातावरण अधिक उत्तरदायी है। आज के युग में योग, भक्ति ज्ञान आदि व्यावहारिक कसौटी पर उतरने खरे नहीं है, जितना कर्म सिद्धान्त। मानव उस काल में भी कर्म चक्र की अनिवार्यता से आबद्ध था और आज भी है। कर्म के अभाव में उस समय भी उसका जीवन असम्भव था और आज भी कर्म के अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। कर्म ही एक ऐसा व्यावहारिक लोक धर्म है, जिसके स्वरूप में परिवर्तन सम्भव है किन्तु उसकी आवश्यकता पर कोई भी युग प्रश्न वाचक नहीं

---

१ ईश्वरेण नियुक्तो हि साध्वसाधु च भारत।
कुरुते पुरुषः कर्म फलमीश्वरगामि तत। म० शान्ति० ३२।१३

२ गीता, ९।२५

३ गीता, ३।२५

हो सकता।

'कृष्णायन' में कर्मयोग के मार्ग को बाधा विघ्नों से रहित मानकर, उसे अल्प प्रयास से महासिद्धि प्रदाता माना गया है।[१] 'महाभारत' के विचार का समर्थन करते हुए मिश्र जी कर्म करने के अधिकार की स्थापना करते हुए फल की अनासक्ति को मुख्य धर्म मानते हैं।[२] कर्म वज्र से भी अकर्तनीय है।[३] वही व्यक्ति को योग्य फल देता है।[४] गुप्त जी का नहुष कर्म की उच्च प्रतिष्ठा से ही देवत्व का पद प्राप्त कर सका।[५] जो मानव कर्म करता है वही भोग का अधिकारी है। कर्म के अभाव में प्राप्त वस्तु मानव की क्लीवता का द्योतक है।[६] आज का कवि कर्म की प्रधानता यहाँ तक स्वीकार करता है कि जिसने जीवन के संघर्ष में विघ्नों को परास्त नहीं किया, जो जूझा नहीं, जिसने कर्म के सौन्दर्य का अनुभव नहीं किया वह मानव अपूर्ण है। गीता में कर्म का उपदेश देते हुए कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया था उसी सिद्धान्त के आधार पर 'जयभारत' में युधिष्ठिर कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार कर युद्ध के लिए भी तत्पर हैं।[७] कर्म से सिद्धि प्राप्त होती है,[८] कर्म, ज्ञान, ध्यान योगादि से श्रेष्ठ है।[९]

महाभारत' का कर्मवाद आधुनिक काव्य में इतना प्रभावशाली है कि अन्य साधन मार्गों की उपेक्षा भी दिखाई देती है। सेनापति कर्ण' में कर्महीन

---

१ कर्म योग पथ माँहि धनंजय। होत नाहिं आरम्भ करे क्षय।
बाधा विघ्न न पथ अगारी। थोरिहु सिद्धि महाभय हारी॥
कृष्णायन, पृ० ५४२

२ कर्महिं महँ अधिकार तुम्हारा। नाहिं कर्म फल में अधिकारा॥
कृष्णायन, पृ० ५४३

३ काटा नहीं जा सकता वज्र से भी कर्म तो। जयभारत पृ० ३३

४ कर्म ही किसी का उसे योग्य फलदायी है। जयभारत पृ० १६

५ 'धन्य! कर्म करना ही धर्म रहा आर्य का''। नहुष, पृ० ३३

६ कर्म करें लोग, इतना ही नहीं इष्ट है,
शिष्ट है वही जो कर्म कौशल विशिष्ट है
होगा वह क्या बड़ा जो विघ्नों से नहीं लड़ा?
भोग क्या करेगा, जो न अर्जन करे आप। नहुष, पृ० ३४

७ युद्ध यदि अनिवार्य है तो हम करेंगे,
शूर-वीर समान मारेंगे मरेंगे। जयभारत पृ० १७४

८ अनभ्यासी भी मेरे अग्र,
कर्म कर होगा सिद्ध समग्र। जयभारत पृ० ३६४

९ ज्ञान से भी विशेष है ध्यान, ध्यान से श्रेष्ठ कर्म निष्काम।
जयभारत, पृ० ३७५

व्यक्ति को प्रशान्त बताया है।[1] सिद्धान्त वाक्यों के अतिरिक्त प्रबन्ध काव्यों के महत पात्रों के आचरण में कर्म की प्रधानता है। 'सेनापति कर्ण' के कृष्ण की मान्यता है कि वह कर्म फल प्रदाता नहीं है, जिसमें काम, क्रोध का स्पर्श हो।[2] जैसा कि पहले कहा गया है 'कर्म सिद्धान्त' जीवन की व्यावहारिक व्यवस्था और परम पद का साधक है अतः 'रश्मिरथी' का कर्ण उज्ज्वल धर्म को जीवन का आधार मानता है यह उज्ज्वल धर्म मानव को सत्कर्म में प्राप्त होता है। यह सत्कर्म ही मानव जीवन का अंतिम आश्रय है।[3]

'महाभारत' के कर्म योग को 'सेनापति कर्ण' में आधुनिक धर्माचरण के संदर्भ में ग्रहण किया गया है। विश्व को कर्ममय[4] बताकर कवि आज के मानव के लिए कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करता है। कर्म ही वीरों की विभूति है[5] और कर्म की विभूति से मानव का जन्म-दोष—जो सामाजिक देन है—मिट जाता है।

सिद्ध तुमने है किया निश्चय ही नर का
पौरुष है पूज्य, जन्म दोष मिट जाता है
कर्म की विभूति से। मिटाया दोष तुमने
शस्त्र से दया से, दान तप और सत्य से।[6]

कर्ण के प्रति कही गई कृपाचार्य की यह उक्ति मानव जीवन में कर्म की अडिग महत्ता की स्थापना करती है। 'महाभारत' में एक दिन कृपाचार्य ने ही कर्ण को जन्म दोष के कारण रंग भूमि प्रदर्शन के लिए वर्जित किया था[7] आज का कृपाचार्य इस स्तवन में अपने उस अपराध का परिहार करता है। कर्ण के आचरण में कर्म की महत्ता

---

१ मानो निर्वाण पद पा लिया है तुमने।
किन्तु आत्म शान्ति कहां कर्महीन जन को। सेनापति कर्ण, पृ० १६

२ भीमसेन कर्म सब फूल कर भी नहीं
देता फल जब तक काम, क्रोध मद के
कीट रहते हैं लगे उसकी शिराओं में। सेनापति कर्ण पृ० ६६

३ भुवन की जीत मिटती है भुवन में,
उसे क्या खोजना गिर कर पतन में ?
शरण केवल उजागर धर्म होगा,
सहारा अन्त में सत्कर्म होगा। रश्मिरथी, प० १६१

४ जो हो तुम्हें निश्चय ही जानो लोक धर्म में
बंधना पड़ेगा यह कर्ममय विश्व है। सेनापति कर्ण, पृ० ५२

५ सेनापति कर्ण, पृ० ५३

६ सेनापति कर्ण, पृ० १६१

७ म० आदि० १३५।३२

पौरुष, दया, दान आदि गुणों से समन्वित है। इन गुणों से युक्त कर्म ही जीवन में प्रतिष्ठा पाता है।

'कुरुक्षेत्र' का कवि 'महाभारत' के कर्मवाद से अत्यधिक प्रभावित है। कर्मवाद के समन्वयकारी सिद्धान्त होने के कारण उसकी निर्विवाद व्यावहारिक उपयोगिता को दिनकर ने आस्था के साथ स्वीकार किया है 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में कवि का अन्तिम स्वर 'कर्मवादी' ही है। संन्यास कर्मवाद का विरोधी साधन मार्ग है। दिनकर ने संन्यास का विरोध[1] करके धर्माचरण प्रधान कर्म की प्रतिष्ठा की है। कर्म अनिवार्य साधन है मानव जब तक भौतिक शरीर के बन्धन में है, तब तक कर्म से छूट नहीं सकता।[2] कर्म मार्ग की प्रमुख विशेषता यह है कि प्रवृत्ति से इसका विरोध न होकर, गहरा सम्बन्ध है। शान्ति पर्व में युधिष्ठिर को प्रवृत्ति का उपदेश मिलता है, निश्चित ही यह कर्म संयुक्त है क्योंकि कर्म के अभाव में प्रवृत्ति मार्ग मृग तृष्णा है छल है। युधिष्ठिर अपने राज धर्म को भूल कर संसार त्यागकर जंगल में जाना चाहते हैं अतः भीम भीष्म, व्यास आदि युधिष्ठिर की निवृत्ति का खंडन लोकादर्श से प्रेरित प्रवृत्ति के आधार पर, कर्म की अनिवार्यता के सिद्धान्त से करते हैं।[3] 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म युधिष्ठिर को अपना कर्म पहचानने को कहकर उसमें मन की दृढ़ आस्था को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं।[4] गीता में कृष्ण अपने कर्म करने पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि 'यदि मैं कर्म करना त्याग दूँ तो समस्त संसार भी मेरे अनुसरण में कर्महीन होकर नष्ट हो जायगा'।[5] विश्व के संचालन के लिए कृष्ण कर्म को अनिवार्य मानते हैं। महाभारत के कर्मवाद को दिनकर ने इस रूप में स्वीकार किया है कि संसार में अनासक्ति से कर्म सम्पादन मानव की आत्मिक उन्नति का चरम उपाय है। आध्यात्मिक चेतना के स्तर से भौतिक सुख भोग भी

---

१ धर्मराज कर्मठ मनुष्य का पथ संन्यास नहीं है,
नर जिस पर चलता वह मिट्टी है, आकाश नहीं है। कुरुक्षेत्र, पृ० १२५

२ कर्म भूमि है निखिल महीतल जब तक नर की काया,
तब तक है जीवन के अणु अणु में कर्तव्य समाया।
क्रिया धर्म को छोड़ मनुज कैसे निज सुख पायेगा
कर्म रहेगा साथ, भाग वह जहाँ कहीं जायेगा। कुरुक्षेत्र, प० १३५

३ म० शान्ति० अध्याय ११ २३ २४

४ सिंहासन का भाग छोड़ कर
दो मत निर्जन वन को,
पहचानो निज कर्म युधिष्ठिर,
कड़ा करो कुछ मन को। कुरुक्षेत्र, प० १४८

५ गीता, ३।२२ २४

विश्व का कल्याण करते हैं। कर्मवाद में विश्वास रखने पर व्यक्ति यदि भाग्यवाद को न भी माने तब भी वह आदर्श रहित नहीं होता। आज का कवि जन्म जन्मान्तर और भाग्यवादी दृष्टिकोण को युग की यथार्थवादी विचारधारा के आलोक में ही मानता है, किन्तु उसमें अधिक आस्था को रूढ़ि की संज्ञा देता है। 'दमयन्ती' का कवि कर्म को मोक्ष और अपवर्ग की सिद्धि का साधन मानता है।

> देव ! अपवर्ग स्वर्ग या मोक्ष,
> यद्यपि, ये हैं सभी परोक्ष
> किन्तु हैं सब जन के आधीन
> कर्म कर पाते इन्हें प्रवीन।[1]

निष्काम कर्म की साधना से जन स्वर्ग अपवर्ग और मोक्ष को अपनी सीमा में प्राप्त कर सकता है। अतः जीवन में कर्म की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है।[2] अनवरत कर्म साधना एकलव्य को धनुर्वेद के सर्वोच्च शिखर पर आसीन करने में सहायक रही।[3] जीव कर्माजन के हेतु ही संसारी बनता है।[4] इस प्रकार आधुनिक कवि 'महाभारत' के कर्म मार्ग को व्यापक व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर स्वीकार करता है। सुमित्रानंदन पंत ने कर्म का स्तवन इस प्रकार किया है कि मानव कर्म से प्रेरित होकर कार्य करे क्योंकि कर्म ही अपनी अजस्र शक्ति से मानव को लौहपुरुष बनाता है, और अन्ततः कर्म ईश्वर ही है जिससे मनुष्य का सोया हुआ चैतन्य उद्भासित हो जाता है।[5]

कर्म शब्द का क्षेत्र इतना व्यापक है कि वह मानव जीवन के समस्त आच

---

१ दमयन्ती, पृ० २६

२ यों भला स्वर्ग में धर्म कहाँ। इस लोक तुल्य है कर्म कहाँ।
हैं जन का लाभ कर्म करना। देता है स्वर्ग धर्म करना॥
दमयन्ती, पृ० १०६

३ एकलव्य, साधना संकल्प संग।

४ कर्माजन के हेतु जीव बनता संसारी। अग्रराज, पृ० ८

५ कर्म प्रेरणा करें जन प्राप्त
विरत जीवन वर्जन से मुक्त
कर्म प्रेरणा शक्ति का स्रोत
जनों को करे लौह संयुक्त।
भाग्य बल पर बैठे निरुपाय
पूर्व कृत पापों के अभियुक्त
जगे सोया जीवन चैतन्य,
कर्म ईश्वर, जन हों न वियुक्त। सौवर्णायतन, पृ० २५७

रणों को अपने में समाविष्ट किए हुए है अतः कर्म का छोड़ना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है। कर्म, चाहे जैसा हो, उसे करने और उसके प्रभाव का भोगने के लिए मानव जन्म लेता है, उसे पुनः कर्म करना पड़ता है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जिस विश्व में हम रहते हैं वह विश्व और उसमें हमारा क्षणभर रहना ही कर्म है, तब कर्म को छोड़कर कहाँ जाया जा सकता है।[1] कर्म जीवन का इतना व्यापक आचरण है कि उसे अनेक अर्थों में समझा जा सकता है। आधुनिक कवि ने 'महाभारत' के कर्मवाद के अपनी विचारधारा के अनुसार आधुनिक रूप में अनेक अर्थ स्वीकार किए हैं। प्राचीन जीवन दृष्टि की 'परमगति' परमपदप्राप्ति आधुनिक अर्थ में जीवन की चरित्र उन्नति की सनाए हैं, अतः प्राचीन कर्मवाद भी नवीन कर्मयोग में परिणत होकर जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में हमारे समक्ष आता है। उसमें प्राचीन आध्यात्मिक चेतना का स्पर्श है किन्तु वह सम्पूर्ण रूप में आध्यात्मिक चेतना नहीं है। आधुनिक कवि की दृष्टि से 'महाभारत' के कर्मवाद का सैद्धान्तिक विवेचन इस प्रकार है।

मानव शरीर धारण करके कर्म चक्र का एक महत्वपूर्ण अंग बनता है। अतः उसे कर्म करना चाहिए, कर्म से ही जीवन की उपलब्धियाँ सम्भव हैं। कर्म की व्यावहारिक उपचर्या में सकाम कर्म व्यक्ति को बन्धन में डालता है और निष्काम कर्म बन्धन मुक्त करता है। निष्काम कर्म एक साधना है अनासक्त व्यक्ति कर्म बन्धन से रहित कर्म में लिप्त होकर लोक कल्याण का साधक होता है, वही अलौकिक अर्थ में 'परमपद' है। जीवित व्यक्ति निष्काम कर्म साधना में लोक-कल्याण करता हुआ सशरीर इस परमपद की शान्ति का अनुभव करता है। कर्मयोगी अपने पुरुषार्थ के बल पर समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है।

ज्ञानयोग

ज्ञान का लक्षण—विषय का अवबोध कराने वाली वृत्ति को ज्ञान कहते हैं।[2] यह करण व्युत्पत्त्यर्थ है। भाव-व्युत्पत्ति के अनुसार ज्ञान के स्वरूप में आत्मा आदि तत्त्व आते हैं।[3] प्रथम स्थिति में ज्ञान साधन रूप है तथा द्वितीय में ज्ञान स्वरूपात्मक है जिसे हम ज्ञान का सिद्ध रूप भी कह सकते हैं। 'महाभारत' में वृत्ति रूप ज्ञान और भाव रूप ज्ञान दोनों का स्थान-स्थान पर विस्तार से वर्णन हुआ है। एक प्रकार ज्ञान को मोक्ष का साधन माना है क्योंकि ज्ञान के अभाव में परमेश्वर प्राप्ति का यत्न ही नहीं हो सकता। विषय ज्ञान के अनन्तर ही उसकी प्राप्ति की इच्छा होती है। इच्छा

१ गीता० ५।८ ९

२ ज्ञायते अनेन इति। गीता शा० भा० १८।१८ पृ० ४२२

३ ज्ञायतेऽनेनेति करणव्युत्पत्त्या वृत्तिर्ज्ञानम्।
ज्ञप्तिर्ज्ञानमिति भावव्युत्पत्त्या संविज्ज्ञानम्।
सर्वतन्त्र सिद्धान्त पदार्थ लक्षण संग्रह, पृ० ८६

स निश्चय और प्रयत्न आरम्भ होते है, तदुपरान्त फल की प्राप्ति होती है।[१] इसके अनन्तर 'महाभारत' में यत्न को भी ज्ञान रूप कहा गया है। ज्ञान, फल, ज्ञेय और कर्म इन सब का अन्त होने पर जो प्राप्तव्य परम रूप से शेष रहता है उसको ही ज्ञेय मात्र में व्याप्त होकर स्थित हुआ ज्ञान स्वरूप परमात्मा कहा गया है।[२] इस प्रकार परमतत्व परमात्म का ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ज्ञान का महत्व महाभारत के अनुसार संसार का स्वरूप ही ऐसा है कि इसमें अज्ञान के द्वारा ज्ञान आच्छादित रहता है। इस कारण समस्त प्राणी मोह को प्राप्त रहते हैं।[३] वे इन्द्रियों की आसक्ति के कारण कर्मों का फल भोगते और अनेक कष्ट पाते हैं।[४] अज्ञान की निवृत्ति के बिना सुख प्राप्ति असम्भव है। महाभारत में स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा ही अज्ञान का नाश किया जा सकता है। परमात्मा का तत्वज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है जो सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्द घन परमात्मा को सहज ही प्रकाशित कर देता है।[५]

परमतत्व की प्राप्ति के लिए समस्त साधन मार्गों में ज्ञान को महत्व दिया गया है। सांख्य के अनुसार प्रकृति और पुरुष का सत्वत जान लेना ही ज्ञान है।[६] योगमार्ग में भी ज्ञान की पूर्ण महत्ता है।[७] न्याय अपनी विशेष तर्क प्रक्रिया के द्वारा परमतत्व के समुचित ज्ञान पर ही बल देता है।[८] वैशेषिक का भूत विवेक भी ज्ञान पर ही आधारित है।[९] उपनिषदों में तो प्रमुख रूप से ज्ञान मार्ग का ही प्रतिपादन है। आत्म ज्ञान उपनिषदों का चिन्त्य विषय है। वेदान्त में ज्ञान का महत्व सर्वोपरि है।[१०] बादरायण व्यास का ब्रह्म सूत्र ब्रह्म जिज्ञासा के उत्तर में ही लिखा गया है

---

१ ज्ञानं पूर्वा मवेल्लिप्सा लिप्सा पूर्वाभिसंधिता।
अभिसंधिपूर्वकं कर्म कर्ममूलं ततः फलम्॥ म० शान्ति० २०६।६

२ ज्ञेयं ज्ञानात्मकं विद्याज्ज्ञानं सदसदात्मकम्।
ज्ञानानां च फलानां च ज्ञेयानां कर्मणां तथा
क्षयान्ते यत् फलं विद्याज्ज्ञानं ज्ञेयप्रतिष्ठितम्। म० शान्ति० २०६।७-८

३ अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः। म० भीष्म० २६।१५

४ म० भीष्म० २६।२२

५ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम्॥ म० भीष्म० २६।१६

६ म० शान्ति० अध्याय ३०५

७ म० शान्ति० अध्याय ३०६

८ भारतीय दर्शन, पृ० २६१, न्यायसूत्र ४।२।४६

९ प्रशस्तपाद भाष्य बुद्धि प्रकरण, पृ० १३६

१० भारतीय दर्शन पृ० ४२६

'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'। भक्ति मार्ग में भी ज्ञान को पूर्ण महत्व प्राप्त है।[१] परवर्ती काल के वैष्णवदार्शनिक वल्लभाचार्य ने भी भक्ति के प्रमुख अंग के रूप में महात्म्यज्ञान को आवश्यक माना है।[२] इस प्रकार भारतीय साधनाओं में ज्ञान का अनिवार्य महत्व है। महाभारत में ज्ञान साधन का प्रतिपादन पूर्ववर्ती समस्त दर्शनों और धार्मिक आचारों से संकलित है जो समस्त सिद्धान्तों के समन्वय के लिए भी एक आवश्यक शृंखला के रूप में स्वीकृत है।

ज्ञान का विषय वेदान्त की विचार परम्परा में सर्व प्रथम ज्ञातव्य वस्तु 'विषय' है जिसका अर्थ है 'प्रतिपाद्य'।[३] परमतत्व ही ज्ञान का प्रतिपाद्य है। गीता में ज्ञातव्य विषय का विभाजन क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के रूप में किया गया है। कृष्ण कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है।[४]

क्षेत्र का अर्थ शरीर है, और जो उसे जानता है अर्थात् आत्मा वह क्षेत्रज्ञ है।[५] क्षेत्र का अंग परिभाषा करते, पंचमहाभूत अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति दस इन्द्रियां मन पांच इन्द्रिय विषय इच्छा द्वेष, सुख दुःख, स्थूल देह पिंड, चेतना और धृति इन सब विकारों के साथ संक्षेप में क्षेत्र का स्वरूप बताया गया है[६] जो सांख्य की प्रकृति का ही दूसरा रूप है। गीता में कहा है कि जो जानने योग्य है तथा जिसे जानकर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है वही 'क्षेत्रज्ञ' है।[७] क्षेत्रज्ञ का स्वरूप बताते हुए कहा है कि परमात्मा सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला परन्तु वास्तव में इन्द्रियों से रहित है। वह आसक्ति रहित होने पर भी सब का धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों का भोग करने वाला है।[८] वह चराचर भूतों के भीतर बाहर व्याप्त है। सूक्ष्म होने से वह अविनाशी है, वही समीप है और वही दूर है।[९] वह आत्म तत्व माया से परे ज्योतियों की भी

१ गीता १८।५५

२ महात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा। तत्वदीप निबन्ध १।४५

३ वेदान्त के अनुबन्ध चतुष्टय में अनुबन्ध चार हैं। विषय, प्रयोजन सम्बन्ध और अधिकारी।

४ क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम। गीता, १३।२

५ इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः। गीता १३।१

६ गीता, १३।५-६

७ गीता १३।१२

८ गीता १३।१४

९ गीता १३।१५

ज्योति है, ज्ञान स्वरूप, ज्ञेय, और तत्व ज्ञान से प्राप्त करने योग्य है, और सभी के हृदय में विशेष रूप से स्थित है।[१] श्री कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि वे ही सब भूतों के हृदय में क्षेत्रज्ञ के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[२]

ज्ञान-योगी महाभारत में ज्ञानयोगी का प्रायः सभी स्थलों पर समदर्शी कहा गया है।[३] उसे कहीं भी भेद दृष्टिगोचर नहीं होता। सुख दुःख को समान मानते हुए, लाभालाभ को समान स्वीकार करते जो व्यक्ति जीवन के क्षेत्र में रत रहता है, उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।[४] इस समत्व भाव को भी योग कहा गया है।[५] ऐसा व्यक्ति ज्ञान के आधार पर निष्काम कर्म करता है, परन्तु वह कर्म संस्कारों के वशीभूत नहीं होता।[६] इसीलिए जहां भोगासक्ति में आतुर रहने वाले लोग स्त्री पुत्रादि के नाश होने पर शोक करते हैं वहां ज्ञानी पुरुष सारासार को जानकर दुःखित नहीं होते।[७] अज्ञानियों के लिए जो भय का स्थान है ज्ञानी पुरुष उस संसार से भयभीत नहीं होते।[८]

ज्ञान मार्ग के द्वारा ज्ञान योगी निर्मल बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा निर्मल मन को, मन के द्वारा निर्मल इन्द्रिय समुदाय को और इन सब के द्वारा अविनाशी परमात्मा को प्राप्त करता है।[९] जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत का प्रकाशक सूर्य प्रकाश रूपी गुण को पाकर भी अस्ताचल को जाते समय अपने किरण-समूह को समेट कर निर्गुण होता है उसी प्रकार समस्त भेदों से विवर्जित ज्ञानी भी अविनाशी निर्गुण ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाता है।[१०] जो कहीं से आया हुआ नहीं है नित्य विद्यमान है पुण्य शीलों की परमगति है अजन्मा है समस्त प्रपंच की उत्पत्ति और प्रलय का स्थान है अव्यय और सनातन है, अमृत अविकारी और अचल है—उस परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानयोगी उस समय परम अमृत स्वरूप को प्राप्त होता

---

१ गीता १३।१७
२ गीता १३।२७
३ म० शान्ति० अध्याय २३६, २३६, १९४
४ गीता २।३८ शा० भा० पृ० ५५
५ समत्व योग उच्यते। गीता २।४८ शा० भा० पृ० ६१
६ म० शान्ति० १९४।६१
७ म० शान्ति० १९४।६३
८ म० शान्ति० १९४।६०
९ ज्ञानेन निर्मलो कृत्य बुद्धि बुद्ध्या मनस्तथा।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते। म० शान्ति० २०६।२५
१० म० शान्ति० २०६।३१

है यही उसकी सिद्धि है, यही उसका परमपद है और यही उसकी प्राप्तव्य परमगति है।[1]

आधुनिक काव्य आधुनिक काव्य म ज्ञान की सद्धांतिक विवेचना महाभारतीय स्तर पर नही हुई है। आज के युग की आध्यात्मिक मान्यताओं की शिथिलता न, कवि के जीवन दर्शन पर गम्भीर प्रभाव डाला है। अत महाभारत' का ज्ञान मार्ग 'ज्ञान मीमासा उसके विवेच्य विषय नही बन पाए। आज के कवि भी इस सीमा का सामान्य आभास हम जगत, माया और मोक्ष के सदर्भ म दे चुके हैं। दार्शनिक दृष्टि से अध्यात्म ज्ञान मीमांसा का अभाव कवि की सामाजिकता के कारण हुआ है, तथापि अनेक स्थलो पर ज्ञान विषयक धारणा और ज्ञान-मार्ग का विवेचन सम्भव हो सका है।

'कृष्णायन मे कर्म की प्रतिष्ठा के साथ ज्ञान की मीमांसा गीता के अनुरूप है। कर्म की प्रतिष्ठा के साथ ज्ञान म सबका अवसान माना गया है।[2] ज्ञान रूपी तरणि पर चढ कर ही साधक समस्त पापो को पार कर लेता है।[3] समस्त कर्म के बन्धनों को ज्ञान रूपी हुताशन शीघ्र ही जला डालता है। ज्ञान के समान ससार म अन्य कुछ भी पवित्र नही है। अनेक योग साधनाओ से भी जिस वस्तु की प्राप्ति नही होती उसकी प्राप्ति ज्ञान स सहज ही हो जाती है। जिस ज्ञान का आधार प्राप्त हो जाता है उसे शीघ्र ही परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

तसे हि ज्ञान स्वरूप हुताशन,
करत भस्म सब कर्मन बन्धन।
ताते अर्जुन ज्ञान समाना
नहि पुनीत कछु महि जग माना।
योग सिद्धि नर काल बितायी
लेत ज्ञान आपुहि अइ पायी।[4]

जयभारत म ज्ञान को अभ्यास सापेक्ष माना है[5], किन्तु ज्ञान की मीमांसा अधिक सटीक नही हो पाई। ज्ञान परमेश्वर की प्राप्ति का अमोघ साधन माना गया है। ज्ञान के द्वारा ही आत्मज्ञान होता है जिसस जीवात्मा और परमात्मा म अभेद

---

१ म० शान्ति० २०६।३२

२ जदपि कर्म जदपि विधि नाना,
ज्ञानहि माहि सबन अवसाना। कृष्णायन, पृ० ५५५

३ ज्ञान तरणि चढि तुम तबहूँ जइहो सब अघ पार। कृष्णायन, पृ० ५५

४ कृष्णायन पृ० ५५५ ५६

५ बड़ा अभ्याससापेक्ष ज्ञान,
ज्ञान से भी विशेष है ध्यान। जयभारत, पृ० ३६५

का ज्ञान होता है। यह आत्म दर्शन ज्ञान सापेक्ष है।[1]

'कौन्तेयकथा' में कवि ज्ञान और कर्म के समन्वय में सिद्धि की कामना करता है और निःशेष ज्ञान को जड़ मानता है।[2] इसका प्रमुख कारण यह है कि शुष्क ज्ञान मानव को एकान्तप्रिय बना देता है और मनुष्य सामाजिकता के स्तर से पृथक् हो जाता है।

ज्ञान का विषय — महाभारत में ज्ञान का विषय क्षेत्रज्ञ है। अर्थात् आत्म ज्ञान में संसार की अनित्यता को जानकर, इन्द्रिय सुख की क्षण भंगुरता को समझ कर, ध्यान, योगादि की क्रियाओं से समाधिस्थ अथवा ज्ञानी होकर क्षेत्रज्ञ को जानना ही ज्ञान का परम ध्येय है। जैसा कि हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि आज का कवि 'परम तत्त्व' की चर्चा कम करता है। आध्यात्मिक चिंतन की अपेक्षा उसका चिन्तन सामाजिक अधिक है, इस कारण प्राचीन साधन मार्गों का भी आधुनिक संस्करण किया गया है। आज का कवि 'ज्ञान' को 'आत्मज्ञान' अथवा साधना के अनेक सोपानों के मुख्य आधार के रूप में न लेकर बुद्धि और विवेक का पर्याय मानता है। महाभारतकार के समान वह 'ज्ञान' को केवल परमपद प्राप्ति का साधन न मानकर उसकी मीमांसा सामाजिक स्तर पर करता है। 'कुरुक्षेत्र' का कवि ज्ञान को मानव के हृदय और मस्तिष्क का वह आलोक मानता है, जिसके द्वारा मानव लोक कल्याण के लिए हृदय की सात्विकता और कोमलता को देख सके। मानव का एक बाह्य स्वार्थ परायण, कठोर हिंस्र रूप है, किन्तु उसके हृदय में इसके विपरीत शान्ति की इच्छा, कोमलता, दया, करुणा की भावना निहित है अतः ज्ञान की शलाका से मानव इन हृदयस्थ गुणों को जान कर समाज के कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो।[3] दिनकर ने अत्यन्त समर्थ शब्दों में आत्म ज्ञान की मीमांसा सामाजिक

१ हुए निकटतम हो तुम मन से,
रहो कहीं भी तन से,
तेरा परमात्मीय तुझी में
देख आत्म दर्शन से। द्वापर, पृ० १६७

२ निःशेषज्ञान चिंतन मन सामाजिक स्तर से हट कर
एकान्त व्यक्ति में बस कर जीवन को जड़ कर देते।
कौन्तेय कथा, पृ० ७८

३ वल्कल मुकुट परे दोनों के छिपा एक जो नर है,
अन्तर्वासी एक पुरुष जो पिंडों से ऊपर है।
जिस दिन देख उसे पायेगा मनुज ज्ञान के बल से
रह न जायेगी उलझ दृष्टि जब मुकुट और वल्कल से।
उस दिन होगा सुप्रभात नर के सौभाग्य उदय का
उस दिन होगा शंख ध्वनित मानव की महा विजय का। कुरुक्षेत्र, पृ० १५१

दृष्टि से की है। आज के मानव का साध्य परमपद की प्राप्ति हो या न हो वह आध्यात्मिक वैयक्तिक साधन है किन्तु सामान्य मानवीय गुणों का प्रसार अत्यन्त आवश्यक है। जब तक इन गुणों की पहचान कर इनका विस्तार नहीं होगा तब तक आध्यात्मिक ज्ञान भी मानव का कल्याण नहीं कर सकेगा।

दिनकर महाभारतीय ज्ञान मार्ग की मान्यता को आस्था से स्वीकार करते हैं। 'महाभारत' का प्रतिपाद्य आत्म ज्ञान से परमपद की प्राप्ति है। अतः मानव मात्र की अखण्ड अभिन्नता में विश्वास रखने वाला आस्थावान कवि ज्ञान की मान्यता से प्रभावित है। किन्तु उसका मनन युग के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व है, जिससे वह बचना नहीं चाहता इस कारण वह आस्था के मूल को यथावत् रखकर उसका युगानुरूप परिवर्तन करता है। कवि का दृढ़ विचार है, कि मानव जिस दिन भिन्न दृश्यमान संसार में अभिन्नता प्रेम, सौहार्द करुणा दया ममत्व का संधान अपने ज्ञान चक्षुओं से कर लेगा, उस दिन उसे सम्भवतः वही परमानन्द प्राप्त होगा जो आध्यात्मिक मान्यता में योगी को ब्रह्म के साक्षात् से होता है।

ज्ञान योगी — महाभारत में उल्लिखित ज्ञानयोगी के लक्षण में 'जयभारत' के युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, 'रश्मिरथी' के कर्ण, 'कौन्तेय कथा' के अर्जुन पूर्ण सिद्ध व्यक्त हुए हैं। महाभारत में स्पष्ट कहा है कि भोगासक्ति में लिप्त व्यक्ति स्त्री पुत्रादि के नाश पर शोक करते हैं किन्तु ज्ञानयोगी सारासार को जानकर दुःखित नहीं होते[1] आधुनिक काव्य के प्रमुख पात्रों में हम यही लक्षण दिखाई देते हैं। द्रौपदी और बन्धुओं के पतन पर युधिष्ठिर शोक न करके शुद्ध आत्मा का आनन्द प्राप्त करते हैं।[2] यहां युधिष्ठिर ज्ञान-योगी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

योगमार्ग

'महाभारत' में योग सिद्धान्त की व्यापक मीमांसा है। भीष्मस्तवराज गीता, शान्तिपर्व के अनेक अध्यायों में योग की स्वतन्त्र विवेचना की गई है। योग मार्ग 'महाभारत' का मुख्य मार्ग है। योग की स्थिति 'गीता' में कर्मवाद के साथ याग

---

१ शोच आतुर जनान् विराविण-
स्ततदेव बहु पश्य शोचत।
तत्र पश्य कुशलानशोचतो
ये विदुस्तदुभयं पदं सताम्॥ म० शान्ति० १६४।६३

२ उस विषम दशा में पड़ कर भी
क्या ही सहिष्णु थे वे विनयी,
जिनके उनके से पुरुष वही
जो हुए अन्त में प्रकृतिजयी। जयभारत, पृ० ४४२

कर्मसुकौशलम्' कहकर स्वीकार की गई है। योग सिद्धान्त की प्रमुख बात यह है कि मन सर्वथा इन्द्रियों की कामना के वशीभूत इच्छाओं में चक्र लगाता और जीव नाना कर्म करके विषय भोगों में लीन होता है। मन की निर्विकारिता के अभाव में आत्मा का तेज प्रकाशित नहीं होता और आत्म तेज के अभाव में मोक्ष प्राप्ति असम्भव है। अतः मोक्ष प्राप्ति के हेतु आत्मा का प्रकाश आवश्यक है, जो मन की शान्त स्थिति में सम्भव है।

चित्त-वृत्ति निरोध वासना निरोध योग तत्वज्ञान का मूल मंत्र यही है कि वासना निरोध करके चित्त निरोध करना चाहिए। चित्त निरोध में यम, नियम, आसन आदि करने पड़ेंगे, क्योंकि इन योग कर्मों के कारण मन स्वस्थ होकर शान्त बैठेगा और आत्मा का प्रकाश होगा। योगी साधक पंचप्राण, मन, इन्द्रियों के निरोध से साधना के चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है और योग के बल से राग, मोह, काम, क्रोध आदि को जीत कर परमपद को प्राप्त करता है।[1] समाधि के द्वारा योगी आत्मा को परमात्मा में स्थिर कर अचल हो जाता और परम अविनाशी पद को प्राप्त करता है[2] महाभारतकार ने योग को परम बल कहा है[3] जिसके कारण योगी प्राण को वश में करता है और उसके पश्चात् इसी शरीर से दसों दिशाओं में स्वच्छन्द विचरण करता है।[4]

स्थूल और सूक्ष्म योग महाभारतकार वेद में वर्णित दो प्रकार के योगों का वर्णन करता है। स्थूल योग अणिमा महिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धि प्रदान करने वाला है और सूक्ष्म योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि) आठ अंगों से युक्त है।[5] सूक्ष्म योग से परम पद की प्राप्ति होती है।

सगुण निर्गुण साधन योग के दो मुख्य साधन हैं—सगुण और निर्गुण। [किसी] विशेष दशा में चित्त की स्थापना 'धारणा' है। मन की धारणा के साथ किया गया प्राणायाम सगुण है और देश विशेष का आश्रय न लेकर मन को निर्बीज समाधि में एकाग्र करना निर्गुण प्राणायाम कहलाता है।[6] वस्तुतः सगुण प्राणायाम साधना का प्रथम स्तर है और निर्गुण द्वितीय सोपान है। इसके अनन्तर जितेन्द्रियता[7]

१ म० शान्ति० ३००।११
२ म० शान्ति० ३००।३८
३ म० शान्ति० ३१६।२
४ म० शान्ति० ३१६।५
५ वेदेषु चाष्ट गुणिन योगमाहुमनीषिण। सूक्ष्ममष्टगुण प्राहुर्नेतर नृप सत्तम ॥ म० शान्ति० ३१६।७
६ म० शान्ति० ३१६।८ ६
७ म० शान्ति० ३१६।१२

मध्य रात्री के दो प्रहरो मे सोना,[1] एकान्तवास,[2] मन को अहंकार मे अहंकार को बुद्धि म, बुद्धि को प्रकृति मे स्थापित करना योगी की साधना है।[3] योगी इस साधना की पूर्णता के साथ समाधि म स्थित होता है और अंधेरे मे प्रज्वलित अग्नि के समान हृदय देश मे स्थित ज्ञान स्वरूप परब्रह्म का साक्षात्कार करता है।[4]

योग का व्यावहारिक रूप व्यास शुक सवाद म व्यास जी ने योग की दार्शनिक विवेचना करके योग के व्यावहारिक रूप की व्याख्या की है। योगी योगाभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।[5] योग का व्यावहारिक रूप यह है कि योग स चित्त की शुद्धि के रूप म काम, क्रोध, लोभ, भय का उच्छेदन होता है,[6] जिससे योगी सामा य विषय भोगो स विरक्त होता और दम्भ का त्याग करता है।[7]

योगी क लिए अहिंसात्मक वाणी का प्रयोग ही श्रेयस्कर है, उसे समस्त ससार को ब्रह्म के स्वरूप का परिणाम मानकर आचार शुद्धि से विचरण करना चाहिए[8] यहाँ तक योगी व्यावहारिक धर्मों का आचरण करता है। इसके आग के आचरण साधनात्मक हैं और परमपद की प्राप्ति कराते हैं।

ध्यान योग मोक्ष प्राप्ति के हेतु ध्यान का अनुष्ठान करने वाले योग को ध्यान योग कहा जाता है।[9] ध्यान योग क साधन का मूल रूप यही है कि पचेन्द्रियो का मथ डालने वाले विषयो की ओर ध्यान योगी का मन न जाय। जब योगी इन्द्रियो सहित मन को एकाग्र कर लता है तभी प्रारम्भिक ध्यान माग का आरम्भ होना है,[1] और वह नित्य योगाभ्यास के द्वारा शान्ति की प्राप्ति करता है।[11] ध्यान योग की व्यावहारिक आवश्यकताओ म आलस्य, खेद और मात्सय त्याग का महत्व अधिक ह क्योंकि इन वृत्ति विकारो क त्याग स ही मन ध्यान म स्थित हो सकता है। आसन, प्राणायाम प्रत्याहार आदि समस्त योग साधना का उपदेश गीता देती

१ म० शान्ति० ३१६।११
२ म० शान्ति० ३१६।१२
३ म० शान्ति० ३१६।१३ १७
४ म० शान्ति० ३१६।२५
५ म० शान्ति० २४०।३
६ म० शान्ति० २४०।५
७ म० शान्ति० २४०।६ ७
८ म० शान्ति० २०४।६
९ म० शान्ति० १६५।२
१० म० शान्ति० १६५।१०
११ म० शान्ति० १६५।२०

है। ध्यान योग की स्वीकृति का मुख्य कारण यह है कि ध्यान के द्वारा शुद्ध, परिष्कृत चित्त को ही ईश्वरार्पण किया जाय। इस दृष्टि से गीता शुष्कयोग का पक्ष ग्रहण न करके भगवद्ध्यान के साथ समन्वित करती है। ज्ञान विज्ञान से पूर्ण, जितेन्द्रिय, विकाररहित योगी 'युक्त' होता है किन्तु जो 'युक्त' योगी अपने अन्तरात्मा को ईश्वरार्पण करके पूर्ण श्रद्धा से भजन करता है वह 'युक्ततम' होता है।[1]

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥[2]

महाभारत' की दृष्टि में योग केवल शारीरिक चेष्टा है। अतः उसे योग और भक्ति का समन्वय अभीष्ट है।

आधुनिक काव्य योग की सद्धांतिक मीमांसा आधुनिक काव्य में प्राय नहीं हुई है। तथापि स्थान स्थान पर महाभारतीय पात्रों की उस साधनात्मक स्थिति का चित्रण अवश्य हुआ है, जिसमें योग साधना की छाप स्पष्ट है। 'कृष्णायन' में मिश्र जी ने योग के अभ्यास के द्वारा चित्त की एकाग्रता का प्रतिपादन करते हुए भ्रमित चित्तवृत्ति का शमन योग द्वारा उपस्थित किया है। योग साधना में लीन साधक अन्तत ईश्वर को प्राप्त करता है।[3] 'कृष्णायन' का कवि महाभारत के कृष्ण के शब्दों की पुनरावृत्ति करते हुए योग का प्रबल समर्थन करता है कि कोई भी योगी सांसारिक माया जाल से मोहित नहीं होता अतः हे अर्जुन तुम सब कालों में योग युक्त रहो, क्योंकि यही योग वास्तविक मार्ग है।[4] योगी यज्ञ, तप, दान से परे आद्यस्थान को प्राप्त करता है।[5] जयभारत' में विषयों से विरत और इन्द्रियों को

---

१ गीता, ६।११ १८
२ गीता, ६।४७
३ अपि मोहि मन बुद्धि धनंजय,
मिलिहौ मोहि मह अंत असंशय।
योग युक्त करि करि अभ्यासू,
चित्त भ्रमत इत उत नहिं जासू,
करत सो परम पुरुष कर ध्याना
पावत अंत दिव्य भगवाना। कृष्णायन पृ० ५६६
४ मोहित होत न योगि कोउ, जानि मार्ग ये दोउ,
ताते अर्जुन। काल सब योग युक्त तुम होउ। कृष्णायन, पृ० ५७२
५ वेद, यज्ञ, तप, दान—इनके तजि वर्णित सुफल।
परे जो आद्यस्थान, पावत योगी जानि यह ॥ कृष्णायन, पृ० ५७२

वश मे करने वाले साधक को योगी 'स्थित प्रज्ञ' कहा है।[१] युधिष्ठिर को सामान्यत एक अनासक्त योगी के रूप मे चित्रित किया गया है।[२] 'कौन्तेय कथा' का अर्जुन तप याग और ध्यान से ही शिव के दर्शन कर सका। योगी को परमात्मा प्राप्ति के अनेक सोपान पार करने पडते हैं, अत अर्जुन प्रथम चित्त वासना निरोध से समाधिस्थ होते हैं, सतत साधना से उनके हृदय मे आलोक आता है और शिव पहले उपचेतन मे, तत्पश्चात चेतन म दर्शन देते हैं।[3] अर्जुन की साधना की यह प्रक्रिया योगी की प्रक्रिया है।

नवीन साधनात्मक प्रक्रिया आधुनिक काव्य मे योग साधना का भी नवीनीकरण किया है। मानव अपने क्षुद्रत्व और स्वार्थ की भावना का त्याग करके, अनासक्त सासारिक की तरह जीवन यापन करे, अपने को अकिंचन मानकर दूसरे के महत्त्व को समझे और अनावश्यक रूप से अन्य सालमाओ मे न पडकर नियम एव सयम से रहे। ऐसा पुरुष भी योगी ही माना जाएगा। 'योग' को केवल योगासन, ध्यान, धारणा का रूप मानकर आत्मत्याग, सन्तोष और चतुर्मुखी सद्भावना के प्रसारक को भी योगी कहा है। जो योग के इस रूप से समाज का कल्याण कर सकता है, वह अपने कर्म से विश्व की उन्नति म सहायक होता है। 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म युधिष्ठिर को ऐसे ही अनासक्त योगी का उपदेश देते हैं।[४] इस उपदेश मे कवि की वह धारणा स्पष्ट हुई है, जिसे वह मानव की सर्वोच्च गति का आधार मानता है।[५] योग, तप, ज्ञान आदि के विषय म आज के कवि की धारणा

१ किसी से जिन्हें नहीं है मोह
नहीं है जिन्हें किसी से द्रोह
रहें जो रागरोष मय हीन
वही हैं स्थित प्रज्ञ स्वाधीन। जयभारत, प० ३३५

२ जयभारत, प० ४४३

३ जो समाधिस्थ चिन्तन मे जाग्रत थी शिव की प्रतिमा
कम्पित निवात दीपक सी फिर ठहरी होकर गहरी।
शिव उपचेतन में आए फिर चेतन मे चिन्तन से
ध्यानस्थ प्रकृति से पाया शकर का दर्शन मन मे। कौन्तेय कथा, पृ० ६०

४ जिस तप से तुम चाह रहे
पाना केवल निज सुख को,
कर सकता है दूर वही तप
अमित नरों के दुःख को। कुरुक्षेत्र, पृ० १२८

५ प्रेरित करो इतर प्राणी को
निज चरित्र के बल से,
भरो पुण्य की किरण प्रजा में
अपने तप निमल से। कुरुक्षेत्र, पृ० १५२

नितान्त बौद्धिक आधार पर टिकी हुई है। महाभारतकाल मे योग साधना परमपद की प्राप्ति का प्रमुख साधन थी किन्तु आज के युग मे 'मानवता' का विकास युग की सर्वोच्च पुकार है अत आज का कवि, विशेष रूप से राज दड धारी योगी रूप को दलित मनुष्यता के उत्थान का साधन बनाने के लिए प्रयत्नशील है। महाभारतकाल की साधना और आधुनिक साधना मे परिलक्षित अन्तर युग की व्यापक समस्याओ से सम्बद्ध है। उस काल के योगी के लक्षणो मे अहिंसा, त्याग, आचरण शुद्धि, सत्य, सरलता, क्षमा सम्पूर्ण प्राणियो मे समभाव, जितेन्द्रियता आदि गुणो का समावेश आध्यात्मिक साधना के स्तर पर था[१] किन्तु वे सभी लक्षण आज के योगी मे सामाजिक और मानवतावादी स्तर पर अभिव्यक्त हुए हैं।[२] भीष्म, मानव के जीवन मे अस्थूल शाश्वत विडम्बना की व्याख्या करते हैं कि मानव आदि काल से 'अमरत्व' को ढूढता आया है। कही पर इसके साधन रूप योग, ज्ञान, भक्ति आदि को अपनाया गया, किन्तु जीवन मे व्याप्त द्रोह द्वेष का विष मानवात्मा की स्नायुओ में भरता ही रहा। भीष्म के ही शब्दो मे कवि का अभिमत है कि वास्तविक, आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिए ज्ञान दीप को प्रज्वलित कर वैराग्य में राग और राज दड धारण मे योग का समावेश द्वारा मानवता का नवीन मार्ग दर्शन करना आवश्यक है।[३]

भक्ति मार्ग

भक्ति का स्वरूप 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज सेवायां' धातु से होती है, जिसका अर्थ है सेवा आराधना इत्यादि। परमात्मा के प्रति श्रद्धा अथवा प्रेम

१ मनसश्चेन्द्रियाणां च कृत्वैकाग्र्यं समाहित ।
प्रकीर्णा धराय च धारयेन्मन आत्मनि ॥ म० शान्ति० २४०।१४
× × ×
विधूमइव दीप्तार्चिरादित्य इव दीप्तिमान ।
वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे दृश्यतेऽऽत्मा तथाऽऽत्मनि । म० शान्ति० २४०।१६

२ कुरुक्षेत्र, पृ० १०८

३ खोजता इसे हो तो जलाओ शुभ्र ज्ञान दीप
आगे बढ़ो वीर, कुरुक्षेत्र के श्मशान से,
राग में विराग, राज दड धारी योगी बनो,
नर को सिखाओ पथ त्याग-बलिदान से,
दलित मनुष्य मे मनुष्यता के भाव भरो,
दर्प की कुराग्नि करो दूर बलवान से,
हिम शीत भावना में प्राण अनुभूति की दो,
छीन लो हलाहल उदग्र अभिमान से। कुरुक्षेत्र, पृ० १०६

भाव भक्ति का आधार है। जहा ज्ञान आदि अन्य मार्गों मे प्रमुख रूप से तत्व चिन्तन प्रधान रहता है, वहा भक्ति मे भाव की प्रधानता है। भक्ति भगवान् के प्रति भक्त का रागात्मक समर्पण है। भगवच्छरणागति, प्रपत्ति, उपासना आदि नामो से भी इसी मार्ग का अभिधान होता है। भारतीय धर्म साधना मे भक्ति मार्ग का अतीव महत्व है। 'महाभारत' मे जिस सात्वत् या भागवत धर्म का आरम्भिक रूप दिखाई देता है परवर्ती पुराणो, सूफी एव अन्य सम्प्रदायो ने इस सिद्धान्त का विकास करते हुए, उस भाव को अनेक रहस्यमयी कोटियो तक पहुँचा दिया है।

महाभारत पूर्व भक्ति कर्म ज्ञान और भक्ति मानव की सनातनी वृत्तिया हैं। यद्यपि वैदिक युग मे कर्म काड की प्रधानता रही फिर भी वहा ज्ञान की उपेक्षा सम्भव नही थी। वेद भारतीय ज्ञान के आदि स्रोत हैं। वैदिक ऋषियो ने प्रकृति की प्राणदायिनी शक्तियो के प्रति अनेक स्थलो पर अपनी रागात्मकता का भी परिचय दिया है। देवताओ के प्रति जहा पुलकित होकर वैदिक ऋषि अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं वही हम भक्ति भाव के मूल रूप का दर्शन हो जाता है। ऋग्वेद मे ही ऐसे अनेक स्थल हैं जहा प्रभु की सेवा मे अपनी वृत्तियो की सलग्नता उसी रूप मे वर्णित की गई है जिस रूप मे पति पत्नी की सलग्नता होती है। वहा कहा गया है कि 'सुख का ज्ञान रखने वाली एक ही मार्ग मे बढने वाली प्रभु प्राप्ति की कामना से युक्त मेरी समस्त बुद्धिया आज प्रभु की सेवा मे लगी हुई हैं और जैसे स्त्रिया अपने पति का आलिंगन करती हैं वैसे ही मेरी बुद्धिया ऐश्वर्य शाली पवित्र प्रभु का आलिंगन सुरक्षा के लिए करती हैं।[1] एक अन्य मन्त्र मे सर्वदर्शित सम्पन्न प्रभु के साथ अपनी बुद्धि का वैसा ही स्पर्श करने की कामना की गई है जैसे कामनाशील पत्नी कामना युक्त पति का स्पर्श करती है।[2] अनेक स्थलो पर विष्णु[3] और इन्द्र[4] के प्रति सामीप्य की उत्कट भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

उपनिषदो के काल तक आते रहस्यमयी भाव साधनाओ के अनेक सम्प्रदायो का निर्माण हो चुका था। उपनिषदो मे प्रणव विद्या[5] दहर विद्या[6] मधुविद्या[7]

---

१ ऋग्वेद १०।४३।१

२ ऋग्वेद, १।६२।११

३ इम मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय, त्वामवस्युराचके।
ऋग्वेद १।२५।१६

४ त्वहि न पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे।
ऋग्वेद, ८।९८।११

५ छान्दोग्यउपनिषद १।५।१

६ छान्दोग्यउपनिषद ८।१।१

७ बृहदारण्यक उपनिषद् २।५।१४

आदि का विवरण मिलता है जो तत्कालीन भक्ति सम्प्रदायों का ही स्वरूप है। भक्त और भगवान के सम्बन्ध में यहां कुछ अधिक भावात्मकता का विकास हुआ है। तथापि यह कहना उचित होगा कि उपनिषदों में ज्ञानमार्ग की प्रधानता के कारण भक्ति का रहस्यात्मक स्वरूप ही अधिक प्रस्फुटित हुआ है।

बृहदारण्यक उपनिषद में सृष्टि का आरम्भ जिस आत्मरूप से माना गया है वह भी रसात्मक स्वरूप है।[1] उसके साथ एकत्व की जिस कामना का प्रकटीकरण उपनिषदकार ने किया है उसमें भी तीव्र रागात्मिकता भक्ति का प्रकाशन हुआ है। यह माना जाता है कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में भक्ति शब्द का प्रथम प्रयोग हुआ है। यह भक्ति गुरुभक्ति है और कहा गया है कि जैसी भक्ति देवताओं में होती है वैसी भक्ति गुरु के प्रति होनी चाहिए।[2]

पहले कहा जा चुका है कि पांचरात्र मत का आरम्भ भी महाभारत पूर्व युग में ही हुआ था और इस सम्प्रदाय के भी अनेक ग्रंथ उपलब्ध थे। 'महाभारत' भी इस सम्प्रदाय के आरम्भिक विकास का सूचक है। अपितु कहना यह चाहिए कि 'महाभारत' में भक्ति भावना का जो स्वरूप मिलता है वह बहुत सीमा तक इसी सम्प्रदाय की देन है। 'महाभारत' का यह भक्ति स्वरूप संक्षिप्त में आगे वर्णित है।

महाभारत में भक्ति का स्वरूप भक्ति भावना अपने स्वरूप की स्पष्टता के लिए जिन दो अवलम्बनों पर आधारित है वे हैं उपास्य और उपासक। वेद और उपनिषद काल में उपास्य का स्वरूप प्रायः अव्यक्त ही रहा परन्तु भक्ति का स्वरूप उसी क्षण बलशाली प्रवाह के साथ विकसित हुआ, जिस समय अवतारवाद की स्वीकृति भारतीय धर्म में हुई।

डाडेकर इस मत को स्वीकार करते हैं कि वेदों में अवतारवाद का कोई भी स्पष्ट संकेत नहीं, हां, कुछ ऐसे स्थल अवश्य मिल सकते हैं जिनमें इस विचार का मूल रूप पाया जाता है।[3] वेदों में विष्णु को अन्य सब देवताओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था।[4] किन्तु विष्णु का कोई अवतार 'वेद' या 'उपनिषद' में

---

१ बृहदारण्यक० १।४।१ ३

२ यस्य देवे पराभक्ति यथा देवे तथा गुरौ। श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।२३

३ It must be said that there is no clear reference to the Avtar theory as such in Vedas But the germs of the features of that conception are certainly to be found in Vedic passages '

Studies in Indology vishnn in the Vedas, p 95

४ 'The name of Vishnu and his cult go back to Vedic time—He is conceived as the Infinite Spirit'

India anb its Faith, London, 1916, p 50

मान्य नहीं है। 'महाभारत' का भागवत धर्म श्रीकृष्ण को अपना उपास्य मानता है और उन्हें विष्णु से अभिन्न बताता है। 'महाभारत' में ही मानव ईश्वर की प्रथम कल्पना हुई है, ऐसा प्रतीत होता है[1] और यह 'महाभारत' के महत्व को स्थापित करने वाला एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है।

'महाभारत' ने भक्ति में इस अवतारवाद के साथ ही व्यक्त और सगुण तत्व का सैद्धान्तिक समावेश कर लिया। गीता में कृष्ण ने कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥[2]

अर्थात् अव्यक्त उपासकों का मार्ग अधिक क्लेशदायक होता है। अतः अगले श्लोकों में व्यक्त की उपासना का प्रतिपादन किया है।[3] 'महाभारत' की भक्ति का यह स्वरूप अतीव क्रान्तिकारी था जिसका विकास परवर्तीकाल की वैष्णव उपासना में परिलक्षित है।

महाभारत का उपास्य 'महाभारत' के उपास्य निर्विवादरूप से श्री कृष्ण ही हैं। कथा विकास के अन्तर्गत पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में श्री कृष्ण को ही पूजा का आसन प्रदान किया गया था।[4] अन्यत्र आध्यात्मिक प्रसंगों में भी श्री कृष्ण को ही परदेवता सिद्ध किया गया है। वन पर्व के मार्कण्डेय प्रसंग में बालमुकुन्द और श्री कृष्ण को अभिन्न मानते कहा गया है कि नारायण विष्णु ब्रह्मा, शक्र शिव, सोम, कश्यप, प्रजापति धाता, विधाता यज्ञ अग्नि आदि सभी का स्वरूप श्री कृष्ण ही हैं।[5] इस सृष्टि में श्री कृष्ण से अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। श्री मद्भगवद्-गीता में भी श्री कृष्ण की विभूतियों का विभूति योग में ऐसा ही व्यापक वर्णन है।[6] श्री कृष्ण का विराटस्वरूप इन समस्त विभूतियों का प्रत्यक्ष रूप है।[7] वे ही

---

१ 'In the Epicpoetry on the contrary in the Mahabharta Vishnu is in full possession of this Honour At the same time there comes into view a Hero a man—God Krishna who is declared to be an incarnation of his divine essence—There is connection between the attainment of supremacy by Vishnu and his identification with Krishna'

The Religion of India 1891, p 166

२ गीता १२।५

३ गीता, १२।६ ७

४ म० सभा० ३५।२८ २६

५ म० वन० १८६।३ १२

६ गीता, १०।४ ६

७ गीता अध्याय ११

चराचर के पति हैं और सब जगत उन्हीं से उत्पन्न है। वन पर्व और गीता दोनों स्थलों पर श्री कृष्ण ने अपने अवतार का कारण बताया है। जब-जब धर्म की हानि और अधर्म का उत्थान होता है तब-तब मैं अपने को मानव रूप में उत्पन्न करता हूं। साधुओं के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए मेरा युग युग में अवतार होता है।[1] वे यह भी कहते हैं कि मुझ देह बन्ध परमात्मा को अनेक व्यक्ति समझ नहीं पाते। वस्तुतः मैं ही इस जगत् का मूल चक्र धार हूं।

मार्कण्डेय ने अपनी प्रार्थना में श्री कृष्ण को पुराण पुरुष, विभु और हरि बताया है।[2] 'महाभारत' के नारायणीयपर्व और गीता में श्री कृष्ण के इस परमात्म रूप का प्रतिबिम्बित वर्णन है। वस्तुतः महाभारत काल में प्रचलित समस्त ब्रह्म रूपों का पर्यवसान श्री कृष्ण के स्वरूप में होता हुआ दिखाई देता है। वहां उनकी स्पष्ट घोषणा है कि मुझसे परे और कोई नहीं है।[3] शांति पर्व में भगवान् कृष्ण को सम्पूर्ण लोकों का पालक, और संहारक बताया है अतः वे ही सब प्रकार से भजनीय हैं।[4]

इस प्रकार महाभारत में उस भक्ति आंदोलन का मूल स्रोत विद्यमान है, जिसका साहित्यिक विकास परवर्ती दार्शनिक आचार्यों के सिद्धान्तों से हुआ।

आधुनिक काव्य आधुनिक काव्य की भक्तिवादी विचारधारा मूलतः मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन से प्रभावित है। महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों में व्यक्त भक्ति की विचारधारा पर 'महाभारत' और परवर्ती भक्ति सिद्धान्तों का सम्मिलित प्रभाव पड़ा है। 'महाभारत' में पांचरात्र और सात्वत मतों के अन्तर्गत भक्ति की सम्भिन्न मीमांसा हुई है। गीता में भगवान् कृष्ण ने सर्वस्व समर्पण करने की प्रेरणा के द्वारा भक्ति के मार्ग को भक्त के लिए सुलभ किया इसके अतिरिक्त ज्ञान योगादि की सभी साधनाओं को ईश्वरार्पण करना भी भक्ति मार्ग का एक रूप हो है। महाभारत प्रतिपादित भक्ति मार्ग का प्रभाव आधुनिक प्रबन्ध काव्यों की विस्तृत सामाजिक भाव भूमि पर यत्रतत्र परिलक्षित होता है।

द्वापर में गुप्त जी ने गीता के अनुसार भक्त के सर्वस्व समर्पण के सिद्धांत का उल्लेख किया है[5] और महाभारतीय प्रबन्ध काव्यों के सभी प्रमुख पात्र भगवान्

१ म० वन० १८६।२७ २६, ३१
२ म० वन० १८८।५४
३ म० शान्ति० ३४५।२२
४ म० शान्ति० ३४८।८८
५ कोई हो सब धर्म छोड़ तू
आ, बस मेरी शरण धरे,
डर मत, कौन पाप वह जिससे
मेरे हाथों तू न तरे ? द्वापर, पृ० १२

कृष्ण में अटूट आस्था रखते हैं। उनके द्वारा कृष्ण की भक्ति का प्रतिपादन कवि का प्रमुख ध्येय रहा है। भक्ति की सैद्धान्तिक विवेचना अथवा उसके विभिन्न लक्षणों के विषय में आज का कवि ज्ञान, योग आदि के समान ही विचार करता है। 'जयद्रथ वध' में युधिष्ठिर भक्ति भावना से आपूरित होकर कृष्ण का स्तवन करते हैं।[1] महाभारत काल में कृष्ण ने वैदिक यज्ञों की बहुलता को समाप्त कर भक्ति की स्थापना की थी, आज का कवि उसी स्वर में पूजा, पाठ आदि को मानता हुआ भी वस्तुतः निर्मल हृदय की रागात्मिका वृत्ति 'भक्ति' को प्रमुख मानता है।[2] यही कारण है कि यज्ञ, तप, दान आदि से भक्ति का एक कण भी अधिक महत्वपूर्ण है, जिसे प्रभु तत्काल स्वीकार करते हैं,[3] यह विश्व अगाध सागर है तथा कृष्ण की भक्ति के बिना भवसागर से पार नहीं उतरा जा सकता।[4] 'कृष्ण सागर' में कृष्ण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते हुए कृष्ण के अवतारत्व में भक्ति की स्थापना की गई है। यहां पर भी कृष्ण की स्तुति उपास्यदेव के रूप में करके उसे भक्ति से ही प्राप्य बताया गया है।[5]

'प्रिय प्रवास' के कवि ने भक्ति मार्ग का उसी रूप में नवीन आलेखन किया जिस रूप में कृष्ण चरित्र में परिवर्तन किया। पौराणिक भक्ति सिद्धांत की व्यावहारिक उपचर्या को हरिऔध जी ने नैतिक बुद्धिवाद और आदर्शवाद की आधु-

---

१ आकार हीन तथापि तुम साकार सतत सिद्ध हो,
सर्वत्र होकर भी सदा तुम प्रेम वश्य प्रसिद्ध हो।
करते तुम्हारा ही मनन, मुनिरत तुम्हीं में ऋषि सभी,
सतत तुम्हीं को देखते हैं ध्यान में योगीन्द्र भी।
× × ×
जय पूर्ण पुरुषोत्तम जनार्दन, जगन्नाथ, जगत्पते,
जय जय विभो, अच्युत हरे, मंगल पते, माया पते।
जयद्रथ वध, पृ० ६३ ६४

२ व्यंजन नहीं, देव देखेंगे
श्रद्धा भक्ति तुम्हारी। द्वापर, पृ० ६३

३ यज्ञ, तप, दान भजन भोजन।
भक्ति का बहुत एक भी कण,
ग्रहण करता [illegible] मैं तत्क्षण॥ जयभारत, पृ० ३३८

४ भव सागर पय अगाध भरो। पद कृष्ण जहाज बिना न तरो।
नहिं दुस्तर सागर पार बिना। हरि भक्ति अनन्य कथा रति ना।
कृष्णायण, पृ० ४१६

५ कृष्ण सागर, पृ० २३६

निक सीमा मे उपस्थापित किया है। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण 'प्रिय प्रवास' मे मानवोत्तर रूप म चित्रित हैं, उसी प्रकार भक्ति भी लोक सेवा, लोक सग्रह का पर्याय बनकर व्यक्त हुई है।[1] भक्ति की पौराणिक परम्परागत धारणा के विरुद्ध यह परिवर्तनकारी प्रतिष्ठा युग की विकसित बौद्धिक चेतना का अभिनन्दन करता है। आधुनिक काल के महाभारत प्रभावित प्रबन्ध काव्यो मे इसी आधार पर भक्ति की विवेचना हुई है।



१ प्रिय प्रवास सर्ग १६

उपसंहार

प्रपने इस विस्तृत मध्ययन मे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह प्रभाव परम्परा कभी सीमित और कभी व्यापक रूप से रही। सभी कवियो ने 'महाभारत' क कथानक को तत्कालीन युग चेतना के मालोक मे विन्यस्त किया। उन्होंने जीवन-साधना क अनेक पक्षों को 'महाभारत' से उठाकर उन्हें और भी अधिक लोकप्रियता देकर युगीन सभ्यता के शिखर चैतन्य से मण्डित करके, काव्य के सुन्दर मावरण मे प्रस्तुत किया। इससे आज की समस्याएं प्राचीन संस्कृति और सभ्यता के मालोक म विवेचना का विषय बनी। 'महाभारत' के प्रभाव को माज के कवि न उतनी मात्रा में स्वीकार किया है जितना उसके जीवन-दर्शन के मनुरूप है।

इस दृष्टि स मूल से नितान्त सम्बन्ध रखने वाले परम्परावादी कवियो की सिद्धि पुनरुत्थानात्मक रही और सुधारवाद से प्रभावित कवियो ने माधुनिक सामाजिक सुधार के स्वर को 'महाभारत' के माध्यम स व्यक्त किया।

'महाभारत' की कथा, पात्र, धर्म और दर्शन मूलत महाभारत के होते हुए भी, अपनी नवीन व्याख्या में माधुनिक बौद्धिक चेतना से युक्त हैं।

किसी भी माप ग्रन्थ से प्रभावित साहित्य के मूल्यांकन का यही माधार है कि वह किस रूप में प्राचीन मादर्शों सांस्कृतिक मूल्यों, सभ्यता के स्तरों की पुन स्थापना कर पाया है और कितने मनुपात म अपने युग की चेतना के प्रति जागरूक रहकर उसे स्पष्ट वाणी दी है। ऐसा साहित्य मति प्राचीन और मति माधुनिक दोनो के मध्य म समन्वय का मार्ग अपना कर सद्वृत्तियों की स्थापना करता है। माधुनिक प्रमुख कवियो ने महाभारतीय चिन्तन के क्षेत्र में—तत्कालीन दृष्टि को माधुनिक रूप देकर समन्वय की विराट भावना से उपस्थित किया है।

कथा म परिवर्तन का मुख्य माधार कवि का उद्देश्य रहा है। सामान्यत कथा का पुन स्जन अधिक हुमा है। माधुनिक प्रबन्ध काव्यो का मुख्य दृष्टिकोण सामाजिक है—सामाजिक उन्नयन, प्राचीन रूढ़ जड विचारधारा का खण्डन और व्यापक समत्व का प्रतिपादन इन काव्यो की सिद्धि है। इनम 'महाभारत' की धर्मविधि और दार्शनिक मान्यतामों को युगानुरूप स्वीकृति दी है। 'महाभारत' की कथा को इस युग म ग्रहण करने का सर्वप्रमुख कारण सांस्कृतिक पुनरुत्थान है, जिसमें माधुनिक कवि सफल हुमा है।

माधुनिक काल मे, प्रवादों के मध्य विकसित कविता के गीति मग के साथ उ 'प्रबन्ध' प्राप्त होता है वह मात्रा म बहुत अधिक तो है ही किन्तु सांस्कृतिक उन्नय

की दृष्टि से उसका महत्व सर्वोपरि है। विशेषकर उन काव्यो का, जो 'रामायण' 'महाभारत' के प्रभाव के अन्तर्गत लिखे गये और जिन्होंने पुनरुत्थान युग की चेतना की सटीक अभिव्यक्त करते हुए मानव के शाश्वत धर्माचारो की स्थापना की और शाश्वत धर्म का आख्यान किया।

आधुनिक कवियो का मुख्य उद्देश्य चरित्र सृष्टि होने के कारण 'महाभारत' के अनेक अति प्राकृत तथ्यो को छोड दिया गया है—जिससे 'महाभारत' का चरित्र आधुनिक युग चेतना का वाहक बन सके।

'महाभारत' के चरित्रो म वीर युगीन भावना के व्यापक प्रसार के कारण मानवीय सघष का अभाव है किन्तु आज के युग मे वे चरित्र मानसिक द्वन्द्व की उस स्वाभाविकता स युक्त है जो आज के वैज्ञानिक मानव की मूल विशेषता है।

आधुनिक कवि ने महाभारतीय धार्मिक आचार विचारो को युग के निकष पर रखते हुए रूढिरूप म उनका पालन नही किया अपितु धम के तत्कालीन लोकादश और आज के जीवन के यथाथ सघष में समन्वय करते हुए बौद्धिक आधार पर धम का सम्पादन किया है।

आज के कवि की महान् उपलब्धि यह है कि उसने महाभारतीय आध्यात्मिक चिन्तन साधनाओ को आधुनिक सामाजिक उन्नति के साधन रूप म चित्रित किया है—वह उस रूप म दाशनिक नही है किन्तु उसे समस्त दाशनिक मान्यताए सस्कार-जन्य रूप म स्वीकृत हैं। वह परमपद की प्राप्ति के लिए उन साधन मार्गों का उपयोग नही करता अपितु उनसे मानव उन्नति की सिद्धि प्राप्त करना चाहता है।

सार रूप मे कहा जा सकता है कि महाभारतीय युग और आज के युग में विलक्षण समत्व होने के कारण 'महाभारत से प्रभावित कवि का साहित्यिक और सामाजिक दायित्व ही' इस प्रभाव को स्वीकार करने की प्रेरणा देता है। इस प्रभाव को ग्रहण करके ही वह आज के जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता 'मानव म कम भावना' के जागरण का प्रसार करने मे समर्थ हुआ है।

सदर्भ ग्रंथों की सूची

काव्य ग्रन्थ

१	दूत वाक्य	भास
२	कर्णभार	”
३	दूतघटोत्कच	”
४	उरुभंग	”
५	मध्यम व्यायोग	”
६	पचरात्र	”
७	अभिज्ञान शाकुन्तलम	कालिदास
८	किरातार्जुनीय	भारवि
९	वेणी सहार	नारायण
१०	शिशुपाल वध	माघ
११	सुभद्रा धनजय	कुलशेखर वमन
१२	कीचक वध	नीतिवमन
१३	बाल भारत	राजशेखर
१४	नपघानन्द	क्षेमीश्वर
✓१५	किरातार्जुनीय व्यायोग	वत्सराज
१६	नैषध चरित्र	श्री हर्ष
१७	नल विलास	रामचन्द्र
१८	निर्भय भीम	रामचन्द्र
१९	बालभारत	अमरचन्द
✓२०	पाण्डव-चरित्र	देवप्रभसूरी
२१	बाल भारत	अगस्त्य
२२	रिट्ठणेमिचरिउ	स्वयंभू
✓२३	महापुराण	पुष्पदन्त
२४	हरिवंश पुराण	धवल
✓२५	पाण्डव पुराण	यश कीर्ति
२६	हरिवंश पुराण	”
२७	हरिवंश पुराण	श्रुति कीर्ति
२८	पृथ्वीराज रासो	चन्दबरदाई

२९	पच पाण्डव रास	शालीभद्र सूर
३०	रामचरित मानस	गोस्वामी तुलसीदास
३१	सूरसागर	सूरदास
३२	महाभारत	सबलसिंह,चौहान
३३	सग्राम सार (द्रोण पर्व)	कुलपति मिश्र
✓ ३४	पाण्डु चरित्र	राघोदास
३५	महाभारत कर्णार्जुनी	ठाकुर कवि
३६	नलोपाख्यान	रामनाथ पण्डित
✓ ३७	जमिनी पुराण	जगत मणि
३८	विजय मुक्तावली	छत्रसिंह
✓ ३९	पाच पाण्डव चोपाई	लालचचन
✓ ४०	विदुर प्रजागर	कृष्ण कवि
४१	नल चरित्र	मुकुन्द सिंह
४२	महाभारत शल्य और गदा पर्व	
४३	महाभारत विराट पर्व तथा सभा पर्व	
४४	चक्रव्यूह	अनात
४५	द्रोण पर्व भाषा	दवदत्त
४६	धर्म सवाद	जनदयाल
४७	कृष्णायण	शिवदास
४८	धर्मगीता	जगन्नाथ दास
४९	पाण्डव पुराण	लाला बुलाकीदास
✓ ५०	पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका	स्वरूप दास
५१	नल दमयन्ती चरित्र	सेवाराम
५२	नल दमयन्ती कथा	अगद कवि
✓ ५३	पाण्डव सत	विश्वनाथ
५४	बभ्रुवाहन की कथा	प्राणनाथ
५५	बबुर वाहन की कथा	रामप्रसाद
५६	दमयन्ती नल की कथा	केवल कृष्ण
५७	नल चरित्र	सवासिंह
५८	अभिमन्यु कथा	अनात
५९	अभिमन्यु वध	
६०	जरासध	गिरधर दास
६१	कृष्ण सागर	जगन्नाथ सहाय
६२	दवयानी	जगमोहन सिंह

६३ महाभारत दर्पण	गोकुलनाथ
६४ जैमिनी पुराण	सूयबली सिंह
६५ धनजय विजय	लालताप्रसाद
६६ नैषध काव्य	गुमान मिश्र
६७ विजय मुक्तावली	छत्र कवि
६८ आल्हा महाभारत (भीष्म पर्व)	गंगासहाय गौड
६९ कृष्णायण	बिसाहूराम
७० सग्राम सार	कुलपति मिश्र
७१ वीर विनोद	श्री पर्वासिंह
७२ जयद्रथ वध	मथिलीशरण गुप्त
७३ शकुन्तला	मैथिलीशरण गुप्त
७४ द्रौपदी चीरहरण	लोकेश्वर त्रिपाठी
७५ अभिमन्यु का आत्म बलिदान	कमलाप्रसाद वर्मा
७६ कीचक वध	शिवप्रसाद गुप्त
७७ सगीत महाभारत	नथाराम शर्मा गौड
७८ अभिमन्यु वध	रघुनन्दनलाल मिश्र
७९ दुर्योधन-वध	जगदीश नारायण तिवारी
८० सैरन्ध्री	मैथिलीशरण गुप्त
८१ बक सहार	मथिलीशरण गुप्त
८२ वन वैभव	मथिलीशरण गुप्त
८३ अभिमन्यु वध	रामचन्द्र शुक्ल
८४ नल नरेश	प्रताप नारायण
८५ पाण्डव यशेन्द्र चन्द्रिका	स्वरूपदास
८६ महाभारत	श्री लाल खत्री
८७ अभिमन्यु पराक्रम	देवीप्रसाद बरनवाल
८८ नहुष	मैथिलीशरण गुप्त
८९ कृष्णायण	द्वारका प्रसाद मिश्र
९० नकुल	सियाराम शरण गुप्त
९१ अगराज	आनन्द कुमार
९२ हिडिम्बा	मथिलीशरण गुप्त
९३ जयभारत	मैथिलीशरण गुप्त
९४ रश्मिरथी	रामधारीसिंह दिनकर
९५ सावित्री	गौरीशकर मिश्र
९६ शकुन्तला	भगवानदास शास्त्री

९७ शल्यवध	उदयनारायण मिश्र
९८ पांचाली	डा० रांगेय राघव
९९ विदुलोपाख्यान	भगवतशरण चतुर्वेदी
१०० सती सावित्री	श्री गोपाल श्रोत्रीय
१०१ दमयन्ती	ताराचन्द हारीत
१०२ एकलव्य	डा० रामकुमार वर्मा
१०३ देवदयानी	श्री रामचन्द्र
१०४ सेनापति कर्ण	लक्ष्मीनारायण मिश्र
१०५ दानवीर कर्ण	गुरुदत्त सेमवाल
१०६ द्रौपदी	नरेन्द्र शर्मा
१०७ गुरु दक्षिणा	विनोद चन्द्र पाण्डेय
१०८ कौरव कथा	उदयशंकर भट्ट
१०९ भारतेन्दु ग्रन्थावली	स० ब्रजरत्नदास
११० उद्धव शतक	जगन्नाथ दास रत्नाकर
१११ प्रिय प्रवास	अयोध्यासिंह उपाध्याय
११२ गुरुकुल	मथिलीशरण गुप्त
११३ द्वापर	"
११४ मंगलघट	"
११५ भारत भारती	"
११६ त्रिपथगा	भगवतीचरण वर्मा
११७ पार्वती	रामानन्द तिवारी
११८ लोकायतन	सुमित्रानन्दन पन्त

समीक्षात्मक ग्रन्थ

११९ सियारामशरण गुप्त	स० डा० नगेन्द्र
१२० महाभारत मीमांसा	चिन्तामणि विनायक वैद्य
१२१ हिन्दू भारत का उत्कर्ष	"
१२२ भारत सावित्री	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१२३ महाभारत परिचय	गीता प्रेस गोरखपुर
१२४ श्रीमद् भगवद्गीता रहस्य	बालगंगाधर तिलक
१२५ भारतीय दर्शन	डा० बलदेव उपाध्याय
१२६ तुलसी दर्शन मीमांसा	डा० उदयभानुसिंह
१२७ हिन्दीमहाकाव्य का स्वरूप विकास	डा० शम्भुनाथ सिंह
१२८ अपभ्रंश साहित्य	डा० हरिवंश कोछड़
१२९ संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो	स० डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

१३० चन्दवरदाई और उनका काव्य — त्रिवेदी
१३१ आपण कविया — श्री के का शास्त्री
१३२ आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य — डा० हरिशंकर शर्मा
१३३ मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन — डा० सत्येन्द्र
१३४ युद्ध और अहिंसा — महात्मा गांधी
१३५ अहिंसा दर्शन — बलभद्र जैन
१३६ गांधी और गांधीवाद — बलभद्र जैन
१३७ गुप्त जी की कला — डा० सत्येन्द्र
१३८ हिन्दुत्व — रामदास गौड
१३९ हिन्दी साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
१४० संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला
१४१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास — डा० श्रीकृष्णलाल
१४२ रसमीमांसा — रामचन्द्र शुक्ल
१४३ मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य — डा० कमलाकान्त पाठक

संस्कृत ग्रन्थ

१ ऋग्वेद
२ अथर्ववेद
३ केनोपनिषद्
४ मुण्डकोपनिषद
५ बृहदारण्यक उपनिषद्
६ माण्डूक्योपनिषद
७ कौषीतकि उपनिषद
८ छान्दोग्य उपनिषद
९ मुक्तिकोपनिषद
१० गीता — शंकर एवं रामानुज भाष्य
११ सर्वतन्त्र सिद्धान्त पदार्थ लक्षण संग्रह — सं० गौरीशंकर मिश्र
१२ तत्वदीप निबन्ध — श्री वल्लभाचार्य
१३ निरुक्त — यास्क
१४ महाभारत — गीता प्रेस गोरखपुर

अंग्रेजी पुस्तकें

१	इम्पीरियल गजट आव इण्डिया	ग्रियसन
२	चम्बस एनसाइक्लोपीडिया	
३	सोशोलोजी आव रिलीजन	जोचिनवाच
४	जरनल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी	
५	दी माडन आप हिंदुइज्म	जे० एन० फरगूसन
६	महाभारत ए हिस्ट्री एण्ड ड्रामा	राय प्रमाथामलिक
७	हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर	विन्टर निल्ज
८	दी ग्रेट एपिक आव इण्डिया	हापकिन्स
९	हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर	मक्डोनल
१०	दी महाभारत ए क्रिटिसिज्म	सी० वी० वैद्य
११	शक्ति एण्ड शाक्त	सरजोन वुडरफ
१२	दि फिलासफी आव रची द्राप	एस० के० मत्रा
१३	हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर	वी० वरदाचार्य
१४	दि हीरोइक एज आव इण्डिया	एन० के० सिद्धान्त

—— • ——